CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.________________

Book No.________________

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कनिङ्घम लिखित

प्राचीन भारतका ऐतिहासिक भूगोल

★

HISTORY OF THE
ANCIENT GEOGRAPHY OF INDIA

A. CUNNINGHAM

★

अनुवादक

जगदीश चन्द्र

★

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४६२ मालवीय नगर

इलाहाबाद

★

[प्र]थम संस्करण]   अगस्त १६७१   [मूल्य १५)

Phone No : — 5965
Bharatiya Vidya Prakashan,
Post Box 108, Kachouri Gali,
VARANASI (U. P.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय
४९२ मालवीय नगर
इलाहाबाद

4242

★

State Museum Library
Lucknow

मुद्रक—
उत्तम प्रिंटिङ्ग प्रेस
१०३६ बलुआघाट
इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समर्पण

मेजर जेनरल सर एच० सी० रालिन्सन K. C. B.

को

जिन्होंने मेरी इस पुस्तक के निर्माण में,
अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है,
उनको यह पुस्तक सादर समर्पित
करता हूँ।

एलेक्ज़ेण्डर कनिङ्घम
लेखक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूल संस्करण की भूमिका

भारत के भूगोल को सुविधा पूर्वक कुछ विशिष्ट भागों में विभाजित किया जा सकता है जिसके प्रत्येक भाग का नामांकरण उस समय में प्रचलित धार्मिक तथा राजनैतिक स्वरूप के आधार पर किया जा सकता है कि ब्रह्म कालीन, बौद्ध कालीन तथा मुस्लिम कालीन।

ब्रह्म कालीन भूगोल में आर्य जाति द्वारा पंजाब पर सर्वप्रथम अधिकार से लेकर बौद्ध धर्म के उत्थान के समय तक उत्तरी भारत पर आर्य जाति के विस्तार का विवरण मिलता है और इस काल में सम्पूर्ण ऐतिहासिक अथवा आर्यों के प्राचीनतम भाग का समय सम्मिलित है जिस समय देश में वैदिक धर्म ही प्रचलित था।

बौद्ध काल अथवा भारत का प्राचीन भूगोल में बुद्ध के समय से महमूद गजनवी की विजयों के समय तक बौद्ध धर्म के उत्थान, विस्तार एवं पतन की कहानी निहित है जिसके अधिकांश समय में बौद्ध धर्म ही देश का मुख्य धर्म था।

मुस्लिम काल अथवा भारत का आधुनिक भूगोल महमूद गजनवी के समय से लेकर प्लासी के युद्ध के समय तक अथवा ७५० वर्षों के काल में मुस्लिम शक्ति के उत्थान तथा विस्तार का समय था जिसमें मुसलमान ही भारत के सर्वोपरि शासक थे। एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने एक अन्य पुस्तक में वैदिक कालीन समीक्षा को अपनी पुस्तक का विषय बनाया है। भारतीय भूगोल के इस प्राचीन भाग पर एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन के मूल्यवान विवरण से इस बात का आभास मिलता है कि एक योग्य एवं चतुर समीक्षक द्वारा वैदिक कालीन गाथाओं से कितनी रुचि पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

द्वितीय अथवा प्राचीन खण्ड का आंशिक विवरण एच-एच विलसन द्वारा अपनी पुस्तक एरियाना एन्टिका (Ariana Antiqua) तथा प्रो० लासेन द्वारा पेंन्ट पोटामिया इंडिका में किया गया है परन्तु ये पुस्तकें उत्तर पश्चिमी भारत से संबंधित हैं। प्रो० लासेन ने प्राचीन भारत पर अपनी एक अन्य बड़ी पुस्तक में योग्यता पूर्वक सम्पूर्ण भूगोल का चित्रण किया है। एम० डी सेन्ट मार्टिन ने अपने दो विशेष लेखों में देश के भूगोल का विस्तृत विवरण दिया है। इनमें एक लेख यूनानी तथा लैटिन स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर भारत के भूगोल पर लिखा गया है जबकि दूसरा लेख एम० जुलीन द्वारा चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग की जीवनी तथा यात्राओं के अनु-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पुस्तक के लेखक

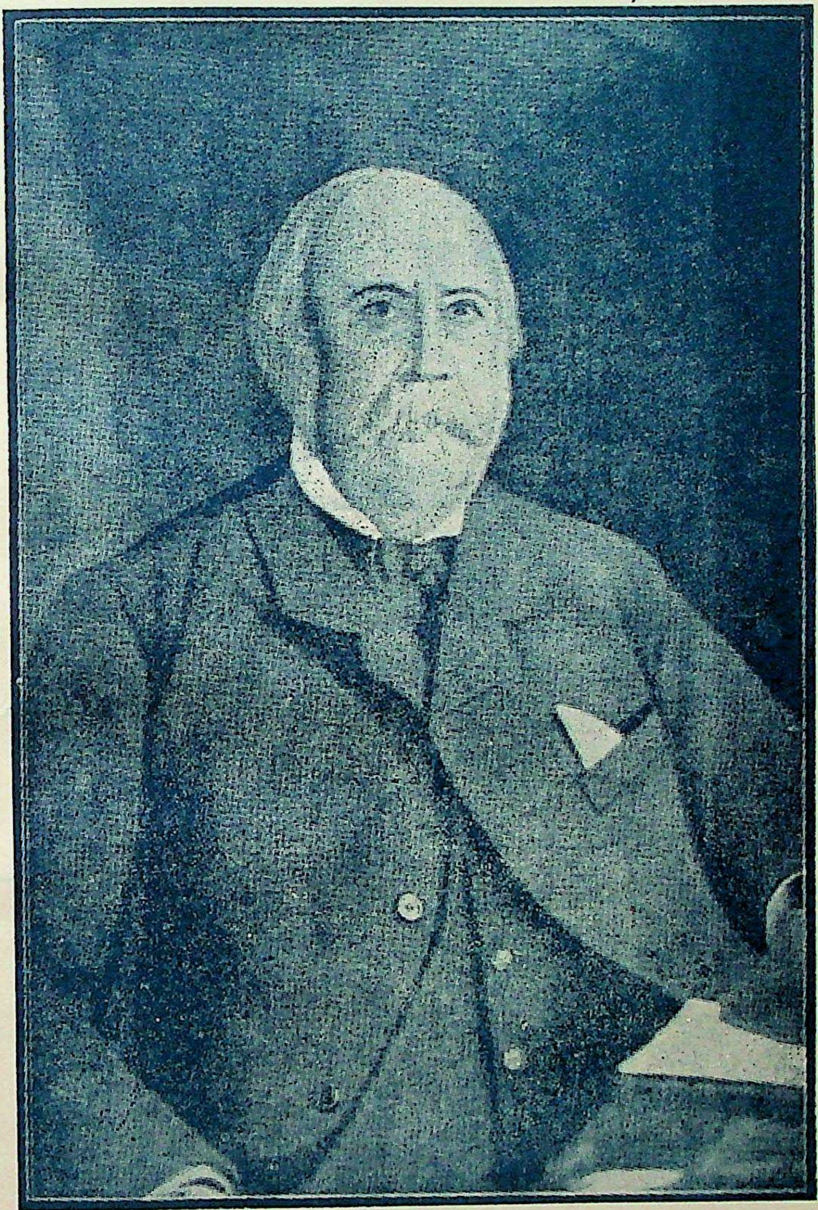

एलेक्ज़ेन्डर कनिंघम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाद परिशिष्ट के रूप में लिखा गया है। उसका अनुसंधान इतनी सावधानी एवं सफलता से किया गया है कि बहुत कम स्थान अपने असली स्वरूप में स्पष्ट रूप से सामने आने से रह गये हैं परन्तु उसकी आलोचनात्मक सूक्षमता इतनी प्रखर है कि कुछ स्थानों पर जहाँ हमारे मानचित्रों की अशुद्धता के कारण स्थानों की ठीक-ठीक पहचान प्रायः असम्भव हो गई थी, उन्होंने इन स्थानों को इनकी वास्तविक स्थिति के कुछ ही मीलों के भीतर इंगित किया है।

तृतीय अथवा आधुनिक काल की व्याख्या के लिये भारत के मुस्लिम राज्यों की अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों में प्रचुर सामग्री प्राप्त है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उन अनेक स्वतन्त्र राज्यों के सीमांकन हेतु अभी तक कोई प्रयत्न नहीं हुआ जिनकी स्थापना पन्द्रहवीं शताब्दी में तैमूर के आक्रमणोपरान्त फैली अवव्यस्ता के समय हुई थी। इसी काल में स्वतन्त्र हुए, दिल्ली, जौनपुर, बङ्गाल, मालवा, गुजरात सिन्ध, मुल्तान तथा गुलबर्ग के मुस्लिम राज्यों एवम् ग्वालियर आदि विभिन्न हिन्दू राज्यों की विशिष्ट सीमाओं को प्रदर्शित करने वाले विशेष मानचित्र के अभाव के कारण इस काल का इतिहास स्पष्ट है।

मैंने बौद्ध काल अथवा भारत के प्राचीन भूगोल को अपनी वर्तमान खोज का विषय चुना है क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारत में अपने लम्बे निवास के समय स्थानीय अनुसन्धान हेतु प्राप्त विशिष्ट अनुकूल साधन मुझे भारत के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों की स्थिति पूर्ण निश्चय के साथ निर्धारित करने के योग्य बनायेंगे।

मैंने जिस काल की व्याख्या करने का बीड़ा उठाया हैं उसमें मेरे मुख्य मार्ग दर्शक हैं। ईसवी पूर्व की चौथी शताब्दी में सिकन्दर के आक्रमण एवम् ईसा के पश्चात सातवीं शताब्दी में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग की यात्राओं का विवरण भारत के प्राचीन इतिहास तथा भूगोल में इस चीनी तीर्थ यात्री की तीर्थ यात्राओं का विवरण उतना ही रुचिपूर्ण एवम् महत्वपूर्ण स्थान रखता है जितना कि सिकन्दर महान की साहसिक यात्रायें। मेसिडोनिया के विजेता का वास्तविक आक्रमण सिन्धु एवम् इसकी सहायक नदियों की घाटी तक सीमित था परन्तु स्वयं सिकन्दर महान एवम् उसके सहयोगियों द्वारा एकत्रित सूचनाओं तथा तत्पश्चात सीरियाई बादशाहों के दूतों एवम् आक्रमणों द्वारा प्राप्त सूचनाओं में, उत्तर में गङ्गा नदी की सम्पूर्ण घाटी, दक्षिणी पठार के पूर्वी एवम् पश्चिमी घाट का सम्पूर्ण विवरण एवम् देश के आन्तरिक भागों का आंशिक विवरण निहित है। टालमी ने इन सूचनाओं को अपनी क्रमानुसार खोजों द्वारा विस्तृत स्वरूप प्रदान किया है और टालमी का विवरण अधिक मूल्यवान है क्योंकि यह विवरण सिकन्दर महान एवम् ह्वेनसांग के समय के प्रायः मध्य काल (१) से सम्ब-

(१) सिकन्दर का आक्रमण ३३० ई० पू, टालमी का भूगोल सन् १५० अथवा सिकन्दर के आक्रमण के ४८० वर्ष पश्चात, भारत में ह्वेनसांग की यात्राओं का आरम्भ सन ६३० अथवा टालमी से प्रायः ४८० वर्ष पश्चात।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्धित है जिस समय भारत का अधिकांश भाग इण्डो सीथियन लोगों के अधीन था।

टालमी के साथ ही हमने उच्च कोटि के अनेक विद्वानों को खो दिया है और तत्पश्चात काफी समय तक हम प्राचीन शिला लेखों एवम् पुराणों के स्पष्ट अन्धकार में छिपे विभिन्न भौगोलिक अंशों को सम्बन्धित एवम् क्रमानुसार करने में प्रायः पूर्ण रूपेण अपने निर्णय पर निर्भर करते थे परन्तु ईसवी काल की पाँचवी, छठीं, एवं सातवीं शताब्दी में अनेक चीनी तीर्थ यात्रियों की यात्राओं के विवरण की भाग्यपूर्ण खोज ने अभी तक अन्धकार में छिपे इस काल के इतिहास पर इतना प्रकाश डाला है कि अब हम भारत के प्राचीन भूगोल के छितरे हुए अंशों को सामान्य क्रमानुसार देखने योग्य हो गये हैं।

चीनी तीर्थ यात्री फाहियान एक बौद्ध पुजारी था जिसने ३९९ तथा ४१३ ई० के समय में अपर सिन्ध के तट से लेकर गङ्गा नदी के मुहाने तक भारतवर्ष की यात्रा की थी। दुर्भाग्यवश उसका विवरण बहुत ही संक्षिप्त है और मुख्य रूप से इसे बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों एवम् वस्तुओं के उल्लेख हेतु लिखा गया है परन्तु चूंकि उसके मार्ग में पड़ने वाले मुख्य स्थानों के दिकांश एवम् दूरियों का उल्लेख किया है अतः उसका संक्षिप्त विवरण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। द्वितीय चीनी तीर्थ यात्री सुङ्ग-युन की यात्रायें ५०२ ई० में हुई थी परन्तु चूंकि यह यात्रायें काबुल की घाटी एवं उत्तर-पश्चिमी पञ्जाब तक सीमित थीं, यह कम महत्वपूर्ण हैं विशेषतयः जबकि उसका विवरण भौगोलिक उल्लेखों में मुख्य रूप से अपूर्ण है।

तृतीय चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग भी एक बौद्ध पुजारी था जिसने अपने जीवन काल के प्रायः पन्द्रह वर्ष भारत में बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों की यात्रा एवं अपने धर्म की प्रसिद्ध पुस्तकों के अध्ययन में व्यतीत किये थे। उसकी यात्राओं के अनुवाद के लिये हम एम० जुलीन के आभारी हैं जिन्होंने अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संस्कृत एवं चीनी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने में बीस वर्षों का अथक प्रयास किया था। ह्वेनसांग की यात्राओं का समय ६२९ ई० से ६४५ ई० तक था। इस काल में उसने काबुल तथा काश्मीर से गङ्गा एवं सिन्धु नदियों के मुहाने तक तथा नेपाल से मद्रास के समीप काँचीपुर तक सम्पूर्ण देश के बड़े-बड़े नगरों की यात्रा की थी। तीर्थ यात्री ने ६३० ई० के मई माह के अन्तिम दिनों में बामियान के मार्ग से काबुल में प्रवेश किया था और अनेक परिभ्रमणों एवं लम्बे विश्राम के पश्चात् आगामी वर्ष के अप्रैल में ओहिन्द के स्थान पर सिन्धु नदी को पार किया था। उसने बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों की यात्रा के उद्देश्य से कई मास का समय तक्षशिला में व्यतीत किया और तत्पश्चात् काश्मीर की ओर प्रस्थान किया जहाँ उसने अपने धर्म की अधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों के अध्ययन हेतु दो वर्ष व्यतीत किये। पूर्व दिशा में अपनी यात्रा में उसने सांगला के खण्डहरों की यात्रा की जो सिकन्दर के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और चिन्नापट्टी में चौदह मास

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और जलन्धर में चार मास धार्मिक अध्ययन हेतु व्यतीत करने के पश्चात् उसने ६३५ ईसवी में सतलज नदी को पार किया। तत्पश्चात उसने टेढ़े-मेढ़े मार्ग का अनुसरण किया क्योंकि अनेक अवसर पर उसे उन स्थानों की यात्रा करने के लिये पीछे मुड़ना पड़ा था जो पूर्व दिशा की ओर उसके सीधे मार्ग से छूट गये थे। इस प्रकार मथुरा पहुँचने के पश्चात वह उत्तर-पश्चिम में २०० मील की दूरी पर थानेश्वर की ओर वापस मुड़ा जहाँ से यमुना नदी पर स्थित श्रुगना तथा गङ्गा नदी पर स्थित गङ्गा द्वार के मार्ग से पूर्व दिशा की ओर उत्तरी पञ्जाब अथवा रुहेल खण्ड की राजधानी अहिछत्र की यात्रा की। तत्पश्चात द्वाब में सङ्किशा, कन्नौज तथा कौशाम्बी के प्रसिद्ध नगरों की यात्रा के उद्देश्य से उसने गङ्गा नदी को पुनः पार किया और उसके पश्चात अवध में अयोध्या तथा श्रावस्ती के पवित्र स्थानों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उत्तर की ओर मुड़ गया। वहाँ से उसने कपिलवस्तु तथा कुशी नगर के स्थानों पर बुद्ध के जन्म एवं निर्वाण के स्थानों की यात्रा हेतु पुनः पूर्व दिशा का अनुकरण किया और वहाँ से एक बार फिर पश्चिम दिशा में बनारस के पवित्र नगर की ओर मुड़ा जहाँ बुद्ध ने अपने धर्म की प्रथम शिक्षा दी थी। तत्पश्चात पुनः पूर्व दिशा का अनुकरण करते हुए उसने तिर्हुत में वैशाली के प्रसिद्ध नगर की यात्रा की जहाँ से उसने नेपाल की साहसिक यात्रा की और पुनः बैशाली की ओर मुड़ते हुये उसने गङ्गा नदी को पार कर पाटलीपुत्र अथवा पालीबोथरा की यात्रा की। वहाँ से वह गया के आस-पास बौद्ध गया के स्थान पर गूलर के पवित्र वृक्ष, जहाँ बुद्ध ने पाँच वर्ष तपस्या की थी, से लेकर गिरियेक की ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जहाँ बुद्ध ने इन्द्र देवता को अपने धार्मिक विचारों से अवगत कराया था, तक गया के आस-पास अनेक पवित्र स्थानों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के उद्देश्य से यात्रा की थी। तत्पश्चात वह मगध की प्राचीन राजधानियों कुसागरपुर तथा राजगृह के प्राचीन नगरों तथा सम्पूर्ण भारत में बौद्ध धर्म के सर्वोपरि प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के महान् मठ में गया जहाँ उसने संस्कृत भाषा के अध्ययन हेतु १५ मास व्यतीत किया। ६३८ ई० के अन्त में उसने गङ्गा नदी का मार्ग अपनाते हुए मोघगिरि तथा चम्पा तक पूर्व दिशा का पुनः अनुसरण किया और तदोपरान्त नदी को पार कर उत्तर की ओर पौण्ड्रवर्धन अथवा पुनबा तथा कामरूप अथवा आसाम की यात्रा की।

इस प्रकार भारत के सदूर पूर्व जिले में पहुँचने के पश्चात उसने दक्षिण की ओर रुख किया और समतत अथवा जैसोर तथा ताम्रलिप्ति अथवा तामलुक होते हुए वह ६३९ ई० में ओदरा अथवा उड़ीसा पहुँचा। दक्षिण दिशा में अपनी यात्रा जारी रखते हुए उसने गञ्जाम तथा कलिङ्ग की यात्रा की तथा तदोपरान्त उत्तर की ओर मुड़ते हुये वह प्रायद्वीप के मध्य कोशल अथवा बरार में पहुँचा। तत्पश्चात दक्षिण दिशा का अनुसरण कर आन्ध्र अथवा तेलङ्गाना प्रदेश से होते हुए कृष्णा नदी पर धनकाकटा अथवा अमरावती पहुँचा तथा उसने बौद्ध धर्म के साहित्य के अध्ययन में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कई मास व्यतीत किये । ६४० ई० के प्रारम्भ में इस स्थान से चलकर वह दक्षिण दिशा में द्रविड़ की राजधानी काँचीपुर अथवा कञ्जीवरम पहुँचा जहाँ उसे इस सूचना के मिलने पर अपनी दक्षिण यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी कि लङ्का में राजा की मृत्यु के पश्चात सङ्कटकालीन स्थिति उत्पन्न हो गई है । यह कथन विभिन्न स्थानों पर तीर्थ यात्री के पहुँचने की तिथियों की प्रामाणिकता के उद्देश्य से अधिक महत्वपूर्ण है । इन्हीं तिथियों को मैंने उसकी यात्राओं की वास्तविक दूरी तथा विभिन्न स्थानों पर उल्लिखित विश्राम काल के आधार पर निश्चित है । अब लङ्का में संकटकालीन स्थिति राजा बुन मुगलान की मृत्योपरान्त उत्पन्न हुई थी, जिसे ६३९ ई० में पराजित कर मार डाला गया था और इस बात का अनुमान करना प्रायः उचित है कि काँचीपुर नें तीर्थ यात्री को मिलने वाले लङ्का के पुजारियों ने तुरन्त देश छोड़ दिया होगा और वह ६४० ईसवी के प्रारम्भ में कांचीपुर पहुँचे होंगे । यह तिथि तीर्थ यात्री की गतिविधियों के सम्बन्ध में मेरे अनुमान से ठीक-ठीक मिलती है ।

द्रविड़ से ह्वेनसांग ने पुनः उत्तर दिशा की ओर रुख किया तथा कोंकण एवम् महाराष्ट्र से होते हुए नर्बदा नदी पर स्थित भड़ौच नगर पहुँचा जहाँ से वह उज्जैन, बलभी तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यों से होता हुआ ६४१ ई० के अन्त में सिन्ध तथा मुलतान पहुँचा । तदोपरान्त अचानक ही वह मगध की ओर नालन्दा तथा तिलधक के महान मठों तक गया जहाँ उसने प्रजनभद्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षक की कुछ कुछ धार्मिक शंकाओं के समाधान हेतु दो मास का समय व्यतीत किया । उस बाद उसने पुनः कामरूप अथवा आसाम की यात्रा की, जहाँ वह एक मास तक रुका । ६४३ ई० के प्रारम्भिक भाग में वह पुनः पाटिलपुत्र में था जहाँ उसने उत्तरी भारत के सर्वोच्च शासक महान सम्राट हर्षवर्धन अथवा शिलादित्य के दरबार में प्रवेश किया । उस समय इस सम्राट के दरबार में अठारह सहायक शासक पंचवर्षीय संसद के पवित्र कार्य को गौरव प्रदान करने के उद्देश्य से आए हुए थे । तीर्थ यात्री ने इस महान शासक के जलूस में पाटलीपुत्र से प्रयाग एवम् कोशाम्बी होते हुए कन्नौज की यात्रा की थी । उसने इन स्थानों पर हुए धार्मिक उत्सवों का सूक्ष्म विवरण दिया है जो तत्कालीन बौद्ध धर्म के सार्वजनिक रीतियों पर प्रकाश डालने में विशेष रुचिकर है । कन्नौज में उसने सम्राट हर्ष वर्धन से आज्ञा ली तथा जालन्धर के राजा उदित्य के साथ उत्तर पश्चिम दिशा में यात्रा की । जालन्धर में उसने एक मास का विश्राम किया था । उसकी यात्रा का यह भाग आवश्यक रूप से धीमा था क्योंकि उसने अनेक मूर्तियाँ एवम् अपार संख्या में धार्मिक पुस्तकें एकत्रित कर रखी थी जिन्हें वह भारवाहक हाथियों पर ले जा रहा था । इनमें पचास हस्त लिपियां उत्खण्ड अथवा ओहिन्द के स्थान पर नदी पार करते समय नष्ट हो गई थीं । तीर्थ यात्री ने स्वयं हाथी की पीठ पर बैठ कर नदी को पार किया था और यह कार्य बर्फ के पिघलने के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नदियों में बाढ़ से पूर्व दिसम्बर जनवरी तथा फरवरी के महीनों में किया जा सकता है। मेरी गणना के अनुसार उसने ६४३ ई० के अन्त में सिन्ध नदी को पार किया था। उत्खण्ड में उसे सिन्धु नदी में गुम होने वाली हस्तलिपियों की नवीनतम प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने के लिए पचास दिन तक रुकना पड़ा। तत्पश्चात् कपिसा के राजा के साथ वह लम्गान की ओर चला गया। चूंकि इस यात्रा में एक मास का समय लग गया था, वह ६४४ ई० के मार्च महीने के मध्य में अथवा सामान्य समय से तीन मास पूर्व लम्गान पहुँच गया होगा। यह तथ्य दक्षिण दिशा में फलना अथवा बन्नू जिले तक पन्द्रह दिन की उसकी अचानक यात्रा पर प्रकाश डालने के लिये प्रर्याप्त है। जहाँ से वह काबुल तथा गजनी होता हुआ जुलाई के प्रारम्भ में कपिसा पहुँचा। यहाँ एक धार्मिक संसद में भाग लेने के लिए वह पुनः रुका था। अतः ६४४ ई० की जुलाई के मध्य तक अथवा बमियान के मार्ग से भारत में प्रथम प्रवेश के प्रायः १० वर्ष पश्चात् कपिसा से प्रस्थान नहीं कर सका होगा। कपिसा से पंजशीर घाटी तथा खावक दर्रे से होते हुए अन्देराब पहुँचा जहाँ वह जुलाई के अन्त तक पहुँचा होगा। बर्फीले दर्रों को सरलता पूर्वक पार करने का अभी समय नहीं था और यही कारण है कि पर्वतीय मार्ग से जाते समय तीर्थ यात्री ने बर्फ से ढ़की नदियों एवम् बर्फीले मैदानों का उल्लेख किया है। वर्ष के अन्त तक उसने काशगर, यारकन्द तथा कोटाग को पार किया और अन्त में ६४५ ई० की बसंत ऋतु में वह चीन की पश्चिमी राजधानी में सकुशल पहुँचा।

ह्वेनसांग के मार्ग का सर्वेक्षण उसकी भारतीय यात्राओं के मुहाने विस्तार एवं पूर्णतः को सिद्ध करने में पर्याप्त है और जहाँ तक मुझे ज्ञात है उसकी इन यात्राओं को कोई पार नहीं कर सका। बुचनान हेमिलटन ने कुछ देश का जो सर्वेक्षण किया था वह अति सूक्ष्म था। परन्तु यह उत्तरी भारत में गङ्गा नदी के निचले प्रान्तों तथा दक्षिण भारत में मैसूर के जिले तक सीमित था।

जेकमान्ट ने सीमित यात्राएँ की थीं। परन्तु इस फ्रांसिसी विद्वान ने मुख्य रूप से वनस्पति शास्त्र एवम् भूगर्भ शास्त्र एवम् अन्य वैज्ञानिक विषयों पर विचार किया है अतः उसकी भारत यात्रा में भारत के भूगोल सम्बन्धी हमारी जानकारी ने अधिक सहायता नहीं दी। मेरी अपनी यात्राएँ उत्तर भारत में सिन्धु नदी के समीप पेशावर तथा मुलतान से एरावदी नदी पर रंगून तथा प्रोम तक तथा काश्मीर एवम् लद्दाख से सिन्धु नदी के मुहाने तथा नर्बदा के तट तक देश के सम्पूर्ण भाग तक विस्तृत रही हैं। परन्तु दक्षिण भारत से मैं अनभिज्ञ रहा हूँ तथा पश्चिमी भारत में एलीफेन्टा तथा कन्हारी की प्रसिद्ध कन्दराओं सहित केवल बम्बई से परिचित हूँ परन्तु भारत में तीस वर्ष से अधिक काल की अपनी लम्बी सेवा में इसका प्राचीन इतिहास एवम् भूगोल मेरे निजी समय में अध्ययन के मुख्य विषय रहे हैं जबकि अपने निवास के अन्तिम चार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्षों में मैंने अपना सम्पूर्ण समय इन्हीं विषयों पर व्यतीत किया था क्योंकि मैं इस समय भारत सरकार द्वारा देश की प्राचीन अवशेषों के परीक्षण एवम् उन पर रिपोर्ट लिखने के लिए पुरातत्व विभाग का सर्वेक्षक नियुक्त किया गया था। इस प्रकार देश के भूगोल के अध्ययन हेतु प्राप्त अनुकूल अवसर का मैंने यथासम्भव लाभ उठाया और यद्यपि अभी भी अनेक स्थानों की खोज शेष रह गई है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं प्राचीन भारत के अनेक सर्वोधिक प्रसिद्ध नगरों की स्थिति को निर्धारित करने में सफल हुआ हूँ। चूंकि अगले पृष्ठों में इन सभी नगरों का उल्लेख किया जाएगा, यहां मैं केवल उन अधिक प्रमुख स्थानों का उल्लेख करूंगा जिनसे स्पष्ट हो सके कि मैंने पूर्ण तैयारी के बिना इस कार्य में हाथ नहीं लगाया है।

(१) एओरनास, सिकन्दर महान द्वारा अधिकृत चट्टानों का बना प्रसिद्ध दुर्ग।

(२) तक्षिला, उत्तर पश्चिमी पञ्जाब की राजधानी।

(३) साँगला, सिकन्दर द्वारा अधिकृत मध्य पञ्जाब का पर्वतीय दुर्ग।

(४) श्रुघना, यमुना नदी पर एक प्रसिद्ध नगर।

(५) अहिछत्र, उत्तरी पांचाल की राजधानी।

(६) बैराट, दिल्ली के दक्षिण मत्स्य की राजधानी।

(७) संकिसा, कन्नौज के समीप, जो स्वर्ग से बुद्ध के उतरने के स्थान के रूप में प्रसिद्ध था।

(८) राप्ती नदी पर श्रावस्ती, जो बुद्ध की शिक्षाओं के लिए प्रसिद्ध था।

(९) कौशाम्बी, इलाहाबाद के समीप यमुना तट पर अवस्थित है।

(१०) कवि भवभूति की पद्मावती।

(११) पटना के उत्तर में वैशाली।

(१२) नालन्दा, सम्पूर्ण भारत का सर्वोधिक प्रसिद्ध बौद्ध मठ।

ए० कनिङ्घम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

—:०:—

भारत की सीमाएँ और राज्य १७

१—उत्तरी भारत २१

प्राकृतिक सीमाएँ २५

काओफू अथवा अफगानिस्तान २६

केपिसीन अथवा औपियान २७

करसना, करतना अथवा ट्रीटागोनिस ३२

केपिसीन के अन्य नगर ३४

कोफीन अथवा काबुल ३५

अराकोसिया अथवा गजनी ४०

लमगान ४२

नगरहारा अथवा जलालाबाद ४३

गान्धार अथवा परसावर ४५

पुष्कलावती अथवा प्यूकिलाओटीस ४६

वरूष अथवा पलोढेरी ४८

उत्तखण्ड, ओहिन्द अथवा एम्बोलिमा ४८

सलातुर अथवा लाहौर ५२

एओरनास ५२

परशावर अथवा पेशावर ६५

उद्यान अथवा स्वात ६७

बोलोर अथवा बल्टी ६९

फालना अथवा बनू ७०

ओपोकीन अथवा अफगानिस्तान ७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काश्मीर राज्य	७३
काश्मीर	७४
उरश	८२
तक्षिला अथवा तक्षशिला	८३
मानिक्याल	९४
सिंहपुर अथवा केटास	९६
पुनच अथवा पूंच	९८
राजपुरा अथवा राजौरी	९९
पञ्जाब के पर्वतीय राज्य	१००
जलन्धर	१०४
चम्पा अथवा चम्बा	१०७
कुलू	१०७
मण्डी तथा सुखेट	१०८
नूरपुर अथवा पठानियाँ	१०८
सतद्रू	१०९
ताकी अथवा पञ्जाब	१११
ताकी अथवा उत्तरी पञ्जाब	११५
बुकेफल अथवा दिलावर	११८
निकाया अथवा मोंग	१३०
गुजरात	१३१
साकल अथवा सांगला	१३२
ताकी तथा असरूर	१३९
रासी अथवा नरसिंह	१४०
अम्बकापी अथवा अमकटीस	१४१
लोहावर अथवा लाहौर	१४३
कुसावर अथवा कसूर	१४४
चिनापट्टी अथवा पट्टी	१४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शोरकोट १४७
कोटकमालिया १४८
हड़प्पा १५०
अकबर १५१
सतगढ़ १५१
दीपालपुर १५२
अजुधान अथवा पाक पटन १५३
मुलतान प्रान्त १५६
तुलम्बा १५६
अटारी १६१
मुल्तान १६३
कहरोर १७०
उछ १७०
२—पश्चिमी भारत १७५
सिन्ध १७५
अपर सिन्ध १७५
मस्सनाएँ तथा सोड्राएं अथवा सोग्डी १७८
मुशीकानी अलोर १८१
प्रोएस्ति-पोर्टीकनस, अथवा ओक्सीकनस १८३
मध्य सिन्ध १८४
सिन्दोमान अथवा सेहवान १८५
ब्रह्माना अथवा ब्रह्मानाबाद १८७
निचला सिन्ध अथवा लार १६४
पटाला, निरनकोट १६५
जरक २००
मीननगर, मनहाबारी अथवा थट्टा २००
बरबारीके-विक्रायालय अथवा बम्भूरा २०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देबल सिन्धी अथवा देबल २०६
कच्छ २०९
सिन्धु के पश्चिमी जिले २१०
अरबी अथवा अरबीटोय २११
ओरिटोय, अथवा होरिटोय २१२
गुर्जर २१५
बलभद्र अथवा बलभी २१८
सौराष्ट्र २२३
भड़ौच अथवा बरीगाजा २२४

३—मध्य भारत २२५

थानेश्वर २२६
पिट्टोआ अथवा पृथु दक २३०
अमीन २३०
बैराट २३१
स्रुघना २३५
मडावर २३८
मायापुर तथा हरिद्वार २३९
ब्रह्मापुर २४२
गोविस्ना, अथवा काशीपुर २४३
अहिच्छत्र २४५
पिलोशना २४७
सङ्किसा २५०
मथुरा २५३
वृन्दावन २५४
कन्नौज २५५
अयूतों २५८
हयामुख २६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयाग	२६२
कोशाम्बी	२६४
कुशपुरा	२६८
विशाखा, साकेत, अथवा अयुध्या	२७०
श्रावस्ती	२७४
कपिला	२७८
रामाग्राम	२८२
अनोमा नदी	२८४
पीपलवन	२८७
कुशीनगर	२८८
खुखुन्दो-कहौन	२६०
पावा, अथवा पदरौना	२६१
वाराणसी, अथवा बनारस	२६१
गरजापटीपुर	२६३
वैशाली	२६६
व्रिजी	२६८
नेपाल	३००
मगध	३०१
बुद्ध गया	३०३
कुक्कुतपद	३०६
कुसागरापुर	३०७
राजगृह	३११
नालन्दा	३१२
इन्द्रशिला गुहा	३१३
बिहार	३१५
हिरण्य पर्वत	३१६
चम्पा	३१७
कान्कजोल	३१८
पौण्ड्र वर्धन	३१६
जझोती	३२०
महोबा	३२२
महेश्वरपुर	३२४
उज्जैन	३२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालवा ३२६
खेड़ा ३२७
आनन्दपुर ३२८
४—पूर्वी भारत ३३२
कामरूप ३३२
समतल ३३३
ताम्रलिप्ति ३३४
किरण सुवर्ण ३३५
औड्रा अथवा उड़ोसा ३३८
गञ्जाम ३४०
५—दक्षिणी भारत ३४२
कलिङ्ग ३४२
कोशल ३४४
आन्ध्र ३४६
दोकनकोट्टा ३५१
चोलिया अथवा जोरिया ३६०
द्राविड़ ३६२
मालकूट अथवा मदुरा ३६३
कोंकण ३६४
महाराष्ट्र ३६५
लङ्का ३६७
परिशिष्ट 'क' ३७१
दूरी के माप ३७१
योजन, ली, कोस ३७१
परिशिष्ट 'ख' ३७५
टालमी के पूर्वी देशान्तर में सुधार ३७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भारतका ऐतिहासिक भूगोल

— : ० : —

भारत की सीमाएँ और राज्य

यूनानियों के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल के भारतीयों को अपने देश की वास्तविक आकृति एवं आकार का सही-सही ज्ञान था। स्ट्रैबो के अनुसार सिकन्दर ने "देश की अच्छी जानकारी रखने वाले व्यक्तियों से सम्पूर्ण देश का विवरण लिखवाया था।" और यही विवरण आगे चलकर सीरियाई शासकों के कोषाध्यक्ष जैनोक्लीज़ ने पैट्रोक्लीज़ को दे दिया था। स्वयं पैट्रोक्लीज़ सिल्यूकस-निकेटर तथा एन्तीयोकस सोटर के आधिपत्य में सीरियाई साम्राज्य के उत्तर पूर्वी क्षत्रपी (प्रान्त) का शासक था और भारत एवं पूर्वी प्रान्तों के विषय में जो सूचना उसने एकत्रित की थी उसे अपनी सत्यता के लिए एराटोस्थनीज़ एवं स्ट्रैबों की स्वीकृति प्राप्त है। भारत का एक अन्य विवरण अथवा स्थान-स्थान की 'सैनिक यात्राओं' की उस विवरण पुस्तिका से प्राप्त किया गया है जो मेसीडोनिया के अमिन्तास द्वारा तैयार की गई थी। मैगस्थनीज़ ने जो सिल्यूकस निकेटर के राजदूत के रूप में वस्तुतः पालीबोथरा (पाटिलीपुत्र) गया था, अपनी साक्षी से उस विवरण की पुष्टि की है। इन लेखों के आधार पर एराटोस्थनीज़ एवं अन्य लेखकों ने भारत को आकृति में "आयताकार विषय कोण समभुज क्षेत्र" अथवा असमान चर्तुभुज बताया है जिसके पश्चिम में सिन्धु नदी, उत्तर में पर्वत तथा पूर्व एवं दक्षिण में समुद्र है। सबसे छोटा भाग पश्चिम था जिसे पैट्रोक्लीज़ ने ११००० स्टेडिया और एराटोस्थनीज़ ने १३००० स्टेडिया आँका था। सभी विवरण इस बात पर सहमत हैं कि सिकन्दर द्वारा बनाए गये पुल (सिन्धु नदी पर) से समुद्र तक सिन्धु नदी का जल मार्ग १०००० स्टेडिया अर्थात् ११४९ मील था और उनमें मतभेद केवल पुल के ऊपरी भाग में काकेशस अथवा पारोपामिसस के हिमाच्छादित पर्वतों की अनुमानित दूरी के विषय में है। देश की लम्बाई पश्चिम से पूर्व की ओर आँकी गई थी जिससे सिन्धु नदी से पालीबोथरा (पटना) के क्षेत्र की दूरी राजकीय मार्ग के साथ-साथ शोनी द्वारा आँकी गई थी तथा यह दूरी १०००० स्टेडिया तथा ११४९ मील थी। पालीबोथरा (पटना) से समुद्र तक की दूरी ६००० स्टेडिया अथवा ६८९ मील का अनुमान लगाया गया था। इस प्रकार सिन्धु नदी से गङ्गा के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुहाने तक की कुल दूरी १६००० स्टेडिया अथवा १८३८ मील बताई गई थी। प्लिनी के अनुसार गङ्गा के मुहाने से पालीबोथरा की दूरी केवल ६३७·५ रोमन मील थी। परन्तु उनके आँकड़े इतने अशुद्ध हैं कि उन पर बहुत कम विश्वास किया जा सकता है अतः मैं इस दूरी को बढ़ाकर ७३७·५ रोमन मील करवाना चाहूँगा। जो ३७८ ब्रिटिश मील के बराबर है। गङ्गा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक पूर्वी तट की लम्बाई १६००० स्टेडिया अथवा १८३८ मील आँकी गई थी और कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक दक्षिणी (अथवा दक्षिण पश्चिमी) तट की लम्बाई उत्तरी भाग से ३००० स्टेडिया आँकी गई थी।

सिकन्दर के निवेदकों द्वारा दिये गये इन परिभाषों की देश के वास्तविक आकार से सामीप्य समानता विचारणीय है। इससे पता चलता है कि भारतीयों को अपने इतिहास के उस प्रारम्भिक काल में भी अपनी मातृभूमि के आकार एवं विस्तार का यथार्थ ज्ञान था।

पश्चिम में अटक से ऊपर ओहिन्द से लेकर समुद्र तक सिन्धु नदी का जल मार्ग स्थल से ६५० मील तथा जल मार्ग से १२०० मील है। उत्तर में सिन्धु नदी के तट से पटना तक की दूरी हमारे सैन्य अभियान ग्रन्थों के अनुसार ११८३ मील है। यह दूरी मेगस्थनीज़ के विवरण पर आधारित स्ट्रैबो द्वारा दी गई सिन्धु से पालीबोथरा (पटना) के राजकीय मार्ग की दूरी से केवल छः मील कम है। इस स्थान से आगे की दूरी गंगा नदी में नावों की यात्रा द्वारा ६००० स्टेडिया अथवा ६८९ ब्रिटिश मील आँकी गई थी जो नदी मार्ग की वास्तविक दूरी से केवल ९ मील अधिक है। गङ्गा के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक मानचित्र पर आँकी गई दूरी १६०० मील है। परन्तु तट के अनेक कटाओं के कारण यह दूरी स्थल मार्ग की दूरी के समान बनाने के लिए १/६ के अनुपात से बढ़ा दी जानी चाहिए। इस प्रकार वास्तविक लम्बाई १८६६ मील हो जाएगी। कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक बताई गई दूरी तथा मानचित्र पर अङ्कित वास्तविक दूरी से लगभग ३००० स्टेडिया अथवा ३५० मील का अन्तर है। सम्भव है यह अन्तर खम्भात तथा कच्छ की दो विशाल खाड़ियों के गहरे कटाव को अपने अनुमान में सम्मिलित कर लेने से उत्पन्न हो गया था और यही तथ्य इस विभिन्नता के सम्पूर्ण अथवा अधिकांश भाग को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

यह व्याख्या मैगस्थनीज़ की गणना से प्रभावित होती प्रतीत होती है जिसने दक्षिणी समुद्र से काकेशस तक की दूरी का अनुमान २०००० स्टेडिया अथवा २२९८ मील लगाया था। मानचित्र पर सीधे माप से कुमारी अन्तरीप से हिन्दूकुश की दूरी लगभग १९५० मील है जो १/६ भाग बढ़ाकर स्थल मार्ग की दूरी में परिवर्तित करने पर २२६५ मील के बराबर अथवा मेगस्थनीज़ की गणना के कुछ ही मीलों के अन्तर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में पड़ती है। चूंकि यह दूरी स्ट्रैबो द्वारा बताई गई कुमारी अन्तरीप से सिन्धु नदी के मुहाने तक समुद्र तट को दूरी से केवल १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील अधिक है अतः यह निश्चित प्रतीत होता है दक्षिणी (अथवा दक्षिण पश्चिमी) तट की उल्लिखित दूरी में कोई त्रुटि अवश्य हुई है और चूंकि गङ्गा एवं सिन्धु के मुहाने कुमारी अन्तरीप से समान दूरी पर स्थित है अतः दोनों तटों को समान लम्बाई का बनाकर यह त्रुटि पूरी तरह सुधारी जा सकती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सम्पूर्ण भारत का व्यास ६१००० स्टेडिया होगा और यही सम्भवतः डियोडोरस का तात्पर्य भी था जिसका कथन है कि "भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र पूर्व से पश्चिम २८००० स्टेडिया तथा उत्तर से दक्षिण ३२००० स्टेडिया है। अथवा कुल मिलाकर ६०००० स्टेडिया अर्थात् ६८९४ मील है।

इससे कुछ समय पश्चात् महाभारत में भारत के स्वरूप को समबाहु त्रिकोण बताया गया है जिसे चार समान त्रिकोणों में विभाजित किया गया था। त्रिकोण का बिन्दु कुमारी अन्तरीप है और इसका आधार हिमालय पर्वत माला से बनता है। इसका परिमान नहीं दिया गया है और न किसी स्थान का उल्लेख किया गया है परन्तु साथ दिये गये भारत के छोटे मानचित्र के चित्र दो में गुजरात में द्वारका एवं पूर्वी तट पर गंजाम की रेखा पर मैंने एक समबाहु त्रिकोण खींचा है। इसी छोटे त्रिकोण को इसके उत्तर पश्चिम, उत्तर पूर्व एवं दक्षिण में दोहराने पर हमें एक बड़े समबाहु त्रिकोण मे भारत के चारों भाग प्राप्त हो जाते हैं। यदि हम उत्तर पश्चिम में भारत की सीमा गजनी तक बढ़ा दें और त्रिकोण के दूसरे दो बिन्दु कुमारी अन्तरीप, एवं आसाम में सदिया नामक स्थान पर रखे तो त्रिकोण का यह स्वरूप देश के सामान्य स्वरूप से बहुत कुछ मिल जाता है। ईसा की प्रथम शताब्दी में महाभारत लिखे जाने के अनुमानित समय में सिन्धु नदी के पश्चिम के प्रदेश इन्डोसीथियन जाति के पास थे। अतः इन्हें उचित रूप से भारत की वास्तविक सीमा में सम्मिलित किया जा सकता है।

भारत का एक अन्य विवरण "नव खण्ड" में मिलता है जिसका सर्व प्रथम वर्णन ज्योतिष शास्त्र के विद्वान पराशर तथा बाराह मिहिर द्वारा किया गया है। यह विवरण सम्भवतः उनके समय से पूर्व का था जिसे बाद में अनेकानेक पुराणों के लेखकों ने अपना लिया था। इस प्रबन्ध के अनुसार पांचाल मध्य खण्ड का मुख्य जिला था। मगध पूर्वी खण्ड का, कलिङ्ग दक्षिण पूर्व का, अवन्त दक्षिण का, अर्नत दक्षिण पश्चिम का, सिन्धु सौवीर पश्चिम का, हरहौरा उत्तर पश्चिम का, माद्र उत्तर का तथा कौनिन्द उत्तर पूर्व का प्रमुख जिला था। परन्तु बाराह के संक्षेप एवं उसके विस्तृत विवरण में अन्तर है, क्योंकि उसमें अर्नत के साथ-साथ सिन्धु सौवीर को भी दक्षिण पश्चिम में दिखाया गया है। यह त्रुटि अवश्य ही इतनी पुरानी है जितनी की ग्यारहवीं शताब्दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्योंकि अबु रिहान ने वाराह के सारांश में दिए गये उसी क्रम को जीवित रखा है जो वृहत संहिता में दिया गया है। इस विस्तृत विवरण की मारकण्डेय पुराण में पुष्टि की गई है जिसमें सिन्धु सौवीर एवं अनंत दोनों को ही पश्चिम में दिखाया गया है।

मैंने वृहत साहित्य की विस्तृत सूची का ब्रह्माण्ड, मारकण्डेय, विष्णु, वायु तथा मत्स्य पुराण की सूचियों से तुलना की हैं और मैं देखता हूँ कि यद्यपि उसमें विविध दुहराव तथा नामों की हेर-फेर के साथ-साथ अनेकानेक व्याख्या दी गई है फिर भी सभी सूचियाँ वस्तुतः एक समान हैं। उनमें से कुछ भिन्न-भिन्न क्रम में लिखी गई हैं। उदाहरणार्थ सभी पुराणों में 'नव खण्डों' का उल्लेख किया गया है और उनके नाम भी दिये गये हैं परन्तु केवल ब्रह्माण्ड और मारकण्डेय पुराणों में प्रत्येक खण्ड के जिलों के नाम दिये गये हैं। विष्णु, वायु और मत्स्य पुराण केवल पाँच खण्डों अर्थात् मध्य प्रान्त एवं चार मौलिक खण्डों के विस्तृत वर्णन में महाभारत से सहमत हैं।

महाभारत एवं पुराणों में दिये गये नव खण्डों के नाम वाराह मिहिर के नामों से पूर्णतयः भिन्न हैं परन्तु वह प्रसिद्ध ज्योतिषि भाष्कराचार्य द्वारा दिये गये नामों से मिलते हैं। वह सभी में एक ही क्रम का अनुसरण करते हैं अर्थातः इन्द्र, कसेरूमत, ताम्रवर्ण, गयास्तिमत, कुमारिका, नागा, सौम्य, वरुण तथा गन्धर्व। इन नामों की पहचान का कोई संकेत नहीं दिया गया है। परन्तु वह वाराह नव खण्डों से पूर्णतयः भिन्न क्रम में दिये गये हैं जैसे कि इन्द्र पूर्व मे वरुण पश्चिम में, कुमारिका मध्य में, जबकि कसेरू अवश्य उत्तर में होगा क्योंकि यह नाम वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों की विस्तृत सूचियों में मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारत का पाँच बड़े प्रान्तों में विभाजन अत्यधिक सर्व प्रिय था क्योंकि यह चीनी तीर्थ यात्रियों द्वारा अपनाया गया था और उनके अन्य सभी चीनी लेखकों ने अपनाया था। विष्णु पुराण के अनुसार मध्य खण्ड पर कुरु एवं पांचालों का अधिकार था। पूर्व में कामरूप अथवा आसाम था, दक्षिण में पुण्डरा, कलिङ्ग एवं मगध थे। पश्चिम में सौराष्ट्र सुरास, अभिरास, अर्बुद करुश, मालवा, सौवीर तथा सैन्धव थे तथा उत्तर में हूण, सालवा, साकल, राम, अम्बशता एवं पारस्तक थे। टॉलमी के भूगोल में भारत का वास्तविक आकार पूर्ण रूप से तोड़-मोड़ दिया गया है और कुमारो अन्तरीप पर दोनों तटों के मिलने से जो कोण बनता है भारत की आकृति के इस सर्वाधिक अद्भुत लक्षण को बदल कर एक ही तट बनाया गया है जो सिन्धु के मुहाने को लगभग सीधे गङ्गा के मुहाने तक बनता है। इस त्रुटि का कारण आंशिक रूप से ६०० ओलम्पिक स्टेडिया के स्थान पर ५०० स्टेडिया का दोष पूर्ण मूल्यांकन था जिसे टालमी ने भूमध्य रेखा सम्बन्धी अश के कारण किया था। आंशिक रूप से यह भी कारण था कि उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थल मार्ग को मानचित्र के माप में परिवर्तित करते समय गलती की थी परन्तु त्रुटि का मुख्य कारण जल मार्ग की तुलना में स्थल मार्ग की दूरी असयमित रूप से बढ़ा देना था।

यदि समुद्र से दूरी का माप दण्ड उसी अनुपात में बढ़ा दिया जाता अथवा उसी मूल्य पर आँका जाता जिस अनुपात अथवा मूल्य पर स्थल मार्ग की दूरी का माप दण्ड बढ़ाया जाता है, उस दशा में सभी स्थान अपने-अपने अपेक्षित स्थान पर बने रहते। टॉलमी द्वारा स्थल एवं जल मार्ग की दूरी के असमान मूल्यांकन के परिणाम स्वरूप सभी स्थान माप दण्ड के अनुसार निश्चित स्थानों से अत्यधिक पूर्व में दिखा दिये गये। जैसे-जैसे यह त्रुटि बढ़ती गई वह उतनी ही दूर होता चला गया। उसका पूर्वी भूगोल इसी कारण दूषित है। इस प्रकार तक्षशिला को जो बारी गाजा के लगभग उत्तर में है इसके अंश पूर्व में दिखाया गया है और गङ्गा का मुहाना जिसे स्थल माप दण्ड से तक्षशिला तथा पालीबोथरा (पटना) से निश्चित किया गया था उसे सिन्धु नदी के मुहाने से ३८ अंश पूर्व में दिखाया गया है जबकि वास्तविक अन्तर केवल २० अश है। छोटे मानचित्र के चौथे चित्र में मैंने टॉलमी के भूगोल की रूप-रेखा दी है। इस चित्र को देखने से हमें तुरन्त पता चलेगा कि यदि गङ्गा एवं सिन्धु नदियों के मुहाने की दूरी का अन्तर ३८ अंश से घटाकर २० अश कर दिया जाए तो कुमारी अन्तरीप सुदूर दक्षिण में चला जाएगा और अपने वास्तविक स्वरूप के समान ही तीव्र कोण बना लेगा। टॉलमी की स्थल दूरी के मूल्यांकन में त्रुटि की मात्रा के तक्षशिला एवं पाली-बोथरा (पटना) के बीच रेखांश दूरी के अन्तर से अच्छी प्रकार दिखाया गया है। प्रथम को उसने १२५ अंश और दूसरे को १४३ अंश पर दिखाया है। अन्तर केवल १८ अंश का है जो कि एक तिहाई अधिक है क्योंकि शाहढेरी ७२°.५२' तथा पटना ८५°१७' में अन्तर केवल १२°२४' का है। ३/१० के सुधार नियम से जैसा कि सर हेनरी रालिनसन ने प्रस्तावित किया था। टालमी के १८ अंश घट कर १२ अंश ३६' रह जायगी जो कि रेखांश के सही अन्तर के १२' के अन्दर है।

द्वितीय शताब्दी में से हून राजघराने के सम्राट वूटी (Wuti) के समय में चीनियों को भारत का ज्ञान था। उस समय इसे यू-आन-तू अथवा यिन-तू अर्थात हिन्दू, शिन्तु अथवा सिन्धु कहा जाता था। कुछ समय पश्चात् इसे थ्यान-तू का नाम दिया गया था। इतिहासकार मतवानलिन ने इसी नाम का अपनाया है। सातवीं शताब्दी में थाँग राजघराने के राजकीय पत्रों में भारत को पाँच खण्डों-पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण एवं मध्य-खण्ड का देश बताया गया है। इन पाँचों खण्डों को प्रायः पाँच भारतो (Five Inbies) कहा जाता था। मैं इस बात का पता नहीं लगा सका कि पाँच खण्डों की यह प्रथा कब प्रचलित हुई। इसका सर्व प्रथम उल्लेख जो मैं प्राप्त कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सका वह सन् ४७७ ई० में मिलता है जब पश्चिमी भारत के राजा ने अपना दूत चीन भेजा था और पुनः कुछ ही वर्ष पश्चात् ५०३ ई० में तथा ५०४ ई० में जबकि उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के राजाओं को उसका अनुसरण करते बताया गया है। भारत पर पूर्ववर्ती चीनी व्याख्याओं में इन खण्डों का संकेत नहीं मिलता है। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्तों का वर्णन उनके नाम से किया गया है न कि उनके स्थान से। इस प्रकार हमें ४०८ ई० में कपिल्य के राजा यूई-गई एवं ४५५ ई० में गान्धार के राजा का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय से पूर्व भारत को उसके सर्वाधिक ज्ञात एवं धनी प्रान्त के नाम पर मगध कहा जाता था और कभी-कभी अपने मुख्य निवासियों के नाम के कारण इसे "ब्राह्मणों का राज्य" भी कहा जाता था। प्रथम नाम के लिये मैं ईसा की दूसरी एवं तीसरी शताब्दियों का उल्लेख करूँगा जबकि मगध के शक्तिशाली गुप्त भारत के अधिकांश भाग पर शासन करते थे।

चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने भी सातवीं शताब्दी में उन्हीं पाँच महान प्रान्तों के विभाजन को अपनाया था। उसने इन्हें उसी क्रम में उनके निश्चित स्थानानुसार उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम एवं मध्य का नाम दिया था। उसने देश के स्वरूप की तुलना अर्ध चन्द्र से की है, जिसका व्यास अथवा चौड़ा भाग उत्तर की ओर संकीर्ण भाग दक्षिण की ओर हो। यह स्वरूप टालमी के भूगोल में दिये गये भारत के आकार के असमान नहीं है परन्तु फा-काई-लिह० तो० के चीनी लेखक ने इससे कहीं अधिक यथार्थ वर्णन किया है। जिसका कथन है कि "इस देश का आकार दक्षिण की ओर संकुचित और उत्तर की ओर चौड़ा है।" विनोद स्वरूप इसके साथ ही उसने लिखा है "यहाँ के निवासियों के चेहरे भी वैसे हैं जैसा देश का आकार है।

ह्वेनसांग भारत को वृताकार में ९०,००० 'ली' बताया है जो सत्य के दुगने से भी अधिक है। परन्तु चीनी राजकीय पत्रों में भारत के वृत को केवल ३०,००० ली बताया गया है। यदि चीनी तीर्थ यात्रियों द्वारा प्रायः अपनाई गई मार्ग की दूरी ६ ली बराबर १ मील स्वीकार कर लें तो उपरोक्त ३०,००० ली बहुत ही कम है। यदि, जैसा कि सम्भवतः उस समय प्रचलित था यही माप मानचित्र पर किया जाये तो आठवीं शताब्दी में प्रचलित दर के अनुसार एक ली १०७९·१२ फुट के बराबर होगा, तो ३०,००० ली ६१३० ब्रिटिश मील के बराबर होगें। यह आंकड़े सिकन्दर के राजकीय पत्रों पर आधारित स्ट्रैबो के परिणामों एवं मेगस्थनीज तथा पेट्रोक्लीज की छपी पुस्तकों में दिये आंकड़ों से केवल ७६४ मील कम है।

भारत के पाँच खण्ड अथवा पाँच इंडीज जैसा कि प्रायः चीनी इन्हें पुकारते थे निम्न प्रकार है।

(१) उत्तरी भारत में काश्मीर एवं आस-पास की पहाड़ियों सहित पञ्जाब,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिन्ध पार सम्पूर्ण अफगानिस्तान तथा सरस्वती नदी के पश्चिम वर्तमान सिस सतलज प्रान्त सम्मिलित थे।

(२) पश्चिमी भारत में यह भाग थे। सिन्ध, पश्चिमी राजस्थान कच्छ एवं गुजरात तथा माप के समुद्र तट जो नर्वदा नदी के निचले मार्ग पर था।

(३) मध्य प्रान्त में सम्मिलित थे, थानेसर से डेल्टा तक तथा हिमालय से नर्वदा के किनारे तक के प्रान्त।

(४) पूर्वी भारत में आसाम बङ्गाल गङ्गा का मुहाना सम्बलपुर के साथ-साथ उड़ीसा एवं गञ्जाम सम्मिलित थे।

(५) दक्षिणी भारत में पश्चिम में नासिक तथा पूर्व में गञ्जाम से लेकर, दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक का सम्पूर्ण पठार था। उसमें बरार तथा तैलङ्गाना के आधुनिक जिले महाराष्ट्र एवं कोंकन के साथ-साथ हैदराबाद, मैसूर तथा ट्रांवकोर के अलग प्रान्त भी सम्मिलित थे या यूं कह सकते हैं कि इसमें नर्वदा एवं महानदी नदियों के दक्षिण का करीब-करीब सम्पूर्ण पठार था।

यद्यपि भारत को पाँच विशाल प्रान्तों में विभाजित करने का चीनी प्रबन्ध वाराह मिहिर द्वारा बताये गये एवं पुराणों में निहित नव खण्डों के प्रसिद्ध स्वदेशी प्रबन्ध की अपेक्षा सरल है तथापि इसमें तनिक संदेह नहीं कि अपनी व्यवस्था में उन्होंने हिन्दुओं का ही अनुकरण किया था। हिन्दुओं ने अपने देश की तुलना कमल के फूल से की थी जिसका मध्य भाग भारत था तथा उसके चारों ओर की आठों पङ्खड़ियों उसके अन्य खण्ड थे जिन्हें दिक्सूचक (Compas) के आठ मुख्य बिन्दुओं के नाम पर नाम दिये गये थे। चीनी व्यवस्था में केवल, मध्य एवं प्राथमिक चार खण्डों को लिया गया है और क्योंकि यह विभाजन अधिक सरल है तथा सरलता से बाद भी रक्खा जा सकता है अतः मैं अपनी व्याख्या में इसे अपनाऊँगा।

सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग की यात्रा के समय भारत ८० राज्यों में विभाजित था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन प्रत्येक राज्यों में अलग-अलग शासक थे। यद्यपि उनमें अधिकांश शासक कुछ बड़े राज्यों के सहायक थे। इस प्रकार उत्तर भारत में काबुल, जलालाबाद पेशावर, गजनी तथा बन्नू के जिले कपिसा के शासक के आधीन थे जिसकी राजधानी सम्भवतः चारीकार अथवा सिकन्दरिया थी। पञ्जाब में तक्षशिला सिंहपुरा, उरस, पूंच तथा राजौरी के पहाड़ी जिले काश्मीर के राजा के अधीन थे। जब मुलतान तथा शोरकोट सहित सम्पूर्ण समतल भूभाग लाहौर के निकट ताकी अथवा सांगला के शासक के अधीन थे। पश्चिमी भारत में सभी प्रान्त सिन्ध बाल्लभी तथा गुज्जर के राजाओं में बटे हुये थे। मध्य एवं पूर्वी भारत के सभी प्रान्त थानेश्वर के प्रसिद्ध नगर से लेकर गङ्गा के मुहाने तक, हिमालय पर्वत से लेकर नर्मदा तथा महानदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदियों के किनारे तक कन्नौज के महान शासक हर्षवर्धन के आधीन था और ये भी अत्यधिक सम्भव है कि ताकी अथवा पञ्जाब के समतल भू भाग का शासक भी इसी प्रकार कन्नौज का आश्रित था जैसा कि हमें चीनी तीर्थ यात्री के इस विवरण से ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन अपने राज्य से होकर काशमीर की पहाड़ियों तक उस देश के राजा को दबाव डालकर बुद्ध का अत्यधिक सम्मानित दाँत देने पर बाध्य करने के उद्देश्य से गया था एवं अपने आधीन करने के लिये बढ़ा था जिससे वह (हर्षवर्धन) उसको समर्पित कर दे। दक्षिण भारत में महाराष्ट्र का राजपूत शासक ही एक मात्र शासक था जिसने सफलता पूर्वक कन्नौज की सेनाओं का सामना किया था। चीनी तीर्थ यात्री के इस कथन की पुष्टि महाराष्ट्र के चालुक्य राजकुमारों के अनेक शिला लेखों से होती है। चालुक्य शासक अपने पूर्वजों द्वारा महान शासक हर्षवर्धन की पराजय का मान करते थे। ये शक्तिशाली शासक (हर्षवर्धन) ३६ अलग-अलग प्रान्तों का सर्वोच्च शासक था। जो विस्तार में आधे भारत के करीब थे और जिनमें सर्वाधिक धनी एवं उपजाऊ प्रान्त भी सम्मिलित थे। उसकी शक्ति की वास्तविकता इस तथ्य से देखी जा सकती है कि ६४३ ई० में कम से कम १८ आधीनस्त शासकों में आधे शासक अपने सत्तारूढ़ सर्वोच्च शासक उसके पाटलीपुत्र से कन्नौज तक की धार्मिक यात्रा के समय उपस्थित थे। उसके राज्य क विस्तार का स्पष्ट संकेत उन देशों के नामों से मिलता है जिनके विरुद्ध उसने अपनी अन्तिम लड़ाइयाँ लड़ी थीं अर्थात् उत्तर पश्चिम में काश्मीर, दक्षिण पश्चिम में महाराष्ट्र तथा दक्षिण पूर्व में गन्जाम। इन सीमाओं के अन्दर ईसवी की सातवीं शताब्दी के प्रथम आधे भाग में वह भारत उपमहाद्वीप का सर्वोच्च शासक था।

दक्षिणी भारत का राज्य निम्न प्रान्तों के ६ शासकों में लगभग समानता से विभाजित था—उत्तर में महाराष्ट्र तथा कौशल, मध्य में कलिग आन्ध्र, कौंकण तथा धनकाकता तथा दक्षिण में जोरिया, द्रविड़ तथा मालकूट। इस प्रकार उन ८० राज्यों की सख्या पूरी होती है जिसमें हमारे समय की सातवीं शताब्दी में भारत बटा हुआ था।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरी भारत

प्राकृतिक सीमाएँ

भारत की प्राकृतिक सीमायें हिमालय पर्वत, सिन्धु नदी तथा समुद्र हैं परन्तु पश्चिम में शक्तिशाली राजाओं द्वारा इन सीमाओं का इतनी बार उल्लंघन किया गया है कि सिकन्दर के समय से लेकर निकट भूतकाल के अधिकांश लेखकों ने पूर्वी (१) एरियाना (हेरात) अथवा अफगानिस्तान के अधिकांश भाग को भारतीय उप महाद्वीप का एक भाग बताया है। इस प्रकार प्लिनी का कथन है कि "अधिकांश लेखक सिन्धु नदी को पश्चिमी सीमा निर्धारित नहीं करते। परन्तु गिडरोसी अराकोटी, अरा तथा पारोपामीसाडे के चार क्षत्रपोन (प्रान्त) को भारत की सीमाओं में जोड़ दिया इस प्रकार कोफीज (काबुल) नदी को इसकी (भारत) दूरस्त सीमा बताया है।" स्ट्रैबो का कथन है कि "भारतीयों ने सिन्धु तट पर अवस्थित कुछ देशों (कुछ भागों पर) पर अधिकार कर लिया जो पहले इरानियों के आधीन थे। सिकन्दर ने उनसे अरियानो (हेरात) छीन लिया तथा वहां अपना राज्य स्थापित किया परन्तु सेल्यूकस निकेटर ने वैवाहिक सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप यह राज्य सेन्ड्रोकोटस को दे दिया था। उपलक्ष में उसे ५०० हाथी प्राप्त हुये। उपरोक्त राजकुमार (सेन्ड्रोकोटस) प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य था जिसके पौत्र अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अपने साम्राज्य के दूरस्त भागों में धर्म प्रचारक भेजे थे। यूनान अथवा यवन देश की राजधानी अलासद्दा अथवा सिकंदरिया काकाशम ऐसा ही एक दूरस्त स्थान बताया गया था जहाँ चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग के कथनानुसार अनेक स्तूप पाये गये थे। ये स्तूप सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गये थे। हमें तीसरी तथा चौथी शताब्दी ई० पूर्व में काबुल की घाटी पर भारतीय अधिकार के सर्वोधिक सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त है। इस अधिकार की सम्पूर्णता १०० ई० तक अथवा इससे भी १ वर्ष बाद तक यूनानियों तथा इन्डोसिथियन द्वारा अपनी मुद्राओं पर भारतीय भाषा के प्रयोग से भली-भांति प्रकट होती है। अगली दो या तीन शताब्दियों में ये भाषा प्रायः लुप्त हो गई थी परन्तु छठीं शताब्दी में श्वेत हूणों की मुद्राओं पर ये पुनः दिखाई देती है। अगली शताब्दी में (सातवीं) चीनी तीर्थ यात्रा

---

(१) स्ट्रैबो ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि सिन्धु नदी भारत तथा एरियाना (हेरात) की सीमा थी। एरियाना भारत के पश्चिम में है और उस समय वह ईरानियों के अधिकार में था बाद में इसके अधिकांश भाग को भारतीयों ने यूनानियों से प्राप्त कर लिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा प्राप्त सूचनानुसार कपिसा का शासक एक क्षत्रिय अथवा शुद्ध हिन्दू था। सम्पूर्ण दसवीं शताब्दी में काबुल की घाटी पर एक ब्राह्मण राज्य घराने का अधिकार था। जिसकी शक्ति महमूद गजनवी के शासन के अन्त तक पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक सम्पूर्ण काबुल की घाटी सहित पूर्वी अफगानिस्तान की जनसंख्या का अधिकांश भाग भारतीयों का वंशज था और वह शुद्ध बौद्ध धर्मावलम्बी थे। गजनवी द्वारा इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेने से स्थानीय क्रूरता के साथ हठ धर्मी को बल मिला तथा उसके शासनकाल में मूर्तिपूजक बौद्ध धर्मावलम्बियों की हत्या को कर्त्तव्य समझा जाता था। शीघ्र ही मूर्ति पूजकों को देश से निष्कासित कर दिया गया और इसके साथ ही कई शताब्दियों तक हठ रहने वाले भारतीय तत्व लुप्त हो गये।

काओफू अथवा अफगानिस्तान

ई० से पूर्व एवं पश्चात् कई शताब्दियों तक सिन्धु के पार उत्तरी भारत (१) के प्रान्तों में जिनमें भारतीय भाषा तथा धर्म सर्वोपरि थे, पश्चिम में बामियान तथा कन्धार से लेकर दक्षिण में बोलन दर्रे तक का सम्पूर्ण अफगानिस्तान प्रान्तों में सम्मिलित यह विशाल राज्य उस समय १० विभिन्न राज्यों अथवा जिलों में विभाजित था। इन जिलों में कपिसा मुख्य जिला था। राज्यों में काबुल तथा गजनी पश्चिम में लमगान तथा जलालाबाद उत्तर में स्वात तथा पेशावर पूर्व में, बोलोर उत्तर पूर्व में तथा बन्नू एवं ओपोकिन दक्षिण में थे। प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण भाग का सामान्य नाम काओफू था जिसे द्वितीय शताब्दी ई० पू० में इरानियों, भारतीयों तथा किपिन की सू जाति में विभाजित बताया गया है। इस व्याख्यानुसार कन्धार का दक्षिणी पूर्वी जिला इरानियों के पास था स्वात, पेशावर तथा बन्नू के पूर्वी जिले भारतीयों के आधीन थे तथा उत्तर पश्चिम में काबुल गजनी, लमधान तथा जलालाबाद के सभी जिले सूं जाति के अधिकार में थे। काओफू को अपने नाम एवं स्थान की अनुरूपता के कारण काबुल कहा गया है परन्तु इसे केवल राजनैतिक रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से काबुल की सीमाओं को पश्चिम में ईरान तथा पूर्व में भारत की सीमाओं के भीतर दिखाना पड़ेगा। अतः वह देश जिसे चीनियों ने काओफू कहा है सम्भवतः

---

(१) उत्तर भारत—संस्कृत नाम उत्तरापथः है। वैदिक आर्यों का प्रथम निवास स्थान था। ऋगवेद में सिन्धु नदी की पश्चिमी सहायक नदियों में गान्धार, सुवस्तु (स्वात) कुभा (यूनानी कोफोन, आधुनिक काबुल नदी) गोमती (गोमाक) तथा कुरुम (कुर्रम) का उल्लेख किया गया है। इसका उत्तर पश्चिमी भाग इरानी साम्राज्य में सम्मिलित था (५००-३३१ ई० पू०) सिकन्दर ने इसके अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था और चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसे यूनानियों से छीन लिया था। —अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पूर्ण आधुनिक अफगानिस्तान सम्मिलित था । शब्द व्युतपत्ति विषय के अनुसार यह सम्भव प्रतीत होता है कि दोनों नाम एक ही है क्योंकि काओफू, यू ची अथवा तोचारी के पाँच कबीलों में एक कबीले का विशिष्ट नाम था । इस कबीले के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ई० पूर्व की द्वितीय शताब्दी के अन्त में उन्होंने उन सभी नगरों को अपने नाम दिये थे जहाँ उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित किया था । सिकन्दर के इतिहास-कारों ने चीनी लेखकों के इस कथन की पुष्टि की है । उन्होंने काबुल का उल्लेख किये बिना आरटो स्थाना नामक नगर का उल्लेख किया है । काबुल नाम का सर्वप्रथम उल्लेख टालमी ने किया है जिसने काबुल अथवा अरटोस्पना को पारोपामीसादे की राजधानी बताया है अतः मेरा निष्कर्ष है कि अरटोस्पना देश की सम्भवतः मूल राज-धानी थी । यूनानी शासक के समय सिकन्दर ने राजधानी बदल दी थी । परन्तु इन्डो-सीथियन ने इसे पुनः राजधानी बना लिया था । ऐसा लगता है कि सातवीं शताब्दी के पूर्व ही इसे पुनः त्याग दिया गया था क्योंकि उस समय कपिसीन (कापेशी) की राज-धानी ओपियान थी ।

केपिसीन अथवा औपियान

चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार केपिशी अथवा केपिसीन व्यास में ४००० ली अथवा ६६६ मील था । यदि यह आंकड़े किसी अंश तक सही हैं तो केपिशीन में संपूर्ण कफीरीस्तान एवं घोर बन्द तथा पंचशोर की दो विशाल घाटियाँ सम्मिलित रही होंगी क्योंकि ये दोनों घाटियाँ व्यास में कुल ३०० मील से अधिक नहीं हैं । पुनः केपिसी को पर्वतों से चारों ओर से घिरा हुआ स्थान बताया गया है जिसके उत्तर में पो, ला, सि, ना नामक हिमाच्छदित पर्वत था तथा अन्य तीनों ओर काली पहाड़ियाँ थीं । पोलो-सिना, पारेश पर्वत अथवा "जेन्द एवेस्ता" के उपारीसन तथा यूनानियों के पारोपामी-सस के अनुरूप है । हिन्दुकुश भी इसी में सम्मिलित था । ह्वेनसांग आगे लिखता है कि राजधानी के उत्तर पश्चिम में केवल २०० ली अथवा लगभग ३३ मील की दूरी पर एक विशाल बर्फीला पर्वत था । जिसके शिखर पर एक झील थी परन्तु अफगा-निस्तान के इस भाग से सम्बन्धित प्राप्त कुछ अशुद्ध लेखों में मैं इस झील का उल्लेख प्राप्त नहीं कर सका ।

केपिसीन के जिले का वर्णन सर्वप्रथम प्लिनी ने किया है जिसका कथन है कि केपिसा नामक उस प्रदेश की राजधानी को साइरस ने नष्ट कर दिया था । प्लिनी के अनुकर्ता सोलिनस ने भी इस कथन का उल्लेख किया है परन्तु उसने नगर को कफुसा कहा है जिसे डेलफाईन सम्पादकों ने बदल कर केपिसा कर दिया । कुछ समय पश्चात टालमी नगर को पारो, पामी, सादे के अन्तर्गत काबुर अथवा काबुल २३$\frac{1}{2}$° उत्तर में बताया है जो वस्तुतः २° अधिक है । ६३० ई० में बामियान से प्रस्थान के समय चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने पूर्व दिशा में हिमाच्छदित पर्वतों तथा काली पहाड़ियों से होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुये केपिशी अथवा केपिसीन की राजधानी तक ६०० ली अथवा लगभग १०० मील की यात्रा की थी। १४ वर्ष पश्चात भारत से लौटते समय वह गजनी तथा काबुल लौटता हुआ केपिशी पहुँचा था और उत्तर पूर्व की दिशा में पंजशील घाटी से होता हुआ अन्देराव की ओर चला गया था। इन गाथाओं में राजधानी को ओपियान अथवा इसके समीप बताया गया है जो हाजिक दर्रे तथा छोरबन्द घाटी के मार्ग से बोमियान से लगभग १०० मील पूर्व में है तथा गजनी एवं काबुल से अन्देराव सीधे मार्ग पर पड़ता है। इसी क्षेत्र का अधिक निश्चित ढंग से संकेत इस तथ्य से मिलता है कि केपिसीन की राजधानी को अन्तिम बार छोड़ते समय चीनी तीर्थ यात्री के साथ वहाँ का शासक क्यू, लूसा, पांग नगर तक गया था। यह नगर उस स्थान से एक योजन अथवा ७ मील उत्तर पूर्व में है जहाँ से सड़क उत्तर को ओर मुड़ जाती है। ये विवरण ओपियान से बेमग्राम के समतल भूमि के उत्तरी क्षोर तक मार्ग दिशा से ठीक-ठीक मिलता है बेमग्राम चारीकार तथा ओपियान के लगभग ६ या ७ मील पूर्व, उत्तर पूर्व में है। मेरे विचार म बेगराम चीनी तीर्थ यात्री का क्यू, लूसा, पांग अथवा करसावना टालमी का करसाना और प्लिनी का करतना है। यदि राजधानी बेग्राम में थी तो उत्तर पूर्व में ७ मील की यात्रा के बाद राजा को पंजशीर तथा घोरबन्द की संयुक्त नदी के पार चला जाना चाहिये था परन्तु गहराई एवं तीव्रगति के कारण इस नदी को पार करना कठिन है अतः इस बात की सम्भावना नहीं है कि राजा ने केवल विदाई के उद्देश्य से ऐसी यात्रा की होगी। परन्तु ओपियान को राजधानी स्वीकार करने एवं बेग्राम को चीनी तीर्थ यात्री था कयू-लू-सा-पांग स्वीकार कर लेने से सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायगी। राजा अपने सम्मानित अतिथि के साथ पंचशीर नदी के किनारे तक गया था और वहाँ से वापस लौट गया था। तीर्थयात्री की जीवनी के अनुसार वह स्वयं नदी पार कर उत्तर की ओर यात्रा पर चला गया था।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में कोदिशी अथवा केपिसीन की राजधानी अवश्य ही ओपियान अथवा उस के समीप रही होगी। मसोन ने इस स्थान की यात्रा की थी और उसने इसका वर्णन इस प्रकार किया है, विशाल बनावटी टीलों के कारण प्रसिद्ध नगर जहाँ समय-समय पर प्रचुर मात्रा में प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। एक अन्य स्थान पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा है कि "इस स्थान पर अनेक प्राचीन अवशेष हैं परन्तु वह केवल धार्मिक अवशेष हैं अतः यह अवशेष जिस नगर का संकेत देते हैं उसे चारीकार के समीप निचली भूमि पर हुपियान नामक स्थान पर देखा जाना चाहिये।" मसोन ने सम्राट बाबर का अनुसरण करते हुए इस नगर का नाम हुपियान लिखा है। लेफटोनेन्ट लीच एवं वाकर के विशाल मानचित्रों में इसका नाम ओपियान है तथा लेफटीनेन्ट स्टूअर्ट ने भी लगभग इसी नाम का अनुसरण किया है। इन दोनों (सैनिक अधिकारियों) ने कोहदामन का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निरन्तर निरीक्षण किया है अतः मैं उन्हीं का अनुसरण करूँगा। यह नाम (ओपियान) हिक्काटाईयस एवं स्टीफन्स के ओपियाई तथा ओपियान के यूनानी स्वरूप से और प्लिनी के लेटिन नाम ओपियानम से अच्छी तरह मिलता जुलता है। यह नाम परोपामिसस में सिकन्दरिया के नाम से अत्यन्त घनिष्ठता रखते हैं अतः इस प्रसिद्ध नगर के सर्वाधिक सम्भावित स्थान का निश्चय लेने से इसके भावी अनुसन्धान का मार्ग स्पष्ट हो जायेगा।

सिकन्दर द्वारा हिन्दुकुश के अधोभाग पर स्थापित नगर का वास्तविक स्थान क्या था यह विषय बहुत समय तक विद्वानों के विचार का विषय रहा है। परन्तु काबुल घाटी के अच्छे मानचित्र का अभाव उनकी सफलता में एक गम्भीर बाधा रही है और काकेशस में स्थापित सिकन्दरिया नगर के प्रसिद्ध नाम को सुरक्षित रखने वाली प्राचीन पुस्तकों में अविवेकी परिवर्तन करने के कारण यह बाधा अलंघनीय बन गई है। इस प्रकार स्टीफन्स ने इसे "भारत के समीप ओपियान में" बताया है। प्लिनी ने इसे सिकन्दरिया ओपियामोज कहा है जिसे लिपसिक एवं अन्य ग्रन्थों में बदलकर सिकन्दरिया ओपीडम कर दिया गया है। इस देश के अधिकांश भाग के सम्बन्ध में प्लिनी के अशुद्ध विवरण को यही विशिष्ट नाम दिया जाना चाहिये। प्लिनी ने पिछले अध्याय में इसका अच्छी तरह वर्णन किया है। उसने काकेशान अथवा पारोपामिसस के अधोभाग पर अवस्थित देश किया है तथा वैक्ट्रिया निवासियों को उसने "Owersa montis Paropanisi" कहा है। मेरा विचार है कि बैकट्रियानोरम के अन्तिम आधे भाग में परिवर्तन करने से वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा। "तत्पश्चात ओपी जिसके नगर सिकन्दरिया का नाम इसकी स्थापना करने वाले व्यक्ति के नाम पर रखा गया था।" चाहे यह संशोधन स्वीकार किया जाये अथवा नहीं उपरोक्त लिखे अन्य दो वाक्यों से यह स्पष्ट है कि हिन्दुकुश के अधोभाग पर सिकन्दर द्वारा स्थापित किये गये नगर का नाम भी ओपियान था। इस तथ्य के निश्चित हो जाने पर अब मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगा कि सिकन्दर का ओपियान चारीकार के समीप वर्तमान ओपियान अत्यधिक अनुरूप था।

प्लिनी के अनुसार ओपियान में सिकन्दरिया नाम का नगर आरटस्पना से ५० रोमन मील अथवा ४५.९६ ब्रिटिश मील तथा पेशावर के कुछ मील उत्तर में प्यूकोलेटिस अथवा पुक्कोलायोटीज (पुण्कलावती) से २३७ रोमन मील अथवा २१७.८ ब्रिटिश मील की दूरी पर स्थापित था। मैं अगले प्रान्त के अपने विवरण में आरटस्पना के स्थान के विषय पर विचार करूँगा यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि मैं इसे बालहिसार दुर्ग सहित काबुल के प्राचीन के अनुरूप समझता हूँ। चारीकार काबुल से २७ मील उत्तर में है। प्लिनी द्वारा अङ्कित माप से एवं उपरोक्त माप में १९ मील का अन्तर है परन्तु प्लिनी ने स्वयं ही लिखा है कि "कुछ प्रतिलिपियों में भिन्न संख्यायें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दी गई हैं।" इस प्रकार इससे कुल दूरी घटकर २९६ मील रह जायेगी यह दूरी काबुल तथा ओपियान के बीच की दूरी से सही-सही मिलती है। चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने इन स्थानों के बीच की दूरी का उल्लेख नहीं किया। परन्तु केपिशी की राजधानी हू-लू-शा-हू-लो अथवा पुरुषपुर अर्थात् आधुनिक पेशावर के बीच की दूरी ६००+१००+५००=१२०० ली अथवा ६ ओर १ के अनुपात से २०० मील है। नगरहारा (जलालाबाद) पुरुषावर के बीच ५०० ली की दूरी अवश्य ही बहुत कम है क्योंकि पूर्ववर्ती तीर्थ यात्री फाहियान ने पाँचवी शताब्दी के आरम्भ में इसे १६ योजन अथवा १ ओर ४० के अनुपात में ६४० ली से कम नहीं माना था। इससे कुल दूरी १३४० ली अथवा २२३ मील बढ़ जायेगी जो रोमन लेखकों के आकड़ों से केवल ५ मील कम है। चारीकार तथा जलालाबाद के बीच की वास्तविक दूरी निश्चित नहीं की गई है। वाकर के मानचित्र में सीधी रेखा पर इसकी दूरी काबुल तथा जलालाबाद के बीच की दूरी अर्थात् ११५ मील से लगभग १० मील अधिक है अतः इस दूरी का अनुमान १२५ मील लगाया जा सकता है। इस संख्या में यदि पेशावर तथा जलालाबाद के बीच सड़क की लम्बाई १०३ मील की संख्या और जोड़ दो जाये तो चारीकार तथा पेशावर के बीच को कुल दूरी २२८ मील से कम नहीं बनेगी। ये संख्या रोमन तथा चीनी लेखकों द्वारा दिये आकड़ो के बहुत ही निकट है। प्लिनी ने आगे चलकर सिकन्दरिया को काकेशस के एक दम नीचे अवस्थित बताया है। यह स्थान कोहदामन के अधोभाग के उत्तरी क्षोर पर स्थित ओपियान के स्थान से बिलकुल मिलता-जुलता है। कर्टियस ने भी उसी स्थान का उल्लेख किया है उस सिकन्दरिया को पर्वत के बिलकुल निचले भाग पर अवस्थित बताया है। सिकन्दर ने उस स्थान को बैक्ट्रिया की ओर जाने वाली तीन सड़कों के अलगांव पर अनुकूल स्थान होने के कारण चुना था। यह सड़कें अभी भी अपरिवर्तित हैं तथा बगराम के समीप "ओपियान नामक स्थान पर अलग हो जाती है।

(१) पञ्जशीर घाटी तथा खावक दर्रे से अन्देराव की ओर जाने वाला उत्तर पूर्वी मार्ग।

(२) कुशान घाटी तथा हिन्दुकुश से होते हुये घोरी की ओर जाने वाला पश्चिमी मार्ग।

(३) घोरबन्द घाटी तथा हाजियारू के दर्रे से बामियान की ओर जाने वाला दक्षिणी पश्चिमी मार्ग।

सिकन्दर ने पहला मार्ग पैमिलडा की सीमा से बैक्ट्रिया में प्रवेश करते समय अपनाया था। भारत पर आक्रमण के समय तिमूर भी इसी मार्ग से आया था तथा आमू नदी के उदगम स्थान से वापसी के समय लेफटीनेन्ट वुड इसी स्थान से होकर आया था। दूसरे मार्ग का अनुसरण सिकन्दर ने बैक्ट्रिया से वापसी पर किया होगा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्यों स्ट्रैबो ने विशेष रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि उसने (सिकन्दर ने) उस मार्ग की अपेक्षा जिस पर वह आगे बढ़ा था—"उन्हीं पहाड़ों के ऊपर एक अन्य तथा छोटे मार्ग को अपनाया था। यह निश्चित है कि उसकी वापसी बामियान मार्ग से नहीं हुई थी क्योंकि यह सबसे लम्बा मार्ग है साथ ही साथ यह हिन्दूकुश को पार करने के स्थान पर उसके साथ हो घूम जाता है। सिकन्दर ने हिन्दूकुश को पार किया था। इस मार्ग पर डाक्टर लार्ड तथा ले० वुड ने वर्ष के अन्तिम भाग में प्रयत्न किया था परन्तु बर्फ के कारण वह असफल रहे। तीसरा मार्ग सबसे सरल है तथा उस पर प्रायः गमनागमन रहता है। बामियान पर अधिकार करने के पश्चात चंगेज खाँ ने इस मार्ग का अनुसरण किया था। बलख एवं बुखारा की साहसिक यात्रा के समय मि० यूर क्राफ्ट तथा मि० बर्न्स ने भी इसी मार्ग को अपनाया था तथा कुशल दर्रे पर अपनी असफलता के पश्चात लार्ड एवं वुड ने उसे आड़े तिरछे पार किया था। घुड़सवार तोपखाने ने इस मार्ग को सफलता पूवर्क पार किया था तत्पश्चात १८४० ई० में स्टुअर्ट ने इस मार्ग का निरीक्षण किया था।

पैरोपैमिसडा के नगरों की टालमी की सूची में सिकन्दरिया का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु कपिसा के समीप उसके निफन्द को आंशिक परिवर्तन से ओफिन्द पढ़ा जा सकता है। मेरा विचार है कि हम यूनानी राजधानी को उसके इस परिवर्तित स्वरूप में सम्भवतः पहचान सकते हैं। ओपियान का नाम निश्चित ही इतना पुराना है जितना कि ई० पूर्व की पांचवी शताब्दी। क्योंकि मि० हिकाटायस ने लिखा है कि सिन्धु नदी के ऊपरी जल मार्ग के पश्चिम में ओपियाई नामक जाति का निवास था। डेरियस के लेखों में इस नाम का कोई चिन्ह नहीं है परन्तु इनके स्थान पर हमें थाटागुश नामक जाति का उल्लेख मिलता है। थाटागुश जाति ही हिरोडोतस की सत्ता गुदाय जाति थी और सम्भवतः इन्हें हो चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सी-पी-तो-फा-ला-सी कहा है। ये स्थान केपिशी की राजधानी से केवल ४० ली अथवा लगभग ७ मील की दूरी पर था परन्तु दुर्भाग्य से उसकी दिशा नहीं बताई गई है। हमें ज्ञात है कि इससे स्थान के दक्षिण में ५ मील की दूरी पर अरुण नाम का एक पर्वत था यह लगभग निश्चित है कि ये नगर बेगराम के प्रसिद्ध स्थान पर रहा होगा जहाँ से स्याहकोह का उत्तरी छोर लगभग पूर्व दक्षिण में ५ अथवा ६ मील की दूरी पर पड़ता है। स्याहकोह को काला पर्वत तथा चहतदुखतरान अर्थात ४० पुत्रियां भी कहा जाता है। मसान ने लिखा है कि बेग्राम के जर्जर नगर के दक्षिणी पश्चिमी छोर पर तारङ्गजार नामक स्थान था। सम्भव है यह तारङ्गजार नाम प्राचीन थाटागुश अथवा सत्तागुदाय का परिवर्तित स्वरूप हो। उपरोक्त कथन सही हो अथवा नहीं यह निश्चत है कि काबुल नदी की ऊपरी शाखओं के किनारे बसे लोग दारीयस के थाटागुश तथा हीरोदोतस के सत्तागुदाय लोग थे क्योंकि इन दोनों लेखकों ने आस-पास की सभी जातियों का उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करसना, करतना अथवा टीट्रागोनिस

सिकन्दरिया की स्थिति का उल्लेख करते समय प्लिनी ने उसकी भूमिका में इस नगर को जहाँ काकेशस के अधोभाग पर समान स्थिति में अवस्थित बताया है, वहाँ इस बात का भी उल्लेख है कि यह नगर सिकन्दरिया के समीप था, अतः पूर्व प्रस्तावित शुद्धियों सहित प्लिनी के लेख का अर्थ इस प्रकार होगा : "हिन्दूकुश के अधोभाग में करतना नगर खड़ा है जिसे बाद में टीट्रोगोनिस (वर्गाकार) नाम से पुकारा गया था। यह जिला बैक्ट्रिया के सामने है। तत्पश्चात ओ पी (O P) था जिसके नगर सिकन्दरिया का नाम उसके स्थापित करने वाले व्यक्ति के नाम पर रक्खा गया था।" सोलीनेस ने करतना का कोई उल्लेख नहीं किया, परन्तु टालमी ने करसना अथवा करनासा नामक एक नगर का उल्लेख किया है जो उसके अनुसार एक बेनाम नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित था। यह नदी कपिसा तथा निफन्दा (ओषियान) की ओर से आती है और नागरा के लगभग विपरीत लोहगढ़ अथवा लोचरना नदी से मिलती है। मेरे विचार में थे पञ्जशीर तथा घोरबन्द नदियों की संयुक्त नदी है जो काबुल तथा जलालाबाद के लगभग आधे भाग पर लोहगढ़ नदी में मिलती है। मेरे इस कथन की पुष्टि लम्बताय जाति अथवा लम्पक अर्थात लमगान के निवासियों के कथित निवास स्थान से होती है जिन्हें बेनाम नदी के पूर्व में दिखाया गया है। यह बेनाम नदी कुनार नदी नहीं हो सकती जैसा कि सम्भवतः भगरा के सामने लोहगढ़ एवं बुनार नदियों के सङ्गम से इसका अनुमान लगाया जा सकता था।

ऐसा होने से टालमी के करसना को प्लिनी के करतान के अनुरूप बताया जा सकता है और दोनों लेखकों द्वारा दिये गये कुछ तथ्यों को जोड़ने से हमें इसके वास्तविक स्थान को ढूंढने में सहायता मिल सकती है। प्लिनी के अनुसार यह काकेशस के अधोभाग पर अवस्थित था तथा सिकन्दरिया से अधिक दूर नहीं था जबकि टालमी के अनुसार यह नगर पञ्जशीर नदी के दाहिने किनारे पर था। यह तथ्य बेग्राम की ओर संकेत करते हैं जो कोहिस्तान पहाड़ियों के ठीक नीचे पंजशीर तथा घोरबन्द नदियों की संयुक्त नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित था तथा ओपियान अथवा सिकन्दरिया ओपियाने के छः मील के अन्दर था। मैं अन्य ऐसे किसी स्थान को नहीं जानता जो इन सभी आवश्यक बातों का समुचित उत्तर दे सके अतः यह अत्यधिक सम्भव प्रतीत होता है क बेग्राम ही इस नगर का वास्तविक क्षेत्र था। ओपियान के पड़ोस में परवान तथा कुशान महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान हैं परन्तु वह दोनों घोरबन्द नदी के किनारे पर है। परवान टालमी का बाबरेना है तथा कुशान उसका कपिशा (केपिशा) है। बेग्राम उस व्याख्या का उत्तर भी देता है जो प्लिनी ने टैट्रागोनस अथवा एक वर्ग के रूप में करतना के सम्बन्ध में दी है। क्योंकि मसोन ने इन अवशेषों की अपनी व्याख्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में विशेषतया "बड़े आकार के कुछ टीलों पर ध्यान दिया है तथा वहुत बड़े आकार के एक वर्ग का सही-सही उल्लेख किया है।"

यदि मैं बैगरान को चीनी तीर्थ यात्री के क्यू-लू-स-पांग मानने में ठीक हूँ तो उस स्थान का वास्तविक नाम करसना रहा होगा जैसा कि टालमी ने लिखा है न कि प्लिनी द्वारा उद्धृत करतना। इस नाम का यही स्वरूप यूक्रेटीडेस को अल्प मुद्राओं में मिलता है, जिस पर करीसी नगर अथवा कीसी नगर का उपाक्षन है। इस नगर को मैं राजा मिलिन्द का जन्म स्थान तथा बौद्ध इतिहास का कलसी समझता हूँ। उसी इतिहास के एक अन्य स्थान पर मिलिन्द को यूनानी देश की राजधानी अलासंदा अथवा सिकंदरिया में उत्पन्न हुआ बताया गया है। इसलिये कलसी अवश्य ही या तो सिकन्दरिया का दूसरा नाम होगा अथवा इसी के समीप किसी अन्य स्थान का। अंतिम निष्कर्ष बैगराम की स्थिति से मेल खाता है जो कि ओपियान से केवल कुछ ही मील पूर्व में है। मेरे विचार में दिल्ली तथा शाहजहाँबाद अथवा लंदन तथा वैस्ट मिनिस्टर के दो विभिन्न स्थानों की तरह शुरु में ओपियान तथा करसना अलग-अलग स्थान रहे होंगे जो धीरे-धीरे बढ़ते हुये एक दूसरे के समीप होते गये, यहाँ तक कि वह लगभग एक ही नगर के रूप में बदल गये। एरियाना (हेरात) के प्रारम्भिक यूनानी शासक इवुदिम, डेमीटियस तथा यूक्रेटोडेस की मुद्राओं पर हमें दोनों नगरों का संयुक्त अक्षर मिलता है परन्तु यूक्रेटोडेस के समय के पश्चात ओपियान का चिन्ह एकदम लुप्त हो गया जबकि करसना का चिन्ह बाद के अधिकांश शासकों के साथ बना रहा। इन दोनों नगरों के टकसाल चिन्हों के एक ही युग में साथ-साथ प्रचलन से यह सिद्ध होता है कि दोनों नगर एक ही समय पर रहे होंगे। जबकि ओपियान के नाम के अचानक लुप्त हो जाने से यह ज्ञात होता है कि यूनानी शासन के अंतिम समय में करसना नगर ने सिकन्दरिया का स्थान ले लिया था।

मेरे विचार में बैगराम के विशिष्ट नाम का अर्थ "नगर" से अधिक नहीं था। क्योंकि यही अर्थ तीन बड़ी राजधानियों काबुल, जलालाबाद तथा पेशावर के समीपस्थ प्राचीन स्थानों को दिया गया था। मसोन ने तुर्की भाषा के बो (मुख्य) शब्द तथा हिन्दी भाषा के ग्राम अथवा नगर शब्द को जोड़ने से यह विशिष्ट नाम प्राप्त किया है। इसका अर्थ है मुख्य नगर अथवा राजधानी। परन्तु इस शब्द को संस्कृत के विजय शब्द में निहित 'वि' अक्षर से प्राप्त करने में सफलता होगी। विजय शब्द 'वि' परिशिष्ट सहित जय शब्द का दृढ़ स्वरूप है इस प्रकार विग्राम का अर्थ होगा "नगर" अर्थात राजधानी। हिन्दी में विग्राम से बिग्राम ठीक उसी प्रकार बन गया होगा जैसे विजय शब्द का प्रचलित स्वरूप विजय।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेग्राम का समतल उत्तर तथा दक्षिण में पंजशीर एवं कोहदामन नदियों से पश्चिम में माहीगीर नहर से और पूर्व में जलन्धर की भूमि से दो नदियों के बीच घिरा हुआ है। इसकी लम्बाई माहीगीर नहर पर अवस्थित "बयान" नगर से जुलधा तक लगभग ८ मील है तथा इसकी चौड़ाई किला बुलन्द से युनबाशो तक ४ माल है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र से अनेक अवशेष प्राप्त हुये है जिनमें छोटी-छोटी मूर्तियाँ मुद्रायें, मुहरे, मालायें, अंगुठियां, तीर की नोकें तथा चीनी के बर्तनों के टुकड़े सम्मिलित हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि यह समतल किसी समय एक बड़े नगर का स्थान था। वहाँ के निवासियों की परम्परा के अनुसार बेग्राम एक यूनानी नगर था जो एक प्राकृतिक आपत्ति में नष्ट हो गया था। मसोन को इस परम्परा की सत्यता पर संदेह है। वहां मिले अनेकानेक मुद्राओं के कारण उसका अनुमान है कि यह नगर मुसलमानी आक्रमण के कुछ शताब्दियों बाद तक जीवित था। मेरे विचार मे मसोन का कथन सही है तथा देश पर मुसलमानों की विजय के पश्चात नगर के पतन का कारण राजधानी को गजनी ले जाने के परिणाम स्वरूप इस नगर के निवासियों का धीरे-धीरे नगर त्याग ही था। काबुल के अंतिम हिन्दू शासक की मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं परन्तु अंतिम गजनवी शासकों की मुद्रायें कम प्रचुर हैं जबकि उत्तराधिकारी गोरी राज्य घराने के प्रारम्भिक शासकों के केवल कुछ नमूने अभी तक प्राप्त किये जा सके हैं। इन स्पष्ट तथ्यों के आधार पर मेरा अनुमान है कि दसवीं शताब्दी के अन्त में सबुक्तदीन द्वारा काबुल पर मुसलमानी अधिकार था। नगर धीरे-धीरे नष्ट होने लगा था और १३ वीं शताब्दी के आरम्भ में इसे अंतिम रूप से त्याग दिया गया था। यह वही समय है जब चंगेज खां ने इन प्रान्तों पर आक्रमण किया था और इस बात की अत्यधिक सम्भावना है (मसोन ने ऐसा ही विचार प्रकट किया है) कि उसी क्रूर एव बर्बर व्यक्ति ने बेग्राम को अंतिम रूप से नष्ट कर दिया था।

केपिसीन के अन्य नगर

मैं केपिसीन के उस विवरण को प्राचीन लेखकों द्वारा इसी जिले के कुछ अन्य नगरों की व्याख्या पर टिप्पणी के साथ समाप्त करूँगा। प्लिनी ने एक नगर को कदरुसी कहा है और सोलिनस ने लेश मात्र परिवर्तन से इसे कदरुसिया कहा है। दोनों लेखकों ने नगर को काकेशस के समीस बताया है। इस व्याख्या के साथ सोलिनस ने यह और जोड़ दिया है कि यह नगर सिकन्दरिया के समीप था। इन दो भिन्न-भिन्न इशारों पर चलते हुये मैं कदरसी नगर को कोरातास के प्राचीन स्थान के अनुरूप सकझता हूँ जिसे मसोन ने कोहिस्तान की पहाड़ियों के नीचे बेग्राम से एक मील उत्तर पूर्व तथा पंजशोर नदी के उत्तरी किनारे पर बताया है। इस स्थान पर प्राचीन नगर के अवशेष के रूप में चीनी के बर्तनों के टुकड़ों से ढके टीले हैं। इन टीलों से प्रायः प्राचीन मुद्रायें प्राप्त हुआ करती हैं। पहाड़ी के समीप कुछ इमारतों के अवशेष भी हैं जिन्हें लोग काफिर कोट कहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते हैं। टीकाकारों ने सालिनास पर प्लिनी को गलत समझने का आरोप लगाया है। उनका कथन है कि प्लिनी का कदरुसी वस्तुतः एक जाति का नाम था तथा नगर का नाम सिकन्दरिया था परन्तु फिलिमन हालैण्ड ने इस विवरण का भिन्न अर्थ लगाया है जिसके अनुसार "काकेशस की पहाड़ियों के ऊपर कदरुसी नामक नगर खड़ा था जिसका निर्माण ठीक उसी प्रकार सिकन्दर ने करवाया था। सामान्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानियों ने अपने सम्पर्क में आने वाली विभिन्न जातियों को उनके मुख्य नगर के नाम से पुकारा था। इस प्रकार हमें काबुर तथा काबलोटाय, द्रेपसा तथा देपसिय तक्षशिला तथा तक्षशिली, कसपीरा तथा कसपीराये का उल्लेख मिलता है। अतः मेरा अनुमान है कि सम्भवतः कदरुसिया नाम का एक नगर रहा होगा जिसके निवासियों को कदरुसी कहा जाता था। कोरातास के ध्वस्त टीलों के स्थान एवं प्लिनी के कदरुसी में एकरूपता होने से यह अनुमान विश्वास में बदल जाता है। टालमी ने अन्य लोगों एवं नगरों के नामों का उल्लेख किया है परन्तु उनमें से बहुत कम अब पहचाने जा सकते हैं क्योंकि हमारे पास उनके नामों के अतिरिक्त सहायतार्थ अन्य कुछ भी नहीं है। परसिया अथवा परसियाना नगरों एवं वहां की पारसी जाति मेरे विचार में पंझीर अथवा पंजशीर घाटी की पाशाई जाति है। वास्तविक नाम पंचीर है क्योंकि अरब सदा भारतीय च के स्थान पर ज लिखा करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वार्न्स लीच तथा अन्य लेखकों द्वारा अपनाया पंजशीर नाम च शब्द को अफगान उच्चारण में त एवं स का संयुक्त अक्षर पढ़ने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार पंजशीर अफगान उच्चारण में पंतसीर बन जायेगा। प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने पंझीर नामक नगर का उल्लेउ किया है तथा कुदुस से परवान जाते समय इब्नबतूता ने पाशाई नामक एक पर्वत पार किया था।

अन्य जातियों ने एरिस्टोफिलो जो कि शुद्ध यूनानी नाम है तथा एम्बातोय नामक जातियाँ थीं जिनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। वह नगर जिनका उल्लेख नहीं किया गया है इस प्रकार हैं—उत्तर में अर्तो आर्ता तथा बरजाउरा तथा दक्षिण में दरस्तोका एवं नाऊलिबिस थे। हो सकता है बरजाउरा नाम का नगर पंजशीर घाटी का एक बड़ा नगर बजारक रहा हो इसी प्रकार अंतिम नगर घोरबन्द का नीलाब तथा तृतीय नगर सम्भवतः कोहदामन की घाटी का एक नगर था।

कोफीन अथवा काबुल

काबुल जिले का उल्लेख सर्व प्रथम टालमी ने किया है जिससे वहाँ के निवासियों को काबोलिटाय तथा उनकी राजधानी को काबुर नाम दिया गया है। काबुर को आरटोस्पना भी कहा गया है। दूसरा नाम केवल स्ट्रैबों तथा प्लिनी के लेखों में मिलता है। इन लेखों में सिकन्दर के भूमि निरीक्षकों डायोगनटीज तथा बैटन द्वारा अंकित अराकोसिया की राजधानी से इसकी दूरी का उल्लेख है। प्लिनी की कुछ पुस्तकों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसका नाम अर्थोसपनम लिखा गया है जो एच० एच० विलसन द्वारा प्रस्तावित उल्लेख के थोड़े परिवर्तन के बाद आर्थस्तान बन जाता है और सम्भवतः यह संस्कृत का उर्ध-स्थान अर्थात उच्च स्थान अथवा उन्नत नगर है। चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसांग द्वारा काबुल जिले को भी यही नाम दिया गया है परन्तु मुझे सन्देह है कि प्रान्तों एवं राजधानी के नामों में दुर्घटनावश आवश्यक अदला-बदली हुई है। (१) गजनी छोड़ने पर तीर्थयात्री ने उत्तर की ओर फो-ली-शी-सा-तांग-ना तक जिसकी राजधानी हू-फि-ना थी, तीन मील की यात्रा की थी। दो भिन्न रास्तों से काबुल तथा गजनी के बीच की दूरी ८१ तथा ८८½ मील आँकी गई थी। इस कारण इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि काबुल ही वह स्थान था जहाँ तीर्थ यात्री गया था। एक अन्य स्थान पर राजधानी को बामियान से ७०० ली अथवा ११६ मोल बताया गया है। यह अनुमान सबसे छोटे रास्ते से काबुल एवं बामियान की वास्तविक दूरी १०४ मील से बहुत कुछ मिलता है।

चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये राजधानी के नाम को एम० विवीन डो सेन्ट मार्टिन ने बदलकर वर्दस्थान कर दिया है तथा उसे वर्दक जाति के जिले के अनुरूप बताया है जबकि प्रान्त का नाम हुपियान अथवा ओपियान के अनुरूप माना गया है। परन्तु वर्दक घारी जिसे वर्दक जाति से अपना नाम मिला है काबुल के दक्षिण में कुछ ही दूरी पर गजनी के उत्तर में ४० मील की दूरी पर लोहगढ़ नदी के ऊपरी जल मार्ग पर स्थित है जब कि हूपियान अथवा ओपियान काबुल से २७ मील उत्तर में तथा वर्दक से ७० मील से भी अधिक दूरी पर है। मेरा निजी अनुसंधान मुझे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि यह दोनों नाम हूपियान अथवा ओपियान काबुल के आस-पास के भू-भाग का संकेत देते हैं।

प्रोफेसर लासेन ने लिखा है कि ह्वेनसांग ने एक बार भी किपिन का उल्लेख नहीं किया जबकि अन्य चीनी लेखकों ने बारम्बार उसका उल्लेख किया है। रेमूसत ने सर्व प्रथम यह प्रस्ताव किया था कि किपिन कोफीज अथवा काबुल नदी पर स्थित एक प्रदेश था और इस प्रस्ताव को उसी समय से प्राचीन भारत के इतिहास के सभी लेखकों ने सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया है। इन्हीं लेखकों द्वारा अब यह जिला कोफीन के नाम से पुकार जाता है। किपिन नाम के इसी स्वरूप को मैं ह्वेनसांग का हू-फि-ना मानने का प्रस्ताव करता हूँ क्योंकि इस बात की बहुत क्षीण सम्भावना प्रतीत होती है कि अपने समय का यह प्रसिद्ध प्रान्त उसकी जानकारी के बाहर रह

---

(१) सर कनिंघम का सन्देह उचित नहीं है क्योंकि चीनियों ने किपिन का काआ-फू अथवा काबुल से भिन्न बतलाया है। सातवीं शताब्दी में किपिन का अर्थ कापिसा था हन तथा वी (wei) राजघरानों के समय प्रायः काश्मीर को किपिन कहा जाता था।

फो- भी- सा-तांग-न संस्कृत का प्रतिष्ठान प्रतीत होता है। —अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया हो जबकि हम जानते हैं कि वह अवश्य ही यहाँ से होकर गया होगा और यह नाम उसके समय से एक शताब्दी बाद तक प्रयोग में लाया जाता था। मैं पहले ही यह सन्देह व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रान्तों एवं इनकी राजधानियों के नामों में कुछ अदला-बदली हुई होगी। यह सन्देह उस समय और भी पक्का हो जाता है जब सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं एवं दो नामों की साधारण अदला-बदली से सर्वाधिक अनुरूपता प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार हू-फि-ना काबुल नदी पर स्थित कोफीन अथवा किपिन का प्रतिनिधित्व करेगा तथा फो-ली-शी-सा-तांग-न-अथवा उर्घस्थान ओरबस्तान को प्रदर्शित करेगा, जैसा कि हम अनेक विश्वस्त लेखकों की कृतियों से जानते हैं कि यह प्रान्त की वास्तविक राजधानी थी। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि हू० फी० ना० चीनी शब्द कोफीन की शुद्ध नकल है जबकि हूपियान शब्द की यह बहुत ही अशुद्ध नकल होगी क्योंकि इसमें एक अक्षर पूर्णतयः छूट जायेगा तथा साधारण 'प' के स्थान पर एक श्वास का उच्चारण मात्र रह जायेगा। हूपियान की शुद्ध नकल 'हू-पि-यान-ना होगी। मिस्टर विवीन डी० सैन्ट मार्टिन को उर्ध स्थान नाम पर आपत्ति है। उसके कथनानुसार यह बिना उद्देश्य के अनुमान योग शब्द व्युत्पत्ति है। परन्तु मैं इस बात पर पूर्ण सन्तुष्ट हूँ कि यह विवरण निम्न कारणों से सही है। एक आरटोस्पना नाम दारोपमीसाड़े तक ही सीमित नहीं है परन्तु इसका उल्लेख करमानिया तथा परसिस में भी मिलता है। अतः वर्दक जाति से इसका सम्बन्ध नहीं बताया जा सकता। अवश्य ही यह अपनी स्थिति को दर्शाने वाला एक सामान्य नाम होगा और इसकी यह आवश्यकता उर्घ स्थान से सतोषजनक ढङ्ग से पूरी हो जाती है जिसका अर्थ है उच्च स्थान और जो संभवतः यह नाम किसी पहाड़ी दुर्ग को दर्शाने के लिये चुना गया था। दूसरे आरटोस्पना को बदलकर पोरटोस्पना कर दिया गया था। यह तथ्य उस निर्देशक अर्थ की पुष्टि करता है। मैंने इस शब्द को दिया है क्योंकि पश्तों में पोश्टा का अर्थ ऊँचा होता है और इसमें सन्देह नहीं कि जन साधारण ने संस्कृत के 'उर्ध' शब्द की अपेक्षा प्रायः इस शब्द को अपनाया था।

आरटोस्पना की स्थिति को मैं "उच्च दुर्ग अथवा बालाहिसार सहित काबुल के अनुरूप बताऊँगा। मैं बालाहिसार को आरटोस्पना अथवा उर्ध स्थान का फारसी अनुवाद मात्र समझता हूँ। मेसीडोनिया की सेनाओं के अधिकार से पूर्व यह देश की पुरानी राजधानी थी तथा दसवीं शताब्दी तक यह विश्वास किया जाता था कि कोई भी शासक उस समय तक शासन करने का सुयोग्य अधिकारी नहीं बनता जब तक उसका अभिषेक काबुल में न हो। हेकाटाइयस ने भी ओपियाई में एक राजकीय नगर का उल्लेख किया है परन्तु हमारे पास इसके नाम अथवा स्थान निश्चित करने के लिये आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। यह सर्वाधिक सम्भावित प्रतीत होता है कि अन्य किसी स्थान की जानकारी के अभाव में काबुल ही यह स्थान राजधानी का राजकीय नगर रहा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होगा परन्तु इस स्थिति में काबुल को ओपियाई की सीमाओं में सम्मिलित होना चाहिए था ।

आश्चर्य है कि सिकन्दर के इतिहास में काबुल का उल्लेख नहीं मिलता, क्योंकि अराकोसिया से सिकन्द्रिया के स्थान पर जाते समय वह अवश्य ही इस नगर से होकर गया होगा । फिर भी मेरे विचार में सम्भवतः यह निकाइया (१) नगर का जो बैक्ट्रिया के वापसी पर नये नगर के सिकन्दर का प्रथम पड़ाव था । नोनस ने निकाइया को एक झील के किनारे स्थित एक पाषाण नगर कहा है । झील एक महत्वपूर्ण स्थान कहा जाता है जो उत्तरी भाग में काबुल तथा काश्मीर तक विशिष्ठ स्थान रखती है । इसी स्थान पर भारतीयों पर विजय के कारण नगर को इंडोफोन अथवा "भारतीयों का हत्यारा" भी कहा जाता था । मेरा अनुमान है कि इस नाम के कारण ही नोनस ने सम्भवतः इस प्रचलित अर्थ को सुना था जो हिन्दूकुश अथवा "हिन्दुओं का हत्यारा" के नाम से सम्बन्धित बताया जाता था और उसने तुरन्त ही इसे डायोनीसियस द्वारा भारतीय विजयों की पुष्टि के रूप में स्वीकार कर लिया था ।

इस प्रान्त को पूर्व से पश्चिम लम्बाई में ३३३ मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई में १६६ मील बताया गया है । यह सम्भव है कि इस कथन से प्रान्त के प्रारंभिक विस्तार का संकेत मिले, जबकि इसका शासक गजनी एवं कन्धार सहित पश्चिमी अफगानिस्तान का सर्वोच्च शासक था । इसकी दूरस्थ लम्बाई, हेलमन्द नदी के मुहाने से लेकर जगदालक दर्रे तक लगभग १५० मील है तथा दूरस्थ चौड़ाई इस्तालिफ से लेकर लोहगढ़ के मुहाने तक ७० मील से अधिक नहीं थी ।

कोफीज का नाम उतना पुराना है जितना कि वैदिक काल जिसमें कुभा नदी को सिन्धु की सहायक नदी बताया गया है । यह आर्य शब्द नहीं है अतः मेरा अनुमान है कि आर्यों के अधिकार से पूर्व अथवा कम से कम २५०० ई० पू० में यह नाम काबुल नदी को दिया गया था । उच्चकोटि के लेखकों ने सिन्धु के पश्चिम में खोइज, कोफोज, खोअसपीज नदियों का उल्लेख किया है तथा वर्तमान समय में हमें पश्चिम में कुनार कुरम तथा गोमाल नदियों का तथा सिन्ध के पूर्व में कुनीहार नदी का उल्लेख मिलता है । यह सभी नाम सीशियन शब्द 'कू' अर्थात पानी से लिये गये हैं । यह असरीयाई भाषा के 'हूँ' तुर्की के 'सू' तथा तिब्बती भाषा के 'चू' जिन सभी का अर्थ जल है का

---

(१) निकाइया—सर थामस होलडिच ने सर कनिंघम का समर्थन किया है । डा० बी० स्मिथ के अनुसार यह नगर जलालाबाद के स्थान पर अवस्थित था । यदि हम एरियान का अनुसरण करें तो इन लेखकों का तर्क असङ्गत प्रतीत होता है क्योंकि निकाइया नगर काबुल नदी पर नहीं था । सिकन्दर इस नगर से काबुल की ओर गया था ।

—अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कण्ठस्त वर्ण स्वरूप है। अतः कोफीन के जिले का नाम अवश्य ही इसमें बहने वाली नदी के नाम पर पड़ा होगा जैसे सिन्धु से सिन्ध, मारगस से मारगियाना, अरियस से अरिया, अरकोटस से अरकोसिया तथा इसी प्रकार अनेकानेक नाम मिलते हैं। सिकंदर के इतिहासकारों ने कोफीन नगर का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उन सभी ने कोफीज नदी का उल्लेख किया है।

टालमी के 'भूगाल' में अरगुड अथवा अरगण्डी तथा लोचरन अथवा लोहगढ़ नगरों के साथ काबुर तथा कावोलिनी सभी नगरों को पारोपामोसाडे की सीमाओं में काबुल नदी के साथ-साथ दिखाया गया है। नदी के ऊपरी जल मार्ग पर उसने बगरद नामक नगर दिखाया है जो अपने स्थान तथा नाम की अति समीपता के कारण वर्दक घाटी से मिलता जुलता है। दोनों नामों के सभी अक्षर समान हैं और यदि यूनानी नाम बगरद के अन्तिम भाग को उच्चारण में थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाये तो यह आधुनिक नाम सा मिल जायेगा। बगरद को बरदग पढ़ने के ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं। एलफिन्स्टन के अनुसार अफगानिस्तान की लोहगढ़ घाटी के अधिकांश भाग पर वर्दक जाति का अधिकार था। मसोन ने इसकी पुष्टि की है जो वर्दक घाटी में दो बार गया था। विज जिसने गजनी से काबुल जाते समय इस घाटी को पार किया था, इसी बात की पुष्टि करता है। नामों की इस अनुरूपता पर एक मात्र आपत्ति जिसका मुझे आभास होता है वह यह सम्भावना है कि बगरद वइकरीत का यूनानी स्वरूप था।" जैन्द अवस्ता में इसे सातवां देश कहा गया है। जिसे आर्य जाति ने सफलता पूर्वक अपने अधिकार में ले लिया था। एक ओर बैक्ट्रिया पसरिया तथा अराकोसिया तथा दूसरी ओर भारत के बीच स्थान के कारण वइकरीत को प्रायः काबुल नदी के अनुरूप बताया गया है। पारसियों का अपना भी यही मत है साथ ही साथ वइकरीत को दोजाक का घर अथवा स्थान बताया गया है। काबुल(१) जोहाक का देश स्वीकार किया जाता है अतः तथ्य से वइक्रीत एवं काबुल की समानता की पुष्टि होती है। यदि वर्दक जाति किसी भी समय शासक जाति थी तो मैं यह स्वीकार कर सकता था कि वाईक्रीत नाम सम्भवतः उन्हीं से लिया गया था परन्तु उनके इतिहास से पूर्ण अनभिज्ञ होने के कारण मेरे विचार में दोनों नामों की एकरूपता पर विचार करना ही प्रर्याप्त होगा।

---

(१) काबुल जिले में प्राप्त प्राचीन काल के अवशेषों में बामियान की चट्टानों में खोदी गई उच्चकोटि की कला मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे बड़ी मूर्ति १८० फुट ऊँची है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बौद्ध काल में बनाई गई थी। आस-पास गुफाओं से किसी बौद्ध मठ का संकेत मिलता था। चट्टान के समीप ही बौद्ध स्तूप के समान एक टीला है। —अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवीं शताब्दी में कोफीन का शासक एक तुर्क था तथा देश की भाषा गजनी निवासियों की भाषा से भिन्न थी। ह्वेनसांग लिखता है कि कापीसीन के अक्षर तुर्की के अनुरूप थे परन्तु भाषा तुर्की नहीं थी। चूंकि वहाँ का शासक एक भारतीय था अतः यह अनुमान उचित होगा कि वहाँ की भाषा भारतीय भाषा थी। समान कारणों से ही यह अटकल लगाई जा सकती है कि कोफीन की भाषा तुर्की की ही प्रकृत भाषा थी क्योंकि वहाँ का शासक एक तुर्की था।

अराकोसिया अथवा गजनी

चीनी तीर्थ यात्री ने साऊ-कू-ता प्रदेश के सम्बन्ध में यह लिखा है कि यह प्रदेश हूफीना अथवा कोफीन से ८३ मील दक्षिण में और फलना अथवा बन्नू के उत्तर पश्चिम में है। लो-मो-इन-तू नदी की घाटी को हेलमन्द के चीनी अनुवाद में 'हो' अक्षर जोड़ देने से हेलमन्द के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। इस राज्य को व्यास में १६६६ मील बताया गया है और यह अनुमान सत्य से दूर नहीं है। क्योंकि सम्भव है कि इसमें कन्धार को छोड़ अफगानिस्तान का सम्पूर्ण दक्षिण पश्चिम भाग सम्मिलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध के भिक्षा पात्र की कथा से कन्धार उस समय ईरान के अधिकार में था।

इस जिले की दो राजधानियाँ थीं जिन्हें हो-सी-ना तथा हो-सा-लो कहा जाता था। प्रथम नाम को मिस्टर एम० डो० सेन्ट मार्टिन ने गजनी के अनुरूप बताया है और यह काफी सन्तोष जनक है परन्तु दूसरा प्रस्ताव कि दूसरे नाम को हजारा से सम्बन्धित किया जाये मेरे विचार में अत्यधिक सन्देहास्पद है। हजारा एक जिले का नाम है न कि एक नगर का और यह भी कहा जाता है देश के इस भाग का यह नाम चंगेज खाँ के समय से पुराना नहीं है। अतः मैं इसे गुजार अथवा गुजारिस्तान के अनुरूप समझूँगा। जो आधुनिक हेलमन्द का प्रमुख नगर है। मैं इसे टालमी के आलजो के अनुरूप भी मानता हूँ जिसे उसने अराकोसिया के उत्तर पश्चिम में बताया है अथवा जो उसी स्थान पर है जहाँ गुजारिस्तान।

साऊकुता नाम की व्याख्या अभी शेष है। उपरोक्त अनुरूपताओं से पता चलता है कि यह प्राचीन लेखकों के अराकोसिया और अरब भूगोल शास्त्रियों के ग्राराखज अथवा रोखज से मिलता जुलता है। एरियान ने अपनी पुस्तक 'पेरिप्लस आफ दि एरीथियन' में इस नाम के इसी स्वरूप का उल्लेख किया है। अतः यह असंगत नहीं लगता कि ह्वेनसाँग के समय से पूर्व एवं बाद में इस नाम का प्रथम अक्षर त्याग दिया गया था। इसका मूलस्वरुप संस्कृत का सरस्वती था जो जेन्द में हरक्वेती बन गया। इन दोनों नामों में एवं इनके यूनानी स्वरूप में अन्तिम दो अक्षर चीनी शब्द साऊकुता से मिलते हैं इसलिये प्रथम चीनी अक्षर साऊ 'इ' के दूसरे स्वरूपों से मिलता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जुलता होगा। यह परिवर्तन सम्भवतः तुर्की भाषा की उस विशेषता से स्पष्ट किया जा सकता है, जिसमें इ शब्द को कोमल ज अथवा श में प्रायः बदल दिया जाता है (जैसे तुर्की शब्द देगिज "सी" तथा ओकुज "ओकस" हंगरी के तेंजर एवं ओकुर शब्दों के समान है)। इंडोसीथियन पर भी हम कनिष्क नाम को हयूविष्क तथा कुशन नाम को कनीरकी, होवरकी तथा यूनानी में कोरनो में परिवर्तिल देखते हैं। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि चीनी नकल का प्रथम अक्षर साऊ ही भारतीय र का विशिष्ट तुर्की उच्चारण रहा हो जो ई० काल के प्रारम्भ में तुर्की के तोचारी कबीले द्वारा देश पर अधिकार हो जाने पर स्वभावतः प्रयोग में लाया जाने लगा था।

सातवीं शताब्दी में गजनी का शासक एक बौद्ध था जो पूर्वजों को एक लम्बी सूची में वंशक्रम से था। लोगों को लिपि एवं भाषा दोनों ही अन्य देशों की लिपि एवं भाषाओं से भिन्न बताई जाती थी। और चूंकि ह्वेनसांग भारतीय एवं तुर्की दोनों भाषाओं से परिचित था अतः मेरा अनुमान है कि गजनी निवासियों की बोल चाल की भाषा सम्भवतः पश्तो थी। यदि ऐसा है तो यह निवासी अफगान रहे होंगे। परन्तु दुर्भाग्य वश इस रोचक विषय को निश्चित करने के लिये अन्य कोई साधन नहीं है, हाँ गजनी के दक्षिण पूर्व ओ-पो-कीन नामक स्थान को अफगानों से सम्बन्धित किया जा सकता है। इस विषय पर हम बाद में विचार करेंगे।

हेलमन्द पर गुजारिस्तान के बारे में मैं अधिक सूचना नहीं दे सकता क्योंकि अभी तक वहाँ कोई यूरोपीय नहीं गया है। गजनी इतना प्रसिद्ध है कि उसे किसी प्रकार के उल्लेख की आवश्यकता नहीं है परन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि सातवीं शताब्दी में यह अवश्य ही अत्यधिक सम्पन्न स्थिति में रहा होगा क्योंकि ह्वेनसाँग ने इसके व्यास का अनुमान ५ मोल लगाया हैं। आजकल के दिनों में दीवार से घिरे नगर का व्यास एक मील और एक चौथाई से अधिक नहीं होता। बिग्नी ने इसे असमान पंचभुज बताया है जिसके किनारे लम्बाई में २०० से ४०० गज थे जो अनेकानेक बुर्जो से शक्तिशालो बना दिये गये थे। वह आगे लिखता है कि "अफगान गजनी की दीवारों एवं दुर्ग बन्दी की शक्ति का घमण्ड किया करते थे। पूर्व में गजनी सदैव शक्ति एवं सुरक्षा का स्थान माना जाता था। और इसी कारण इसे गाजा नाम भी मिला था जो "कोष" का एक पुराना फारसी नाम है। इसका उल्लेख नोवस (जो लगभग ५०० ई० में जीवित था) के डायोनिसियाक की कुछ गूढ़ पंक्तियों में तथा डायोगोनिस (जो ३०० ई० के बाद तक जिन्दा नहीं था) की बसारिका' में भी प्राप्त होता है। दोनों ने उसके दुर्जय होने का विशेष रूप से उल्लेख किया है। डायोनिसि-यस ने इसे "युद्ध में इतना कठोर जैसे कि वह पीतल का बना हो" कहा है तथा नोनस का कथन है कि "उन्होंने 'गाजोस' अर्थात अरिज के अचल दुर्गीकरण के गूंथन कार्य द्वारा जाल समान घेरों से सुरक्षित बना दिया था और कोई भी शस्त्र युक्त शत्रु इसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठोस नींव में दरार नहीं डाल सका था।" इस प्रसिद्ध स्थान के इस प्राचीन विवरण से प्रतीत होता है कि टालमी का गजाका पारोपामीसाडे में दक्षिण की ओर दिखाये जाने के स्थान पर उत्तर में दिखाया गया था परन्तु बजनतियम जिसने डायोनिसियस की 'नासरिका' को इस भारतीय नगर के लिये अपना आधार स्वरूप स्वीकार किया है वह अपने उस स्टेफनस में भारतीय गजाका का उल्लेख नहीं करता। मैं यह लिखकर इस विवरण को समाप्त करता हूँ कि उसने इस नगर को एक अन्य स्थान के रूप में देखा होगा।

लमगान

लान-पो अथवा लमगान जिले का उल्लेख करते हुए ह्वेनसांग ने लिखा है कि यह जिला कपसीन के पूर्व में १०० मील की दूरी पर है। सड़क को उसने पहाड़ियों एवं घाटियों का अनुक्रम बताया है जिनमें कुछ एक पहाडियाँ काफी ऊँची हैं। यह व्याख्या आपियान से लमगान तक नदी के उत्तरी किनारे के साथ-साथ बने मार्ग की तत्कालिक व्याख्या से मिलती है। लमगान के स्थान से इसकी दूरी एवं दिक स्थिति इतनी समान है कि इन दोनों जिलों की अनुरूपता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। टालमी ने भी लम्बताय नामक निवासियों को इसी स्थान पर दिखाया है। इस शब्द की लमगान वर्तमान उच्चारण से तुलना करने से यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस इस नाम का मूल स्वरूप संस्कृत (१) का लम्पाक था। अतः मैं 'ट' के स्थान पर 'ग' के थोड़े परिवर्तन से टालमी के लम्बताय को लम्बागाय कर दूंगा। आधुनिक नाम लम्पाक शब्द का संक्षिप्त स्वरूप मात्र है जो ओंठ सम्बन्धी स्वर लोप से बना था। मध्य के व्यंजनों को साधारण अदला-बदलो से इसे लमगान भी कहा जाता है। पूर्व में यह एक सामान्य प्रथा है। (सहज में विश्वास करने वाले) मुसलमान इस नाम की उत्पत्ति पादरी लगीच के नाम से मानते हैं। जिनके विश्वासानुसार उसकी कब्र अभी भी लमगान में है। बाबर तथा अब्बुल फजल ने भी इसका उल्लेख किया है।

ह्वेनसांग ने इस जिले को व्यास में १६६ मील बताया है जिसके उत्तर में हिमाच्छादित पर्वत तथा अन्य तीनों ओर काली पहाड़ियाँ हैं। इस व्याख्या से यह स्पष्ट है कि लान-पो वर्तमान लमगान के अनुरूप है जो काबुल नदी के उत्तर तट के साथ-साथ देश का एक छोटा प्रदेश है जो पश्चिम तथा पूर्व में अलिङ्गर तथा कुनार नदियों में और उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा हुआ है। यह छोटा प्रदेश प्रत्येक ओर

(१) संस्कृत का लम्पाक है। हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणी में वहाँ के निवासियों को कुरुण्डा कहा गया "लम्पाकास्तु मुरुण्डाः स्युः।" गकटर स्टेन ने बताया है कि मुरुण्डा शक भाषा का स्वरूप है जिसका अर्थ है स्वामी। इस प्रकार लम्पाक शकों की राजधानी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४० मील का वर्ग है अथवा व्यास में १६० मील है। पहले यह एक अलग राज्य था। परन्तु सातवीं शताब्दी में राजघराने के लुप्त हो जाने पर यह जिला कपीसीन का आश्रित बन गया।

नगरहारा (१) अथवा जलालाबाद

लमगान से चीनी तीर्थ यात्री ७ मील दक्षिण पूर्व में गया था और एक बड़ी नदी को पार करने के बाद नगरहारा के जिले में पहुँचा था। इसकी स्थिति एवं दूरी से टालमी के नागरा का संकेत मिलता है जो काबुल नदी के दक्षिण में एवं जलालाबाद के भीतरी भाग में था। ह्वेनसांग ने इसका नाम ना-की-लो-हो लिखा है परन्तु मिस्टर एम० जूलीन ने सांग राजघराने के इतिहास में संस्कृत नाम का पूरा प्रतिलेख ढूंढ लिया है जिसमें इसे नांग-गो-लो-हो-लो लिखा गया है। संस्कृत नाम बिहार जिले के थोसरावा के ध्वस्त टीले से मेजर कितोई द्वारा प्राप्त एक शिलालेख में मिलता है। नगरहारा को पूर्व से पश्चिम लम्बाई में १०० मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई में ४२ मील से अधिक कहा जाता है। जिले की प्राकृतिक सीमायें पश्चिम में जगदालक दर्रा तथा पूर्व में खैबर दर्रा उत्तर में काबुल नदो तथा दक्षिण में हिमच्छादित पर्वत है अथवा 'सफेद कोट' है। इन सीमाओं के मानचित्र पर सीधे माप से इसका विस्तार ७५ × ३० मील है जो कि वास्तविक मार्ग दूरी में ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों के समीप है।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजधानी का स्थान जलालाबाद से लगभग दो मील पश्चिम तथा हिड्डा से ५ या ६ मील पश्चिम उत्तर पश्चिम में बेग्राम में था। हिड्डा को प्रत्येक अन्वेषक की सामान्य स्वीकृति से चीनी तीर्थ यात्री के हि-लो का समरूप माना गया है। हि-लो का नगर लगभग तीन चौथाई मील है। परन्तु वहाँ बुद्ध के कपाल के होने के कारण इसे अधिक अधिक ख्याति प्राप्त थी। इस कपाल को एक स्तूप मे रखा गया था यहाँ तीर्थ यात्रियों को एक सोने का सिक्का देने पर ही दिखाया जाता था। हिड्डा जलालाबाद से पाँच मील दक्षिण में एक छोटा गांव है परन्तु यह बौद्ध स्तूपों के अपने विशाल संग्रह, तुमूलों एवं गुफाओं के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। मसोन ने इस स्थान का सफलता पूर्वक सामना किया था। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा इंगित किये गये स्थान पर ही इन महत्वपूर्ण बौद्ध अवशेषो की उपस्थिति से हमें हिड्डा एवं हि-लो के अनुरूप होने का सन्तोष जनक प्रमाण मिलता है। नामों की सम्पूर्ण सहमति से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है क्योंकि मूल शब्द हीरा अथवा हीहा का चीनी अनुवाद में

---

(१) फाहियान ने नागरा में बौद्ध धर्म की अनेक वस्तुओं का उल्लेख किया है। वार्टस ने इसे नगर कोट कहा है और संस्कृत भाषा के नगर हारा शब्द का उल्लेख पाराष्र तन्त्र में मिलता है। बाबर ने इसे नुङ्गनिहार कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हि-लो ही समीपस्थ अक्षर हो सकता है। अतः राजधानी बेग्राम को समतल पर स्थापित रही होगी। मशोन ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है "गट्ठों एवं टीलों से अक्षरशः ठाकी हुई।" वह आगे लिखता है कि "यह वस्तुतः शमशान के स्मारक चिन्ह हैं परन्तु बौद्ध स्तूप साथ होने के कारण इस अनुमान का अनुमोदन होता है कि यहाँ पर एक विशाल नगर का अस्तित्व था तथा पवित्रता के लिये प्रसिद्ध स्थान था। हो सकता है कि दोनों ही बातें सही हों। मेरे विचार में यह सम्भव है कि हिद्दा शब्द हड्डी का केवल परिवर्तित स्वरूप हो क्योंकि एक लेखांश में बुद्ध की कपाल की हड्डी के स्तूप को हि-लो नगर में बताया गया है जबकि दूसरे स्थान पर फो-तिंग-को-चिंग नगर में स्थापित बताया गया है जो "बुद्ध की कपाल की हड्डी के नगर" का केवल चीनी अनुवाद है। इस बात पर विचार करते समय मुझे उन स्थानों के छोटे-छोटे निर्देशक नामों की निरन्तर घटनाओं का उल्लेख करना पड़ेगा जो बुद्ध के इतिहास में प्रसिद्ध थे। अतः मैं यह सोचने पर बाध्य हूँ कि वह स्थान जहां बुद्ध के कपाल की हड्डी थी सम्भवतः विद्वानों में अस्थिपुर और सामान्य लोगों में हड्डी पुर अथवा हड्डी नगर के प्रचलित नाम से ज्ञात होगा। इसी प्रकार शिव के कपाल की हड्डियों का हार भी साधारणतयः अस्थि माला अथवा हड्डियों का हार कहा जाता है।

काफी समय पूर्व प्रोफेसर लासेन ने नगरहारा को टालमी का नागरा अथवा उदयनोसोपोलिस के अनुरूप माना है जो काबुर तथा सिन्धु के मध्य में अवस्थित था। दूसरे नाम से यह सम्भावित प्रतीत होता है कि यह वही स्थान था जिसे एरियान तथा कॅरियल ने न्यासा नगर कहा है। सम्भवतः अब्बुरिहान दीनस अथवा डीनज में भी इसी नाम का उल्लेख मिलता है क्योंकि अब्बुरिहान ने इस स्थान को काबुर तथा पराशावर के मध्य अवस्थित बताया है। जन साधारण की परम्परा के अनुसार नगर को अजूना भी कहा जाता था। मेरे विचार में इस नाम के एवं इसके यूनानी स्वरूप के अनुरूप होने की सम्भावना है जैसे यमुना अथवा जमुना नदी को टालमी ने दयामुना बना दिया है तथा संस्कृत के यमारन अथवा नेमारन को प्लिनी ने दयामारन बना दिया है। फिर भी इस बात की अधिक सम्भावना है कि स्वरों के हेर फेर से अजूना पाली के उज्जान तथा संस्कृत के उद्यान का केवल अशुद्ध रूप हो। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन का कथन है कि उद्यानपुर नगरहारा का एक पुराना नाम था। यदि यह अनुरूपता सही हो तो राजधानी का स्थान आवश्य मेव बेग्राम में ही होगा जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ। यूनानी शासन के सम्पूर्ण काल में डायोनी सोपोलिस का नाम निःसन्देह सर्वोधिक सामान्य उपाधि थी। एरियाना के यूनानी शासकों की मुद्राओं पर बने सामान्यतम चिन्ह डायोनोसीपोलिस को छोड़ प्राचीन लेखकों द्वारा दिये गये अन्य किसी भारतीय नगरों के नाम के अनुरूप नहीं हैं। पांचवी शताब्दी के आरम्भ में फाहियान ने इसे केवल ना-की अथवा नगर कहा था। उसने यह भी लिखा है कि यह नगर उस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने ही राजा के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य था। ७३० ई में ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह राज्य शासक विहीन था तथा कपीसीन के अधीन था। तत्पश्चात सम्भवतः यह प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के भाग का अनुसरण करता रहा तथा क्रमशः काबुल के ब्राह्मण राज्य तथा गजनी के मुस्लिम साम्राज्य का भाग था।

गान्धार अथवा परशावर

सिकन्दर के स्वीकृत इतिहासकारों द्वारा गांधार के जिले का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु स्ट्रैबो ने चोआम्पेस तथा सिन्धु के बीच कोफेस नदी के साथ-साथ अवस्थित गांधारटीस के नाम से इसका सही उल्लेख किया है। टालमी ने इसे गंडराय बताया है। इस प्रदेश में सिन्धु एक कोफेज नदी के संगम स्थान से थोड़ा ऊपर को फेरन नदी के दोनों किनारे पर सम्मिलित थी। यह सभी चीनीतीर्थ यात्रियों का कवीन-टो-लो अथवा गांधार है। सभी चीनी तीर्थ यात्री इसे सिन्धु नदी के पश्चिम में स्थित दिखाने में एक मत हैं। राजधानी को-जिसे उन्होंने पू-लू-श-पूलो अथवा परशपुर कहा है (१) सिन्धु नदी से तीन अथवा चार दिन की यात्रा पर तथा एक बड़ी नदी के दक्षिणी तट पर बताया जाता है। यह पेशावर के स्थान का सही विवरण है जो अकबर के समय तक अपने पुराने नाम परशावर के नाम से प्रसिद्ध था। अबुल फजल तथा बाबर और उससे भी पूर्व अब्बु-रिहान तथा दसवीं शताब्दी के अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस नगर के इसी माम का उल्लेख किया है। फाह्यान के अनुसार-जिसने इसे फो-लू श अथवा परशा कहा है यह राजधानी नगरहारा से ११२ मील दूर थी। ह्वेनसाँग ने इस दूरी को ८३ मील बताया है जो अवश्य ही एक त्रुटि थी क्योंकि पर्यटकों द्वारा लिये गये माप के अनुसार पेशावर तथा जलालाबाद की दूरी १०३ मील है जिसमें बेग्राम की जलालाबाद के पश्चिम में स्थिति के कारण २ मील और जोड़ देना चाहिये।

जिले की वास्तविक सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु इसका क्षेत्र पूर्व से पश्चिम १००० ली अथवा १६६ मील और उत्तर से दक्षिण ८०० ली अथवा १३३ मील बताया गया है। सम्भवतः यह सही है क्योंकि दूरस्थ लम्बाई चाहे उसे बड़ (bara) नदी के मुहाने से लेकर तुरबला तक ले अथवा कुनार नदी से तुरबला तक लिया जाये मानचित्र पर १२० मील है तथा स्थल मार्ग द्वारा लगभग १५० मील है। इसी प्रकार दूरस्थ चौड़ाई बुनीर की पहाड़ियों के किनारे पर स्थित बाजार से कोहाट की दक्षिणी सीमा तक सीधे १०० मील अथवा सड़क से लगभग १२५ मील है। इस माप दण्ड द्वारा गांधार की सीमायें पश्चिम में लमगान तथा जलालाबाद, उत्तर में स्वात तथा बुनीर की पहाड़ियाँ, पूर्व में सिन्धु नदी तथा दक्षिण में कालाबाग बताई जा

---

(१) गांधार की प्राचीनतम राजधानी पुष्कलावती थी। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकती है। (१) इन सीमाओं में प्राचीन भारत के अधिकांश प्रसिद्ध स्थानों में से अनेक स्थान थे। जिनमें कुछ सिकन्दर के पराक्रमों से सम्बन्धित रोमांचकारी इतिहास में प्रसिद्ध हुये थे और अन्य बुद्ध के चमत्कारी इतिहास मे एवम् इण्डो-सीथियन सम्राट कनिष्क के बौद्ध धर्मावलम्बी होने के बाद के इतिहास में प्रसिद्ध हुए थे।

गंडराय के नगरों में टालमी ने जिन नगरों का उल्लेख किया है वह इस प्रकार है—नौलिबी, एम्बोलिया तथा राजधानी पारोकलायरिन। यह सभी नगर कोफीज के उत्तर में थे जिनका उल्लेख सिकन्दर के इतिहासकारों ने किया है। केवल परशावर कोफीन के दक्षिण में था। नौलिबी तथा ओरा के सम्बन्ध में मैं कोई विवरण नहीं दे सकता क्योंकि उनकी पहचान नहीं हो सकी है। फिर भी यह सम्भव है कि नीलाब को ही नौलिबी कहा गया हो जो एक महत्वपूर्ण नगर था तथा जिसने सिन्धु नदी को भी अपना नाम दिया था। यदि ऐसा हो तो टालमो ने गलतो से उसे अन्यत्र दिखाया है। क्योंकि निलाब कोफीज के दक्षिण में है। अब मैं अन्य नगरों के स्थान एवम् उनके साथ साथ चोनी तीर्थ यात्री द्वारा देखे गये कुछ अन्य स्थानों पर विचार करूंगा।

पुष्कलावती अथवा प्यूकिलाओटीस

गान्धार की प्राचीन राजधानी पुष्कलावती थी जिसके बारे में कहा जाता है कि इसकी स्थापना राम के भतीजे एवं भरत के पुत्र पुष्कर द्वारा की गई थी। इसकी प्राचोनता निःसन्देह है क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय यह प्रान्त की राजधानी थी। प्यूकिलाओटीस अथवा प्यूकोलेटीज के नाम पुष्कलावतो से लिया गया था जो पालो शब्द था अथवा संस्कृत के पुष्कलावनी का बोलचाल का स्वरूप था। एरियान ने इसे प्यूकिलस कहा है तथा डायोनिसियान पेरिगिटीज ने यहां के निवासियों को प्यूकली कहा है। प्यूकली पाली के पुष्कल की लगभग सही नकल है। एरियान की "पेरोप्लस आफ दी इरोथियन सी" तथा टालमी के भूगोल में दिया गया नाम प्रोक्लायस सम्भवतः संस्कृत पुष्कर के स्थान पर हिन्दी के पोखर शब्द का प्रतिनिधित्व करता है।

एरियान के अनुसार प्यूकिलस एक विस्तृत एवं बहुत ही जनपूर्ण नगर था तथा सिन्धु नदी से अधिक दूर नहीं था। यह सम्भवतः आस्टीज अथवा हस्तो नामक के शासक की राजधानी थी जो हीफायशन द्वारा ३० दिन के घेरे के बाद अपने एक गढ़ की रक्षा करते समय मारा गया था। आस्टीज की मृत्यु के पश्चात प्युकिलाओटीज नगर

(१) महाभारत एवम् संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि गान्धार देश की दो राजधानियाँ थी। तक्षशिला तथा पुण्कलावती। यह दोनों नगर कमशः सिन्धु नदी के पूर्व एवम् पश्चिम में है। अतः ऐसा प्रतीत है कि प्राचीनकाल में गान्धार देश की सीमायें सिन्धु नदी के दोनों ओर थीं परन्तु बाद में यह नदी के पश्चिमी तट तक ही सीमित रहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकन्दर को उसकी सिन्ध की ओर यात्रा के समय समर्पित कर दिया गया था। एरियान तथा स्ट्रैवो ने इसकी स्थिति का "सिन्धु के समीप" बता कर स्पष्ट उल्लेख किया है परन्तु भूगोल शास्त्री टालमी ने इस सम्बन्ध में अधिक सही विवरण दिया है क्योंकि उसने इसे स्वास्तीन अर्थात पंजकोरा अथवा स्वात नदी के पूर्वी तट पर दिखाया है। ह्वेनसांग ने इसी स्थान को ओर संकेत किया है। परशावर छोड़ते समय चीनी तीर्थ यात्री ने उत्तर पूर्व में लगभग १७ मील को यात्रा की थी और एक विशाल नदी को पार कर वह पू-सी-किया-लो-फा-ती अथवा पुण्कलावती पहुँचा था। यहाँ जिस नदी का उल्लेख किया गया है वह नदी कोफीज अथवा काबुल नदी है तथा पेशावर से दूरी एवं दिकांश पारग तथा चारसदा के दो विशाल नगरों की ओर संकेत करती हैं। दोनों नगर प्रसिद्ध हस्तनगर अथवा ८ नगरों के भाग थे तथा दोनों ही स्वात नदी के निचले जल मार्ग पर पूर्वी किनारे पर साथ-साथ अवस्थित थे। यह हस्तनगर इस प्रकार थे— तङ्गी, शिरगाओं, उम्रज़ई, तुरङ्गज़ई, उस्मानज़ई, राजूर, चारसदा तथा पारङ्ग। ये नगर १५ मील के क्षेत्र में फैले हुए हैं परन्तु अन्तिम दोनों नगर नदी के घुमाव में पर साथ-साथ हैं और सम्भव है कि प्रारम्भ में वे एक विशाल नगर के भाग रहे हो। हिसार का दुर्ग पुराने हस्तनगर के अवशेषों के पास एक टीले पर है। हस्तनगर को जनरल कोट ने राजूर के सामने एक द्वीप में अवस्थित बताया है। उनका कथन है कि "नगर के सभी बाहरी भाग विस्तृत अवशेषों के रूप में फैले हुए हैं।"

मुझे यह असम्भावित प्रतीत नहीं होता कि आधुनिक हस्तगर नाम हस्तीनगर अथवा "हस्ती के नगर" के प्राचीन नाम का आंशिक परिवर्तित स्वरूप है। हस्तीनगर नाम सम्भवत: प्युकिलाओटीज के राजकुमार को राजधानी को दिया गया था। भारतीय शासकों को उनके नगरों के नाम पर पुकारने की प्रथा युनानियों की सामान्य प्रथा थी जैसे तलीश, असरकानस इत्यादि। भारतीय शासकों में अपनी राजधानी के किसी भी परिवर्तन अथवा विस्तार को अपना नाम दे देने की प्रचलित प्रथा भी थी। इसी प्रथा का एक ज्वलन्त उदाहरण हमें दिल्ली के प्रसिद्ध नगर में मिलता है जिसे इन्द्रप्रस्थ तथा दिल्ली के अपने प्राचीन विशिष्ट नामों के साथ-साथ अपना क्रमबन्ध विस्तार करने वालों के नाम पर कोर पिथोरा, किला अलाई, तुगलकाबाद, फिरोजाबाद तथा शाहजहानाबाद के नाम पर भी पुकारा जाता था। यह सत्य है कि लोग स्वयं हस्तनगर के नामको "आठ नगरों" से मिलाते जो उस समय स्वात नदी के निचले मार्ग के साथ-साथ एक दूसरे के पास-पास बसे हुए हैं। परन्तु यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इस मामले में इच्छा ही विचार की जन्मदात्री थी और हस्तीगर-अथवा जो कुछ की इच्छा नाम रहा हो का मूल नाम ही थोड़ी हेर फेर के बाद हस्तनगर बन गया था। जिससे फारसी के प्रभाव में आई मुस्लिम जनता जिन्हें संस्कृत का ज्ञान न था में यह नाम लोकप्रिय हो सके। मेरे विचार में नगरहारा के नाम में थोड़े परि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्तन का भी यही कारण था जिसे अब वहाँ के निवासी नम निहार अर्थात् ''नौ नहर'' कहते हैं।

उत्तर काल में पुष्क्कावती एक विशाल स्तूप के कारण प्रसिद्ध था जो उस स्थान पर बनाया गया था जहां कहा जाता है कि बुद्ध ने अपने नेत्र मिक्षा में दे देने का प्रस्ताव किया था। ह्वेनसांग के समय में यह कहा जाता था कि भिन्न-भिन्न समय एवम् जन्म में नेत्र दान एक हजार बार किया गया था परन्तु पांचवी शताब्दी में फाहियान तथा छठों शताब्दी में संगयुन नामक दो तीर्थ यात्रियों ने ऐसे केवल एक नेत्र दान का उल्लेख किया है।

वरूष अथवा पलोढेरी

तत्पश्चात ह्वेनसांग पो-लू-शा-नामक स्थान पर गया था जिसे मेरे विचार में पलोढेरी अथवा पाली ग्राम का समरूप माना जा सकता है। जो ढेरी अथवा अवशेषों के टोले पर बसा हुआ था। नगर के उत्तर पूर्व ३½ मील की दूरी एक कन्दरा सहित दन्तलोक पहाड़ी है। इस कन्दरा में राजकुमार सुदान तथा उसकी पत्नी ने शरण ली थी। (१) ह्वेनसांग ने पो-लू-शा को पुष्कलावती से लगभग ४० मील की दूरी पर बताया है और इसी दूरी से पलोढेरी एवम् पो-लू-शा की अनुरूपता का भास होता है। पलोढेरी से तीन अथवा चार मील के भीतर पूर्व उत्तर पूर्व एक पहाड़ी में काशमीरी गार नामक एक कन्दरा की उपस्थिति से इस समानता की पुष्टि होती है। दन्तलोक पर्वत को मैं जस्टिन 'मोनटीज डाइडाली' समझता हूँ क्योंकि बोलचाल की भाषा में दन्त शब्द अगले अक्षरों में मिल जाता है। इस प्रकार यह दुगना हो जाता है जैसा कि दातुन शब्द से पता चलता है।

(२) उत्तखराड, ओहिन्द अथवा एम्बोलिमा

पो-लू-शा से ह्वेनसांग ३३ मील की यात्रा कर दक्षिण पूर्व में यू-तो-किया-हान-चा गया था जिसे मिस्टर एम, जुलीन ने उखण्ड बताया है तथा मि० एम० विवीन, डी-

---

(१) सर कनिंघम का वर्णन अशुद्ध है। आजकल इसे शाहबाज गढ़ही के अनुरूप समझा जाता है। यह नाम बाबर के समय से पुराना नहीं है। इसका निर्माण पथरों से बने प्राचीन नगर के स्थान पर किया गया था। इसके समीप ही दो कमरों वाली गुफा सुदान गुफा के विवरण से मिलती है।

एरियान ने बजारिया के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है वह पो-लू-शा एवं राजकुमार सुदान के नगर से इतना मिलता है कि तीनों नाम एक रूप प्रतीत होते हैं।

—अनुवादक

(२) वास्तविक नाम उदक खण्ड है राजतरङ्गनी में उदक खण्डपुर एवम् वहाँ के शासकों का उल्लेख मिलता है। अलबेरूनी ने महमूद गजनी के साथ-साथ इस राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेन्ट मार्टिन ने इसे सिन्धु नदी पर स्थित ओहिन्द स्वीकार किया है। तीर्थ यात्री ने इसका उल्लेख इसके दक्षिणी भाग को नदी पर आधारित मान कर किया है। यह विवरण अटक से लगभग १५ मील ऊपर सिन्धु नदी के उत्तरी तट पर ओहिन्द की स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। जनरल कोर्ट ने तथा बर्नस ने इस स्थान को हुन्द कहा है और श्री लोईवेन्थल ने भी इसे इसी रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने ओहिन्द को एक अशुद्ध उच्चारण कहा है। परन्तु १०३० ई० में अब्बुरिहान ने इस नाम को वैहन्द अथवा ओएहन्द लिखा है तथा १७९० में मिर्जा मुगल वेग ने इसे ओहिन्द कहा है। मेरे कानों में यह नाम वहन्द के समान प्रतिध्वनित होता है और लगता है १३१० ई० में रशीदुद्दीन ने इसी उच्चारण को अपनाया था। जबकि उसने इस स्थान का नाम वीहन्द बतलाया है। इन सभी लेखकों के अनुसार वैहन्द गान्धार की राजधानी थी और रशीदुद्दीन ने लिखा है कि मुगल इसे काराजङ्ग कहते थे। निजामुद्दीन ही एक मात्र स्थानीय लेखक है जिसने इसके संक्षिप्त नाम का प्रयोग किया है। उसने तबकात-ए-अकबरी में कहा है कि महमूद ने १००२ ई० में हिन्द के दुर्ग में जयपाल पर घेरा डाला था; परन्तु फरिश्ता ने इस स्थान को भिन्न नाम दिया है। उसने इसे विथण्डा का दुर्ग कहा है। इस नाम में हमें ह्वेनसांग के द्वारा दिये गये उतखण्ड के पुराने स्वरूप का आभास होता है। इन सभी उदाहरणों से मेरा अनुमान है कि उतखण्ड के मूल नाम को सर्व प्रथम उथन्ड अथवा विथन्ड में बदला गया था तत्पश्चात इसे संक्षिप्त अहन्द अथवा ओहिन्द बना दिया गया। विहन्द के दूसरे स्वरूप को मैं उथण्ड के उच्चारण में त्रुटि मात्र समझता हूँ क्योंकि दोनों शब्द केवल द्वितीय अक्षर की भाषा सम्बन्धी स्थिति में भिन्न-भिन्न हैं। जनरल जेम्स एबाट ने अपनी पुस्तक "ग्रैडस-एड-ऑरनन" में इस स्थान को ऊन्द कहा है। उनका कथन है कि यह पहले ऊरा कहलाता था और इस शब्द में इस विद्वान लेखक को यह सम्भावना प्रतीत होती है कि यह स्थान ओरा अथवा सिकन्दर के इतिहासकारों के 'ओपा' के अनुरूप था।

स्वर्गीय इसीडोर लोईवेन्थल की विद्वता के कारण ही मुझे इस विस्तृत विवरण में उलझना पड़ा है। ओहिन्द के नाम के बारे में उनका विचार अचेतन में ही सम्भवतः उनके इस विश्वास के कारण पक्षपातपूर्ण हो गया था कि उतखण्ड को आधुनिक अटक में देखा जा सकता है परन्तु दुर्भाग्यवश यह स्थान सिन्धु के दूसरे तट पर है। साथ ही साथ जहाँ तक मुझे ज्ञान है अकबर के शासन काल से पूर्व किसी भी लेखक ने इसका उल्लेख नहीं किया है। अब्बुल फजल ने इस स्थान को अटक बनारस

के शासकों का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि इन राजाओं का मुख्य नगर वेहिन्द था।

अतः वू-तो-का-हान-चा, उदक भाण्ड, उदक भाण्डपुर, उहन्द, वेहन्द अथवा आधुनिक ओहिन्द सभी एक ही स्थान के नाम हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहा है और उसका कथन है इसका निर्माण सम्राट के शासन काल में किया गया था। बाबर ने इस स्थान का कभी उल्लेख नहीं किया, जबकि उसने नीलाब का बारम्बर उल्लेख किया है। रशीदुद्दीन का कथन है कि परशावर नदी टङ्कोर के समीप सिन्धु नदी में मिलती है और इससे सम्भवतः खैराबाद की सुदृढ़ स्थिति का उल्लेख मिलता है। मुझे सन्देह है अटक अर्थात् "निषिद्ध" का नाम अकबर ने अरबी भाषा में टङ्कोर शब्द के परिशिष्ट सहित अट-टङ्कोर पढ़ने की गलती के परिणामस्वरूप प्राप्त किया था। बनारस का नाम निस्सन्देह जिले के पुराने नाम बनार से लिया गया था जहाँ दुर्ग का निर्माण कराया गया है। बनार नाम से बनारस बनता है और चूंकि काशी बनारस एक ऐसा स्थान है जहाँ सभी हिन्दुओं को जाना चाहिये अतः हम अनुमान लगा सकते हैं कि अकबर के चपलमन में इसी तथ्य के कारण इसके बिलकुल विपरीत अटक बनारस-अर्थात निषिध बनारस जिससे प्रत्येक हिन्दू को दूर रहना चाहिये—का नाम देने का विचार उठा हा। यह भी हो सकता है कि साम्राज्य के सदूर पूर्वी सीमा पर उड़ीसा में कट्टक-बनारस (कट्टक) के विद्यमान होने के कारण सुदूर पश्चिम में विरुद्ध अलङ्कार के स्वरूप मात्र अटक तथा बनार के तत्कालीन नामों का परिवर्तित नाम अटक बनारस रखा गया हो।

वी-हन्द जिसे मैं उहन्द लिखना चाहूँगा—काबुल के ब्राह्मण राजा की राजधानी थी जिसके वंश को १०२६ ई० में महमूद गजनी ने नष्ट कर दिया था। मसूदी—जो ९१५ ई० में भारत आया था—का कथन है कि अल-कन्दा ार (अथवा गान्धार) का राजा को 'जहाज' कहा जाता था और यह नाम उस देश के सभी सत्तारूढ़ शासकों के लिये सामान्य है। पच ओहिन्द के ठीक सामने सिन्धु नदी के पूर्व विशाल समतल का नाम है और चूंकि बनार की समतल भूमि का नाम राजा बनार के नाम पर बताया जाता है यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि चच को समतल भूमि का नाम ओहिन्द के ब्राह्मण राजघराने पर पड़ा हो। यह एक अनोखी बात है कि ६४१ ई० में एक चच द्वारा सिन्ध के ब्राह्मण राजघराने की नीव डाली गई थी। परन्तु यह बात इससे भी अधिक उल्लेखनीय है कि यह तिथि खजूरा के चन्देलों द्वारा ब्राह्मण राजघराने को चिचितों अथवा जलोतिया से निकाले जाने की तिथि से मिलती है यह भी उल्लेखनीय है कि खजूरा से निकाले गये जलोतिया ब्राह्मण सिन्धु की ओर चले गये हों जहाँ उन्हें सर्वप्रथम सिन्ध में तथा बाद में ओहिन्द तथा काबुल में पैर जमाने में सफलता प्राप्त हुई हो।

ह्वेनसांग के समय यह नगर व्यास में ३ मील से कुछ अधिक था और हम उचित रूप से यह अनुमान लगा सकते हैं कि ब्राह्मण राजघराने के शासनकाल में इस नगर का विस्तार हुआ होगा। चंगेज खां के उत्तराधिकारियों के समय भी इस नगर का महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा क्योंकि मुगलों ने इसका नाम बदल कर कारजांग कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया था। परन्तु अटक के निर्माण एवम् राष्ट्रीय मार्ग को स्थाई परिवर्तन से इसकी समृद्धि पर गम्भीर प्रभाव पड़ा होगा और उसी समय से इसके उत्तरोत्तर विनाश में सिन्धु नदी के निरन्तर अतिक्रमणों से तेजी आ गई है जिसमें पुराने नगर का लगभग आधा भाग बह गया है। चट्टान के अधोभाग पर रेत में ध्वस्त घरों के मलवे में सोना निकालने वालों ने मुद्रायें तथा कम मूल्य के आभूषण प्राप्त किये हैं जिनसे नगर की पूर्ववर्ती समृद्धि का समुचित संकेत मिलता है। कुछ ही समय की धुलाई के बाद मुझे कांसे की एक बाल्टी-जो विवाहोत्सव के समय की प्रतीत होती थी—स्त्री के गले का एक हार, आखों में काजल डालने की अनेक चपटी सलाइयां तथा इण्डो-सीथियन एवम् काबुल के ब्राह्मण राजाओं की अनेक मुद्रायें प्राप्त हुई थीं। इण्डो-सीथियन मुद्रा की निरन्तर उपलब्धि इस बात का समुचित प्रमाण है कि यह नगर ईसवी काल के प्रारम्भ में भी था। अतः हमें उस परम्परा में विश्वास करने का प्रलोभन मिलता है जिसका अबुल फिदा ने उल्लेख किया है कि विहन्द अथवा ओहिन्द सिकन्दर महान द्वारा स्थापित नगरों में एक नगर था।

एरियान लिखता है कि प्युकिलाओटीज के आत्म समर्पण के बाद सिकन्दर ने कोफीज नदी पर स्थित अन्य छोटे-छोटे नगरों पर अधिकार कर लिया था और अन्त में एम्बोलिया पहुँचा था। यह स्थान एओरनास चट्टान से अधिक दूर नहीं था जहाँ घेरा बढ़ा दिये जाने की अशङ्का से उसने क्राटेरस को रसद इकट्ठा करने के लिये छोड़ा था। बाजारिया छोड़ने से पूर्व सिकन्दर ने अपनी सामान्य दूरदर्शिता से हेफाशियन तथा पेरडीकस को सीधे सिन्धु नदी तक इस आज्ञा के साथ भेज दिया था, कि नदी पर एक पुल के निर्माण हेतु सर्व प्रकार से तैयारी करो। दुर्भाग्यवश किसी भी इतिहासकार ने इस स्थान का उल्लेख नहीं किया जहाँ नदी पर पुल का निर्माण किया गया था। क्योंकि एम्बोलिया में रसद तथा अन्य आवश्यकताओं का एक विशाल भण्डार बनाया गया था अतः मेरा विचार है कि पुल भी इसी स्थान पर रहा होगा। जनरल एबाट ने एम्बोलिमो को महावन के ८ मील पूर्व में सिन्धु नदी पर एम्बालिमा के स्थान पर दिखाया गया है और यदि महावन को एओरनास के जनुरूप स्वीकार किया जाये तो निश्चय ही अन्य स्थानों की अनुरूपता निर्विवाद हो जायेगी। परन्तु महाबन की अनुरूपता पूर्णतयः अमान्य प्रतीत होती है अतः मैं यह प्रस्ताव करूँगा कि ओहिन्द अथवा अम्बर-ओहिन्द ही एम्बोलिया का सर्व सम्भावित स्थान था। (१)

अम्बर ओहिन्द के दो मील उत्तर में एक गांव है। झेलम नदी पर एक अन्य नगर का नाम भी ओहिन्द है अतः नामों की पहचान के उद्देश्य से दो पड़ोसी स्थानों के नामों को एक साथ जोड़ दिये जाने की प्रथा के अनुसार ही यह नाम रखा गया था।

---

(१) प्रो० वेवन ने कनिंघम के इस अनुमान की पुष्टि की है कि सिकन्दर ने इसी स्थान पर पुल बनाया था। —अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा कि अटक बनारस के नाम ने किया है। फिर भी यह याद रखना चाहिये कि एम्बोलिमा अथवा एवबोलिमा केवल एक शुद्ध यूनानी नाम हो सकता था जो काबुल तथा सिन्धु के सङ्गम पर स्थित नगर की ओर संकेत करता है। टालमी ने इसे इसी स्थान पर बतलाया है। इस दिशा में ओहिन्द का दावा पहले से भी अधिक दृढ़ बन जाता है। कर्टियस के इस कथन से कि जब सिकन्दर ने एओरनास पर अधिकार के साथ सिन्धु के पश्चिम में अपना अभियान समाप्त किया था "वह एम्बोलिमा की ओर गया था।" यह बात पूर्णतय: निश्चित प्रतीत होतो है कि सिन्धु नदी पर पुल एम्बोलिया अथवा इसके समीप बनाया गया था। मेरे विचार में एम्बोलिमा वही स्थान है जहाँ हिफाशियन तथा पेरडीकस ने पुल का निर्माण किया और कर्टियस ने रसद इकट्ठी की थी। मेरा अनुमान है कि रसद का भण्डार पुल के समीप ही रहा होगा क्योंकि पुल तथा भण्डार दोनों की सुरक्षा के लिये एक ही रक्षक दल पर्याप्त होगा।

सलातुर अथवा लाहौर

तत्पश्चात ह्वेनसांग प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी के जन्म स्थान सो-लो-टु लो अथवा सलातुर गया था जो उसके अनुसार ओहिन्द से ३½ मील उत्तर पश्चिम में था। जनवरी १८४८ ई० में ओहिन्द के उत्तर पूर्व ४ मील की दूरी पर लाहौर गाँव में रुकने के समय मैंने अनेक इण्डो सीथियन तथा यूनानी मुद्रायें प्राप्त की थीं। जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह स्थान कम से कम स्वयं पाणिनो के समय जितना पुराना है अथवा ३५० ई० पू० के लगभग का है। अत: शालातुर को लाहौर के अनुरूप स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है। नाम के प्रथम अक्षर के लुप्त हो जाने का सन्तोषजनक कारण पश्चिमी भारत के निवासियों के प्रसिद्ध व्यवहार के अनुसार तालु सम्बन्धी उच्चारण को सांस खींच कर किये गये उच्चारण में बदलने की आदत में ढूंढा जा सकता है। इसी आदत के कारण सिन्धु को हिन्धु कहा जाता था और इसके किनारे पर बसे निवासियों को हिन्दु कहा जाता था। यह नाम सम्भवत: धीरे-धीरे हालातुर तथा अलातुर बन गया होगा जिसका अपभ्रन्श होते-होते सरलता से लाहौर बन गया। जनरल कोर्ट ने इसे लावोर लिखा है।

एओरनास

सिन्धु नदी के पश्चिमी भाग का वर्णन करते समय (१) एओरनास के स्थान के उद्विग्न प्रश्न पर कुछ शब्द लिखना चाहता हूँ। १८३६ में जनरल कोर्ट ने इस प्रकार

(१) एओरनास आधुनिक अम्ब से दूर नहीं था। डा० स्टेन ने १६०४ ईसवी में महाबन पर्वत माला की छान-बोन की थी और इसे एओरनास के विपरीत सिद्ध किया था। अत: सिकन्दर के इतिहासकारों द्वारा बताई गई एओरनास एवम् महाबन की अनुरूपता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। —अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखा था—"जहाँ तक एओरनास का सम्बन्ध है सम्भवतः यह एक दुर्ग था जो अटक के सामने था तथा जिसके अवशेष हमें पर्वत शिखर पर मिलते हैं। कहा जाता है कि इसका निर्माण राजा होदी ने करवाया था।" १८४८ ई० में मैंने यह सुझाव दिया था कि "ओहिन्द के उत्तर से पश्चिम की ओर लगभग १६ मील की दूरी पर नोग्राम नाम के एक छोटे गांव के ठीक ऊपर रानीघाट के विशाल पहाड़ी दुर्ग का उल्लेख ऊँचाई को छोड़ एरियान, स्ट्रैबो तथा डायोडोरस द्वारा एओरनास के सम्बन्ध में दिये गये विवरण से सभी प्रकार से मिलता है। रानीघाट की ऊँचाई १००० फुट से अधिक नहीं है फिर भी यह ऊँचाई इतने बड़े दुर्ग के लिये बहुत अधिक है। १८५४ में जनरल जेम्स एबाट ने इस विषय पर एक बहुत बड़ा एवम् अच्छे ढङ्ग का लेख लिखा था जिसमें भिन्न-भिन्न लेखकों पर बड़े अच्छे ढङ्ग एवम् आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाबन पर्वत एओरनास का सर्वाधिक सम्भावित स्थान है। १८६३ ई० के प्रारम्भ में श्री लोईवैन्थल ने आक्षेप किया था। उन्होंने अटक के सामने राजा होदी के दुर्ग एवम् एओरनास को जनरल कोर्ट द्वारा प्रस्तावित अनुरूपता को पुनः स्वीकार किया। वर्ष के अन्त में जनरल एबाट ने श्री लोईवैन्थल की आपत्तियों का उत्तर दिया था और अपना यह विश्वास पुनः दोहराया था कि "महाबन ही इतिहास का एओरनास है।" फिर भी उन्होंने यह विचार प्रगट किया था कि "इस प्रश्न पर अभी भी विचार विमर्श किया जा सकता है।"

इस वाद-विवाद पर पुनः विचार करते हुए मेरा विश्वास है कि मैं इस विषय पर कुछ कठिनाइयों को दूर कर सकता हूँ जिनके कारण यह विषय सिकन्दर के इतिहासकारों द्वारा स्पष्ट एवम् विपरीत विवरण दिये जाने से कठिन बन गया है। परन्तु मैं शायद ही यह आशा करने का साहस कर सकता हूँ कि एओरनास की अनुरूपता के सम्बन्ध में मेरा विचार सन्तोषजनक स्वीकार किया जायेगा। क्योंकि मैं इस बात को स्वीकार करने के लिए विवश हूँ कि मैं स्वयं अपने विचार में पूर्णतयः सहमत नहीं हूँ। परन्तु यदि मुझे दूसरों को सन्तुष्ट करने में सफलता नहीं मिलती तो मेरी असफलता में जनरल जेम्स एबाट तथा आदरणीय धर्म प्रचारक श्री लोईवैन्थल जैसे योग्य लेखक भी भागी होंगे।

मैं सर्व प्रथम एओरनास के नाम पर विचार करूंगा। यद्यपि एओरनास एक यूनानी शब्द है फिर भी जैसा श्री लोईवैन्थल ने लिखा है यह यूनानियों की अन्वेषणा नहीं हो सकती। अतएव यह किसी स्थानीय नाम के परिवर्तन स्वरूप की नकल होगी। श्री लोईवैन्थल का विचार है कि इसे बनारस शब्द के संस्कृत स्वरूप वाराणसी से लिया गया है। सिकन्दर के समय का कोई भी यूनानी वाराणसी शब्द का उच्चारण स्वर परिशिष्ट के बिना नहीं कर सकता था और इस प्रकार के उच्चारण से उसे एवरनास अथवा एओरनास प्राप्त हुआ होगा परन्तु यह विचार अतिश्योक्तिपूर्ण है क्योंकि एओर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नास का अन्तिम अक्षर वस्तुतः यूनानी है। अतः यह आवश्यक नहीं था कि यह मूल नाम का भाग रहा हो। यह भी सन्देहजनक है कि किसी स्थानीय नाम की अक्षरशः नकल से एक शुद्ध यूनानी नाम बना होगा। यदि बनारस अथवा वाराणसी ही इस नाम का मूल स्वरूप था तब हमें हिन्दूकुश के उत्तर में एक अन्य बनारस मिलना चाहिये क्योंकि एरिआन ने लिखा है कि द्रपसक अथवा अन्दराब का पार करने के बाद सिकन्दर "बेक्ट्रिया के दो प्रमुख नगरों एओरनास तथा बेक्ट्रा के विरुद्ध गया था जो तुरन्त ही उसे समर्पित कर दिये गये थे तथा उसने एओरनास के दुर्ग में अपनी सेना रखी थी।" एरियान के मानचित्र की टालमी के मानचित्र से तुलना करने पर उसके बेक्ट्रा एवम् एओरनास टालमी के बेक्ट्रा-रगा एवं जरायस्प के समान प्रतीत होते हैं और चूँकि इस दूसरे नगर को वरनी देश में बताया गया है मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि एओर-नास 'वरनास' का स्वभाविक एवं परिवर्तित स्वरूप है जिसे सिकन्दर के अनुयाइयों ने यूनानी भाषा में एक महत्वपूर्ण नाम की प्राप्ति के उद्देश्य से बदल दिया था। इसी प्रकार मैं दूसरे एओरनास को राजा वर से सम्बन्धित करूँगा जिसका नाम अभी भी हस्तनगर तथा ओहिन्द के बीच के सभी ध्वस्त दुर्गों से सम्बन्धित किया जाता है परन्तु उसका नाम नोग्राम से ऊपर रानीघाट के महान् पर्वतीय दुर्ग से विशेष रूप से सम्बन्धित किया जाता है। रानीघाट अथवा रानी की चट्टान दुर्ग के उत्तरी छोर पर एक सीधी खड़ी विशाल चट्टान है। कहा जाता है कि राजा वर की रानी प्रतिदिन वहाँ बैठा करती थी। दुर्ग को राजा वर के नाम से सम्बन्धित बताया जाता है और पहाड़ी के नीचे बने अस्त-बलों को राजावर के अस्तबल कहा जाता है। कुछ लोगों ने उसे राजा विराट कहा है और चूंकि वह उसे पाँच-पाण्डवों की कथा से सम्बन्धित बतलाते हैं मेरा विचार है नाम को कथा से मिलाने के लिये ही बदल दिया गया है। वास्तविक विराट नगर दिल्ली के दक्षिण में मत्स्य अथवा मछीरी में था। अन्य सभी स्थान काल्पनिक हैं अतः मेरा विचार है कि एओरनास के पहाड़ी दुर्ग का नाम राजा वर के नाम पर पड़ा था और रानीघाट का ध्वस्त दुर्ग को जनरल एबाट के महाबन अथवा जनरल कोर्ट तथा लोईवैन्थल द्वारा प्रस्तावित राजा होदी के दुर्ग के स्थान पर सिकन्दर का एओरनास स्वीकार करना अधिक सही होगा।

एओरनास के प्रतिनिधि के रूप में महाबन को स्वीकार करने में मेरी मुख्य आपत्तियाँ इस प्रकार हैं:—

(१) यह सरलता पूर्वक पार किया जा सकने वाला एक विशाल पर्वत है और इसका कोई भी उजड़ा भाग सिन्धु नदी की ओर से दुर्गम नहीं है।

(२) महाबन का व्यास ५० मील से कम नहीं है जबकि एओरनास, एरियाना के अनुसार २२ मील और डायोडोरस के अनुसार ११ मील से अधिक नहीं था।

(३) ह्वेनसांग ६३० ई० में महाबन पर्वत पर गया था और उसने इसे केवल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक विशाल पर्वत लिखा है जिसका नाम महावन मठसे लिया गया था जहाँ पूर्ववर्ती जीवन में सरवद राजा के नाम से बुद्ध ने निवास किया था। यह तथ्य कि मठ पर्वत के शिखर पर था बाद के इस वक्तव्य से जाना जा सकता है कि वह पर्वत से उत्तर-पश्चिम की ओर से लगभग सात मील तक मासूरा मठ की ओर गये थे। मेरा विचार है कि यह स्थान चूमला घाटी के सूरा नामक एक बड़े गाँव के अनुरूप था जो महाबन की सबसे ऊँची चोटी के उत्तर-पश्चिम में केवल १० ली की दूरी पर है। यदि उस समय पर्वत पर कोई भी दुर्ग होता तो तीर्थ यात्री इसके विस्तार की व्याख्या तथा इसकी दुर्गमता आदि की भाँति किसी भी विचारणीय एवं विशिष्ट बात के साथ-साथ इसके नाम का उल्लेख करता। उसके मौन को मैं महावन की चोटी पर बसे हुए अथवा ध्वस्त किसी प्रकार के दुर्ग की उपस्थिति के विरुद्ध समझता हूँ।

महावन पर्वत का "किसी भी क्षेत्र पर नियन्त्रण नहीं है।" एक उच्च सैनिक अधिकारी के इस विचार पर आधारित श्री लोईवैन्थल की आपत्ति केवल यह दर्शाती है कि किस प्रकार एक बहुत ही विद्वान व्यक्ति एक सम्पूर्ण असत्य विचार को अपने पक्ष में होने के कारण स्वीकार कर लेता है परन्तु उसका उत्तर छापने के कुछ मास पूर्व ही मैंने मिगों से बातचीत करते समय तथा श्री लोईवैन्थल को लिखकर इस आपत्ति का इसी प्रकार खण्डन किया था। मुझे इस बात पर आपत्ति है कि "महाबन पर्वत का किसी भी क्षेत्र पर नियन्त्रण नहीं है। मेरा उत्तर है कि यह उसी वस्तु का समादेश करता है जिसकी आकांक्षा आक्रान्त देश के निवासी करते हैं। यह उन लोगों को सुरक्षा प्रदान करता है जो इसकी शरण में आते हैं। इसे "मार्ग से इतना बाहर" बताया गया है कि कोई भी शरण लेने के स्थान के रूप में इसकी इच्छा न करता और सिकन्दर भी इसे नष्ट करने के लिए इतना समय नष्ट न करता क्योंकि यह सिन्धु की ओर जाते हुए उसके मार्ग मे बाधा नहीं डालता था। इस आपत्ति से यह सकेत मिलता है कि सिकन्दर का मुख्य ध्येय सिन्धु नदी को पार करना था परन्तु उसके जीवन के पूर्ववर्ती एवं बाद की घटनाओं से यह स्पष्ट है कि उसकी योजना शत्रु को अपने पीछे न रहने देने की होती थी। इसी कारण उसने सीरिया, दरङ्गियाना तथा अरकोसिया पर विजय प्राप्त करने के लिये बीसस का पीछा छोड़ दिया था। इसी कारण उसने सोगदियाना तथा बेक्ट्रियाना में सिरतामोनीज़ की मृत्यु पर शेष शत्रुओं की समाप्ति तक दो वर्ष का समय व्यतीत कर दिया था। इसी कारण से ही वह अपने मार्ग से हट कर उन लोगों को दबाने के लिये गया था जिन्होंने एओरनास में शरण लेकर उसकी अधीनता स्वीकार करने से इन्कार किया था और इसी कारण से ही बाद में उसने हाईड्राओटीज़ (रावी नदी) को पुनः पार कर सांगला पर आक्रमण किया था। यह एक अकेली पहाड़ी थी और चारों ओर जङ्गल को छोड़ अन्य किसी स्थान पर इसका नियंत्रण नहीं था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री लोईवैन्थल ने राजा होदी के दुर्ग को सिकन्दर का एओरनास स्वीकार करने के पक्ष में अपने तर्क को मुख्यतः 'बनारस' नाम से अत्यधिक समानता पर तथा अधिकांश रूप से चेम्बरलेन के इस विचार पर आधारित किया है "कि खैराबाद से ऊपर की पहाड़ियाँ मित्र एवं शत्रु दोनों के लिये न केवल उत्कृष्ट स्थान है परन्तु एक ऐसा स्थान भी है जिसे किसी भी आक्रमणकारी द्वारा अटक के समीप सिन्धु नदी को पार करने के प्रयत्न से पूर्व अपने अधिकार में करना आवश्यक है।" प्रथम तर्क को मैं एओरनास के नाम पर विचार विमर्श करते समय समाप्त कर चुका हूँ। दूसरी दलील में दो बातें निश्चित हैं। प्रथम यह कि सिकन्दर ने अटक के स्थान पर सिन्धु नदी को पार किया था और इसलिये उसने सिन्धु नदी को पार करने से पूर्व अवश्य ही राजा होदी के दुर्ग पर अधिकार किया होगा। दूसरे यह कि वहाँ के निवासियों ने उसके नदी पार करने में बाधा डालने के लिये एओरनास में शरण ली थी। निश्चित ही यह तथ्य सही नहीं है क्योंकि एरियान ने हमें बताया है कि बजारिया के निवासियों ने "अपनी शक्ति में अविश्वास के कारण अपनी सुरक्षा हेतु नगर से रातों-रात भाग कर एओरनास नाम की एक पहाड़ी पर चले गये थे। यह स्पष्ट है कि बजारिया के निवासी सिकंदर का सामना करने के स्थान पर उसे टालने के इच्छुक थे जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि एओरनास वह स्थान नहीं था जिसे सिन्धु नदी पार करने के लिये सिकन्दर ने पुल हेतु चुना था और चूंकि सभी विवरण सिन्धु नदी पार करने से पूर्व सिकन्दर की गतिविधियों के स्थान को कोफीज़ अथवा काबुल नदी के उत्तरी भाग में बताने में सहमत है यह निश्चित प्रतीत होता है कि न तो एओरनास और न ही नावों का पुल अटक के आस-पास में था इन्हीं कारणों से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि राजा होदी के ध्वस्त दुर्ग को सिकन्दर के एओरनास के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। इसका नाम ही इस अनुरूपता को निषिध करने के लिये पर्याप्त है क्योंकि वहाँ के निवासी इसे राजा-दी-होदी अथवा होदी गढ़ी पुकारने में एकमत हैं और इस विशिष्ट नाम का एक भी अक्षर एओरनास के अक्षरों के समान नहीं है।

उपरोक्त सभी बातों पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् मैं इस बात पर सन्तुष्ट हूँ कि हमें एओरनास को यूसफ जई मैदान के उत्तर पूर्वी किनारे पहाड़ियों की दिशा में इसी स्थान पर देखना चाहिये। वही वह स्थान हो सकता है जहाँ वहाँ के निवासी किसी आक्रमणकारी के आगमन पर शरण लेते रहे हो। इसी स्थान पर ही एक हमें पहाड़ी दुर्ग के मिलने की आशा करनी चाहिये जो सिकन्दर के इतिहासकारों के अतिश्योक्ति पूर्ण विवरण से कुछ समीपता प्राप्त कर सके और इसी स्थान पर ही इस विषय का अध्ययन करने वाले सभी व्यक्तियों के लगभग एक मतानुसार एओरनास को ढूंढना चाहिये।

सिकन्दर के इतिहासकारों द्वारा दिया गया विवरण प्रायः स्पष्ट तथा यदाकदा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विपरीत होता है परन्तु हम उन्हें एक दूसरे की व्याख्या से तुलना द्वारा सही कर सकते हैं। जहाँ वह सहमत हैं वहाँ हम विश्वासपूर्वक उनका अनुसरण कर सकते हैं क्योंकि ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि मूल लेखकों में जिनका उन्होंने अनुसरण किया था विचार भिन्नता नहीं थी। भाग्यवश एओरनास पहुँचने से पहले की सिकन्दर की गतिविधियों का विवरण देते समय वह एकमत थे। एरिआन के अनुसार गुरायस नदी को पार करने के तुरन्त बाद सिकन्दर ने अस्साकेनी (अश्यक) की राजधानी मस्साग में प्रवेश किया और उस पर अधिकार करने के पश्चात् उसने कोईनोस को बजारिया के विरुद्ध भेजा। कर्टियस ने इस स्थान को कोईन नदी कहा है और कोइनेस को बजारिया और सिकन्दर को मज़गाय के विरुद्ध जाते हुए बताया है। एरियान लिखता है कि चूँकि बज़ारिया में उस समय भी विरोध हो रहा था अतः सिकन्दर ने उस ओर जाने का निश्चय किया परन्तु यह सूचना मिलने पर कि अनेक भारतीय सैनिक ओरा में एकत्रित हो गये हैं—उसने अपनी योजना में परिवर्तन किया और उस नगर के विरुद्ध प्रस्थान किया जिसे उसने एक ही आक्रमण में अपने अधिकार में कर लिया। कर्टियस के अनुसार ओरा का घेरा पोलिसपरकन को सौंप दिया गया था जबकि स्वयं सिकन्दर ने अनेक छोटे नगरों पर अधिकार किया था जिनके निवासियों ने एओरनास में शरण ली थी। एरियान ने बजारिया के निवासियों को सुरक्षित एओरनास भागते हुए बताया है परन्तु वह कर्टियस के इस कथन से सहमत हैं कि अनेक पड़ोसी गाँवों के निवासियों ने उनका अनुसरण किया था। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि एओरनास बजारिया के आगे था तथा एरियान एवं कर्टियस के आगामी वर्णन से इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि एम्बोलिमा एओरनास से दूर तथा सिन्धु नदी पर था जहाँ टालमी ने इसे दिखाया है। इन सभी बातों पर विचार करने से मेरा विश्वास है कि बाजारिया, एओरनास तथा एम्बोलिमा को क्रमशः बाजार, रानीघाट तथा ओहिन्द बताया जा सकता है।

बाजार कालपान अथवा काला पानी नदी पर अवस्थित एक बड़ा गाँव है और रुस्तम नगर के समीप है। रुस्तम नगर एक पुराने विस्तृत टीले पर निर्मित है और इसे काफिरों अथवा हिन्दुओं के समय का बताया जाता है। प्रथा के अनुसार पुराने बाजार नगर का यही स्थान था। यह स्थान महत्वपूर्ण है क्योंकि स्वात एवं सिन्धु नदियों के मध्य में है अतः प्रागैतिहासिक काल से यह नगर स्वात की समृद्ध घाटी तथा सिन्धु एवं काबुल नदियों पर अवस्थित विशाल नगरों के बीच व्यापार केन्द्र रहा है। वस्तुतः बाजार नाम ही यह सिद्ध करने के लिये यथेष्ट है कि यह स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। अतः स्थान के महत्व भाग से देखते हुए मैं बाजार को बजारिया का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि स्वीकार करने का साहस कर सकता हूँ। परन्तु नाम एवम् स्थान दोनों में ही सिकन्दर द्वारा घेरे गये नगर से इसकी ठीक-ठीक समानता से यह सम्भावना लगभग निश्चितता में बदल जाती है। दन्त लोक पर्वत की समीपता से इस समा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

-नता को पुष्टि होती है। दन्तलोक सम्भवतः पहाड़ियों की वही श्रृङ्खला है जिसे यूनानियों ने मोनटीज़ डायडालो कहा है। वर्तमान बोलचाल की भाषा में और साथ ही साथ प्राचीन पाली में दन्त शब्द का अनुस्वर बाद के अक्षरों में मिल जाता है जिससे यह दुगना हो जाता है जैसे दातुन शब्द में। इसलिये यूनानी भाषा में पाली के दन्तलोक को डेडोलस मान लेना अति न्याययुक्त है। जस्टिन ने डेडालियन पर्वतों को रानी विलयोफिस अथवा क्लियोफीज के राज्य का पार्श्ववर्ती कहा है। कर्टियस के अनुसार रानी क्लियोफिस मस्सग के राजा अस्साकना की माता (पत्नी के स्थान पर गलती से) थी। दन्तलोक पर्वत में राजा सुदान की कन्दरा को—जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है—मैं काशमीरी ग़ार नाम की कन्दरा के समरूप बता चुका हूँ। काशमीरी ग़ार बाजार से केवल आठ मील उत्तर-पश्चिम में है। इन सभी समान परिस्थितियों में मेरा निष्कर्ष यह है कि बाजार निश्चित ही सिकन्दर का बाजारिया था और ओहिन्द, एम्बोलिमा था जैसा कि मैं इसे इस प्रकार दिखाने का पहले ही प्रयास कर चुका हूँ।

रानी घाट के ध्वस्त दुर्ग को प्रसिद्ध एओरनास का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि प्रस्तावित करते समय मैं यह स्वीकार करूंगा कि यह अनुरूपता अपूर्ण है। १८४८ ई० में मैंने रानी घाट की लम्बाकार ऊँचाई मैदान से १००० फुट का अनुमान लगाया था और श्री लोईबैन्थल ने मेरे अनुमान की पुष्टि कर दी है। परन्तु एरियान द्वारा दी गई ११ स्टेडिया अथवा ६६७४ फुट की ऊँचाई की तुलना में यह ऊँचाई इतनी निरर्थक है कि यदि मैं यह विश्वास न करता कि इस ऊंचाई को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है तो मुझे इसकी अनुरूपता स्वीकार करने के प्रयत्न में हिचकिचाहट होनी चाहिए थी। फिलोस्ट्रेटस ने इसे १५ स्टेडिया कहा है और डीयोडोरस ने इससे भी अधिक अथवा ९७०८ फुट के बराबर १६ स्टेडिया बताया है क्योंकि उसने इसके अधोभाग का व्यास केवल १०० स्टेडिया अथवा एरियान द्वारा दिये गये व्यास से आधा बताया है। मेरे विचार में यह सम्भव है कि यह ऊंचाई प्रारम्भ में उसी अनुपात में रही होगी जो १६ के स्थान पर ६ स्टेडिया अथवा ९७०८ फुट के स्थान पर ३६४० फुट पढ़ने से हम प्राप्त कर सकते हैं। कम से कम यह निश्चित है कि डियोडोरस की संख्याओं में एक एक संख्या अशुद्ध है क्योंकि १०० स्टेडिया अथवा ६०६७५ फुट के व्यास से अधोभाग का व्यास १९२०० फुट अथवा ९७०८ फुट की उल्लिखित ऊँचाई से दुगना हो जायेगा और उसकी ढलान ठीक ४५°' हो जाती और पहाड़ी एरियान द्वारा बताये गये कृषि योग्य विशाल समतल भूमि के स्थान पर एक विन्दु मात्र पर समाप्त होती। दोनों विद्वानों में इतनी अधिक भिन्नता है और अतिशयोक्ति इतनी स्पष्ट है कि कोई भी सम्भव परिवर्तन बताना कठिन है जो प्रतिकूल आँकडों को समरूप बना सके और साथ ही साथ इन्हें सम्भव सीमाओं में ला सके। फिर भी मेरा विश्वास है कि हम न केवल छोटी संख्या को स्वीकार करने में सुरक्षित हैं वरन् लम्बाकार ऊंचाई के स्थान पर तिरछी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊँचाई को स्वीकार करने में भी हमें लाभ है। परन्तु इस छोटे मापदण्ड के होने पर भी भारतीय एओरनास तब भी जिब्राल्टर की प्रसिद्ध चट्टान की ऊंचाई से दुगने से भी अधिक होगा। जिब्राल्टर अधोभाग के व्यास में ७ मील है और ऊंचाई में १६०० फुट है।

ग्वालियर के प्रसिद्ध दुर्ग की समान स्थिति में भी हम देखते हैं कि प्रायः ठीक-ठीक लिखने वाले अङ्ग्रेज यात्री विलियम फिंच ने इसका उल्लेख एक ढालवा विषम चट्टान पर अवस्थित दुर्ग के रूप में किया है जो व्यास में ६ कोस अथवा कुछ लोगों के अनुसार ११ कोस था। क्योंकि विलियम फिन्च ने कोस को राजकीय माप १½ मील के बराबर स्वीकार किया है अतः ग्वालियर दुर्ग के व्यास के बारे में उसका अनुमान ६ मील अथवा ५ मील के वास्तविक व्यास से लगभग दुगना होगा। साथ ही साथ प्रचलित अनुमान सत्य से लगभग ४ गुना अधिक होगा फिर भी यह मान लेने से भिन्न-भिन्न आकड़ों को समान बनाना सम्भव है कि कोस की बड़ी दर राजकीय कोस से सम्बन्धित थी और छोटी दर अकबर के कोस से सम्बन्धित थी परन्तु इस दिशा में ग्वालियर दुर्ग के व्यास का अनुमान १४ या १५ मील अथवा तीन गुना अधिक हो जायेगा। मि० फिन्च ने ग्वालियर की ऊंचाई का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसने इतना अवश्य लिखा है कि नारवार दुर्ग की खड़ी चढ़ाई लम्बाई में एक मील से अधिक थी जो सत्य से दुगना है। यहाँ यात्री ने दुर्ग की दुर्गम चढ़ाई के कारण मात्र से ऊंचाई को बढ़ा दिया है परन्तु एओरनास के सम्बन्ध में यूनानियों के पास अतिशयोक्ति के लिये अपनी कीर्ति को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाने की स्वाभाविक इच्छा के साथ-साथ उद्देश्य भी था। मेरे विचार में इसी कारण से दिवोडोरस के १६ स्टेडिया और एरियान के ११ स्टेडिया के अन्तर का सम्भव उत्तर ढूंढ़ा जा सकता है। दिवोडोरस ने सम्भवतः इसे सही आंकड़ों से तिगुना अथवा चौगुना कर दिया था जबकि एरियान ने इसे केवल दुगना अथवा तिगुना किया था। इस व्याख्या से दानों आंकड़े या तो ४ तथा ३½ स्टेडिया अथवा ५ और ५½ स्टेडिया बन जायेंगे या २३०० फुट से ३४०० फुट हो जायेंगे जो तिरछी ऊंचाई का अति सम्भव माप स्वीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार व्यास को ५० स्टेडिया तक कम किया जा सकता है जो ५¾ माल अथवा ३०२०० फुट के बराबर अथवा ग्वालियर दुर्ग के चारों ओर सड़क के व्यास से अधिक है। १६०० फुट के अधोभाग सहित २३०० फुट की तिरछी ऊंचाई से १२०० फुट की लम्बाकार ऊँचाई अथवा प्रत्येक ३ फुट के पीछे २ फुट की चढ़ाई प्राप्त होती है। इन आंकड़ों में भिन्नता के सम्भावित उत्तर के रूप में घटाने के तरीके का प्रस्ताव नहीं करना चाहता परन्तु मैंने केवल दोनों विद्वानों के आंकड़ों में स्पष्ट अतिशयोक्ति ढूंढने का सम्भव उपाय प्रस्तावित करने का साहस किया है।

एओरनास के सम्बन्ध में सभी विवरण इसे अधिक ऊँचाई एक दुर्गम पहाड़ी के रूप में उल्लेख करने में सहमत हैं। मिस्टर जस्टिन ने इसे "एक अत्यधिक विषम तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्नत चट्टान" कहा है। दिवोडोरस, स्ट्रैबो, एरियन, कर्टियस तथा फ़िलास्ट्रेटस सभी ने इसे "चट्टान दुर्ग" कहा है। अतः चट्टानी दुर्गमता एओरनास का एक विशेष लक्षण था। एरियन के अनुसार "इस पर केवल हाथ के बनाये गये कठिन मार्ग से चढ़ा जा सकता था और इसके शिखर पर शुद्ध जल का एक तालाब था और १००० व्यक्तियों के लिये कृषि योग्य भूमि थी। अन्तिम विचार भारत में अभी भी भूमि के 'कृषि भाग' के रूप में प्रचलित है और इसका अर्थ केवल इतनी भूमि है जितना एक व्यक्ति एक दिन में जोत सकता है। इसी प्रथा को यूनानियों एवं रोमनों में योक्त शब्द से व्यक्त किया जाता था। प्रतियोक्त केवल इतना ही स्थान था जिसे एक बैलों की जोड़ी एक दिन में जोत सकती थी। इस प्रकार भूमि का सबसे छोटा भाग १०० फुट के वर्ग अथवा १००० वर्ग फुट से कम नहीं रहा होगा जो हमें १०००००० वर्ग फुट अथवा १००० व्यक्तियों के कृषि भाग का संकेत देगा। इससे हमें लम्बाई में ४००० फुट तथा चोड़ाई में २५०० फुट अथवा मकानो आदि का स्थान छोड़ने पर लम्बाई में १ मील और चोड़ाई में ½ मील का स्थान प्राप्त होगा जो ठीक ग्वालियर के बराबर है और यदि ग्वालियर के समान विस्तृत दुर्ग किसी भी समय भारत की पश्चिमी सीमाओं में रहा होता तो निश्चित ही प्रारम्भिक मुस्लिम आक्रमणकारियों के ध्यान से बाहर न रहता और जनरल कोर्ट तथा जनरल एबाट के सूक्ष्म अन्वेषणों से शायद ही बच सकता था। अतः भूमि के १००० कृषि भाग को सिकन्दर के अनुयायियों द्वारा अपने स्वामी के अभियान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से की गई एक अन्य अतिश्योक्ति समझता हूँ। मैं एक दुर्गम मार्ग एवं शुद्ध जल के सोते को एक सुदृढ़ सैनिक दुर्गबन्दी की दो आवश्यकताओं की प्राप्ति के रूप में स्वीकार करता हूँ परन्तु मैं कृषि योग्य भूमि के १०० कृषि भागों की उपस्थिति को निस्संकोच अस्वीकार करता हूँ। इस अस्वीकृति का कारण यह है कि इस ऊपर जिले की पहाड़ियों पर यदि किसी भी समय ½ मील का कृषि योग्य विस्तृत क्षेत्र होता तो मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि इतने महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान स्थान को कभी त्याग दिया जाता।

ऐसे स्थान का ढूंढने में जो एओरनास के सामान्य विवरण का उत्तर दे सकता है दुर्भाग्यवश हमारा क्षेत्र कुछ ही स्थानों तक सीमित है जहाँ यूरोपीय जा चुके हैं। महाबन पर्वत के दावे पर हम विचार कर चुके हैं और अन्य सम्भव स्थान जिनका मुझे ज्ञान है वह निम्न प्रकार से हैं :—

(१) तख्त-ए-बाही का जजर नगर।
(२) करमार को अकेली उन्नत पहाड़ी।
(३) पंजपीर की पहाड़ी।
(४) रानीघाट का जर्जर दुर्ग।

इसमें पहला स्थान हस्तनगर तथा बाजार के बीच लगभग आधे मार्ग पर है।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

मि० लोईवैन्थल ने इसे बहुत ही कम ऊँचाई की एक ऊसर पहाड़ी कहा है जो एक वर्ग के तीन भाग बनाती है जिस वर्ग का चौथा भाग उत्तर-पश्चिम की ओर खुला हुआ था। त्रिकोणमीति सम्बन्धि-सर्वेक्षण मानचित्रों से तख्त-ए-बाही समुद्र से केवल १८५६ फुट अथवा यूसफ जई मैदान से ६५० फुट ऊपर है। मि० लोईवैन्थल ने चढ़ाई को भी सरल बताया है और क्योंकि यह स्थान सिन्धु नदी के निकटतम बिन्दु से ३५ मील से कम नहीं है मेरे विचार में उन्नत एवं दुर्गम मार्ग के उल्लेख से सहमत न होने के कारण तथा एम्ब्रोलिया के सम्भावित स्थान से एक दम दूर होने के कारण इसे तुरन्त अस्वीकार कर देना चाहिये।

करमार की अकेली एवं उन्नत पहाड़ी का स्थान बाजार से ६ मील दक्षिण पूर्व में था तथा ओहिन्द से केवल १८ मील उत्तर, उत्तर-पश्चिम समुद्र से ३४८० फुट अथवा यूसफ जई मैदान से २२८० फुट की ऊँचाई पर था। यदि इस स्थान पर मकानों आदि के कुछ भी अवशेष मिलते तो यह स्थान एओरनास का मुख्य दावेदार होता परंतु करमार पहाड़ी केवल एक उन्नत पर्वत पृष्ट है जहाँ न तो किसी भवन आदि के अवशेष प्राप्त हुए हैं और न जन-साधारण की प्रथाओं में इस स्थान का नाम ही आता है। पंजशीर की पहाड़ी भी इसी प्रकार परन्तु छोटा पर्वत पृष्ट है जो समुद्र से २१४० फुट अथवा यूसफ जई मैदान से ९४० फुट की ऊँचाई तक है। यह केवल नोकीला पर्वत पृष्ट है जिसके ऊपर एक अकेला भवन है जिसे पंजपीर अथवा मुसलमानों के पाँच महान् सन्यासियों के नाम पर उत्सर्ग किया गया है। इन सन्तों में प्राचीन सन्यासी, मुल्तान का बहाउद्दीन जकरिया भी सम्मिलित था जिसे साधारणतयः बहावल हक्क के नाम से पु ारा जाता था। परन्तु हिन्दुओं का विश्वास है कि मुख्यतः यह स्थान महाभारत के पंच पाण्डव अथवा (पाँच पाण्डव) भ्राताओं से सम्बन्धित था।

अन्तिम सम्भावित स्थान जिसका मुझे ज्ञान है रानी घाट का जर्जर दुर्ग है। जनवरी १८४८ में मैं इस स्थान पर गया तथा १८६३ के अपने दोरे में मैंने पुनः इस स्थान पर जाने का विचार किया था परन्तु बुनेर सीमा पर युद्ध के कारण दुर्भाग्यवश मैं अपना अभिप्राय पूरा न कर सका। अतः १८४८ में एकत्रित की गई सूचना से और अधिक सूचना नहीं दे सकता और चूंकि उस विवरण को छापा नहीं गया था और न ही उस समय से मि० लोईवैन्थल को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्ति उस स्थान पर गया है अतः मेरे विवरण को अभी भी नवीनता का महत्व प्राप्त होगा।

रानीघाट नोग्राम गाँव से ऊपर एक उन्नत पहाड़ी पर अवस्थित है जो बाजार से १२ मील दक्षिण-पूर्व तथा ओहिन्द से १६ मील उत्तर में है। अतः इसकी स्थिति एओरनास के अनुरूप होने के पक्ष में है। यह पहाड़ी महाबन पर्वत माला के लम्बे उभरे भाग में अन्तिम बिन्दु है। इसका अधोभाग उत्तर से दक्षिण लम्बाई में दो मील से अधिक है और चौड़ाई में यह लगभग आधे मील का चौड़ा क्षेत्र है। परन्तु पहाड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का शिखर लम्बाई में १२०० फुट और चौड़ाई में ८०० फुट से अधिक नहीं है। १८४८ ई० में मैंने इसकी ऊँचाई १००० फुट आँकी थी परन्तु जन-साधारण का दृढ़ विचार है कि यह पंजपीर से ऊँचा है और इसी कारण मेरा विचार है कि सम्भवतः यह १२०० फुट से कम नहीं है। पहाड़ी के किनारे विशाल पत्थरों की भारी पंक्तियों से ढँके हुए हैं जो इसे अत्यधिक विषम एवं दुर्गम बना देते हैं, चट्टानों में बनाई हुई और शिखर की ओर जाती हुई केवल एक ही सड़क है और अधिक नहीं तो कम से कम दो अति कठिन मार्ग हैं जो ऊपर की ओर जाते हैं। हम जानते हैं कि एओरनास का स्थान भी ऐसा था जहाँ एक विषम एवं भयानक मार्ग से टालमी शिखर पर पहुँचने में सफल हुआ था जबकि स्वयं सिकन्दर ने हाथ से बनाये हुये एक सुनिश्चित मार्ग से इस स्थान पर आक्रमण किया था। रानीघाट ५०० फुट लम्बा एवं ४०० फुट चौडा एक दुर्ग युक्त स्थान बताया जा सकता है। यह पूर्व को छोड़ अन्य सभी ओर से एक पथरीले पर्वत पृष्ट से घिरा हुआ है जो उत्तर में समान ऊँचाई तक उठ जाता है। पूर्व में यह महाबन के निचले उभरे भाग से ऊपर उठता है। चारों ओर दुर्ग की चट्टानों को खरोंच-खरोंच कर चमकाया गया है और दो किनारों पर यह गहरे गड्ढों के कारण आस-पास के पर्वत पृष्ठ से अलग हो गया है। यह खण्ड उत्तर में १०० फुट गहरे और पश्चिम में ५० से १५० फुट गहरे हैं। दुर्ग के उत्तर-पश्चिमी कोण पर खण्डों के आर-पार दो बाँध बना दिये गये हैं, जो पानी के बहाव को रोकने और इस प्रकार पश्चिम के खोखले स्थान में एक बड़ा जलाशय बनाने के विचार से बनाये गये प्रतीत होते हैं। उत्तर के खण्डों में दुर्ग तथा रानीघाट नाम की विशाल अकेली चट्टान के बीच तीन वर्गाकार कुएँ हैं। मैंने सोचा था कि उत्तर पूर्व में कुछ स्थान नीचे मैं एक अन्य बाँध की खोज कर सकता हूँ जो सम्भवतः बाह्य रक्षा पंक्ति का अवशेष मात्र था। इस बाह्य पंक्ति का पूर्ण व्यास लगभग ४५०० फुट अथवा एक मील से कुछ कम है।

मि० लोईवैन्थल ने दुर्ग का विवरण इस प्रकार दिया है, "पहाड़ा का शिखर छोटे आकार के एक समतल समस्थल को दर्शाता है जिसे सभी ओर किनारों पर मकानों द्वारा दृढ़ता से सुरक्षित कर दिया गया था। यह मकान बड़ी सफाई से काटे गये पथरों की बड़ी-बड़ी ईंटों से बनाये गये हैं। इन ईंटों को बड़ी सावधानी के साथ लगाया गया है और उन्हें नियमानुसार स्थिर किया गया है। इनको जोड़ने के लिये उत्तम सीमेण्ट का प्रयोग किया गया है। बड़े-बड़े पत्थरों के बीच अनिवार्य रूप से पड़ जाने वाली दरारों को छोटी पथरीली कङ्कणी की पतली तह से भर दिया गया है। मैंने सिन्धु नदी के उस पार तथाकथित काफरों के जितने भी भवन देखे हैं उन सभी में पथरीली कङ्कणी से दरारों को भरने की प्रथा एक अनिवार्य लक्षण बन गई थी।" इस व्याख्या में मैं यह जोड़ देना चाहता हूँ कि पत्थरों के समूहों को आड़े तिरछे अर्थात् क्रमशः लम्बाई में और चौड़ाई में इतनी सावधानी से रखा गया है कि देखने वालों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विशाल दीवारें अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होती है। सभी मकान अब जर्जर अवस्था में है परन्तु बाह्य दीवारें को अब भी चारों ओर देखा जा सकता है। दक्षिण एवं पश्चिमी भाग में अब भी यह इमारतें काफी ऊँची खड़ी हैं और अत्यधिक अच्छी दशा में हैं। मुख्य द्वार जो दक्षिण पश्चिमी भाग पर हैं पत्थरों को एक दूसरे के ऊपर रखने के सामान्य प्राचीन ढङ्ग से बनाया गया है। निकास मार्ग दीवार के समानान्तर नहीं है परन्तु कुछ दूरी तक यह विशेष रूप से दाहिनी ओर झुका हुआ है। तत्पश्चात् यह बाईं ओर एक बन्द कमरे की ओर मुड़ जाता है और तब पुनः खुले आंगन में पहुँचने तक यह दाहिनी ओर मुड़ जाता है। शुरू में इस सम्पूर्ण निकास मार्ग को क्रमानुसार तिरछे किये गये पत्थरों की पंक्तियों से छत दिया गया था। इन पथरों को एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार रखा गया था कि इनसे एक नोकदार मेहराब के दो किनारे बन सकें। परन्तु पथरों की ऊपरी पंक्ति को सीधा छोड़ दिया गया है अतः मेहराब की नोक समकोण चोटी के समान जान पड़ती है। इस विशेषता की ओर मि० लोईवैन्थल का ध्यान भी आकर्षित हुआ था जिनका कथन है कि "मेहराब नोकली होना चाहिये था परन्तु मध्य में समकोणीय नाली सी बन गई है।" पश्चिमी भाग में भी मैंने इसी प्रकार का एक मार्ग देखा था परन्तु इस स्थान पर इतना अधिक मलबा इकट्ठा हो गया था कि मैं इसके जाने का रास्ता नहीं ढूंढ सका।

मूल्यवान भवनों से घिरे हुए खुले आंगन सहित यह केन्द्रिय गढ़ अथवा दुर्ग मेरे विचार में राजा का महल था जिसमें सामान्य रूप से पूजा गृह की भी व्यवस्था की गई थी। उत्तर की ओर मैंने एक अन्य समस्थल की ओर जाती हुई सीढ़ियों की खोज की थी और यह समस्थल मेरे विचार में राजमहल अथवा दुर्ग का बाह्य आंगन रहा होगा। ऊपरी आंगन २७० फुट लम्बा और १०० फुट चौड़ा है और निचला आंगन सीढ़ियों सहित भी ऊपरी आंगन का आधा है अर्थात् १३० फुट लम्बा और १७० फुट चौड़ा। इन सभी खुले भागों में सभी आकार की तथा सभी अवस्था में टूटी-फूटी मूर्तियाँ फैली हुई थीं। इनमें अधिकांश शिक्षक के रूप में बुद्ध की मूर्तियाँ थी। जिनमें बुद्ध को बैठे हुए एवं खड़े हुए दिखाया गया था। कुछ एक सन्यासी बुद्ध की मूर्तिया थी जिनमें बुद्ध को पवित्र पीपल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ दिखाया गया है और उनमें कुछ मूर्तियां बुद्ध की माता माया की थी जो साल वृक्ष के नीचे खड़ी थी। परन्तु वहाँ पर कुछ अन्य मूर्तियों के टुकड़े भी थे जो प्रत्यक्ष रूप से धर्म से सम्बन्धित नहीं थीं। उदाहरणार्थ जञ्जीरों के कवच में मनुष्य की एक विशालकीय मूर्ति, एक मनुष्य के नंगे शरीर की मूर्ति जिसके कन्धों पर यूनानी वस्त्र अथवा एक छोटा अङ्गरखा बनाया गया था। वहाँ एक मानवीय वक्षस्थल भी था जो आंशिक रूप से यूनानी अङ्गरखे से ढंका हुआ था और उसके गले में हार सुशोभित था। इस हार की कुण्डियों के स्थान पर दो मानव सिर वाले परन्तु परों एवं चार टाँगों वाले पशु बनाये गये थे। यह पशु उस पौराणिक प्राणी के समान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे जिसके कमर के नीचे का भाग घोड़े का तथा ऊपरी भाग मनुष्य के समान माना जाता था। इन सभी मूर्तियों का निर्माण कोमल तथा गहरे नीले रङ्ग की मिट्टी की (पट्टिकाओं) पर किया गया था जिस पर सरलता पूर्वक चाकू से काम किया जा सकता था। यह अत्यधिक चमकीली मूर्तियाँ हैं और इसी कारण मूर्ति विरोधी मुसलमानों ने इन्हें तोड़ दिया था। क्योंकि इस मिट्टी की तख्तियों का समतल पालिश द्वारा सरलता पूर्वक चमकाया जा सकता था अतः इन मूर्तियों के टुकड़े आज भी अच्छी हालत में हैं। मैंने जितनी भी मूर्तियाँ वहाँ देखी थीं उनमें बुद्ध की प्रतिभा सर्वोत्तम थी जिसके सिर पर घने केश थे जिन्हें सामान्य नियमानुसार घुँघराले बनाने के स्थान पर विशेष ढङ्ग से लहराते हुए दिखाया गया है। उत्तम ढङ्ग से तराशे गये नयन नक्शों से घने शान्त मुखड़े की यूनानी कला-कृतियों से तुलना करना असङ्गत न होगा परन्तु चेहरे की सुन्दरता, गोल उभड़ी हुई भारतीय ढङ्ग की ठुड्ढी के कारण विक्षिप्त सी हो गई है।

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि रानी घाट की पहाड़ी चारों ओर पत्थर के विशाल समूहों से ढँकी हुई हैं जिनके कारण ऊपर जाने का मार्ग अत्यधिक विषम एवं ऊँचा-नीचा बन गया था। इन पत्थरों में कुछ पत्थर बहुत बड़े आकार के हैं और शिखर पर पड़े कुछ पत्थरों को खोखला कर कुछ तहखाने अथवा मठ बना दिये गये थे। श्री लोईवैन्थल ने इन अवशेषों में इन तहखानों को "अति विलक्षण चिह्न" कहा है। अधिकांश तहखाने अन्दर से पूर्णतयः साधारण है परन्तु कुछ तहखानों में एक अथवा दो रोशनदान भी हैं। खुदाई में निकाली गई इन गुफाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुफा दुर्ग के पश्चिम में पहाड़ी के पृष्ठ-भाग पर है। जन-साधारण में यह कत्रीकर अथवा "अन्न व्यापारी के घर" के नाम से जाना जाता था परन्तु मैं इस चट्टान के सम्बन्ध में प्रवेश द्वार के छोटे आकार को छोड़कर अन्य कोई भी ऐसी सूचना प्राप्त नहीं कर सका जो इस बात का संकेत दे सके कि यह गुफा मूल रूप में किस उद्देश्य से बनाई गई थी। यह द्वार निश्चित ही एक व्यापारी की दुकान के स्थान पर एक भिक्षु के मठ के अधिक अनुकूल था। श्री लोईवैन्थल ने इस बात का उल्लेख किया है कि, "पहाड़ी पर प्राप्त वनस्पति में जैतून के वृक्ष अथवा मेंहदी के पेड़ प्रमुख थे परन्तु १८४८ ई० में इस पहाड़ी के शिखर पर बड़े-बड़े वृक्ष प्रचुर मात्रा में पाए गये थे।

मैं रानी घाट की पहाड़ी तथा एओरनास की अनुरूपता पर अधिक जोर नहीं देना चाहता परन्तु यदि हम यह स्वीकार कर लें कि इतिहासकारों के विवरण अधिकतर अतिशयोक्ति पूर्ण हैं तो मेरा विचार है कि रानीघाट के अवशेष अन्य स्थानों जिनका मुझे ज्ञान है—की उपेक्षा एओरनास के प्राप्त अस्पष्ट विवरण से अधिक मिलते हैं। विस्तार को छोड़ अन्य सभी आवश्यक बातों में इन दोनों स्थानों में आश्चर्यजनक समानता है। बाजार तथा ओहिन्द अथवा बाजारिया तथा एम्बोलिमा के मध्य इसकी ऐसी स्थिति है जिस पर किसी प्रकार आपत्ति नहीं की जा सकती। राजा वर से सम्बन्धित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने के कारण यह सम्भव प्रतीत होता है कि इस स्थान का नाम राजा के नाम पर रखा गया हो। इस नाम से यह स्थान यूनानियों के एओरनास के अधिक समीप हो जाता है। इसकी अत्यधिक ऊँचाई, ऊँचा नीचा रास्ता, मार्ग की विषमता, चट्टानों में काट-काट कर बनाया गया मार्ग, पानी का तालाब एवं समतल भूमि तथा दुर्ग को वाह्य दीवार से अलग करने वाली गहरी खाईं आदि अनेक ऐसी बातें है जिनसे दोनों स्थानों की अनुरूपता का आभास होता है और यदि इन दोनों के विस्तार में अधिक भिन्नता न होती तो मैं इन स्थानों को अनुरूपता को स्वीकार कर लेता। यद्यपि इस सम्बन्ध में यह स्थान यूनानियों के गर्वित विवरण के अनुरूप नहीं है फिर भी हमें स्ट्रैबो के इस विचार को नहीं भूलना चाहिये कि सिकंदर के मिथ्या प्रशासकों ने एओरनास पर अधिकार के विवरण को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा था। यह बात भी याद रखनी चाहिये कि असाकनस के विरुद्ध अभियान "शीतकाल में" किया गया था तथा यूनानियों ने "बसंत ऋतु के प्रारम्भ में" तक्षशिला में प्रवेश किया था। अतः एओरनास का घेरा निश्चित ही शीतकाल के उस समय में डाला गया था जब समुद्र से ७४७१ फुट ऊँचे महाबन पर्वत एवं उसकी ऊँचाई के अन्य सभी पर्वतों पर बर्फ पड़ी हुई थी। अतः यह प्रायः निश्चित है कि यूसफ जाई मैदान से ११ स्टेडिया अथवा ६६७४ फुट की तथाकथित ऊँचाई भी जो समुद्र से ७८७४ फुट की ऊँचाई के बराबर है—अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण थी। देश के इस भाग में समुद्र से ४००० फुट अथवा यूसफ मैदान से २८०० फुट की ऊँचाई के सभी स्थानों पर प्रतिवर्ष हिमपात होता है। यूनानियों ने इस बात का उल्लेख किया है कि उन्होंने शीतकाल में बर्फ देखी थी परन्तु कहीं भी एओरनास में हिमपात का उल्लेख नहीं किया गया। अतः मेरा विचार है कि इस सम्बन्ध में उन (यूनानियों) के मौन को एओरनास की कथित ऊँचाई के विरुद्ध पूर्णतयः निश्चित समझना चाहिये। इसी कारण महाबन एवं ४००० फुट से ऊँची अन्य पहाड़ियों के दावे के भी विरुद्ध समझना चाहिये। सभी प्राचीन लेखक एओरनास का एक चट्टान के रूप में उल्लेख करने में सहमत हैं। इस चट्टान को विषम, सीधी खड़ी हुई एवं हाथ से बनाये एक मात्र मार्ग वाली पहाड़ी बताया गया है। अतः महाबन पर्वत प्राचीन विवरण की किसी भी बात से नहीं मिलता। यह (महाबन) एक विशाल पर्वत है जिस पर आपेक्षाकृत सरलता से चढ़ा जा सकता है और सिकन्दर के मिथ्या प्रशंसकों के सर्वोधिक अतिश्योक्ति पूर्ण अनुमान के दुगने विस्तार से भी अधिक है। एओरनास के नाम से इसके नाम की भी कोई समानता नहीं है जबकि रानीघाट से सम्बन्धित राजा वर की कथा से रानीघाट को एओरनास के स्थान से सम्बन्धित बताया जा सकता है।

"परशावर अथवा पेशावर"

वर्तमान पेशावर के विशाल नगर का सर्व प्रथम उल्लेख ४०० ई० में फाहियान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने फो-ल्यू-शा के नाम से किया था। तत्पश्चात् सुंग-युन ने ५०२ ई० में इसका उल्लेख किया है। उस समय गांधार के राजा एवं किपिन अथवा कोफीन अर्थात् काबुल एवं गजनी तथा आस-पास के जिलों के राजा में युद्ध हो रहा था। सुंग-युन ने नगर के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसने इसे राजधानी बताया है तथा इस स्थान पर किया-नी-शी-किया, अथवा सम्राट कनिष्क के विशाल स्तूप का उल्लेख इसकी पहचान के लिए पर्याप्त है। ६३० ई० में ह्वेनसांग की यात्रा के समय राज परिवार प्रायः लुप्त हो चुका था तथा गान्धार राज्य कपिसा अथवा काबुल राज्य का आश्रित था परन्तु राजधानी परशावर जिसे ह्वेनसांग ने पू-लू-शा-पू-लो कहा है उस समय भी विस्तार में ४० ली अथवा ६⅔ मील का विशाल नगर था। तत्पश्चात् दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में मसूदो तथा अब्बुरिहान ने परशावर के नाम से इसका उल्लेख किया था तथा १६ वीं शताब्दी में बाबर ने अपने बाबरनामा में पुनः इसी नाम से इसका बार-बार उल्लेख किया है। इसका आधुनिक नाम हमें अकबर से प्राप्त हुआ है जिसने नवीन परिवर्तन में अनुराग के कारण इसका नाम प्राचीन परशावर के स्थान पर बदल कर पेशावर अथवा "सीमान्त नगर" रखा था क्योंकि उसे परशावर शब्द के अर्थ का ज्ञान नहीं था। अबुलफजल ने दोनों नामों का उल्लेख किया है।

हम देख चुके हैं कि ईसा की प्रथम शताब्दियों में बुद्ध का भिक्षा पात्र पेशावर के स्थान पर पूजा की महान् वस्तु मानी जाती थी। नगर के दक्षिण पूर्व में ८ अथवा ९ ली अथवा १½ मील की दूरी पर पवित्र पीपल का वृक्ष एक अन्य प्रसिद्ध स्थान था। यह वृक्ष लगभग १०० फुट ऊंचा था जिसकी शाखायें चारों ओर फैली हुई थी। जनश्रुतियों के अनुसार शक्य-बुद्ध ने इसी वृक्ष की छाया में बैठकर महान् सम्राट कनिष्क के प्रकट होने की भविष्यवाणी की थी। फाहियान ने इस वृक्ष का उल्लेख नहीं किया है परन्तु सुंन-युन ने फो-थी अथवा बौद्धी वृक्ष के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसकी "शाखायें चारों ओर फैली हुई थीं तथा जिसके पत्तों ने आकाश को ढक लिया था।" इस वृक्ष के नीचे पिछले चार बुद्धों की चार मूर्तियाँ थीं। सुंग-युन ने आगे लिखा है कि यह वृक्ष सम्राट कनिष्क द्वारा उस स्थान पर लगाया गया था जहां उसने विशाल स्तूप की मुक्ताफल की महीन जाली सहित एक पीतल का बर्तन छिपाया था क्योंकि उसे इस बात का भय था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् स्तूप से इस जाली को निकाल लिया जायेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १५०५ ई० में बाबर ने इसी वृक्ष को देखा था क्योंकि उसने इसे बेग्राम का "अद्भुत वृक्ष" कहा है और इसे देखने के लिये वह तुरन्त ही वहाँ चला गया था। उस समय यह वृक्ष १५०० वर्ष से कम पुराना नहीं रहा होगा और चूंकि १५९४ में पेशावर के स्थान पर 'ग़ार कोठरी' का उल्लेख करते समय अबुल फज़ल ने इस वृक्ष का उल्लेख नहीं किया अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह वृक्ष आयु एवं क्षय के कारण उस समय से पूर्व ही लुप्त हो गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कनिष्क के वृहत् स्तूप का सभी तीर्थ यात्रियों ने उल्लेख किया है। यह स्तूप पवित्र वृक्ष के समीप ही दक्षिण की ओर था। ५०० ई० में फाहियान ने लिखा है कि यह स्तूप ४०० फुट ऊँचा था और मूल्यवान वस्तुओं से सुसज्जित था। इसी प्रसिद्धि के कारण इस स्तूप को भारत के अन्य स्तूपों से श्रेष्ठ माना गया है। एक शताब्दी बाद सुँग-युन ने घोषणा की थी कि "देश के पश्चिमी भाग के सभी स्तूपों में यह स्तूप सर्व प्रथम था।" अन्त में ६३० ई० में ह्वेनसांग ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह स्तूप ४०० फुट से अधिक ऊँचा था। तथा परिधि में यह स्तूप १½ ली अथवा एक चौथाई मील के बराबर था। इस स्तूप में बुद्ध के अवशेष प्रचुर मात्रा में थे। इस विशाल स्तूप का अब कोई भी अवशेष नहीं रहा।

स्तूप के पश्चिम में कनिष्क द्वारा ही बनवाया हुआ एक पुराना मठ था जो ईसा काल के प्रारम्भ में आचार्य परश्विक, मनोरहित तथा वासुबन्धु नामक बुद्ध धर्म के तीन नेता अथवा प्रचारकों की प्रसिद्धि के कारण बौद्ध धर्मावलम्बियों में प्रसिद्ध हो गया था। इस मठ के बुर्ज एवं बरामदे दो मंजल ऊँचे थे परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह भवन अत्यधिक जर्जर अवस्था में था फिर भी इस मठ में कुछ बौद्ध भिक्षु रहा करते थे जो बुद्ध धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे। नवीं तथा दसवीं शताब्दी में यह स्थान उस समय भी समृद्ध था जब मगध के वीरदेव को "कनिष्क के विशाल बिहार में भेजा गया था। इस बिहार में बौद्ध धर्म के सर्व श्रेष्ठ शिक्षक मिलते थे तथा यह स्थान वहाँ आने वालों को शान्ति प्रदान करने के लिये प्रसिद्ध था।" मेरा विश्वास है कि यह विशाल मठ बाबर तथा अकबर के समय में भी "गार कोठरी" अथवा बनिया के घर के नाम से वर्तमान था।

बाबर ने लिखा है कि "मैंने गढ़ कोठरी की प्रसिद्धि सुनी है जो हिन्दू जोगियों का पवित्र स्थान था जो दूर-दूर से इस गढ़ कोठरी में आकर अपने सिर एवं दाढ़ी मुड़वा देते थे।" अबुल फजल का विवरण उपरोक्त विवरण से छोटा है। पेशावर का का उल्लेख करते समय उसने लिखा है कि "यहाँ एक मन्दिर है जिसे गढ़ कोठरी कहा जाता है और धार्मिक आश्रय, विशेषतयः जोगियों के आश्रय का स्थान है।"

उद्यान अथवा स्वात

उतखण्ड छोड़ने के बाद ह्वेनसांग ने यू-चांग-न अथवा उद्यान तक उत्तर की ओर लगभग १०० मील की यात्रा की थी। यू-चांग-न, सू-पो-फा-सू-तू (१) अर्थात शुभ वस्तु अथवा संस्कृत के सुवस्तु, एरियन के स्वास्तस तथा वर्तमान सुआत (स्वात)

---

(१) युआन-च्वांग ने लिखा है कि सू-पो-फा-सू-तू (शुभवस्तु, सुवस्तु अथवा स्वात नदी) के साथ-साथ १४०० संघाराम थे। वर्तमान अवशेषों को देखकर हम कह सकते हैं कि इस कथन में कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नदी के तट पर अवस्थित था। पूर्ववर्ती तीर्थ यात्रियों फाहियान तथा सुँग-युन ने इसे यू-चङ्ग कहा है जो उज्जैन तथा पाली के उद्यान की प्रायः नकल है। देश को अधिक उपजाऊ एवं सिंचाई युक्त प्रदेश कहा गया है। यह विवरण उन सभी स्थानीय विवरणों के समान है जिनके अनुसार स्वात केवल दूर-दूर तक प्रसिद्ध काश्मीर की घाटी से द्वितीय है। ह्वेनसांग ने उद्यान को व्यास में ८३३ मील बताया है। यदि हम स्वात नदी की सभी सहायक नदियों को सम्भिलित कर लें तो यह व्यास वास्तविक व्यास के समीप होगा। एतएव उद्यान की सीमाओं में बुनीर, स्वात, बिजावर तथा पञ्जकोर के आधुनिक चार जिले सम्मिलित रहें होंगे। मानचित्र पर सीधे माप से इन जिलों का व्यास केवल ५०० मील है परन्तु सड़क की दूरी से यह व्यास ८०० मील से कम नहीं है। फाहियान ने सू-फो-तो- का उल्लेख उद्यान के दक्षिण में एक छोटे जिले के रूप में किया है। इसे प्रायः स्वात नाम से सम्बन्धित किया गया है परन्तु उद्यान के दक्षिण तथा परशावर के उत्तर में अपनी स्थिति के कारण यह क्षेत्र स्वात नदी की विशाल घाटी नहीं हो सकता परन्तु बुनीर की छोटी घाटी तक ही सीमित रहा होगा। फाहियान द्वारा बाज़ तथा कबूतर को कथा से इसकी पुष्टि होती है। जिस (कथा) में कबूतर की रक्षा के लिए बुद्ध ने अपना मांस काट कर बाज को दे दिया था। ह्वेनसांग ने भी इसी कथा का उल्लेख किया है परन्तु उसने इस घटना के स्थान को महाबन पर्वत के उत्तर पश्चिमा अधोभाग पर बताया है अर्थात् बुनीर की वास्तविक घाटी में यह घटना हुई थी। उसने यह भी लिखा है कि बुद्ध उस समय शी-पी-किया-अथवा शिविल नाम का राजा था। सम्भवतः यह नाम फाहियान के सूहोतो का वास्तविक रूप हो सकता है।

उद्यान की राजधानी को मुंग-की-ली अथवा मङ्गल कहा जाता था। सम्भवतः यह नाम मि० विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगलबेग का मङ्गोर तथा जनरल कोर्ट के मानचित्र का मङ्गलोर है। यह नगर व्यास में २६ मील था एवं अधिक जनपूर्ण था। राजधानी के उत्तर-पूर्व ४२ मील की दूरी पर तीर्थ यात्री नागराज अपलाला की झील अथवा शुभ वस्तु नदी के उदगम स्थान पर पहुँचा था (१) और उसी दिशा में १२५ मील आगे एक पर्वत माला को पार करने के बाद सिन्धु नदी के पास वह था-ली लो-अथवा दरेल पहुँचा था जो उद्यान की प्राचीन राजधानी थी। दरेल सिन्धु नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर एक घाटी है जहाँ डारडस अथवा डरडस जाति का

(१) जहाँ तक अ-पो-लो-लो-अथवा शुभ वस्तु नदी ने उदगम् स्थान का संबंध है श्री डीन ने लिखा है कि "तीर्थ यात्री द्वारा बताई गई दूरी एवं दिशा हमें ठीक उस स्थान पर ले जाते हैं जहाँ उट्रोट तथा उशू नामक छोटी नदियों का सङ्गम है। यही स्थान शुभ वस्तु नदी का आधुनिक उदगम स्थान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार था। इस घाटी का नाम इसी जाति के नाम पर पड़ा था। फाहियान ने इसे तो-ली-कहा था और उसने इसे एक अलग राज्य के रूप में बताया है। डॉडस जाति को वर्तमान समय में उनकी प्राकृति भाषा के आधार पर प्रायः तीन भिन्न-भिन्न जातियों में विभाजित किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों की प्राकृत भाषा अरनियाँ है वह यसन तथा चित्राल के उत्तर पश्चिमी जिलों में बस गये हैं वह व्यक्ति जिसकी प्राकृत भाषा खाजुनाह है वह हुँजा तथा नगेर के उत्तर-पूर्वी जिलों में बसे हुए हैं और जो शिना का प्रयोग करते हैं, वह सिन्धु नदी के साथ-साथ गिलगित, चिलास, दारेली, कोहली वथा पालस घाटियों में बस गये हैं। इस जिले में भावी बुद्ध मैत्रीय की एक प्रसिद्ध लकड़ी की मूर्ति थो जिसका उल्लेख दोनों तीर्थ यात्रियों ने किया था। फाहियान के अनुसार इसका निर्माण बुद्ध के निर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् अथवा २४३ ई० पूर्व में किया गया था। अर्थात इसका निर्माण अशोक के शासन काल में हुआ था जब धर्म प्रचारकों द्वारा सम्पूर्ण भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार बड़े जोरों पर था। ह्वेनसांग ने मूर्ति को १०० फुट ऊँची बताया है और उसका कथन है कि इसका निर्माण मध्यान्तिक द्वारा किया गया था। (१) नाम एवं तिथि दोनों ही एक दूसरे से सहमत हैं। मध्यान्तिक अथवा पाली का मजभिम एक बौद्ध शिक्षक का नाम था जिसे अशाक के शासन-काल में तीसरे धार्मिक सम्मेलन के पश्चात बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु काश्मोर तथा संपूर्ण हिमवन्त देश में भेजा गया था। सम्भवतः ह्वेनसांग ने इसी समय की ओर संकेत किया है जब दरेल उद्यान की राजधानी थी।

"बोलोर अथवा बल्टी"

दरेल से ह्वेनसांग ने एक पर्वत माला के ऊपर से होते हुए तथा सिन्धु नदी की घाटी से ऊपर पो-लू-लो-अथवा बोलोर तक ८३ मील की यात्रा की थी। इस जिले का व्यास ६६६ मील था और इसकी दूरस्थ लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर थी। यह चारों ओर हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा हुआ था तथा इस स्थान पर प्रचुर मात्रा में स्वर्ण प्राप्त था। मार्ग के विवरण की दिकांश एवं दूरी से तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पो-लू-लो-आधुनिक बल्टी अथवा छोटे तिब्बत का नाम रहा होगा जो निश्चित हो सही है क्योंकि सिन्धु नदी पर पड़ोस के दारद्व जिले के निवासियों में बल्टी को केवल पो लो लो नाम से जाना जाता था। बल्टी अभी भी सोने की धुलाई के लिये प्रसिद्ध है। यह नाम भी प्राचीन है क्योंकि टालमी ने यहाँ के निवासियों को बाईलियोय कहा है। अन्त में, विस्तार एवं स्थिति में भी बल्टो चीनी तीर्थ यात्री की व्याख्या से

(१) जूलियन ने यह विवरण दिया है परन्तु उसने इस मूर्ति के निर्माण की तिथि को बुद्ध के निर्वाण से केवल ५० वर्ष बाद बताई है। मेरे विचार में इसे ५० के स्थान पर २५० वर्ष पढ़ना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूरी तरह मिलता है। इस प्रान्त की लम्बाई सिन्धु नदी के साथ-साथ पूर्व से पश्चिम १५० मील है तथा इसकी चौड़ाई दियोसेह पर्वतों से कराकुर्रम पर्वत माला तक ८० मील है अर्थात् कुल मिलाकर मानचित्र पर इसका व्यास ४६० मील था तथा सड़क की दूरी के अनुसार यह व्यास ६०० मील से कम नहीं था।

फालना अथवा बनू

फा ला-ना नाम का उल्लेख केवल ह्वेनसांग ने किया है जिसने इसे गजनी के दक्षिण पूर्व में तथा लमगान से दक्षिण की ओर १५ दिन की यात्रा पर बताया है। इसका व्यास ६६६ मील था तथा मुख्य रूप से इसमें पर्वत एवं जङ्गल ही थे। यह कपिसीन के अधीन था तथा यहाँ के निवासियों की भाषा मध्य भारत के निवासियों की भाषा से कुछ-कुछ मिलती थी। दिकांश एवं दूरी से इसमें सन्देह नहीं कि बन्नू ही वह स्थान था जहाँ ह्वेनसांग गया था और इसी से मैं यह अनुमान भी लगा सकता हूँ कि इस स्थान का मूल नाम वरना अथवा बरना था। (१) फाहियान ने इस कथन की पुष्टि की है। उसने इस स्थान का इसके स्थानीय छोटे नाम पो-ना अथवा बन के नाम से उल्लेख किया है। वह नगरहारा से दक्षिण की ओर जाते समय १३ दिन की यात्रा के बाद इस स्थान पर पहुँचा था। पो-ना को सिन्धु नदी के पश्चिम ३ दिन की यात्रा पर बताया जाता है अतः बन्नू अथवा कुरम नदी की घाटी के निचले भाग से इसकी अनुरूपता पूर्ण हो जाती है। फाहियान के समय बन्नू का राज्य इस छोटे क्षेत्र तक ही सीमित था क्योंकि उसने करमघाटो के ऊपरी भाग को एक भिन्न जिला लो-ई अथवा रोह कहा है। परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय इस राज्य का व्यास ६०० मील से अधिक था अतः निश्चित ही कुरम तथा गोमाल नदियों की दो विशाल घाटियां सम्पूर्ण रूप से बन्नू की सीमाओं में सम्मिलित रही होंगी। इसका क्षेत्र सफेद कोह अथवा फाहियान के "छोटे हिम्माच्छादित पर्वतों" से दक्षिण में सिवास्तान तक पश्चिम में गजनी तथा कन्धार की सीमाओं से पूर्व में सिन्धु नदी तक फैला हुआ था।

मेरे विचार मे यह असम्भावित नहीं है कि इस जिले का पूरा नाम फा-ला न-अथवा वर्न घिलज़ी खण्ड की बुरान नामक जाति से सम्बन्धित रहा हो क्योंकि सुलेमान पर्वतों एवं गजनी के बीच कुरम तथा गोमाल दोनों नदियों की ऊपरी घाटियों में सुलेमानी खेल अयवा बुरान की प्राचीन शाखा की अनेक छोटी-छोटी जातियों का अधि-

---

(१) संस्कृत नाम बर्ण अथवा वर्ण नहीं है। शुद्ध नाम वर्ण है जिसे प्लिनी ने लिखा है। इस जिले में कुरम (वैदिक) क्रुमु तथा गोमाल (वैदिक गोमती) नदियां बहती हैं। आधुनिक बन्नू पाकिस्तान के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश का एक जिला है तथा ३२°.१६' तथा ३०°.५' उत्तर एवं ७०°.२३' तथा ७१°.१६' पूर्व में स्थित है।

—अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार है। कहा जाता है कि बुरान के ज्येष्ठ पुत्र एवं सुलेमान के पिता इरयूब ने हरयूब जिले को अपना नाम दिया था। कुरम नदी की ऊपरी घाटी ही यह जिला है।

डी० सेन्ट मार्टिन ने फा-ला-ना को वानेह, वन्नेह अथवा एलफिन्स्टोन के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु वान एक छोटा सा प्रदेश है और इसकी जनसंख्या बहुत कम है जबकि बन्नू, सिन्धु नदी के पश्चिमी जिलों में सबसे बड़ा, सबसे धनी एवं जनपूर्ण जिला है। वान गजनी के दक्षिण-दक्षिण पूर्व में है जबकि बन्नू गजनी के पूर्व-दक्षिण पूर्व में है। दोनों ही ह्वेनसांग द्वारा बताई दक्षिण पूर्व दिशा से मिलते हैं परन्तु वान लमगान के दक्षिण में २० से २५ दिन की यात्रा पर आता है जबकि तीर्थ यात्री के अनुसार बन्नू केवल १५ दिन की यात्रा पर है। फाहियान ने बन्नू का उल्लेख पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में किया था अतः मेरे विचार में इसे टालमी के बानगरा के अनुरूप समझा जा सकता है। टालमी ने इस नगर को इण्डोसीथिया के सुदूर उत्तर में तथा नागरा अथवा जलालाबाद के दक्षिण, दक्षिण पूर्व में दिखाया है। इसी दिशा में एक अन्य नगर जिसे टालमी ने अन्द्रपन का नाम दिया है सम्भवतः डेरा इस्माईल खाँ के समीप द्राबन्द अथवा देराबन्द था।

ह्वेनसांग ने फलना की दक्षिणी सीमा पर कि-कियांग-ना नामक जिले का उल्लेख किया है परन्तु इसका स्थान अभी निश्चित नहीं किया जा सका। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन तथा सर एच इलियट ने इसे कैकानान अथवा सिन्ध के अरब इतिहासकारों के किकान के अनुरूप माना है परन्तु दुर्भाग्यवश कैकानान की स्थिति निश्चित नहीं है। फिर भी इसे कच्छ गण्डाव के उत्तर-उत्तर पूर्व में दिखाया गया है तथा कि-कियांग ना फ-ल-ना अथवा बन्नू के पश्चिम में था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि जिस जिले का उल्लेख किया गया है वह पिशिन तथा क्वेटा के आस-पास किसी स्थान पर रहा होगा और चूंकि ह्वेनसांग ने इसे ऊंचे पर्वत के नीचे एक घाटी में अवस्थित बताया है अतः मैं इसे पिशिन की घाटी के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ जो उत्तर में खोजा अमरान की पहाड़ियों तथा दक्षिण में तकाटू पर्वत के बीच है। यह स्थान बिलदूरी के कैकान से मिलता है। बिलदूरी का कथन है कि यह खुरासान की दिशा में सिन्ध का भाग था। इसकी पुष्टि इस कथन से भी होती है कि कंकान मुलतान से काबुल के मार्ग पर अवस्थित था। इन दोनों नगरों के बीच का सामान्य मार्ग सुलेमानी पर्वतों में सखी सरवर दर्रे से होकर गुजरता है तथा पिशिन घाटी से होकर कान्धार की ओर चला जाता है। एक छोटा परन्तु कठिन मार्ग गोमाल नदी की घाटी से होकर गजनी तक जाता है और चूंकि गोमाल की घाटी फलना से सम्बन्धित थी अतः कि-कियांग ना का जिला अवश्य ही पिशिन के पड़ोस में किसी स्थान पर रहा होगा। चूंकि इस घाटी में काकस जाति के लोग रहते हैं अतः यह असम्भावित नहीं है कि किकान अथवा कैकान नाम भी इन्हीं लोगों से प्राप्त हुआ होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओपोकीन अथवा अफगानिस्तान

ओ-पो कीन का उल्लेख केवल एक बार ह्वेनसांग ने एक छोटे गद्यांश में किया था। उसने इसे फलना तथा गजनी के बीच, फलना के उत्तर पश्चिम में तथा गजनी के दक्षिण पूर्व में दिखाया है। इस व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि ओ पो कीन, फाहियान के लो-ई तथा भारतीय इतिहासकारों के रोह के समान है। सम्भवतः ओपोकीन का नाम विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगल बेग के वोरगुन अथवा वरघिन से कुछ सम्बन्धित रहा होगा। मुगल बेग ने इस स्थान को कुरम नदी की सहायक तुन्ची अथवा तोचो नदी के उद्गम स्थान के समीप बताया है। ऐरोस्मिथ की "बर्न्स की यात्राओं" के साथ दिये मानचित्र में इसका नाम बोरघून लिखा गया है। परन्तु मैं ओपोकीन अथवा एम जुलीन के अवकान को अफगान नाम के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि चीनी अक्षर कीन घान्त शब्द में घान का प्रतिनिधित्व करता है। (१) ह्वेनसांग द्वारा जिले के अधूरे उल्लेख से मेरा अनुमान है कि यह स्थान फलना प्रान्त का भाग रहा होगा। यह निश्चित ही पहाड़ी जिले का भाग था जिसे अबुलफजल तथा फरिस्ता ने रोह कहा था अथवा यह दक्षिण पूर्वी अफगानिस्तान का भाग था जो अफगान लोगों का मूल स्थान प्रतीत होता है। मेजर खेर्टी ने रोह का उल्लेख "अफगानिस्तान के पर्वती जिले तथा बिलूचिस्तान के भाग" अथवा "गजनी तथा कन्धार एवं सिन्धु नदी के बीच के प्रदेश" के रूप में किया है। इस प्रान्त के निवासियों को रोहीले अथवा रोहोका अफगान कहा जाता है जिससे उन्हें अन्य अफगानों जैसे बल्ख तथा मर्व के बीच गोर के गोरी अफगानों से अलग पहचाना जा सके। फिर भी इस अनुरूपता को स्वीकार करने में कुछ ऐतिहासिक क्रम की कठिनाई है क्योंकि फरिस्ता के अनुसार खिल्जी, गोर तथा काबुल के अफगानों ने ६३ हिजरी अथवा ६८२ ई० में रोह प्रान्त पर अधिकार किया था अर्थात ह्वेनसांग की यात्रा के लगभग ३० वर्ष। पश्चात् परन्तु मेरा विचार है कि इस कथन की सत्यता में सन्देह करने के लिए हमारे पास कई प्रमाण उपलब्ध हैं। ह्वेनसांग ने फलना की भाषा को मध्य भारत की भाषा से मिलता-जुलता कहा है। अतः रोह निवासी भारतीय नहीं हो सकते थे और यदि वह भारतीय नहीं थे तो प्रायः निश्चित ही वह अफगान रहे होंगे। फरिस्ता ने अपना विवरण इस कथन से शुरू किया है कि पहाड़ों के मुस्लिम अफगानों ने "किरमान, शिवरान तथा पेशावर के राज्यों पर आक्रमण किया तथा उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।" तथा "किरमान एवं पेशावर के बीच

---

(१) ओपोकीन अथवा अ-पो-कान-फ-ल-न के उत्तर पश्चिम में तथा साउ-कू-त के दक्षिण पूर्व में था। सर कनिंघम का विचार है कि यह अफगान शब्द का संकेत करता है। उन्होंने इसे कुर्रम नदी की एक सहायक नदी तोची के उद्गम स्थान पर बताया है। सम्भवतः यह वायु पुराण का "आरगा" है। —अनुवादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समतल भूमि पर'' अफगानों तथा भारतीयों में अनेक युद्ध हुए थे। किरमान जिसका यहाँ उल्लेख किया गया है भारतीय महासागर के तट पर किरमान अथवा करमानियाँ का विशाल प्रान्त नहीं है परन्तु यह तैमूर के इतिहासकारों का किरमान अथवा किरमाश है जो कुर्रम नदी की घाटी में अवस्थित था। इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है यदि हम किरमान के भूभाग को निचली घाटी अथवा कुर्रम नदी के समतल भाग तक सीमित रखें तथा अफगान देश की सीमाओं को गजनी तथा काबुल के आगे तक बढ़ा दें जिससे इस भूभाग में ऊपरी घाटी अथवा कुर्रम नदी का पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित हो सके। राजनैतिक रूप से पेशावर का शासक सदैव कोहाट अथवा बन्नू का भी शासक रहा है तथा काबुल का शासक कुरम नदी को ऊपरी घाटी का स्वामी रहा है। इस जिले को आजकल खोसत कहा जाता है परन्तु यह तैमूर के इतिहासकारों तथा विलफार्ड के सर्वेक्षक मुगलबेग का इरियूब है तथा एलफिन्स्टन का हरियूब है। वर्तमान समय में घिलजी के बुरान वंश के सुलेमान खेल संख्या में सम्पूर्ण जाति के लगभग तीन चौथाई है। अतः मेरा अनुमान कि घिलजियों के मूल स्थान में पूर्व में कुरम तथा गोमाल नदियों को ऊपरी घाटी तथा पश्चिम में गजनी एवं केलात-ए-घिलजी सम्मिलित रहे होंगे। इस प्रकार हरियूब खिलजी अथवा घिलजी के अफगान जिले का भाग रहा होगा। जहाँ से पेशावर की सीमाओं में सरलता पूर्वक प्रवेश किया जा सकता था।' फरिस्ता के इस कथन की यह व्याख्या सही हो या न हो मैं यह निश्चित समझता हूँ कि ह्वेनसांग का ओपोकीन अवश्य ही अफगान शब्द के लिए लिखा गया होगा। ओपोकीन का समतुल्य अवगान रहा होगा। अवगान ही चीनी भाषा में अफगान शब्द की नकल हो सकती है। यदि यह अनुवाद सही है तो जहाँ तक मेरा ज्ञान है अफगान शब्द का यह सर्व प्रथम उल्लेख है।

काश्मीर राज्य

सातवीं शताब्दी में, चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार, काश्मीर राज्य में न केवल स्वयं काश्मीर की घाटी थी परन्तु सिन्धु नदी से चेनाब नदी के बीच तथा दक्षिण में नमक की पहाड़ियों तक का सम्पूर्ण पहाड़ी प्रदेश सम्मिलित था। भिन्न-भिन्न राज्य जहाँ ह्वेनसाँग गया था इस प्रकार थे। काश्मीर के पश्चिम में उर्स, ददिण पश्चिम में तक्षशिला तथा सिंहपुर एवं दक्षिण में पूंच तथा राजौरी थे। पूर्व तथा दक्षिण पूर्व के अन्य पहाड़ी राज्यों का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु यह विश्वास करने के कई ठोस कारण है कि वह सभी भी काश्मीर राज्य के आश्रित थे तथा सातवीं शताब्दी में काश्मीर का राज्य सिन्धु नदी से रावी नदी तक फैला हुआ था। (१) व्यास नदी की ऊपरी

---

(१) राजतरङ्गिणी के अङ्गरेज अनुवादक डा० स्टीन ने कास्पीरा, कास्पीराई तथा कस्पतिरास को काश्मीर के अनुरूप बताया है। चीनियों ने काश्मीर को की-पी-न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घाटी में कुलू का स्वतन्त्र छोटा राज्य दूरी एवं अगम्यता के कारण बच गया था और व्यास की निचली घाटी में जालन्धर का समृद्ध राज्य उस समय कन्नौज के महान् सम्राट हर्षवर्धन के अधीन था । परन्तु नवीं शताब्दी के अन्त में शंकर वर्मा ने कांगड़ा घाटी पर अधिकार कर लिया था और काश्मीर की प्रभुसत्ता सिन्धु से सतलज तक पञ्जाब के सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र पर स्थापित हो गई थी ।

ह्वेनसांग ने काश्मीर का उल्लेख चारों ओर से ऊंचे-ऊंचे पर्वतों से घिरे हुए प्रदेश के रूप में किया है जो काश्मीर की घाटी का सही उल्लेख है परन्तु उसके इस कथन में कि इस राज्य का विस्तार ११६६ मील था । सम्भवतः काश्मीर के विस्तृत राज्य की ओर संकेत किया गया है न कि काश्मीर की घाटी का, क्योंकि इसका व्यास केवल ३०० मील है । इस राज्य की राजनैतिक सीमाओं का व्यास उत्तर में सिन्धु नदी से लेकर दक्षिण में नमक की पहाड़ियों तक तथा पश्चिम में सिन्धु से लेकर पूर्व में रावी नदी तक ६०० मील से कम नहीं था और सम्भव है कि यह विस्तार तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये व्यास से मिलता हो ।

काश्मीर

ह्वेनसांग ने काश्मीर सितम्बर ६३१ ई० में पश्चिम की ओर से काश्मीर की घाटी में प्रवेश किया था । प्रवेश स्थान पर पत्थर का द्वार था, जहाँ राजमाता के छोटे भाई ने तीर्थ यात्री का स्वागत किया था । पवित्र स्थानों पर पूजा के पश्चात् वह हू-सी-किया-लो-अथवा हुशकर मठ में रात्रि व्यतीत करने चला गया था । अबुरिहान ने भी इस स्थान का उल्लेख किया है जिसने पुश्कर (उश्कर) को बारह मूला (वर्तमान बारामूला) के समान बताया है जो नदी के दोनों तटों पर फैला हुआ था । राजतरंगिणी में भी हश्कपुर को बराह अथवा वरहमूला के समीप बताया गया है । वरहमूला बारहमूला का संस्कृत स्वरूप है । हुश्कर अथवा उश्कर बारहमूला के दक्षिण पूर्व में दो मील की दूरी पर वेहात नदी के बाएं अथवा पूर्वी तट पर अभी भी एक छोटा गाँव है । काश्मोरी ब्राह्मणों का कथन है कि यह स्थान राजतरगिणी का हश्कपुर है जिसका निर्माण ई० काल के प्रारम्भ के लगभग तुरश्कराज हस्क ने करवाया था ।

राजतरंगिणी के ऐतिहासिक क्रमानुसार ६३१ ई० में काश्मीर का राजा प्रतापादित्य था, परन्तु उसके मामा के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय इतिहास

कहा है । युआन-च्वांग के समय में काश्मीर का राजा दुर्लभवर्धन वू-भा-शी अथवा उरश (आधुनिक हजारा) पुआन-नू सो (पर्णोत्स) आधुनिक पूंछ, को-लो शी-पू लो (राजौरी) सेङ्ग-हा-पू-लो (सिंहपुर) अथवा नमक की पहाड़ियों के क्षेत्र तथा ता-च-शी-लो (तथिला) का सर्वोच्च शासक था ।

अन्य पहाड़ी राज्यों में काष्ठवार (आधुनिक किश्तवार) चंपा (आधुनिक चंबा) तथा वालापुर का उल्लेख किया गया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कोई त्रुटि अवश्य रही होगी क्योंकि उस राजा का पिता अपनी पत्नी के अधिकार से गद्दी पर बैठा था जिसका (रानी का) कोई भाई नहीं था अतः प्रतापादित्य का सिंहासनारोहण अवश्य ही ६३३ ई० में काश्मीर से ह्वेनसांग के चले जाने के बाद हुआ होगा। इस प्रकार स्थानीय इतिहास में ३ वर्षों की त्रुटि हो जाती है परन्तु इससे भी अधिक भिन्नता उसके पुत्रों चन्द्रापीड़ तथा मुक्तापीड़ के शासन काल में देखने को मिलती है। मुक्तापीड़ ने अरबों के विरुद्ध चीनी सम्राट से सहायता की प्रार्थना की थी। प्रथम प्रार्थना की तिथि ७१३ ई० में है जबकि स्थानीय इतिहास के अनुसार चन्द्रापीड़ ने ६८० ई० से ६८८ ई० तक राज्य किया था। इस इतिहास में कम से कम २५ वर्षों का अन्तर है। चूंकि चीनी राजपत्रों में यह बात मिलती है कि सम्राट ने ७२० ई० के लगभग चन्द्रापीड़ को राजा की उपाधि दी थी। वह ७१६ ई० तक अवश्य ही जीवित रहा होगा और इस प्रकार काश्मीरी इतिहास में ठीक ३१ वर्षों का अन्तर हो जाता है। उसके पूर्ववर्ती शासकों के राज्य काल की तिथियों में इसी अनुपात से शुद्ध करने पर उसके पितामह दुर्लभ का शासनकाल ६२५ से ६६१ तक होगा। अतः यही वह राजा था जो ६३१ ई० में ह्वेनसांग की काश्मीर यात्रा के समय काश्मीर में राज कर रहा था। कहा जाता है कि दुर्लभ जो अपने पूर्ववर्ती शासक का दामाद था एक नागा का पुत्र था और जिस राजघराने की उसने नींव डाली थी उसे नाग अथवा करकोट घराना कहा जाता था। इस विशिष्ट नाम से मैं समझता हूँ कि उसका राज परिवार सर्प पूजक था। सर्पपूजन आदि काल से काश्मीर का प्रचलित धर्म रहा था। ह्वेनसांग ने इस जाति को को-ली-तो-कहा है जिसे प्रोफेसर लासेन तथा स्टेनिसलस जुलीन ने क्रीट बना दिया है। वे बौद्धधर्मावलम्बियों के कट्टर विरोधी थे जिन्होंने बारम्बार उनसे राजसत्ता छीन ली थी तथा उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया था। तीर्थ यात्री के अनुसार इसी कारण से उस समय के राजा को बुद्ध में विश्वास नहीं था और वह केवल ब्राह्मणों के देवताओं के मन्दिरों एवं पाखण्डों पर विश्वास करता था। स्थानीय इतिहास में भी इस कथन की पुष्टि की गई है जिसके अनुसार रानी अनङ्गलेखा ने एक विहार अथवा बौद्ध मठ का निर्माण करवाया था तथा अपने नाम पर इसका नाम अनंगभवन रखा था जबकि राजा ने एक विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था तथा उसने अपने नाम पर दुर्लभ स्वामिन का नाम दिया था। इससे मेरा अनुमान है कि उस समय भी रानी अपने परिवार के बौद्ध धर्म में विश्वास करती थी जबकि राजा वस्तुतः एक ब्राह्मणवादी था फिर भी उसने बौद्ध धर्म से उत्साहहीन सम्बन्ध रखा हुआ था।

काश्मीर के निवासियों को देखने में सुन्दर व्यवहार में सरल एवं चंचल स्वभाव में स्त्रीयोचित स्वभाव के एवम् भीरू तथा छल एवम् कपट में स्वभावतः उन्मुख कहा गया है। आज भी उनका यही चरित्र है और इस व्याख्या में मैं इतना और लिखना चाहूँगा कि भारत में काश्मीरी सबसे गन्दी एवम् अनैतिक जाति है। ह्वेनसांग का कथन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि पड़ोस के राजा काश्मीरियों को इतने तिरस्कार से देखते थे कि उन्होंने इनसे किसी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार नहीं किया तथा इन्हें की-ली-तो अथवा क्रीट नाम दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाम तिरस्कारपूर्वक दुष्ट प्रकृति एक उपद्रवकारी व्यक्तियों जैसे शत्रुओं देश द्रोहियों 'हत्यारों' आदि को दिया जाता था। जो नाम मैंने सुना है वह कीड़ मलेच्छ अथवा क्रूर बर्बर कीड़े हैं। तथा विलसन ने कोड़ नाम काश्मोर की घाटी को दिया है और वहाँ के निवासियों को कीड़ा कहा है।

सातवीं शताब्दी में इस राज्य की राजधानी नदी के पूर्वोतर पर तथा प्राचीन राजधानी के उत्तर-पश्चिम लगभग १०२ मील से कम दूरी पर थी। अब्बुरहान ने राजधानी को अधिस्तान कहा है जो संस्कृत का अधिष्ठान अर्थात् मुख्य नगर है। यह वर्तमान समय का श्रीनगर है जिसका निर्माण छठीं शताब्दी के प्रारम्भ के लगभग राजा प्रवरसेन ने करवाया था। प्राचीन राजधानी को मैं पहले ही एक प्राचीन स्थान के अनुरूप बता चुका हूँ जो तख्ते-सुलेमान के दो मोल दक्षिण पूर्व में था। इस स्थान को पांडरीथान कहा जाता था जो काश्मीरी भाषा के पुराना-अधिष्ठान (पुराना मुख्य नगर) का भ्रष्ट स्वरूप है। पान "पुराना" शब्द का सामान्य काश्मीरी शब्द है। उदाहरणार्थ नदो के निचले भाग पर दराज के नये गाँव से भिन्न दिखाने के लिए "पुराने दराज" को पान दराज कहा गया है। (१) प्राचीन राजधानी के समीप एक प्रसिद्ध स्तूप था जहाँ ६३१ ई० में बुद्ध का दाँत प्रतिष्ठित किया गया था। परन्तु ६४३ ई० में ह्वेन-सांग के पंजाब वापिस आने के समय तक यह पवित्र दाँत कन्नौज के शक्तिशाली शासक हर्षवर्धन को दे दिया गया था जो एक विशाल सेना लेकर इस दाँत की प्राप्ति के लिये काश्मीर की सीमाओं तक चढ़ आया था। चूंकि राजा दुर्लभ एक ब्राह्मणवादी था बुद्ध के दाँत का बलिदान ब्राह्मण धर्म के लिये बहुत बड़ी विजय थी।

प्राचीन काल से काश्मीर को कामराज तथा मेराज नाम के दो विशाल जिलो में बाँटा गया था। प्रथम जिला सिन्धु तथा बिहात नदियों के संगम स्थान से नीचे घाटी का उत्तरी भाग था। जबकि दूसरा जिला अर्थात घाटी का दक्षिणी भाग इस संगम स्थान से ऊपर था। छोटे-छोटे खंडो का उल्लेख अनावश्यक है। परन्तु धार्मिक विश्वास में परिवर्तन के कारण उत्पन्न, दो महत्व पूर्ण हिन्दू शब्दों में अनोखी अनियमित्तता का उल्लेख करना चाहूँगा। सूर्य पूजक हिन्दुओं के अनुसार चार प्रमुख दिशाओं को पूर्व दिशा के आधार पर नाम दिया जाता है, जैसे पर अथवा सम्मुख अर्थात पूर्व, जिसकी ओर वह प्रति दिन सन्मुख होकर पूजा करता है। अपर अर्थात पीछे अर्थात पश्चिम है, वाम अर्थात बाई ओर उत्तर है तथा दाहिनी ओर दक्षिण है। परन्तु मुसलमानों ने जो

---

(१) विलसन ने इसे बदल कर पापिन (पायिन) दराज कहा है फारसी भाषा में इसका अर्थ निचला दराज है जबकि पान दराज नदी के ऊपरी भाग में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूजा के समय पश्चिमाभिमुख होते हैं, इन परिभाषाओं को पूर्णतः बदल दिया है और दछिन जिसका अर्थ काशमीरी भाषा में "दाहिना" है आजभी "उत्तर" की ओर संकेत करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है तथा बायें अथवा दक्षिण के लिये कवर शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार लिडर नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित उपखण्ड को दछिन पार कहा जाता है और नदी के दक्षिणी तट पर अवस्थित उपखण्ड को कवर कहा जाता है। दछिन शब्द के अर्थ में दक्षिण के स्थान पर उत्तर समझे जाने का परिवर्तन अकबर के शासन काल से पूर्व हुआ होगा क्योंकि अबुलफज़ल ने दछिन पार को "विशाल तिब्बत की ओर एक पर्वत के अधोभाग पर अवस्थित" अथवा लिडर नदी के उत्तर की ओर बताया है।

काशमीर के प्रमुख प्राचीन नगर इस प्रकार हैं :—प्राचीन राजधानी श्रीनगर, प्रवरसेन नाम की नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर खागेन्द्रपुर तथा खुनामुश जिनका निर्माण अशोक के शासन काल से पूर्व करवाया गया था, विजीपार तथा पाँतसोक जिन्हें स्वयं अशोक से सम्बन्धित किया जाता है, सुरपुर जो प्राचीन काम्बुवा की पुनर्वृति स्वरूप बनवाया गया था, कनिष्कपुर, हुष्कपुर तथा जुष्कपुर जिनके नाम इन नगरों का निमार्ण करवाने वाले तीन इण्डोसीथियन शासकों के नाम पर रखे गये थे। ललितादित्य द्वारा निर्मित परिहासपुर, राजा बृहस्पति के मंत्री पदम के नाम पर बनवाया गया पदमपुर तथा राजा अवन्ति वर्मा के नाम पर अवन्तिपुरा।

कहा जाता है कि प्रवरसेनपुर के निर्माण से पूर्व काश्मीर की प्राचीन राजधानी श्रीनगर का निर्माण अशोक महान ने करवाया था जिसने २६३ से २२६ ई० पूर्व तक भारत में राज्य किया था। यह राजधानी आधुनिक पांडरीथान के स्थान पर थी और कहा जाता है कि इसका विस्तार नदी के तट के साथ-साथ (तख्तेसुलेमान) तख्त-ए-सुलेमान के अधोभाग से पांतसोक तक ३ मील से भी अधिक था। तख्त-ए-सुलेमान के शिखर पर काश्मीर को प्रचीनतम् मन्दिर को इस घाटी के समस्त ब्राह्मणों के एक मतानुसार ज्येष्ठ रुद्र के मन्दिर के अनुरूप स्वीकार किया गया है जिसका निर्माण अशोक के पुत्र जलोक ने श्रीनगर में करवाया था। यह अनुरूपता इस तथ्य पर आधारित है कि पहाड़ी को मूल रूप से ज्येष्टेश्वर कहा जाता था। पांतसोक गाँव के पास प्राचीन पुल के स्थान को अशोक से सम्बन्धित किया जाता है और इस स्थान के अन्य अवशेषों को दो अशोकेश्वर मन्दिरों के अवशेष कहा जाता है। काश्मीर के स्थानीय इतिहास में भी इन मन्दिरों का उल्लेख किया गया है श्रीनगरी पाँचवी शताब्दी के अन्त के समीप प्रवर सेन प्रथम के शासनकाल में भी काश्मीर की घाटी की राजधानी थी। उस समय राजा ने भगवान् शिव के प्रसिद्ध शिवलिंग की स्थापना करवाई थी और अपने नाम पर इसका नाम प्रवरेश्वर रखा था। यह नगर ६३१ ई० में चीनी तीर्थ यात्री की काश्मीर यात्रा के समय भी बसा हुआ था परन्तु यह काश्मीर की राजधानी नहीं थी। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने समय की राजधानी को "नयानगर" कहा है और उसका कथन है कि पुराने नगर के दक्षिण पूर्व में लगभग दो मील की दूरी पर तथा एक ऊंचे पर्वत के दक्षिण में था। इस विवरण में पाण्ड्रेथान तथा वर्तमान राजधानी की स्थिति की तख्त-ए-सुलेमान की स्थिति से तुलना इतनी सही है कि इन स्थानों को प्राचीन स्थानों का प्रतिनिधि स्वीकार करने में परेशानी नहीं हो सकती। पुराना नगर ९१३ तथा ९२१ में भी बसा हुआ था जब राजा पार्थ के मन्त्री मेरू ने पुरानाधिष्ठान अथवा प्राचीन राजधानी में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसे उसने अपने नाम पर मेरू वर्धनास्वामी कहा था। इस भवन को मैंने पाण्ड्रेथान के वर्तमान मन्दिर के अनुरूप माना है। जैसा कि कल्हण पण्डित लिखता है कि जिस समय राजा अभिमन्यु ने अपनी राजधानी को आग लगा दी थी "वर्धनास्वामी के मन्दिर से लेकर भिक्षुकीपारक तक" के सभी उत्तम भवन नष्ट हो गये थे मेरा विचार है कि चूने के पत्थर से बना यह भवन एक तालाब के बीच अपनी भाग्यशाली स्थिति के कारण बच गया था और मेरे विचार में इसी विपत्ति के कारण ही प्राचीन राजधानी निर्जन हो गई थी क्योंकि जन साधारण के सामान्य निवास्थान उस विनाशकारी अग्नि से बच गये होंगे जिसमें नगर के सभी महत्वपूर्ण स्थान नष्ट हो गये थे।

प्रवरसेनपुर अथवा नवीन राजधानी का निर्माण छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा प्रवरसेन द्वितीय ने करवाया था। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसका वही स्थान था जहाँ वर्तमान राजधानी श्रीनगर है। चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग तथा हिन्दू इतिहासकार कल्हण पण्डित के स्पष्ट एवं विशिष्ट तथ्यों से इस तथ्य की निश्चितता संदेह की किसी भी संभावना से परे है। प्रथम लेखक के कथन को मैं प्राचीन राजधानी की अपनी व्याख्या में उधृत कर चुका हूँ परन्तु इस व्याख्या में मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि ह्वेनसांग काश्मीर में दो वर्षों तक प्रवरसेन के मामा जयेन्द्र द्वारा निर्मित जयेन्द्र विहार में रहा था। हिन्दू लेखक ने नगर को दो नदियों के संगम स्थान पर अवस्थित बताया है तथा इसके मध्य में एक पहाड़ी भी बताई है। यह वर्तमान श्रीनगर का सही-सही उल्लेख है जिसके मध्य में हरि पर्वत है तथा जिससे होकर हर अथवा भर नदी नगर के उत्तरी छोर पर बेहात नदी में मिलती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार प्रवरसेनपुर के नवीन नगर ने अपना नाम त्याग कर श्रीनगरी के प्राचीन नाम को धारण कर लिया। मेरे विचार में इस कठिनाई को इस साधारण तथ्य से सुलझाया जा सकता है कि दोनों नगर वस्तुतः मिले हुए थे और चूंकि यह दोनों नगर पाँच शताब्दियों तक साथ-साथ जीवित रहे अतः दिल्ली की भाँति ही प्राचीन नाम राजधानी के परम्परागत अभिधान के रूप में जन-साधारण में नये नाम की उपेक्षा प्रचलित रहा होगा। यहाँ ठीक दिल्ली के प्राचीन नाम की भाँति स्थिति है। वहाँ क्रमबद्ध शासकों ने एक के बाद एक नवीन नगर का निर्माण करवाया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था और प्रत्येक नगर का नाम अपने निर्माता के विशिष्ट नाम पर रखा गया था परन्तु चूंकि यह सभी नगर दिल्ली के आस-पास में ही थे अतः प्राचीन प्रचलित नाम राजधानी के साथ बना रहा और प्रत्येक नया विशिष्ट नाम अन्त में "दिल्ली" के सामान्य नाम में लुप्त हो गया। इसी प्रकार, मेरा विश्वास है कि श्रीनगर के प्राचीन प्रचलित नाम ने अन्त में नवीन नगर प्रवरसेनपुर के नाम को अपने में समेट लिया था।

कल्हण पण्डित ने खाशीपुर तथा खुन्दामुश के नामों को राजा खगेन्द्र से संबंधित बताया है जिसने अशोक के छठे पूर्ववर्ती शासक के रूप में ४०० ई० पू० के लगभग शासन किया था। विलसन तथा ट्रायर ने इन दो स्थानों को मुस्लिम लेखकों के काकपुर तथा गौमोह के अनुरूप स्वीकार किया है। प्रथम अनुरूपता निश्चित है क्योंकि काकपुर आज भी बेहात के बायें तट पर तख्त-ए-सुलेमान से दस मील दक्षिण तथा पामपुर के पाँच मील दक्षिण में बसा हुआ है परन्तु गौमोह चाहे किसी भी स्थान पर हो उसकी अनुरूपता निस्सन्देह गलत है क्योंकि खुनामुश के स्थान पर अब खुनामोह का विशाल गाँव है जो पामपुर से ४ मील उत्तर पूर्व में एक पहाड़ी के नीचे अवस्थित है।

बिज बिआर अथवा विजीपार का प्राचीन नगर राजधानी से १५ मील दक्षिण पूर्व में बेहात नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ है। मूल नाम विजयपार था जिसे विजयेश के प्राचीन मन्दिर के नाम पर विजयपार कहा जाता था। यह मन्दिर आज भी देखने को मिलता है यद्यपि इसका फर्श पास-पड़ोस की भूमि से १४ फुट नीचे है। स्तर के इस अन्तर से यह पता चलता है कि इस मन्दिर के निर्माण के समय से आज तक कितने अवशेष एकत्रित हो गये हैं। जन साधारण के अनुसार अशोक ने २५० ई० पू० में इसका निर्माण कराया था। कल्हण पण्डित का कथन है कि अशोक ने विजयेश के ईंटों से बने पुराने मन्दिर को तुड़वाकर पत्थरों से पुनः इसका निर्माण करवाया था। यह सम्भवतः वही मन्दिर है जिसका उल्लेख, ईसा की कुछ शताब्दियों बाद राजा आर्य के शासनकाल में किया गया है।

सूरपूर आधुनिक सूपुर अथवा सोपुर विशाल वूलर झील के ठीक पश्चिम में बेहात नदी के दोनों तटों पर अवस्थित है। प्रारम्भ में इसे काम्बुवा कहा जाता था और पांचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में काश्मीरी इतिहास में इसका उल्लेख इसी नाम से दिया गया है। ८५४ तथा ८८३ ई० के बीच राजा अवन्ति के मन्त्री सूर ने इसका पुनर्निर्माण कराया था, जिसके नाम पर इसे सूरपुर कहा जाता था। बुलर झील के निकास स्थान पर अनुकूल स्थिति के कारण मेरे विचार में यह सम्भव है कि यह स्थान काश्मीर के प्राचीनतम स्थानों में एक है।

ईसवी काल के प्रारम्भ से कुछ ही समय पूर्व इण्डोसीथियन सम्राट कनिष्क ने कनिष्कपुर का निर्माण करवाया था। भारत की बोलचाल की भाषा में इसे कनिकपुर कहा जाता है, जिसे कशमीरी भाषा में और भी अधिक बिगाड़ कर कामपुर कहा जाता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है । यह श्रीनगर के दस मील दक्षिण में, पीर पंचाल के दर्रे की ओर जाते हुए मार्ग पर अवस्थित है । यह एक छोटा सा गाँव है जिसमें यात्रियों के लिए एक सराय है, जिसे कामपुर सराय कहा जाता है । कैप्टन मान्टगुमरी द्वारा बनाये गये काश्मीर के विशाल मानचित्र में यह नाम गलती से खानपूर लिखा गया है ।

हुष्कपुर, जिसका निर्माण इण्डोसीथियन सम्राट कनिष्क के भ्राता राजकुमार हुष्क अथवा हविष्क ने कराया था, बेहात नदी पर अवस्थित प्रसिद्ध वराहमूल अथवा बराहमूल (बारामूला) के समान प्रतीत होता है । अबुरिहान ने इसे "उश्कर कहा है, जो नदी के दोनों तटों पर अवस्थित बारामूला का नगर है ।" चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने भी इस नगर का उल्लेख इस नाम से किया है । ह्वेनसांग ने पश्चिम की ओर से पत्थर के द्वार से काश्मीर की घाटी में प्रवेश किया था तथा हू-सी-किया-लो अथवा हुष्कर मठ में विश्राम किया था । बारामूला के नाम ने प्राचीन विशिष्ट नाम का स्थान ग्रहण कर लिया है जो आज भी वर्तमान नगर से २ मील दक्षिण पूर्व तथा पहाड़ियों के ठीक नीचे अवस्थित उश्कर गाँव के रूप में जीवित है । मेरी प्रार्थना पर आदरणीय श्री डब्ल्यू कोवी इस स्थान पर गये थे तथा उन्होंने वहाँ पर एक अक्षुण्ण बौद्ध स्तूप देखा था । यह वही स्मारक है जिसे ७२३ से ७६० ई० के बीच राजा ललितादित्य ने बनवाया था । स्थानीय इतिहास में ६१३ ई० में रानी सुगन्धा के निवास्थान के रूप में पुनः इसका उल्लेख मिलता है । इन सभी विवरणों से यह निश्चित नगर का प्राचीन नाम पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रचलित था जब अबुरिहान ने इस नगर के दोनों नामों का उल्लेख किया है । परन्तु तत्पश्चात् स्थानीय इतिहास में केवल वराहमूल नाम का उल्लेख मिलता है । स्थानीय इतिहास में बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हर्ष तथा सुस्सल के शासनकाल में इसका उल्लेख किया गया है । मेरे विचार में यह सम्भव है कि नगर का मुख्य भाग नदी के बायें अथवा दक्षिणी तट पर रहा होगा तथा वराहमूल मूल रूप से नदी के दाहिने तट पर अवस्थित उपनगर था । बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद, जब हुष्कपुर के मठीय संस्थापन को त्याग दिया गया था, प्राचीन नगर भी आंशिक रूप से त्याग दिया गया होगा और वरामूल द्वारा इस नगर का स्थान लिये जाने के समय प्राचीन नगर को पूर्णतयः त्याग दिया गया होगा ।

जुष्कपुर का निर्माण कनिष्क तथा हुष्क के भ्राता, इण्डो-सीथियन राजकुमार जुष्क ने करवाया था । काश्मीरी ब्राह्मण इस स्थान को जुक्रु अथवा जुकुर के अनुरूप स्वीकार करते हैं जो राजधानी के उत्तर में ४ मील की दूरी पर एक बड़ा गाँव है । मैं नवम्बर १८४७ में इस स्थान पर गया था परन्तु नगर की प्राचीनता के जो चिह्न मैं देख सका था उन चिह्नों के पत्थर के अनेक स्तम्भ तथा काश्मीर की वास्तुकला के विशेष ढङ्ग से बनाये गये नमूने थे और इन सभी को काट-काट कर मुस्लिम मकबरों एवं मस्जिदों में आग लगा दिया गया था । परिहासपुर का निर्माण राजा ललितादित्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने करवाया था जिसने ७२३ से ७६० ई० तक शासन किया था। यह नगर आधुनिक सुम्बल गाँव के समीप वेहात नदी के दाहिने अथवा पूर्वी तट पर अवस्थित था। आस-पास के टीलों पर आज भी दीवारों के चिह्न एवं टूटे हुए पत्थर मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि यह नगर इसी स्थान पर रहा होगा परन्तु महत्वपूर्ण अवशेषों में केवल वेहात नदी पर एक पुल तथा एक नहर है जो वूलर भील से होकर नदी के मार्ग के कठिन मार्ग को छोड़कर सीधे सूपुर की ओर चली जाती है। चूंकि स्थानीय इतिहास में परिहासपुर का पुनः उल्लेख नहीं मिलता है अतः अवश्य ही इसके संस्थापक की मृत्यु के पश्चात् इस नगर को अति शीघ्र त्याग दिया गया होगा। स्वयं उसके पौत्र जयपीड ने एक भील के मध्य जयपुर नामक नवीन राजधानी का निर्माण करवाया था। जहाँ श्री द्वारवती नामक एक दुर्ग का निर्माण भी करवाया गया था परन्तु जन-साधारण में यह दुर्ग सदा "भीतरी दुर्ग" के नाम से पुकारा जाता रहा है। इस स्थान की स्थिति ज्ञात नहीं है परन्तु मेरा विश्वास है कि यह नगर परिहासपुर के ठीक सामने बिहात नदी के बोर तट पर था जहाँ अभी भी अन्तर कोट अथवा "भीतरी दुर्ग" नाम का एक गाँव है। जन साधारण के अनुसार शंकर वर्मा ने इस नगर का पूर्ण विनाश करवाया था जिसने ८८३ से ९०१ ई० तक राज्य किया था। कहा जाता है कि वह इस नगर के पत्थरों को नवीन नगर शङ्करपुर में ले गया था जो सुम्बलपुल के दक्षिण पश्चिम में ७ मील की दूरी पर पथन नगर के रूप में आज भी अवस्थित है। हठधर्मी किसी सिकन्दर बादशाह ने जिसने १३८९ से १४१३ ई० तक राज्य किया था। परि-हास के विशाल मन्दिर को तुड़वा दिया था। मुस्लिम इतिहासकारों ने इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक विचित्र कथा का उल्लेख किया है। परिहासपुर का उल्लेख करते समय अब्बुलफजल का कथन है कि "यहाँ एक विशाल मन्दिर था जिसे सिकन्दर ने नष्ट करवा दिया था। अवशेषों में एक ताँबे की एक तख्ती पाई गई है जिस पर भारतीय भाषा में इस आशय का एक लेख लिखा हुआ है कि ११०० वर्ष की अवधि समाप्त होने पर 'सकन्दर नाम के एक व्यक्ति द्वारा इस मन्दिर का विनाश होगा।" फरिश्ता ने इसी कथा का उल्लेख किया है और उसने राजा का नाम भी लिखा है जिसे उसने बलनत कहा है। सम्भवतः यह ललदित्त के स्थान पर गलती से लिखा गया है। काश्मी-रियों में ललितादित्त के नाम को छोटा कर प्रायः ललदित्त कहा जाता था। इस राज-कुमार तथा सिकन्दर के बीच केवल ७०० वर्षों का अन्तर है। आश्चर्य है कि स्थानीय गाथाओं में एक ऐसी तिथि को जीवित रखा गया है जो उनके स्थानीय इतिहास में दी गई तिथि से इतनी भिन्न है।

राजा वृहस्पति जिसने ८३२ से ८४४ तक राज्य किया था, के मन्त्री पदम ने पदमपुर का निर्माण करवाया था जिसे आजकल पामपुर कहा जाता है। यह राजधानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के दक्षिण पूर्व में ८ मील की दूरी पर तथा अवन्तिपुर के आधे मार्ग पर बेहात नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। यह स्थान अभी भी जनपूर्ण है तथा यहाँ के केसर के खेत सम्पूर्ण घाटी में सर्वोधिक उपजाऊ है।

अवन्तिपुर का निर्माण राजा अवन्ति वर्मा ने करवाया था जिसने ८५४ से ८८३ ई० तक शासन किया था। यह नगर वर्तमान राजधानी के दक्षिण पूर्व में १७ मील की दूरी पर बेहात नदी के दाहिने तट पर अवस्थित है। अब वहाँ वन्तिपुर नाम का एक छोटा गांव है परन्तु दो देदीप्यमान मन्दिरों के अवशेष तथा चारों ओर दीवारों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी समय एक विशाल नगर रहा होगा। नो नगर अथवा "नवीन नगर" जो नदी की दूसरी ओर बाढ़ से बनाई हुई ऊँची भूमि से संबंधित बतलाया जाता है। कहा जाता है कि अवन्तिपुर मूल रूप से नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ था।

उरश

ह्वेनसांग ने तक्षशिला तथा काश्मीर के बीच अ-ला-शी अथवा उरश जिले का उल्लेख किया है जिसे उसकी स्थिति के कारण तुरन्त ही टालमी के 'वरसा रीगा' तथा मुज्जफराबाद के पश्चिम में धन्तावर में आधुनिक रश जिले के अनुरूप समझा जा सकता है। काश्मीर की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों में इसका उल्लेख घाटी के समीप ही एक पर्वतीय जिले के रूप में किया गया है। जहाँ ६०१ ई० में राजा संग्कर वर्मा को घातक चोट लगी थी। यह अबुल फजल के परवली से ठीक-ठीक मिलता है जिसमें सिन्धु तथा काश्मीर के बीच दक्षिण में अटक की सीमा तक का सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश सम्मिलित था। वर्तमान समय में इस जिले के मुख्य नगर इस प्रकार है। उत्तर पूर्व में मानसेर, मध्य में नौशे, तथा दक्षिण पश्चिम में किशन गढ़, अथवा हरिपुर। ह्वेनसांग के समय में राजधानी को तक्षशिला से ३०० अथवा ५०० ली, ५० अथवा ८३ मील दूर बताया जाता था। दूरी में इस विभिन्नता के कारण सातवीं शताब्दी में राजधानी के वास्तविक स्थान को ढूंढना कठिन हो जाता है परन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह (राजधानी) मांगली में थी जो जन-साधारण के अनुसार जिले की प्राचीन राजधानी बताई जाती है। यह स्थान तक्षशिला के उत्तर-पश्चिम लगभग ५० मील की दूरी पर नौशेरा तथा मानसेर के मध्य में है।

ह्वेनसांग के अनुसार उरश का व्यास ३३३ मील था जो सम्भवतः सही है क्योंकि इसकी लम्बाई कुनिहार नदी के उदगम स्थान से गण्डगढ़ पर्वत तक १०० मील से कम नहीं है और इसकी चोड़ाई सिन्धु से बेहात अथवा झेलम नदी तक इसके संकुचित भाग में ५५ मील है। काश्मीर से इसकी दूरीं १६७ मील बताई गई है जिससे राजधानी को नौशेरा के आस-पास किसी स्थान पर तथा मांगल से कुछ ही मील के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भीतर दिखाया जा सकता है। जनश्रुतियों के अनुसार मांगल प्राचीन राजधानी थी।

तचिला अथवा तक्षशिला

तक्षशिला के प्रसिद्ध नगर की स्थिति आंशिक रूप से प्लिनी द्वारा दी गई त्रुटि पूर्ण दूरी के कारण तथा कुछ सीमा तक शाह ढेरी के आस-पास प्राप्त अवशेषों के सम्बन्ध में समुचित सूचना के अभाव के कारण अभी तक अज्ञात रही है। प्लिनी की सभी प्रतिलिपियों में एक हो बात निहित है कि तक्षशिला प्यूकोलेटिस अथवा हस्तनगर से केवल ५५ मील दूर था। इससे तक्षशिला का स्थान हसन अबदाल के पश्चिम अथवा सिन्धु नदी से दो दिन की यात्रा की दूरी पर हारो नदी पर किसी स्थान पर निश्चित होगा। परन्तु चीनी तीर्थ यात्रियों की मार्ग सूचक पुस्तकें इसे सिन्धु नदी के पूर्व में तीन दिन की यात्रा पर (१) अथवा काल का सराय के समीपस्त पड़ोस में दिखाने में सह-मत है। काल का सराय मुगल सम्राटों का तीसरा विश्राम स्थान था और आज भी यह स्थान सैनिकों एवं सामान के लिए सिन्धु नदी से तीसरा पड़ाव है। चूंकि चीन वापिस जाते समय ह्वेनसांग के साथ भार युक्त हाथो थे अतः तक्षशिला से सिन्धु की ओर उत्तखण्ड अथवा ओहिन्द तक उसको तोन दिन की यात्रा उतनी ही दूर की रही होगा जितनी कि आधुनिक समय की तीन दिन की यात्रा की दूरो हो सकता है और परिणाम स्वरूप तक्षशिला नगर के स्थान को काल का सराय के पड़ोस में किसी स्थान पर देखना चाहिए। यह स्थान शाहढेरी के समीप पाया गया है जो काल का सराय के उत्तर पूर्व में एक मील की दूरी पर एक सुदृढ़ नगर के विस्तृत अवशेषों में मिलता है। इसके आस पास मुझे कम से कम ५५ स्तूप २८ मठ तथा ६ मन्दिर ढूंढने में सफलता मिली थी जिनमें दो स्तूप विशाल माणिकयाल स्तूप के समान बड़े थे। इस समय शाहढेरो से ओहिन्द की दूरी ३६ मोल तथा ओहिन्द से हस्तनगर ३८ मील अधिक अथवा कुल मिलाकर ७४ मील है जो प्लिनी द्वारा दी गई तक्षशिला तथा प्यूकोलेटिस के बीच की दूरी से १६ मोल अधिक है। इस त्रुटि पूर्ण संख्याओं में समानता लाने के लिये मैं यह प्रस्ताव करूँगा कि प्लिनी के ६० माल का ८० मील पढ़ा जाना चाहिए जो ७३½ मील के बराबर है अथवा दोनों स्थानों के बीच की वास्तविक दूरी से केवल आधे मील के अन्तर पर है।

अभिजात लेखक तक्षशिला के विस्तार एवम् समृद्धि के सम्बन्ध में एकमत हैं। ऐरियन ने इसे "एक विशाल एवम् समृद्ध नगर तथा सिन्धु नदी एवम् हाइडसपीज़

(१) फाह्यान इसे पेशावर से सात दिन की यात्रा पर अर्थात सिन्धु नदी तक चार दिन तथा वहाँ से तक्षशिला तक तीन दिन की यात्रा पर बताया है। सुङ्ग-युन ने इसे सिन्धु नदी से पूर्व तीन दिन की यात्रा की दूरी पर बताया है। ह्वेनसांग ने इसे सिन्धु नदी के दक्षिण पूर्व तीन दिन की यात्रा पर कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(झेलम) के बीच सर्वाधिक जनपूर्ण नगर" कहा है। स्ट्रैबो ने भी इसके एक विशाल नगर होने की घोषणा की है तथा उसने यह भी कहा है कि आस-पास का प्रदेश "जन-पूर्ण तथा अत्याधिक उपजाऊ" था। प्लिनी ने इसे "अमन्द नामक एक जिले में निचली परन्तु समतल भूमि पर अवस्थित एक प्रसिद्ध नगर" कहा है। यह विवरण शाहढेरी के समीप प्राचीन नगर की स्थिति एवम् उसके विस्तार के विवरण से ठीक-ठीक मिलते हैं जिसके अवशेष अनेक वर्ग मीलों तक फैले हुए हैं।

सिकन्दर महान् के आगमन के लगभग ५० वर्ष बाद तक्षशिला के निवासियों ने मगध के सम्राट बिन्दु सार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था जिसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुसिमा को इस नगर का घेरा डालने के लिए भेजा था। उसकी असफलता पर घेरे का कार्य उसके छोटे पुत्र प्रसिद्ध अशोक को सौंपा गया था परन्तु जन साधारण २$\frac{1}{2}$ योजन अथ । १७$\frac{1}{2}$ मील चलकर युवक राजकुमार से भेंट करने एवम् उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिये उपस्थित हुए। अशोक के सिंहासनारोहण के समय कहा जाता है कि तक्षशिला के कोष में कुछ अनाम मुद्राओं के रूप में ३६ कोटी अथवा ३७०० लाख रुपया था जो चाहे चान्दी के टङ्कका के रूप में रहा हो अथवा ६ पेन्स की मुद्रा के रूप में ९ करोड़ अथवा ९,०००,००० ब्रिटिश पौण्ड के बराबर रहा होगा। यह सम्भव है कि भारतीय लेखकों ने जिस मुद्रा का उल्लेख किया है वह स्वर्ण मुद्रा थी। अतः इस दिशा में नगर का धन ९०० लाख अथवा एक करोड़ पौण्ड रहा होगा। मैं सिकन्दर के अभियान के पचास वर्षों के भीतर तक्षशिला की प्रसिद्ध समृद्धि के प्रमाण स्वरूप उपरोक्त कथन को उद्धृत किया है। स्वयं अशोक अपने पिता के शासनकाल में पञ्जाब के राज्यपाल के रूप में इसी स्थान पर रहा था और इसी स्थान पर ही उसका पुत्र कुनाल रहा था जो एक विचित्र बौद्ध कथा का मुख्य पात्र है। इस कथा का उल्लेख आगे चल कर किया जाएगा।

तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के अन्त से थोड़ा पूर्व मौर्य राजाओं के उत्तराधिकारी डेमिट्रियस तथा उसके पुत्र एन्थोडीमस के अधीन बेक्ट्रिया के यूनानियों के सम्पर्क में आये होंगे तथा अगली शताब्दी के प्रारम्भ में तक्षशिला यूक्रटाइडोज के भारतीय स्वतन्त्र अधिराज्य का भाग रहा होगा। १२६ ई० पू० में सुस अथवा अबर नाम की इण्डो सीथियन जाति ने इसे यूनानियों से छीन लिया। तक्षशिला तन चौथाई शताब्दी तक इस जाति के पास रहा। तत्पश्चात् कनिष्क महान् के नेतृत्व में इण्डोसीथियन की एक अन्य कुशान नामक जाति ने अधिकार कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुशान जाति के शासन काल में पेशावर इण्डोसीथिन साम्राज्य की राजधानी थी जबकि तक्षशिला का शासन क्षत्रपों के अन्तरगत था। स्थानीय राज्यपालों की अनेक मुद्रायें तथा उनके शिला लेख शाहढेरी एवम् माणिक्याल के स्थान पर प्राप्त हुए हैं इनमें सबसे महत्वपूर्ण एक ताँबे की तख्ती है जिसे मिस्टर राबर्ट ने प्राप्त किया था तथा जिस पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तक्षशिला के पाली स्वरूप तखशिला लिखा हुआ था इसी शब्द से यूनानियों को उनका तक्षशिला शब्द प्राप्त हुआ था।

४२ से ४५ ई० तक पारथिया के बरडनीय के शासन काल में टयाना के ओपोलो नीयस तथा उसके साथी असीरिया डमिस ने तक्षशिला की यात्रा की थी। फिलोस्ट्राटस का कथन है कि अपोलोनीयस की जीवनी में डमिस के यात्रा के विवरण का अनुसरण किया गया है। दार्शनिक के कार्य एवं कथनों के सम्बन्ध में दिया उसका विवरण अनेक स्थानों में स्पष्ट रूप से अतिशयोक्ति पूर्ण है परन्तु स्थानों का उल्लेख प्रायः परिमित एवं सत्य प्रतीत होता है। यदि उनका उल्लेख डमिस के विवरण में नहीं मिलता तो सिकन्दर के किन्हीं अनुयायियों के विवरण से इसे प्राप्त किया गया होगा और दोनों में किसी भी दिशा में यह विवरण महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अनेक ऐसी छोटी सूचनायें प्राप्त होती हैं जिनका अनियमित इतिहास में अभाव है। फिलोस्ट्राटस के अनुसार तक्षशिला "प्राचीन नीनस के असमान नहीं था तथा अन्य यूनानी नगरों के ढंग पर ही इस नगर के चारों ओर दीवारे बनाई गई थीं।" नीनस अथवा नीनवे को हमें बैबलोन पढ़ना चाहिए क्योंकि इस विशाल असीरियाई नगर के सम्बन्ध में हमें कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। हीरोडोटस के समय से लगभग दो शताब्दी पूर्व यह नगर नष्ट हो गया था। अब हमें कर्टियस से यह सूचना मिलती है कि बैबिलोन की "यथा प्रमाणता एव प्राचीनता" के कारण ही सिकन्दर एवं अन्य उन सभी आक्रमण कारियों को आकर्षित किया था जिन्होंने इसे सर्व प्रथम देखा था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि अपनी समानता के कारण तक्षशिला से यूनानियों को बैबिलोन का स्मरण हुआ होगा जैसा कि फिलोस्ट्राटस का कथन है कि यह नगर "बड़ो नियमितता से संकीर्ण गलियों में विभाजित था।" उसने एक सूर्य मन्दिर जो नगर की दीवारों से बाहर था तथा एक राज भवन का भी उल्लेख किया है जिसमें बलपूर्वक अधिकार करने वाले को बन्द रखा गया था। उसने एक स्टेडियम के समान लम्बे उद्यान का भी उल्लेख किया है जिसके मध्य में एक तालाब था जिसे "शीतल एवं विश्रान्त जल से" भरा गया था। इन सभी बातों पर एक भिन्न लेख में उस समय विचार किया जाएगा जब मैं इन प्राचीन नगर के वर्तमान अवशेषों का उल्लेख करूँगा।

तत्पश्चात् ४०० ई० तक हमें तक्षशिला (१) का उल्लेख नहीं मिलता। (२)

---

(१) तक्षशिला का उल्लेख २४० ई० तक मिलता है। तत्पश्चात् इसका विस्तृत विवरण कम नहीं है कि इस नगर का विनाश कब और किस प्रकार हुआ। मुसलमान लेखकों ने इसका उल्लेख नहीं किया है। अलबेरूनी ने कुमार विभाग पर टिप्पणी करते हुए इसे तक्षशिला अर्थात् मारीकल कहा है।

(२) देश की सीमायें उत्तर में उरश, पूर्व में झेलम, दक्षिण में सिंहपुर तथा पश्चिम में सिन्धु नदी थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४०० ई० में चीनी तीर्थ यात्री फाह्यान ने इस स्थान की यात्रा की थी। उसने इस नगर को चू-शा-शी-लो अथवा "कटा सिर" कहा है तथा उसने यह भी लिखा है कि "बुद्ध ने इस स्थान पर अपना सिर भिक्षा में दे दिया था और इसी कारण इस प्रदेश का यह नाम रखा गया था।" अनुवाद से पता चलता है कि संस्कृत का मूल नाम च्युत शिर रहा होगा जो "कटा हुआ शिर" का पर्यायवाची शब्द है। भारत के बौद्ध धर्मावलम्बियों में तक्षशिला को इसी सामान्य नाम से जाना जाता था। ५०२ ई० में सुङ्ग-युन ने "उस स्थान" की यात्रा की थी "जहाँ बुद्ध ने अपने सिर का भिक्षा दान दिया था" उसने इस स्थान को शिन-तू अथवा सिन्धु नदी के पूर्व तीन दिन की यात्रा पर बताया है।

अब हम चीनी तीर्थ यात्रियों के अन्तिम तथा श्रेष्ठ ह्वेनसांग का उल्लेख करेंगे जिसने ता-चा-शी-लो अथवा तक्षशिला की प्रथम यात्रा ६३० ई० में की थी तथा चीन वापसी के समय ६४३ ई० में पुनः इस नगर की यात्रा की थी। उसने नगर को व्यास में १$\frac{2}{3}$ मील कहा है। राजघराना लुप्त हो चुका था तथा यह प्रान्त जो इससे पूर्व कपिशा के अधीन था उस समय काश्मीर का आश्रित राज्य था। यहाँ की भूमि अनेक नदियों, नालों एवम् तालाबों से सिंचाई की सुविधा से अपने उपजाऊपन के कारण प्रसिद्ध थी। यहाँ पर अनेकानेक मठ थे परन्तु अधिकांश जर्जर अवस्था में थे तथा बहुत कम ऐसे भिक्षु थे जो महायान अथवा बौद्धधर्म के गोपनीय सिद्धान्तों का अध्ययन करते थे। नगर से २ मील उत्तर में सम्राट अशोक का स्तूप था। जिसका निर्माण उस स्थान पर कराया गया था जहाँ बुद्ध ने अपने पिछले जीवन में अपने सिर का भिक्षा-दान दिया था अथवा जहाँ जैसा कि किसी ने लिखा है बुद्ध ने "इतने ही जन्मों में १००० बार" अपने सिर की भिक्षा दी थी। यह स्तूप उन चार विशाल स्तूपों में था जो सम्पूर्ण उत्तर पश्चिमी भारत में प्रसिद्ध थे तथा तदनुसार अपनी वापसी के समय ह्वेनसांग ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि उसने "एक सहस्र सिरों के भिक्षा दान वाले स्तूप" पर दूसरी बार पूजा की थी। जिले का आधुनिक नाम चच-हजारा है जो मेरे विचार में शिरस सहस्र का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। तक्षशिला के क्षत्रप (राज्यपाल) लियाको कुजुलक की ताँबे की तख्ती पर इसका नाम छहर चुक्ष लिखा गया है जो उपरोक्त नाम का एक अन्य भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है।

चीनी तीर्थ यात्रियों के इन विवरणों से हम देखते हैं कि तक्षशिला बुद्ध के सर्वश्रेष्ठ भिक्षा कार्य जब उसने अपना सिर भिक्षा में दे दिया था—के रूप में सभी बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिये विशेष महत्व रखता था। मेरा विचार है कि इस कथा की उत्पत्ति को तक्षशिला नाम में ढूंढा जा सकता है। जिसका अर्थ है। "कटा हुआ पत्थर" और जिसे थोड़े परिवर्तन के बाद तक्षशिरा अर्थात् "कटा सिर" बना दिया गया था। या तो कथा से नाम की उत्पत्ति हुई है अथवा नाम से मिलाने के लिए कथा का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अविष्कार किया गया है। (१) इस सम्बन्ध में हमें यह निश्चित मान लेना चाहिये कि दूसरी बात ही सही है क्योंकि यूनानियों ने बौद्ध धर्म द्वारा समस्त प्रदेश में शक्य बुद्ध के प्रशंसनीय कार्यों की असीमित कथाओं से फैलाये जाने से पूर्व मूल नाम के उच्चारण को सुरक्षित रखा था। कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि बुद्ध ने किसे सिर दान दिया था परन्तु मेरा विश्वास है कि यह दान एक भूखे शेर को दिया गया था जिसके सात बच्चों को अपना रक्त देकर बुद्ध ने पहले ही बचाया था। मेरा यह विश्वास इस तथ्य के कारण है कि ध्वस्त नगर के ठीक उत्तर के प्रदेश को बबर खाना कहा जाता है। यह नाम महमूद के समय पुराना है क्योंकि अबु-रिहान ने 'बबरकान' को सिन्धु तथा झेलम के बीच आधे मार्ग पर बताया है। यह वर्णन प्राचीन तक्षशिला के बबरखाना के लिये भी समान रूप से लागू होता है। यह तुर्की नाम है अतः इतना प्राचीन है जितना कनिष्क का शासन काल। इस नाम के निरन्तर सत्ता से मेरा अनुमान है कि विशाल स्तूप समीपस्थ ही एक मन्दिर था जिसमें बुद्ध को शेर को अपना सिर दान करते दिखाया था। इस मन्दिर को तुर्कों ने स्वभावतः बबरखाना "शेर का घर" कहा होगा और चूंकि तक्षशिला का ह्रास हो गया इस मन्दिर का नाम उस नगर के नाम से पूर्व ही धीरे-धीरे लुप्त हो गया होगा। मेरा विश्वास है कि बुद्ध के अत्यधिक उदारतापूर्वक कार्य को मारगल अथवा "कटा सिर" के नाम में सुरक्षित रखा गया है जो शाहढेरी के दक्षिण में २ मील दूर एक पहाड़ी को दिया गया है। मारगल का अक्षरशः अर्थ है गला काटना जिसे गल मार्टन से लिया गया है जो "गला काटने" का मुहावरेदार वर्णन है।

शाहढेरी के समीप प्राचीन नगर के अवशेष जिन्हें मैं तक्षशिला के अनुरूप समझने का प्रस्ताव करता हूँ—उत्तर से दक्षिण ३ मील तथा पूर्व से पश्चिम २ मील के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं। अनेक स्तूपों एवम् मठों के अवशेष चारों ओर अनेक मीलों तक फैले हुए हैं परन्तु नगर के वास्तविक अवशेष उपरोक्त लिखित सीमाओं में ही सीमित हैं। इन अवशेषों में अनेक पृथक भाग हैं जिन्हें आज भी भिन्न-भिन्न नामों से

---

(१) तक्षशिला का नाम प्रायः नागराज तक्षक से सम्बन्धित किया जाता है। तक्षक के वंशज टक्क है जो उस समय देश पर राज्य करते थे। इस नाम का अर्थ गुन्थी चट्टान भी हो सकता है क्योंकि यह नगर मिट्टी अथवा ईंटों के स्थान पर पत्थर से बना हुआ था। संस्कृत शिरस प्राकृत से सिला (सिर) के समान है अतः इसका अर्थ कटा हुआ सिर भी हो सकता है। इसी स्थान पर बुद्ध ने अपने सिर की बलि दी थी। यह एक बहुत बड़ा बौद्ध तीर्थ था तथा यहाँ एक विश्वविद्यालय भी था।

सुङ्ग-युन ने लिखा है कि बुद्ध ने एक अन्य व्यक्ति की जीवन रक्षा हेतु अपना सिर अर्पित कर दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुकारा जाता है। इन निर्माण कार्यों की सामान्य दिशा दक्षिण, दक्षिण पश्चिम से उत्तर-उत्तर पूर्व की ओर है और मैं इसी क्रम से इनका उल्लेख करूँगा। दक्षिण से शुरू करने पर उनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) बीर अथवा फेर
(२) हतियाल
(३) सिर-क्रप-का-कोट
(४) कच्चा कोट
(५) बबरखाना
(६) सिर सुख का कोट

जन साधारण के विश्वासानुसार इन अवशेषों का प्राचीनतम भाग एक विशाल टीला है जिस पर बीर अथवा फेर नाम का एक छोटा गाँव बसा हुआ है। यह टीला उत्तर से दक्षिण ४००० फुट लम्बा तथा २६०० फुट चौड़ा है जिसका व्यास १०,८०० फुट अथवा २ मील से भी अधिक है। शाहढेरी के पथरीले गाँव की ओर पश्चिम दिशा में बीर टीले की ऊचाई अपने समीपस्थ खेतों से १५ से २५ फुट है परन्तु जैसे-जैसे यह टीला शाहढेरी का ओर ढलवां होता जाता है इसकी सामान्य ऊँचाई २५ से ३५ फुट से कम नहीं है। पूर्व की ओर तबरा अथवा तमरा नाले के ठीक ऊपर यह टीला खेतों से ४० फुट तया नाले के स्तर से ६८ फुट ऊपर उठ जाता है। दोवारों के अवशेष पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर केवल कुछ स्थानों पर देखे जा सकते हैं परन्तु सम्पूर्ण पृष्ठ भाग टूटे हुए पत्थरों तथा ईंटों एवम् चानी के बर्तनो के टुकड़ो से ढका हुआ है। इस स्थान पर पुरानी मुद्रायें अवशेषों के अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा अधिक संख्या में प्राप्त हैं और इसी स्थान पर ही एक मात्र व्यक्ति ने केवल दो घण्टे ही में मेरे लिए वैडूर्य (एक नीला बहुमूल्य रत्न) के दो मुट्ठी भर छोटे-छोटे टुकड़े एकत्रित कर लिये थे जो अन्य किसी स्थान पर दिखाई नहीं देते। स्थान के विस्तार से मेरा अनुमान है कि यह ह्वेनसांग के समय नगर के बसे हुए भाग का मुख्य स्थान रहा होगा। जिसने इसे व्यास में १$\frac{3}{4}$ मील बताया है। बबरखाना की भूमि के मध्य में विशाल ध्वस्त दुर्ग की स्थिति से उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। यह भूमि बोर के टीले के समीपस्थ छोर से ८००० फुट उत्तर, उत्तर पूर्व में तथा मुख्य प्रवेश द्वार से प्राचीन नगर के मध्य तक १००० फुट अथवा प्रायः २ मील की दूरी पर है। चूंकि ह्वेनसांग ने "सिर भिक्षा" के स्तूप को नगर से उत्तर की ओर २ मोल से कुछ अधिक बताया है अतः मेरा अनुमान है कि इस बात में लेशमात्र सन्देह नहीं हो सकता कि उसके समय का नगर बीर के टीले पर बसा हुआ था। मैंने टीले के उत्तर तथा पूर्वी किनारे पर तीन छोटे बौद्ध स्तूपों के अवशेषों की खोज को थो जिन्हें पहले ही ग्रामवासियों ने खोद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया था परन्तु उन्होंने इस तथ्य का जोरदार खण्डन किया। उनका कथन था कि जनरल एबाट तथा मेजर पीर्यस ने इन स्तूपों की छान बीन की थी।

हतियाल, मार्गल पर्वत माला के उभड़े भाग के पश्चिमी छोर पर एक सुरक्षित स्थान है तथा बीर टीले के ठीक उत्तर पूर्व में है। तबरा नाला हतियाल को बीर टीले से अलग करता है। बीर से प्रायः आधे मील की दूरी पर यह उभड़ा भाग प्रायः दो समानान्तर पर्वत पृष्ठों में विभाजित हो जाता है जो एक दूसरे से १५०० फुट दूर है तथा पश्चिम में तबरा के किनारे तक फैले हुए हैं जहाँ एक ऊँचे प्राचीर से दोनों मिल जाते हैं। इस प्रकार दोनों पर्वत पृष्ठों से घिरा हुआ स्थान २००० फुट × १००० फुट से अधिक नहीं है परन्तु पर्वत पृष्ठ तथा कृतिम प्राचीर के साथ-साथ रक्षा पंक्ति का पूर्ण व्यास लगभग ८४०० फुट अथवा १½ मील से कुछ अधिक है। पूर्वी छोर पर दानों पर्वत पृष्ठों को १५ फुट चार इन्च चौड़ी पत्थर की दीवार से मिला दिया गया है। इस दीवाल के स्थान-स्थान पर चतुर्भुजाकार बुर्ज है जो इस समय की अत्यधिक अच्छी हालत म है। दक्षिणी अथवा मुख्य पर्वत पृष्ट खेतों के सीमान्त स्तर से २९१ फुट ऊँचा ह जबकि उत्तरी पर्वत पृष्ठ केवल १९२ फुट ऊँचा उठा हुआ है। इन दोनों के बीच २०६ फुट ऊँचा एक छोटा पथरीला पर्वत पृष्ठ है जिसके शिखर पर एक विशाल बुर्ज अथवा अटारी है। जिसे जन साधारण में स्तूप समझा जाता है। उत्तरी पर्वत पृष्ठ पर इसी प्रकार का बुर्ज है। इसकी खोज की प्रेरणा मुझे नूर नामक एक ग्रामीण से मिली थी जिसने मुझे सूचित किया था कि उसे इस बुर्ज के चारों कोणों से एक तांबे की मुद्रा प्राप्त हुई थी जिस वह इस विश्वास का निश्चित प्रमाण समझता था कि यह भवन एक बोद्ध स्तूप था। मुझे ज्ञात था कि वर्मा में चतुर्भुजाकार सुदृढ़ बनाये गये नगरों मे किनार के चारों उभड़े भागों पर स्तूप बनाये जाने की प्रथा थी परन्तु मेरी खुदाई मे जिस २६ फुट की गहराई तक निचली चट्टान तक ले जाया गया था। वहां विशाल ऊँचे-नीचे पत्थरों का सीढ़ियाँ प्राप्त हुई थीं जिन्हें बड़ी कठिनाई से निकाला गया था। इस अटारी के पश्चिम की ओर समीप ही मैंने १६३ फुट लम्बे एवम् ११५½ फुट चौड़े आंगन का खोज का थी। यह आंगन चारों ओर दो-दो कमरों में विभाजित था अतः मैंने सर्व प्रथम यह अनुमान लगाया कि यह भवन एक मठ रहा होगा परन्तु गुलेलबाजो द्वारा अपनाई जाने वाली गोलियों के आकार को जली हुई मिट्टी की गोलियों का प्रचुर मात्रा मे पश्चातवर्ती प्राप्ति से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह स्थान सम्भवतः केवल सैनिकों का रक्षक गृह रहा होगा। दोनों पर्वत पृष्ठ पश्चिम की ओर १२०० फुट तक बहुत ढलवां हो जाते हैं यहाँ तक कि यह दोनों मध्यवर्ती भूमि के सामान्य स्तर से मिल जाते हैं। यह स्थान दुर्ग के दो प्रवेश द्वार हैं जिनमें एक दूसरे के ठीक उत्तर में है। उत्तरी पर्वत पृष्ठ पुनः ऊपर उठता है तथा पश्चिम, दक्षिण पश्चिम की ओर २००० फुट तक जाने के बाद १३० फुट ऊँचे चतुर्भुजाकार शिखर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाले टीले से मिल जाता है। पर्वत पृष्ठ का यह भाग जर्जर भवनों के अवशेषों से पूर्णतयः सटा हुआ है और इसके पूर्वी छोर के समीप ही ग्रामीण नूर ने एक जर्जर स्तूप से तांबे की कुछ मुद्रायें प्राप्त की थीं। हति ाल के नाम के सम्बन्ध में मैं किसी प्रकार की कोई सूचना एकत्रित नहीं कर सका परन्तु सम्भवतः यह पुराना नाम है क्योंकि मेरे विचार में इसे हट्टियार-लङ्क के अनुसार समझा जा सकता है जिसे अबुल फजल ने सिन्ध सागर दोआब में बताया है। नाम के उच्चारण के हट्टि अर्थात दुकान का संकेत मिलता है तथा हटि्टयाल बाजार का नाम रहा होगा। परन्तु हतियाल दुर्ग इस प्राचीन स्थान के दुर्ग के रूप में इतना प्रत्यक्ष है कि मैं उपरोक्त व्युत्पत्ति के अत्यधिक सन्देहस्पद समझता हूँ।

सिर-कप का सुरक्षित नगर हतियाल के उत्तरी अधोभाग पर एक विशाल समतल टीले पर बसा हुआ है। वस्तुतः यह हतियाल का ही एक भाग है क्योंकि इसकी दीवारें दुर्ग की दीवारों से मिली हुई हैं। यह उत्तर से दक्षिण की ओर लम्बाई में आधा मील है जिसको चौड़ाई दक्षिणी छोर पर २००० हजार फुट है परन्तु उत्तरा छोर पर यह केवल १४०० फुट चौड़ा है। सिरकप का व्यास ८३०० फुट अथवा १$\frac{1}{3}$ मील से कुछ अधिक है। इसकी दीवारें जो पूर्णतः चर्तुभुजाकर पत्थरों से बनाई गई हैं, १४ फुट ६ इञ्च मोटी है जिसके ऊपर ३० फुट आकार के चर्तुभुजाकार बुर्ज हैं जिन्हें १४० फुट के पर्दों से अलग किया गया है। पूर्वी तथा उत्तरी दीवारें सीधी हैं परन्तु पश्चिमी दीवार की रेखा, गहरी गुफा से टूट गई है। इन दीवारों में प्रत्येक में दो विशाल दीवारें हैं। कहा जाता है कि यह सभी प्राचीन द्वारों के स्थान थे। इनमें उत्तरी भाग की दरार द्वार के रूप में निश्चित है। क्योंकि यह हतियाल दुर्ग के दो प्रवेश द्वारों के ठीक उत्तर में तथा बब्बर खाना में तीन ध्वस्त टीलों के ठीक दक्षिण में है। इसी प्रकार पूर्व की द्वार अवस्थिति भी निश्चित है क्योंकि द्वार की दीवारों के कुछ अंश इस द्वार तक आने वाली सड़क के भागों के अंशों सहित अब भी विद्यमान हैं। पश्चिम की ओर उपर्युक्त द्वार के ठीक सामने तीसरा द्वार भी प्रायः निश्चित है क्योंकि नगर के भीतर समस्त प्राचीन आधार शिलायें उत्तर तथा दक्षिणी कोणों पर बड़ी सावधानी से रखी गई है। सिरकप की स्थिति प्राकृतिक रूप से अत्यधिक सुदृढ़ है क्योंकि यह सभी ओर से अच्छी तरह सुरक्षित है। दक्षिण में हतियाल के ऊंचे दुर्ग से, पश्चिम में तबरा नाला से, तथा पूर्व तथा उत्तर दिशा में गोउ-नाला से। दोनों स्थानों की दीवारों का सम्पूर्ण व्यास १४२०० फुट अथवा प्रायः २$\frac{3}{8}$ मील है।

कच्चा कोट अथवा "मिट्टी का दुर्ग" गऊ-नाला से सङ्गम स्थान से कुछ नीचे तबरा-नाला के दोहरे चक्कर से बनाए हुए सुदृढ़ एकान्त स्थान में सिरकप के उत्तर में अवस्थित है। तबरा तथा गऊ-नाला दोनों मिलकर इस स्थान को पूर्व में छोड़कर अन्य सभी ओर से घेरे हुए है। कच्चे कोट की प्राचीरे जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्णतः मिट्टी की बनी हुई है तथा नदी से ३० से लेकर ५० फुट की ऊंचाई तक उठी हुई हैं। पूर्व की ओर किसी रक्षा पंक्ति के चिह्न नहीं है और इसके भीतर किसी भवन का कोई चिह्न नहीं है अतः यह कहना कठिन है कि इसका निर्माण किस उद्देश्य से किया गया था। चूंकि गऊ-नाला इससे होकर गुजरता है अतः मेरे विचार में यह संभव प्रतीत होता है कि कच्चा कोट घेरे की स्थिति में हाथियों एवम् अन्य पशुओं की सुरक्षा हेतु बनवाया गया हो। व्यास में यह ६७०० फुट अथवा १$\frac{1}{4}$ मील से अधिक हैं। जन-साधारण इसे प्रायः कोट कहा करते थे। सिरकप को भी इसी नाम से पुकारा जाता था परन्तु जब उन्हें दोनों स्थानों में भेद करना होता तो वह इसे कच्चा कोट कहा करते थे। 'बाबरनामा' एवम् 'आईने अकबरी' दोनों में ही इस नाम का उल्लेख मिलता हैं। बाबरनामा में हारो नदी को कच्चा कोट की नदी कहा गया है जो अवश्य ही उस नदी के तट के समीप कोई बड़ा स्थान रहा होगा परन्तु मुझे सन्देह है कि इस स्थान को हसन अबदल के समीप अथवा उससे भी कुछ नीचे देखा जाना चाहिये।

बबरखाना, उत्तर में लुण्डी नाला तथा दक्षिण में तबरा तथा गौ नालों के बीच के भू-भाग का नाम है। इस भू-भाग में कच्चा कोट सम्मिलित है तथा इसका विस्तार कच्चा कोट के पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर लगभग एक मील तक है जिसमें उत्तर पश्चिम की ओर सेरी-की-पिण्ड का विशाल टीला तथा पूर्व में गंगू समूह के स्तूप एवम् अन्य अवशेष सम्मिलित हैं। इस भू भाग के ठीक मध्य में जहाँ लुण्डी तथा तबरा नाले एक दूसरे से १००० फुट की दूरी पर रह जाते हैं ४५ फुट ऊँचा एक टीला है जिसे समीप के एक छोटे गाँव के नाम पर झण्डियाल पिण्ड कहा जाता है। पिण्ड अथवा टीले के पश्चिम की ओर खण्डहरों का एक अन्य टीला है जो इससे अधिक चौड़ा है परन्तु केवल २६ फुट ऊँचा है। प्रत्यक्ष रूप से यह एक विशाल मठ के खण्डहर है। यह उल्लेखनीय है कि हतियाल के दोनों द्वारों से तथा सिरकप के उत्तरी द्वार से होकर जाने वाली सड़क इन दोनों टीलों के मध्य से जाती है और झण्डियाल पिण्ड से १२०० फुट दूर लुण्डिनाला के तट पर विशाल स्तूप के खण्डहरों से मिल जाती है। मेरा विश्वास है कि यह अन्तिम स्तूप प्रसिद्ध "सिर की भिक्षा का स्तूप" हैं जिसे ईसवी पूर्व की तृतीय शताब्दी में सम्राट अशोक द्वारा निर्मित बताया जाता है। मैं ह्वेनसांग द्वारा दिये गये उल्लेख का ठीक-ठीक उत्तर देने वाली इसकी स्थिति का संकेत दे चुका हूँ और अब मैं इस विचार की पुष्टि के रूप में इतना और जोड़ देना चाहूँगा कि तक्षशिला नगर की ओर जाने वाली मुख्य सड़क झण्डियाल स्तूप के उत्तर सीधी रेखा में बनाई गई थी। यह तथ्य निर्विवाद रूप से उच्च सम्मान को सिद्ध करता है जो इस विशेष स्मारक को उस समय प्राप्त रहा होगा। उत्तर पश्चिम में ३६०० फुट दूर एक अन्य टीले की समीपता से इसकी पुष्टि होती है जिसे सेरी की पिण्ड अथवा सिरी की-पिण्ड कहा जाता था जो बुद्ध के सिरशादानम अथवा सिरदान की ओर संकेत करता प्रतीत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होता है। इस सभी बातों पर विचार करने से मेरा विचार है कि बबरखाना के विशाल ध्वस्त स्तूप को बुद्ध के "सिरदान" के स्तूप के अनुरूप स्वीकार कर लेने के अधिक ठोस प्रमाण प्राप्त हैं।

सिरसुक नाम का विशाल सुरक्षित गढ़ लुण्डी नाला से आगे बबरखाना के उत्तर पूर्वी छोर पर अवस्थित है। आकृति में यह चतुर्भुज के अति समीप है जिसके उत्तरी तथा दक्षिणी किनारे ४ लम्बाई में ४५०० फुट, पश्चिमी किनारा ३३०० फुट तथा पूर्वी किनारा ३००० फुट हैं। इस प्रकार कुल व्यास १५,३०० फुट अथवा लगभग तीन मील है। दक्षिणी भाग जो लुण्डी नाला से द्वारा सुरक्षित है बनावट में सिरकप की रक्षा पंक्ति के समान है। इसकी दीवारें पत्थरों की बनी हुई हैं जिनका केवल वाह्य भाग चकोर बनाया गया है। यह दीवारें १८ फुट मोटी हैं तथा १२० फुट के अन्तर पर चतुर्भुजाकार बुर्ज हैं। इस भाग के बुर्ज एक ओर की अपेक्षा दूसरी ओर संकरी नींव सहित बड़ी सावधानी से बनाये गये हैं जिनके सभी पत्थरों को अच्छी तरह तिरछा रख कर एक ढलवान बनाई गई है। दक्षिण पूर्वी छोर का बुर्ज जो वर्तमान खड़े खण्डरों में सबसे ऊँचा भाग है—भीतरी भाग से १० फुट ऊपर तथा नदी के तट की निचली भूमि से २५ फुट ऊपर उठा हुआ है। पश्चिम की ओर-जहाँ पत्थर हटा दिये गये हैं—दक्षिणी दीवार भीतरी समतल से २ अथवा २ फुट से अधिक ऊँची नहीं है। पूर्वी तथा पश्चिमी दिशा में लगभग आधी दीवारें आज भी देखी जा सकती हैं परन्तु उत्तर की ओर की दीवार का कोई चिह्न नहीं रहा। केवल दो किनारों पर कुछ टीले देखे जा सकते हैं। इन दीवारों के भीतर एक विशाल ध्वस्त टीले सहित मीरपुर, तुपकिया तथा पिन्ड नामक तीन गाँव है। इस टीले को पिंडोरा कहा जाता है और अधोभाग में ६०० वर्गफुट है। पिंडोरा के दक्षिण में तथा तुपकिया गांव के समीप एक छोटे टीले पर एक खानगाह अथवा एक मुस्लिम महात्मा की समाधि है। चूंकि इसे चतुभुजाकार पत्थरों से बनाया गया है अतः मेरा अनुमान है कि खानगाह किसी स्तूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसके नाम पर तुपिया गाँव का नाम पड़ा होगा और पिंडोरा का विशाल टीला एक बहुत बड़ा मठ रहा होगा। मैंने पत्थरों की दो विशाल नालियां प्राप्त की थी जिनके आकार से यह प्रतीत होता है कि उनका प्रयोग आंगन से दीवार के बाहर वर्षा का पानी निकालने के लिए ही किया गया होगा। पश्चिम की ओर लगभग आधे मील की दूरी पर ऊंचे मिट्टी के टीलों की एक वाह्य दीवार है जो उत्तर तथा दक्षिण में २००० फुट से अधिक दूरी तक चली गई है जहाँ यह पूर्व उत्तर पूर्व की ओर मुड़ जाती है। तत्पश्चात् यह वाह्य रेखा ३५०० फुट तक केवल एक चौड़े क्षेत्र में फैले हुए टूटे हुए पत्थरों से पहचानी जा सकती है। यहाँ यह दीवार १२०० फुट तक दक्षिण पूर्व की ओर मुड़ जाती है तथा सिर कप की उत्तरी दीवार में मिल जाती है। यह वाह्य रेखायें किसी बड़े निर्माण कार्य की अवशेष प्रतीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती हैं जिसका उत्तरी पश्चिमी कोण किसी समय लुंडि नाला पर आधारित रहा होगा। सिरसुक एवं इसके निर्माण कार्यों का कुल व्यास लगभग २०,३०० फुट अथवा लगभग ५ मील है।

मैं अब इस विशाल नगर के सभी भिन्न-भिन्न भागों की व्याख्या कर चुका हूँ जिसके ६ वर्ग मील में फैले हुए खन्डहर पञ्जाब में किसी भी प्राचीन स्थान के खन्डहरों की अपेक्षा अधिक विस्तृत, अधिक रुचिकर एवं अत्यधिक अच्छी हालत में हैं। हतियाल दुर्ग एवं इसके अन्य निर्माण कार्यों बीर एवं कच्चाकोट सहित सिरकप नगर का व्यास ४¾ मील है तथा सिरसुक का विशाल दुर्ग अपने अन्य निर्माण कार्यों सहित इतने ही आकार का है। यह दोनों ही लगभग इतने विशाल हैं जितना शाहजहाँ का राजकीय नगर दिल्ली। परन्तु स्तूपों, मठों एवं अन्य धार्मिक भवनों की संख्या एवं आकार नगर के अत्यधिक विस्तार से भी अधिक आश्चर्यजनक हैं। यहाँ पर मुद्रायें एवं प्राचीन काल के पदार्थ सिन्धु तथा झेलम के बीच अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। अतएव यही शिला का स्थान रहा होगा जो प्राचीन लेखकों की एक मत साक्षी के अनुसार सिन्धु एवं हाईडस्पीज के बीच सबसे बड़ा नगर था। स्ट्रैबो तथा ह्वेनसांग दोनों ने यहाँ की भूमि के उपजाऊ होने का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने यहाँ के झरनों एवं जल मार्गों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। चूंकि उपरोक्त विवरण केवल तबरा नाला के उत्तर की समृद्ध भूमि के अनुकूल है जिसे हारो नदी से खीची गई अनेक नालियों से पर्याप्त रूप से सींचा जाता है अतः मेरी दी हुई अनुरूपता का प्रमाण पर्याप्त है। बनस ने १८३२ ई० में इस भू-भाग को पार किया था जब उसने शाहढेरी से तीन मील उत्तर तथा हारो नदी के लगभग एक मील दक्षिण में पड़ाव किया था। उसने इस गाँव का उल्लेख "वाह्य पहाड़ियों के अधोभाग के समीप एक घाटी के मुहाने समतल भूमि पर" खड़े एक गाँव के रूप में किया है। यह विवरण स्टेबो तथा प्लिनी के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है जिन्होंने तक्षशिला को एक समतल प्रदेश में बसा हुआ बताया है जहाँ पहाड़ियाँ समतल मैदानों के साथ मिलती हैं। उसमान के सम्बन्ध में वर्नस ने आगे लिखा है कि "यहाँ की चरागाहें पर्वतों से निकली सर्वाधिक सुन्दर एवं स्वच्छ छोटी नदियों से सींची जाती हैं।" इस कथन के प्रथम भाग में उसका कथन यर्थाथ है परन्तु अन्तिम भाग में निःसन्देह उसका कथन त्रुटिपूर्ण है क्यों कि पानी का प्रत्येक कण जो उसमान से होकर गुजरता है हारो नदी कृतिम साधनों द्वारा खींचा गया है। दो मील दक्षिण में सिचाई कार्य लुन्डी नाला को पार कर किया जाता है। परन्तु इस नदी का सम्पूर्ण जल कृतिम साधनों से हारो नदी से प्राप्त किया गया है। अतः सिचाई का पूरा प्रबन्ध वस्तु उसी नदी से हुआ समझा जाना चाहिये।

ह्वेनसांग ने शिला के जिले को व्यास में २००० ली अथवा ३३३ मील बताया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इसकी सीमायें पश्चिम में सिन्ध नदी, उत्तर में उरश का जिला, पूर्व में झेलम अथवा बेहात नदी कथा दक्षिण में सिंहपुर का जिला थीं। चूंकि सिंहपुर की राजधानी नमक की पहाड़ियों में केटास अथवा उसके समीप थी अतः उस ओर तक्षशिला की सीमायें सम्भवतः दक्षिण पश्चिम में सुहान नदी द्वारा निश्चित थी तथा दक्षिण पूर्व में बिकराल पर्वत श्रेणी द्वारा निर्धारित की गई थी। इन सीमाओं को प्रायः सही स्वीकार करने से सिन्धु तथा झेलम की सीमान्त रेखा लम्बाई में क्रमशः ८० मील तथा ५० मील होंगी तथा उत्तरी एवं दक्षिणी सीमायें क्रमशः ६० तथा १२० मील अथवा कुल मिला कर ३१० मील होंगी जो ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों के अति समीप है।

मानिक्याल

मानिक्याल के प्रसिद्ध स्तूप अथवा बौद्ध स्मारक की सूचना एल्फिन्स्टन की यात्रा से मिलती है और जनरल वेन्चूरा एवं जनरल कोर्ट के द्वारा इसकी खोज की जा चुकी हैं। यह नाम राजा मान अथवा मानिक से प्राप्त किया गया बताया जाता है, जिसने इस प्रसिद्ध स्तूप का निर्माण करवाया था। यह प्रथा सम्भवतः सही है क्योंकि मैंने गाँव के पूर्व में एक छोटे बौद्ध स्तूप से एक मुद्रा तथा मानिगल के पुत्र क्षत्रय जिहोनिया अथवा ज्योनिसस की अस्थियां प्राप्त की थीं। प्राचीन नगर जिसे प्रायः मानिकपुर अथवा मानिक नगर कहा जाता है। रसालू की विचित्र पौराणिक कथा का स्थान बताया जाता है जिसने वहाँ के राक्षसों को निष्कासित किया था तथा जनसाधारण को सिर-कप अर्थात् सिर काटने वाले व्यक्ति एवं उसके भाइयों के अत्याचार से मुक्त कराया था।

मानिक्याल के नाम का उल्लेख किसी भी चीनी तीर्थ यात्री ने नहीं किया यद्यपि उनमें प्रत्येक व्यक्ति ने इस स्थान की स्थिति का उल्लेख किया है। फाह्यान ने केवल इतना ही कहा है कि तक्षशिला से पूर्व दो दिन की यात्रा पर वह स्थान है जहाँ बुद्ध ने "एक भूखे शेर को अपना शरीर अर्पित कर दिया था।" परन्तु सुङ्ग-युन ने इस कृति की घटना के स्थान को गान्धार की राजधानी के दक्षिण पूर्व में आठ दिन की यात्रा पर निश्चित किया है, जो पेशावर से अथवा हश्त नगर से मानिक्याल के दूरी का सही वर्णन है। अन्त में ह्वेन सांग ने "शरीर दान" के स्थान को शिला के दक्षिण पूर्व में लगभग ३४ मील की दूरी पर बताया है जो कि शाहढेरी से मानिक्याल की दिकांश एवम् दूरी का सही उल्लेख है परन्तु उसका यह कथन है कि उसने शिनतू अथवा सिन्धु नदी को पार किया था सुहान अथवा सूआन नदी के स्थान पर एक साधारण त्रुटि है। यह नदी इन दोनों स्थानों के मध्य में बहती है।

"शरीर दान" के प्रसिद्ध स्तूप को मैंने जनरल कोर्ट द्वारा निकाले गये स्मारक के अनुरूप स्वीकार किया है जिसका निर्माण, भीतर प्राप्त शिलालेखों के अनुसार ईसवी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल के प्रारम्भ से कुछ ही समय पूर्व प्रसिद्ध इण्डो सीथियन सम्राट कनिष्क के शासन काल में बीसवें वर्ष में कराया गया था। अतः मानिक्याल अति प्रारम्भिक समय में पंजाब के सर्वोधिक प्रसिद्ध स्थानों में एक स्थान था परन्तु मेरा विचार है कि किसी विशाल नगर का स्थान होने की अपेक्षा यह विशाल धार्मिक संस्थानों का स्थान था। जब जनरल एबाट ने १८५३ ई० में मानिक्याल के बौद्ध स्तूप के आसपास के खंडहरों का निरीक्षण किया था तो वे "एक नगर की उपस्थिति का कोई प्रमाण नहीं देख सके थे। जलमग्न खंडरों का विस्तार क्षेत्र गाँव का अधिकांश भाग नहीं रहा होगा जब कि काट-काट कर बनाये गये पत्थरों की तुलतात्मक संख्या किसी मूल्यवान निर्माण का संकेत देती है जो सम्पूर्ण स्थान पर फैला हुआ होगा।" १८३४ में जनरल कोर्ट ने इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है "स्वय नगर के खंडहर अधिक विस्तृत थे जिसमें कुओं की अधिक संख्या के अतिरिक्त पत्थरों एवम् चूने की विशाल दीवारें प्रत्येक स्थान पर देखी जा सकती थीं।" इस स्थान के सावधानी पूर्वक निरीक्षण के बाद मैं भी जनरल एबाट के ही निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यहाँ पर एक विशाल नगर के कोई चिन्ह नहीं हैं और मैं इस बात से पूर्णतयः सन्तुष्ट हूँ कि कटे पत्थरों की विशाल दीवारें जिन्हें जनरल कोर्ट ने उचित रूप से प्रत्येक स्थान पर प्राप्त बताया है आवश्य ही मूल्यवान मठों एवं अन्य धार्मिक भवन से सम्बन्धित रही होंगी। निस्सन्देह, किसी गाँव में भी कुछेक व्यक्तिगत भवन चतुर्भुजाकार पत्थरों के बने हो सकते हैं, परन्तु मोटी तहों वाली छतों वाले यह विशाल भवन जो खुदाई के परिश्रम का आज भी मूल्य चुका सकते हैं मेरे विचार में अत्यधिक, इतने विशाल तथा इतने फैले हुए हैं कि वह एक विशाल नगर के भी व्यक्तिगत भवनों के खंडहर नहीं हो सकते। जन साधारण प्रसिद्ध स्तूप के ठीक पश्चिम में ऊंची भूमि की ओर राजमान के राजभवन के रूप में संकेत करते हैं क्योंकि प्लास्टर के टुकड़े केवल इसी स्थान पर प्राप्त हैं खण्डहरों के अन्य किसी स्थान पर नहीं। यहां यह सम्भव है कि तक्षशिला के क्षत्रपों ने अपना निवास स्थान बना लिया हो जब वह बुद्ध के "शरीर दान" के प्रसिद्ध स्मारक पर अपनी श्रद्धा अर्पित करने आया करते थे। हो सकता है कि यहां १५०० अथवा २००० घरों का एक गांव भी रहा हो जो उत्तर की ओर फैला हुआ था तथा सम्पूर्ण ऊंची जमीन पर रहा होगा जहां वर्तमान मानिक्याल गांव अवस्थित है। मेरा अनुमान है कि नगर के सम्पूर्ण क्षेत्र का व्यास डेढ़ मील रहा होगा जहां प्रति व्यक्ति ५०० वर्ग फुट की दर से १२,५००० व्यक्तियों की जनसंख्या प्राप्त होतो है अथवा प्रत्येक घर के पीछे केवल छः व्यक्ति रहे होंगे।

जनसाधारण अपने इस कथन में एकमत हैं कि नगर का विनाश अग्नि से हुआ था और यह विश्वास चाहे प्रथा पर आधारित हो अथवा दृढ़ विश्वास पर। कोयले एवं भस्म की मात्रा से इस विश्वास की पुष्टि होती है जो ध्वस्त सभी भवनों में प्राप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। जनरल कोर्ट के बौद्ध स्तूप के उत्तर की ओर विशाल मठ में मैंने जो खुदाई कराई थी उससे उपरोक्त कथन की पर्याप्त पुष्टि होती है। मैंने दीवारों के प्लास्टर को आग से काला हुआ देखा था तथा चूने के पत्थर के कङ्कण से बनाई गई ईंटों को बिन बुझाये हुये चूने में परिवर्तन देखा था। छत की चीड़ की लकड़ी अपने जले हुए टुकड़ो एवम् भस्म से सरलता पूर्वक पहचानी जा सकती थी। दुर्भाग्यवश मैं अपनी खोज के दौरान ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका जिससे इन भवनों के विनाश के सम्भावित काल का संकेत मिल सके, परन्तु चूंकि देश के इस भाग पर ह्वेनसांग के समय से पूर्व ही काशमोरी राजाओं की शक्ति स्थापित हो चुकी थी, मैं मुस्लिम असहिष्णुता की अपेक्षा ब्राह्मणों के ईर्षा द्वेष को ही इनके विनाश का कारण स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

सिंहपुर अथवा केटास

ह्वेनसांग के अनुसार सेंग-हो-पू-ला-अथवा सिंहपुर के राज्य की राजधानी तक्षशिला के दक्षिण पूर्व में ११७ मील की दूरी पर अवस्थित थी। इसके दिकांश झेलम की ओर संकेत करते हैं जिसके समीप संगोही नगर है जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने सिंहपुर के सम्भव प्रतिनिधि के रूप में उल्लेख किया है। परन्तु तीर्थयात्री द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार कठिन मार्ग के एक ऊंचे पर्वत पर अवस्थित होने के स्थान पर संगाही एक खुले मैदान में अवस्थित है। स्वच्छ जल के दस कुण्डों की समीनता जिनके चारों ओर मन्दिर एवं मूर्तियाँ हैं, केटाक्ष अथवा खेटास के पवित्र तालाब की ओर संकेत करती है। जहाँ अब भी भारत के सभी भागों से अनेक तीर्थयात्री आते हैं। मेरा यह भी विचार है कि केटास संस्कृत के श्वेतावास का आंशिक परिवर्तित स्वरूप है। ह्वेनसांग ने सिंहपुर के समीप निवास करने वाले एक धार्मिक समुदाय के मुखिया की उपाधि के रूप में इस (श्वेतावास) का उल्लेख किया है। पश्चिमी देशों में जहाँ 'स्व' के मिश्रण को 'ख' में बदल दिया जाता है। इस शब्द को खेटावास अथवा थोड़ा संक्षिप्त करने पर खेटास कहा जाता होगा। (१) यद्यपि ब्राह्मणों ने इसे अपने धर्म से सम्बन्धित बताया है तथापि उनका कथन है इस स्थान को कटाक्ष अथवा "आश्रुपूर्ण नेग" कहा जाता था क्योंकि जब शिव को अपनी पत्नी सती की मृत्यु की सूचना मिली तो उनके नेत्रों से आंसुओं की वर्षा हो रही थी। परन्तु केटास नाम का उच्चारण जो मुझे उन्हीं से प्राप्त हुआ था ब्राह्मणों द्वारा दिये गये अर्थ से भिन्न है। अतः मैं ऊपर दी गई शब्द व्युत्पत्ति को ही स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। यह सम्प्रदाय जैनियों के स्वेताम्बर वर्ग से सम्बन्धित प्रतीत होता है जबकि इसी स्थान का

(१) इस प्रकार संस्कृत का सरस्वती जेन्द अवस्ता का हराखैती तथा यूनानियों का अराखोटस बन गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक अन्य सम्प्रदाय जिसे ह्वेनसांग ने नग्न रहने वाले कहा है जो जैनियों का दिगम्बर सम्प्रदाय रहा होगा। कहा जाता है कि उनकी पुस्तकें मुख्यतः बौद्ध साहित्य से नकल की गई थीं। जबकि उनके देवता की मूर्ति स्वयं बुद्ध से मिलती-जुलती है। इन विचित्र तथ्यों से यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यह धर्म विरोधी सम्प्रदाय जैनियों का सम्प्रदाय था जिनका धर्म में बौद्ध धर्म से बहुत कुछ समानता रखता है और जिनकी मूर्तियों से प्रायः बुद्ध की मूर्ति होने का भ्रम होता है।

केटास पिण्ड दादन खाँ से १६ मील तथा चकवाल से १८ मील की दूरी पर नमक की पहाड़ियों के उत्तरी भाग में अवस्थित है परन्तु शाहढेरी अथवा तक्षशिला से इसकी दूरी ८५ मील से अधिक नहीं है। तक्षशिला से सिंहपुर की दूरी ७०० ली अथवा ११७ मील बताई गई है जो निश्चित ही बहुत अधिक है क्योंकि इससे राजधानी का स्थान दक्षिण तथा पूर्व के बीच किसी भी दिशा में पहाड़ियों के दूरस्थ विन्दु से ३० मील दूर चला जायेगा। सिंहपुर को दुर्गम चढ़ाई वाली एक उन्नत पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित बताया गया है और यहाँ की जलवायु भी अति ठण्डी बताई गई है, अतः यह निश्चित है कि यह स्थान नमक की पहाड़ियों के दक्षिण-दक्षिण पूर्व अथवा बालनाथ श्रेणी के पूर्व-दक्षिण पूर्व की अकेली चोटियों में किसी चोटी पर रहा होगा। परन्तु चूंकि बालनाथ पर्वत श्रेणी में मछलियों से भरे स्वच्छ तालाब नहीं हैं अतः मुझे इस स्थान को ह्वेनसांग द्वारा वर्णित केटास के सुन्दर स्वच्छ कुण्डों के अनुरूप स्वीकार करने में थोड़ा सङ्कोच है जो अति प्राचीन काल से पवित्र माने जाते हैं।

सिंहपुर की राजधानी पवित्र कुण्डों के उत्तर पश्चिम में ४० से ५० ली अथवा ७ से ८ मील की दूरी पर अवस्थित थी परन्तु मुझे ऐसे किसी स्थान का ज्ञान नहीं है जो इस दिकांश एवं दूरी से मिलता हो। मालोट प्रारम्भिक काल में जनजुहा की राजधानी थी परन्तु इसका दिकांश दक्षिण पूर्व है तथा इसकी दूरी १२ मील। यदि हम ४० अथवा ५० ली के स्थान पर ४ से ५ ली मान लें तो राजधानी को तुरन्त केटाश के जर्जर दुर्ग के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो पश्चिम में २०० फुट ऊंची एक अति ढलवां पहाड़ी पर अवस्थित है। यह केटास के नगर एवम् पवित्र कुण्डों के ऊपर झुकी हुई है। इसे प्राचीन नगर कहा जाता है। इसमें १२०० फुट लम्बा तथा ३०० चौड़ा एक ऊपरी दुर्ग तथा ८०० फुट लम्बा एवम् ४५० फुट चौड़ा निचला दुर्ग है। इन दोनों का व्यास ३५०० फुट अथवा एक मील के तीन चौथाई भाग से कुछ कम है परन्तु नदी के दोनों तटों पर दुर्ग के ऊपरी एवम् निचले भाग में आधुनिक नगर सहित केटास का पूर्ण व्यास लगभग दो मील है। यह ह्वेनसांग द्वारा वर्णित राजधानी से छोटा है। जिसका व्यास २$\frac{१}{६}$ अथवा २$\frac{१}{२}$ मील था। परन्तु चूंकि यह अन्य सभी विशिष्ट बातों में इससे मिलता है अतः मेरा विचार है सिंहपुर की राजधानी के अनुरूप स्वीकार किये जाने का केटास का दावा सही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्वेनसांग के अनुसार जिले का व्यास ३६०० ली अथवा ६०० मील था। यह पश्चिम में सिन्धु नदी, उत्तर में तक्षशिला की दक्षिणी सीमा तथा दक्षिण में झेलम एवं ताकी अथवा पंजाब के समतल प्रदेश की उत्तरी सीमा से घिरा हुआ था। अतः यह नमक की पहाड़ियों से अधिक दूर फैला हुआ नहीं हो सकता था। इस सीमा में सिन्धु तट की सीमा लगभग ६० मील, झेलम की सीमा ५० मील तथा उत्तरी एवम् दक्षिणी सीमायें लगभग ५० मील अथवा कुल मिलाकर यह सीमा ३५० मील रही होगी। इस संख्या एवम् ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों में भिन्नता का एक मात्र उत्तर मेरी समझ से यह सम्भावना है कि पञ्जाब का प्राचीन कोस आधुनिक कोस अर्थात् १$\frac{३}{४}$ मील अथवा १ मील २$\frac{१}{४}$ फर्लाङ्ग के छोटे कोस के बराबर रहा होगा और चीनी तीर्थ यात्री ने इस भिन्नता से अनभिज्ञ होने के कारण दो मील के सामान्य भारतीय कोस के आधार पर अपने आंकड़े दिये होंगे। इससे उसके आंकड़े लगभग एक तिहाई कम हो जायेंगे और साथ ही साथ यह आंकड़े हमारे मानचित्रों में दिये गये वास्तविक आंकड़ों के समीप हो जायेंगे। इस प्रकार सिंहपुर के व्यास के लिये ह्वेनसांग का ६०० मील घट कर ४०० मील रह जायेगा जो पहले दिये गये वास्तविक आंकड़ों से केवल ५० मील के अन्तर में हैं। सीमाओं की दूरी के अनुमान अधिक यथार्थ होने की आशा नहीं की जा सकती क्योंकि चीनी तीर्थ यात्री के पास अपने सूचना देने वालों की सत्यता की जाँच के साधन नहीं थे। मार्ग की दूरी जहाँ वह स्वयं गया है—के सम्बन्ध में यह बात भिन्न है क्योंकि मार्ग की दूरी को वह यात्रा में लगे समय के ज्ञान से तथा दो स्थानों के बीच यात्राओं की संख्या से भली प्रकार बता सकता था। सिंहपुर के प्रस्तुत उदाहरण में यह प्रायः निश्चित है कि सीमा की दूरी को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया है क्योंकि सींकिया अथवा ताकी की सीमा को भी सिन्धु नदी तक बताया जाता है और यदि सिंहपुर की सीमा मेरी निर्धारित सीमा से दक्षिण में होती तो उपरोक्त बात सम्भव नहीं हो सकती थी।

पुनच अथवा पूँच

ह्वेनसांग ने पुआन-नू-सो-अथवा पुनच को काश्मीर से ११७ मील दक्षिण पश्चिम में बताया है। काश्मीरी इसे पुनत्स कहा करते है। उन्होंने पञ्जाबियों के पांचाल के स्थान पर पीर पंतसाल में निहित च के कोमल उच्चारण को अपना लिया है। मूरक्राफ्ट ने इसे प्रुन्च अथवा काश्मीरियों के अनुसार प्रुन्तज़ कहा है। जनरल कोर्ट ने भी प्रुन्च लिखा है परन्तु विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुग़ल वेग ने इसका नाम पुंजी लिखा है तथा विजनी ने पूंच। दोनों ही इस स्थान पर गये थे। मानचित्र पर काश्मीर से इसकी दूरी बारामूला तथा उड़ी के रास्ते ७५ मील है जो वास्तविक मार्ग दूरी के १०० मील के समान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्वेनसांग ने पुनच को व्यास में ३३३ मील कहा है जो कि वास्तविक आकार से दुगना है। यह पश्चिम में झेलम, उत्तर में पीर पांचाल पर्वत श्रेणी तथा पूर्व एवं दक्षिण पूर्व में राजौरी के छोटे राज्य से घिरा हुआ है परन्तु यह सीमायें जिनमें कोटाली का छोटा राज्य भी सम्मिलित है, व्यास में १७० मील से अधिक नहीं है और यदि पुनच नदी के उद्गम स्थान के प्रदेश को भी उपरोक्त सीमाओं में सम्मिलित कर लिया जाये तो भी इसका व्यास २०० मील से अधिक नहीं होगा। परन्तु चूंकि पर्वतीय जिलों में सीमा की दूरी को मार्ग की दूरी के आधार पर आँका गया था अतः सीमा रेखा की दूरी को मार्ग दूरी में ३०० मील के समान समझा जाना चाहिये।

सातवीं शताब्दी में पूंच में कोई राजा नहीं था और यह काश्मीर का आश्रित राज्य था परन्तु बाद में इस नगर का अपना प्रमुख था जिसके वंशजों शेरजङ्ग खाँ तथा शम्स खाँ को जम्मू के गुलाब सिंह ने मरवा डाला था और यह छोटा राज्य पुनः काश्मीर राज्य का एक भाग बन गया।

राजपुरा अथवा राजौरी

पूंच से ह्वेनसांग को-लो-शी-पू-लो अथवा राजपुरा गया था जो पूंच के ६७ दक्षिण पूर्व में था जिसे मैं पहले ही काश्मीर से दक्षिण में राजौरी की छोटी रियासत के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। इस जिले का व्यास ६६७ मील आंका गया था जो वास्तविक आंकड़ों से दुगना है। यदि रावी के तट तक के सभी प्रदेश इसकी सीमाओं में स्वीकार कर लिये जायें तो उपरोक्त आंकड़े सही हो सकते हैं। काश्मीर के स्थानीय इतिहास से हमें पता चलता है कि घाटी के दक्षिण एवम् दक्षिण पूर्व के छोटी-छोटी पहाड़ी जागीरें सामान्यतः काश्मीर के अधीन थीं और ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय वह स्वतन्त्र थीं।

राजौरी का विशिष्ट जिला चारों ओर लगभग ४० मील सीमा वाला प्रायः एक चतुर्भुज है जो उत्तर में पीर पांचाल, पश्चिम में पूँच, दक्षिण में त्रिम्बर तथा पूर्व में रियासी तथा अखनूर से घिरा हुआ है। इसकी सीमाओं को पूर्व में चेनाब तक तथा दक्षिण में मैदानों तक बढ़ा देने से इसमें यह सभी छोटी-छोटी जागीरें सम्मिलित हो जायेंगी परन्तु इस पर भी इसकी सीमाएँ २४० मील अथवा सड़क की दूरी के अनुसार लगभग ३२० मील से अधिक नहीं होगी। परन्तु यदि काश्मीर के अधीन इन पर्वतीय राज्यों की सीमायें पूर्व में रावी नदी तक बढ़ा दी जाये तो इसका व्यास मानचित्र पर नाप के अनुसार लगभग ४२० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ५६० मील होगा।

काश्मीर के मध्यकालीन इतिहास में राजापुरी का बारम्बार उल्लेख मिलता है परन्तु मुख्य रूप से इसका उल्लेख ग्यारहवीं एवम् बारहवीं शताब्दियों में किया गया है जिस समय यह अपने ही शासक के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य था। पन्द्रहवीं शताब्दी में यहाँ के हिन्दू राजघराने को काश्मीर के मुस्लिम शासक के एक पुत्र के लिये पदच्युत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर दिया गया था तथा उसके वंशज को गुलाबसिंह ने इतना दबाया कि उसने १८४६ में प्रसन्नता पूर्वक राजौरी की छोटी रियासत के बदले कांगड़ा के अङ्गरेजी जिले में एक जागीर स्वीकार कर ली थी ।

पञ्जाब के पर्वतीय राज्य

चूंकि चीनी तीर्थ यात्री ने पञ्जाब के पर्वतीय राज्यों में बहुत कम राज्यों का उल्लेख किया है अतः मैं उस सूचना की संक्षिप्त वाह्य रूपरेखा यहाँ जोड़ देना चाहता हूँ जिसे मैं स्वयं इन राज्यों के सम्बन्ध में एकत्रित कर सका हूँ ।

प्रचलित विचारानुसार पर्वतीय पञ्जाब के छोटे-छोटे राज्यों में २२ मुस्लिम एवम् २२ हिन्दू राज्य थे । मुस्लिम राज्य चेनाब नदी के पश्चिम में तथा हिन्दू राज्य इसके पूर्व में थे । एक प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया गया था । प्रत्येक वर्ग का नाम राज्यों के सङ्गठन में सर्व शक्तिशाली राज्य के नाम पर रखा गया था । ये राज्य थे काश्मीर, डोगरा तथा त्रिगर्त । प्रथम राज्य में काश्मीर की समृद्ध घाटी तथा सिन्धु एवम् झेलम के मध्य के सभी छोटे राज्य सम्मिलित थे । द्वितीय राज्य में जम्मू तथा झेलम एवम् रावी के बीच के सभी छोटे राज्य थे तथा तृतीय राज्य में जलन्धर तथा रावी एवम् सतलज के बीच के अनेक छोटे-छोटे राज्य सम्मिलित थे ।

तीन वर्गों का यह विभाजन सम्भवतः सातवीं शताब्दी से पूर्व का था क्योंकि हम देखते हैं कि रावी नदी से पूर्व के राज्य काश्मीर से पूर्णतयः स्वतन्त्र थे जबकि उरश, पूंछ तथा राजौरी के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार कहा जाता है जिससे यह प्रतीत हो कि काश्मीर के अधीन होने से पूर्व ये राज्य अपने-अपने राजा के अधीन स्वतन्त्र थे । काश्मीरी इतिहास में त्रिगर्त का एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में बारम्बार उल्लेख किया गया है और इसके निजी इतिहास से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जलन्धर की पहाड़ियों के छोटे-छोटे राज्यों में आधे राज्य एक ही परिवार के अधिपत्य में राज्य के विभाजन से उत्पन्न हुये हैं ।

निम्नलिखित सूची में काश्मीर अथवा पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी खण्ड से सम्बन्धित राज्यों के नाम एवम् अधिकार क्षेत्र दिये गये हैं :—

खाक
- (१) काश्मीर
- (२) गिङ्गल वेहात नदी पर अवस्थित
- (३) मुजफ्फराबाद
- (४) खागान, कुनिहार नदी पर
- (५) गढ़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफग़ान	(६) रश, पखली नदी पर (७) धन्तावर, डोर नदी पर (८) गण्डगढ़ (९) दरबन्द, सिन्धु नदी पर (१०) तोरबेला ,, ,,
गक्कर	(११) फरवाल, वेहात नदी के समीप (१२) सुल्तानपुर, बेहात नदी पर (१३) खानपुर, हारो नदी पर

बारामूला से नीचे वेहात नदी की घाटी पर तथा काश्मीर के उत्तर पश्चिम में कुनिहार नदी के सम्पूर्ण मार्ग पर खाक बम्ब सरदारों का अधिकार था। वे सभी मुस्लिम धर्मावलम्बी थे तथा सम्भवतः देश के प्रारम्भिक निवासियों के वंशज थे जो अफग़ान आक्रमण कारियों के बढ़ाव के कारण अपने वर्तमान स्थान पर आकर बस गये थे।

काश्मीर के दक्षिण पश्चिम में पखली एवं डोर नदियों की घाटियों पर अफग़ान सरदारों का अधिकार था। वह सभी मुसलमान हैं और इस देश में उनका निवास कुछ ही समय का है। अब्बुलफज़्ल ने लिखा है कि अकबर के समय से पूर्व पखली का राजा काश्मीर का आश्रित था। उसका यह भी कथन है कि तैमूर इस जिले में अपने सैनिकों की एक छोटी टुकड़ी छोड़ गया था जिनके वंशज़ उसके समय में अब भी मौजूद थे।

झेलम की निचली घाटी तथा काश्मीर के दक्षिण पश्चिम में हारो नदी के ऊपरी मार्ग पर गक्कर सरदारों का अधिकार था। वह सभी भी मुसलमान हैं परन्तु उनका धर्म परिवर्तन अपेक्षाकृत नया है क्योंकि तैमूर के आक्रमण के समय तक उनके नाम भारतीय थे। इस जिले पर उनका अधिकार अधिक प्रारम्भिक काल से है परन्तु वे तुरानी हैं आर्य नहीं, क्योंकि गक्कर को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्तियों गक्कर में विवाह सम्बन्ध नहीं करेगा। यह प्रथा हिन्दू धर्म से पूर्ण विरोधी प्रथा है जिसमें (हिन्दू धर्म में) किसी भी व्यक्ति को अपनी जाति में विवाह करने की स्वीकृति नहीं हैं। पूर्वी दोआब के अनेक भागों जैसे गुज्जर खाँ के समीप गुलियाना तथा बाल नाथ की उन्नत पहाड़ी के नीचे बुगियाल पर भी गक्करों का अधिकार था। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग की यात्रा के समय ये जिले यद्यपि काश्मीर के अधीन थे परन्तु ये जिले समुचित रूप से पहाड़ी जिले नहीं थे।

निम्नलिखित सूची म पर्वताय पंजाब के मध्य अथवा जम्मू खण्ड से सम्बन्धित राज्यों के नाम एवं स्थान दिये गये हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू
(१) जम्मू, चेनाब नदी के पूर्व में
(२) भाओ

मुस्लिम
(३) रिहासी, चेनाब नदी पर
(४) अरखनू
(५) पूंच, पुनच नदी पर
(६) राजौरी, तोही नदी पर
(७) कोटाली, पुनच नदी पर
(८) भिम्बर, पहाड़ियों के नीचे
(९) खरियाली, त्रिम्बर के समीप
(१०) काष्टवार, अप्पर चेनाब नदी पर
(११) भद्रवार, काष्टवार के दक्षिण में

हिन्दू
(१२) चनेनी, भद्रवार के पश्चिम में
(१३) बन्दराल्ट, चनेनी के दक्षिण में
(१४) साम्बा, बन्दराल्ट के दक्षिण पश्चिम में

हिन्दू
(१५) जसरोटा, बन्दराल्ट के दक्षिण में
(१६) टीरीकोट, जसरोटा के समीप
(१७) मानकोट, बन्दराल्ट के दक्षिण में
(१८) बदवाल, अथवा बड़डीवास
(१९) बल्लावर, अथवा बिसोहली

जम्मू तथा भाओं के नगर, जिनका निर्माण दो भाइयों द्वारा कराया गया था तोही नाम की एक छोटी नदो के दोनों किनारों पर अवस्थित थे। यह नदी पहाड़ियों के नीचे चिनाब नदी से मिलती है। मुस्लिम इतिहास में तैमूर द्वारा बलपूर्वक राजा के धर्म परिवर्तन के समय से लेकर पिछली शताब्दी के अन्त तक जम्मू का बारम्बार उल्लेख किया गया है। रंजीतसिंह के दरबार के तोन प्रसिद्ध बन्धुओं, गुलाब सिंह घ्यान सिंह तथा सुचेत सिंह, इसी परिवार की नई पीढ़ी से सम्बन्धित थे तथा गुलाब सिंह का पुत्र इस समय काश्मीर एवम् पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी एवम् मध्य खण्डों के सभी राज्यों पर शासन कर रहा है।

रिहासी तथा अखनूर के छोटे सरदार जम्मू परिवार की शाखायें थे जिन पर वह प्रायः आश्रित रहा करते थे। पूंच यदा कदा स्वतन्त्र था परन्तु काश्मीर से अपनी समीपता के कारण यह राज्य अपने अधिक शक्तिशाली पड़ोसी की दया पर निर्भर था। रजौरी तथा पोटाली काश्मीर के राजघराने की दो शाखाओं के अधिकार में थे परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य काल में हिन्दू शासकों के अधिपत्य में पोटाली पूंच का एक भाग था। एक ही घाटी के भाग होने के कारण यह प्राकृतिक रूप से पूंच से सम्बन्धित था। भिम्बर तथा खरियाली, कांगड़ा तथा जलन्धर के सोम वंशी राआओं की चिब अथवा चिबान शाखा के खंड थे। प्रारम्भ में भिम्बर का नाम बहुत कम प्रयोग में लाया जाता था। सामान्य नाम चिब्बान था जिसका उल्लेख जिमाल के स्वरूप में शिरूफ़द्दीन द्वारा लिखित तैमूर के इतिहास में मिलता है। इस परिवार के मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लेने की तिथि सम्भवतः बाद की तिथि है क्योंकि फरिश्ता ने ८६१ हिज्री अथवा १४८६ ई० में डिब्बर के हाऊन राजा का उल्लेख किया है। परन्तु इन पर्वतीय सरदारों में अधिकांश ने मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के बाद भी अपने हिन्दू नामों को अपनाये रखा था अतः केवल हिन्दू नाम को ही धर्म अपरिवर्तित रहने का निश्चित प्रमाण स्वीकार नहीं किया जा सकता। काष्टवार तथा भद्रवार, काश्मीर के दक्षिण पूर्व में ऊपर चेनाब नदी के विपरीत किनारों पर अवस्थित हैं परन्तु ये राज्य प्रायः काश्मीर के आश्रित थे। मध्य खण्ड की छोटी रियासतों को पश्चिमी खण्ड की १३ से जोड़ देने से हमें २२ मुस्लिम राज्य प्राप्त होते हैं जिसे जन साधारण में पर्वतीय पञ्जाब के पश्चिमी अर्द्ध भाग से सम्बन्धित किया जाता था।

इस खण्ड के शेष आठ रियासतों के सम्बन्ध में मैं अधिक सूचना देने के योग्य नहीं हूँ क्योंकि उनमें अधिकांश सिख राज्य के प्रारम्भिक काल में लुप्त हो गई थीं और इस समय जम्मू परिवार ने इन सभी को काश्मीर के विशाल राज्य में सम्मिलित कर लिया है। पहाड़ियों की वाह्य श्रेणी में जसरोटा, एक समय कुछ महत्व का राज्य था तथा यहाँ के शासक ने पर्वतीय पञ्जाब के अन्य राजपूत परिवारों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किये थे परन्तु मैं किसी भी इतिहास में इस स्थान का उल्लेख नहीं ढूंढ सका हूँ। बल्लावर तथा बदवाल निश्चित ही एक समय एक ही शासक के अधीन थे क्योंकि तुक्क के पुत्र कलस का नाम जिसका राजतरङ्गिणी में १०२८ के लगभग बल्लापुर के शासक के रूप में दो बार उल्लेख किया है—दोनो परिवारों के वंशावली में लिखा गया है। यह सत्य है कि इसी इतिहास में वाडीवास को प्रारम्भ में एक भिन्न जिला कहा गया है परन्तु चूंकि किसी राजा का उल्लेख नहीं मिलता अतः इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह वल्लापुर के छोटे राज्य का भाग रहा हो। चूंकि दोनों वंशावलियों में कलस नाम के पश्चात् नामों में अन्तर है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् यह राज्य छिन-भिन्न हो गया हो। यह निश्चित है कि वह काश्मीरी राजनीति से सम्बन्धित था और चूंकि पड़ोसी चम्ब राज्य के तत्कालीन राजा का काश्मीर के राजा अनन्त ने बध करा दिया था अतः मेरा निष्कर्ष है कि बल्लावर भी इसी समय अधिकार में कर लिया गया होगा।

मैं यह उल्लेख करना चाहूँगा कि मध्य खण्ड के सभी राजा जिनकी वन्शावलियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मेरे पास हैं स्वयं को सूर्य वन्शी कहा करते थे। भिम्बर का चिबान ही एक मात्र अपवाद था। जम्मू, जसरोटा तथा बल्लावर के शासक एवम् उनके वन्शज जो छोटे-छोटे राज्यों में कुल आठ राज्यों में शासन करते थे—सूर्यवन्शी होने का दावा करते थे और पड़ोस के अन्य राजपूत उनके इस दावे को स्वीकार करते थे।

निम्नलिखित सूची में पर्वतीय पंजाब के पूर्वी अथवा जलन्धर खण्ड के विभिन्न राज्यों के नाम एवम् स्थान दिये गये है :—

सोमवंशी
- (१) कांगड़ा, अथवा काटोच
- (२) गुलेर, कांगड़ा के दक्षिण पश्चिम में
- (३) जसवाल, सुहान नदी पर
- (४) दतारपुर, निचली व्यास नदी पर
- (५) सिबा, निचली व्यास नदी पर

सूरजवंशी
- (६) चम्बा, रावी तट पर
- (७) कुलू, अप्पर व्यास नदी पर

पुण्डोर अथवा पाण्डेय
- (८) मण्डी, मध्य व्यास नदी पर
- (९) सुखेट, मण्डी के दक्षिण में
- (१०) नूरपुर, रावी एवम् व्यास नदियों के बीच
- (११) कोटिला, नूरपुर के पूर्व में
- (१२) कोटलेहार

इन राज्यों में कम से कम पाँच राज्य एक समय के समृद्ध जलन्धर राज्य के उपखण्ड मात्र थे जिसमें रावी एवम् सतलज के मध्य का सम्पूर्ण दोआब अथवा समतल प्रदेश, तथा रावी एवम् मण्डी तथा सुखेट की सीमाओं के मध्य का सम्पूर्ण भू-भाग सम्मिलित था। इसमें नूरपुर, कोटिला तथा कोट बिहार सम्मिलित थे और चूंकि मण्डी एवम् सुखलेट प्रारम्भ में एक ही शासक के अधीन थे अतः पर्वतीय पञ्जाब के पूर्वी खण्ड में मूल रूप से केवल चार राज्य थे अर्थात् जलन्धर, चम्बा, कुलू तथा मंडी।

जलन्धर

पञ्जाब के मैदानों पर मुसलमानों के अधिकार के समय से जलन्धर का प्राचीन राज्य लगभग पूरा तरह से अपनी पर्वतीय सीमाओं तक सीमित रहा है जो अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध दुर्ग के नाम पर सामान्य रूप से कांगड़ा के नाम से प्रख्यात था। इस जिले को काटोच जिसका अर्थ अज्ञात है तथा त्रिगर्त (१) कहा जाता था जो पुराणों एवम् काश्मीर के स्थानीय इतिहास में पाया जाने वाला सामान्य संस्कृत नाम है।

---

(१) हेमकोष जलन्धरास त्रिगंतास्यु, "जालन्धर जो त्रिगर्त है।"

सातवीं शताब्दी में चीनी तीर्थ यात्री ने जलन्धर को पूर्व से पश्चिम लम्बाई में १६७ मील तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ाई में १३३ मील कहा है। यह आंकड़े यदि सत्य के समीप भी थे तो जलन्धर की सीमाओं में, उत्तर में चम्बा राज्य, पूर्व में मण्डी एवम् सुखेर राज्य एवम् दक्षिण पूर्व में सतर्डू सम्मिलित होते। चूंकि सतर्डू का एक मात्र जिला ही सतलुज़ के पूर्व में है अतः मेरा अनुमान है कि यह अवश्य सी जालन्धर राज्य का भाग रहा होगा। इन जिलों को जोड़ देने से प्रान्त का आकार चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये आंकड़ों से भली-भाँति मिल जायेगा।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय जलन्धर ही राज्य की राजधानी थी जिसे उसने व्यास में दो मील से कुछ ऊपर बताया है। इसकी प्राचीनता निस्सन्देह है क्योंकि टालमी ने कुलिण्ड्राईन अथवा कट्टुलिनड्राईन के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसे सरलतापूर्वक सुलिण्ड्राईन पढ़ा जा सकता है क्योंकि यूनानी भाषा मे 'क' एवम् 'स' अक्षरों की प्रायः अदला-बदली होती है। पद्म पुराण के अनुसार जालन्धर नगर महान दैत्य राजा जालन्धर की राजधानी थी जो अपनी कठोरता के कारण अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर अविजयी बन गया था। अन्त मे शिव ने किसी प्रकार अशोभनीय कपट से उसे पराजित किया तथा योगनियों ने उसके शरीर का भक्षण किया, परन्तु स्थानीय पुराण (जालन्धर पुराण) में उस कथा का अन्तिम भाग भिन्न रूप से दिया गया है। इस पुराण के अनुसार शिव ने उसे एक विशाल पर्वत से कुचल कर मार डाला था। उस समय उसके मुख से जो ज्वालामुखी के नीचे था ज्वालायें निकल रही थीं, उसका शरीर दोआब के ऊपरी भाग के नीचे था जिसे आज भी जालन्धर पीठ कहा जाता है और उसके चरण दोआब के निचले भाग मुल्तान में थे। अकबर ने नदियों के बीच भिन्न दोआबों का नाम करण करते समय उपर्युक्त कथा के इसी मत का आंशिक अनुसरण किया था और सतलज एवम् व्यास के बीच की भूमि को सब दोआब कहने के स्थान पर दो आब ए-बिस्ट जालन्धर अथवा बिट जालन्धर कहा था। यदि वह पूर्वी नदी के प्रथम अक्षर से नामकरण करता जैसा कि उसने बारी एवम् चज दोआब के नामों में किया है तो उपर्युक्त दोआब का नाम 'सब' दोआब होना चाहिये था।

जालन्धर तथा कांगड़ा का राज परिवार भारत के प्राचीनतम परिवारों में है और अपने संस्थापक सुशर्मचन्द्र के समय से इनकी वंशावली मुझे राजपूताना के अधिक शक्तिशाली परिवारों द्वारा दी गई नामों की लम्बी सूची से अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। इस घराने के सभी भिन्न-भिन्न वंशज सूर्यवन्शी होने का दावा करते हैं और उनका दावा है कि मुल्तान जिले पर उनके पूर्वजों का अधिकार था एवम् उन्होंने महायुद्ध में पाँच पाण्डवों के विरुद्ध दुर्योधन की ओर से युद्ध लड़ा था। युद्ध के पश्चात् उन्हें अपना देश त्याग देना पड़ा तथा वह अपने नेता सुशर्माचन्द्र के नेतृत्व में जालन्धर दोआब की ओर चले गये जहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया एवम् कांगड़ा के सुदृढ़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्ग का निर्माण किया। सिकन्दर का सैनिक अभियान हाइफ़सिस अथवा बयान नदी पर समाप्त हो गया था परन्तु नदी पार के जिले अर्थात् जलन्धर दोआब के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार की थी। सातवीं शताब्दी में राजा अ-ती-तो-अथवा उदित्य ने जिसे मैं वंशावली सूची का अदीम समझता हूँ, एक माह तक चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग की आवभगत की थी। एक सौ साठ वर्ष पश्चात् ८०४ ई० के एक लेख में जलन्धर के राजा का नाम जयचन्द्र दिया गया है जो सूची का जय मल्ल चन्द्र है तथा अदीम की सातवीं पीढ़ी से है। अन्त में १०२८ से १०८१ तक काश्मीर के राजा अवन्त ने जलन्धर के राजा इन्दु चन्द्र की दो कन्याओं से विवाह किया था। यह राजा कांगड़ा की वंशानुक्रम सूची का इन्द्र चन्द्र है। यह उदाहरण यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं कि जलन्धर मुस्लिम अधिकार से पूर्व कई शताब्दियों तक स्वतन्त्र राज्य था।

गुसेर, जसवाल दातारपुर तथा सिवा के अपेक्षाकृत छोटे राज्य कांगड़ा वंश की ही शाखाएँ हैं। गुलेर अथवा हरिपुर का स्वतन्त्र राज्य १४०० ई० में हरिश्चन्द्र ने स्थापित किया था जब उसने कांगड़ा अपने कनिष्ठ भ्राता कर्माचन्द्र को सौंप दिया था। अन्य रियासतों की स्थापना की तिथि अज्ञात है परन्तु मेरा अनुमान है कि मुसलमानों आक्रमण के समय तक यह सभी रियासतें मूल राज्य की आश्रित थीं। महमूद गजनी की कांगड़ा विजय से इन रियासतों को अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

फ्रांसीसी यात्री थेवेनाट ने दिल्ली साम्राज्य के अपने विवरण में लिखा है कि "ऐसे अनेक राजा हैं जो महान मुगल सम्राट का अधिपत्य स्वीकार नहीं करते हैं।" परन्तु इन राजाओं के राज्य पहाड़ियों के भीतरी भाग में रहे होंगे क्योंकि हमें ज्ञात है कि वाह्य पहाड़ियों के सभी राज्य मुगल सम्राटों के अधीन थे। थेवेनाट ने "काकारीज़ बङ्किश, नगर कट, सिबा आदि मुगल सम्राटों के अधीन उत्तर के दूरस्थ राज्यों में आयोद्ध अथवा हाऊद" का विशेष उल्लेख किया है। काकरीज़ निश्चित ही गक्कर थे। जिन्होंने झेलम के पश्चिम में निचली पहाड़ियों पर अधिकार कर रखा था। टेरी ने उन्हें ककरीज़ एवम् उनके मुख्य नगरों को दीकाली तथा पुरहोल (अथवा दांगली तथा फरवाल) कहा है। बङ्किश, टेरी के 'वनचिश' हैं "जिनका मुख्य नगर बिशूर (पेशा-वर) काश्मीर के पूर्व (पश्चिम पढ़ें) अथवा किसी सीमा तक दक्षिणी दिशा में पड़ता था। सिन्धु नदी इस नगर को काश्मीर से अलग करती थी। नगरकूट, कांगड़ा अथवा नगरकोट है जिसका उल्लेख इसी नाम से अबुरिहान ने भी किया है जो महमूद गजनी द्वारा इस नगर पर अधिकार के समय वहाँ उपस्थित था। सिबा कांगड़ा के समीप का छोटा राज्य नहीं है परन्तु यह गङ्गा नदी पर अवस्थित जिला है जिसका मुख्य नगर "हरद्वार (अथवा हरिद्वार) था जहाँ गङ्गा नदी विशाल चट्टानों से निकल कर एक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़ी नदी में परिवर्तित हो जाती है।" इन व्याख्यानों से यह स्पष्ट है कि पश्चिम में पेशावर से लेकर पूर्व में गङ्गा तक निचली पहाड़ियों के सभी राज्य दिल्ली सम्राट के अधीन थे। थेवेनाट द्वारा दिये गये अयोद अथवा हाऊद के सामान्य नाम के सम्बन्ध में मैं केवल इतनी कल्पना कर सकता हूँ कि यह नाम हिमावत अथवा हिमवत का भ्रष्ट स्वरूप हो सकता है। हिमवत हिमालय पर्वतों का एक सर्व प्रसिद्ध नाम है जिसे यूनानियों ने इमोदस तथा ईमाउस के दो विभिन्न स्वरूपों में सुरक्षित रखा है।

चम्पा अथवा चम्बा

चम्बा एक विशाल जिला है जिसमें रावी के सभी सहायक नदियों की घाटियाँ एवम् लाहूल एवम् काष्टवार के बीच चेनाब की ऊपरी घाटी का एक भाग सम्मिलित है। ह्वेनसांग ने इसका उल्लेख नहीं किया है अतः इस बात की सम्भावना है कि उसने इसे काश्मीर की सीमाओं में सम्मिलित कर लिया था। इसकी प्राचीन राजधानी बुधिल नदी पर बरमपुर अथवा बरमावर थी। जहाँ आज भी अनेक सुन्दर मन्दिर एवम् एक पूरे आकार का पीतल का बना बैल इसके प्रारम्भिक शासकों की समृद्धि एवम् धर्मनिष्ठा की साक्षी के रूप में खड़े हैं। शिलालेखों के अनुसार यह निर्माण कार्य नवीं एवम् दसवीं शताब्दियों में हुआ था। काश्मीर के स्थानीय इतिहास में चम्पा के नाम से इस देश का बारम्बार उल्लेख किया है और स्थानीय वंशावलियों से प्रत्येक उल्लेख की पुष्टि होती है। १०२८ तथा १०३१ के बीच काश्मीर के राजा अनन्त ने इस राज्य पर आक्रमण कर दिया था और यहाँ के राजा साल को पराजित कर उसका बध करा दिया था। उसके पुत्र ने चम्पावती देवी के नाम पर चम्पापुर नाम की नवीन राजधानी की स्थापना की थी जो चम्बा के नाम से आज भी जिले का मुख्य स्थान है। तत्पश्चात् काश्मीर के राजाओं ने चम्बा परिवार से विवाह सम्बन्ध स्थापित किये तथा मुसलमानी आक्रमणों के परिणाम स्वरूप फैली अराजकता में यह छोटी रियासत स्वतन्त्र हो गई और वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक काल में गुलाब सिंह द्वारा कुचल दिये जाने के समय तक स्वतन्त्र बनी रही।

कुलू

ह्वेनसांग ने क्यू-लो-तो के राज को जालन्धर से ११७ मील उत्तर-पूर्व में बताया है जो व्यास नदी की ऊपरी घाटी में कुलू के जिले की स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। विष्णु पुराण में उलूटा अथवा कुलूटा लोगों का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः वही लोग हैं जिन्हें रामायण एवम् वृहत् संहिता में कौलूटा कहा गया है। चूंकि इस नाम का उपयुक्त स्वरूप चीनी क्यूलूटों से मिलता है अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आधुनिक कुलू प्राचीन नाम का संक्षिप्त स्वरूप ही होगा। जिले को व्यास में ५०० मील कहा गया है और यह पूर्णतया पर्वतों से घिरा हुआ है। कुलू की वर्तमान सीमित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सीमाओं के लिये यह आकार अत्यधिक पूर्ण अतिशयोक्ति है परन्तु प्राचीन राज्य में जन-साधारण के अनुसार पश्चिम में मण्डी एवम् सुखेत तथा सतलज के दक्षिण में सीमा का बहुत बड़ा भाग सम्मिलित था अतः यह सम्भव है कि यदि मार्ग दूरी से सीमा की लम्बाई आंकी जाये तो ५०० मील को कथित लम्बाई वास्तविक लम्बाई के समीप हो सकती है।

घाटी की वर्तमान राजधानी सुल्तानपुर है परन्तु प्राचीन राजधानो मकरसा को अभी भी नगर कहा जाता है और यह नगर इसी नाम से सर्व विदित है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि इस जिले में स्वर्ण रजत तथा ताँबा सभी प्राप्त है परन्तु इस कथन में केवल आंशिक सत्यता है क्योंकि धुलाई में सोना बहुत कम मात्रा में प्राप्त होता है तथा चाँदी एवम् ताँबे की खानें काफी समय से त्याग दी गई हैं।

ह्वेनसांग ने कुलू के उत्तर-पूर्व में लौ-हू-लो जिले का उल्लेख किया है जो स्पष्ट रूप से तिब्बतियों का ल्हो-याल तथा कुलू एवम् अन्य पड़ोसी राज्यों के जन साधारण के अनुसार लाहूल है। उत्तर को ओर थोड़ा आगे उसने मो-लू-सो के जिले का उल्लेख किया है जो उसकी व्याख्या के अनुसार लद्दाख रहा होगा। अतः मैं चीनी नाम को परिवर्तित कर मो-लो-पो पढ़ना चाहूँगा जो मार-पो की सही नकल है। मार-पो, यहाँ की मिट्टी एवम् पर्वतों के सामान्य रङ्ग के आधार पर लाल जिला अथवा मार-पो-युल के रूप में लद्दाख प्रान्त का वास्तविक नाम है। चीनी भाषा के सो एवम् पो अक्षर इतने मिलते-जुलते हैं कि उन्हें प्रायः एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता है जैसा कि पानिनी के जन्म स्थान सलातुर के प्रसिद्ध नाम में किया गया है। ह्वेनसांग की यात्राओं के मूल चीनी विवरण में सलातुर को पो-लो-तू-लो अथवा पालातुर कहा गया है।

मण्डी तथा सुखेट

मूल रूप से मण्डी एवम् सुखेट राज्यों का एक ही राज्य था जो पश्चिम में कांगड़ा, पूर्व में कुलू उत्तर में धवलाधार पर्वतों तथा दक्षिण में सतलज से घिरा हुआ था। मण्डी का अर्थ है बाजार और दक्षिण एवम् पश्चिम से आने वाले दो मार्गों के चौराहे पर व्यास नदी पर अपनी अनुकूल स्थिति के कारण प्रारम्भ से ही लोग यहाँ आकर बस गये होंगे और आस पास के भू भाग में लोहे तथा काला नमक की मूल्य-वान खानों की उपलब्धि के कारण यह स्थान समृद्धशाली बन गया था।

नूरपुर अथवा पठानियाँ

नूरपुर नगर का नाम सम्राट जहाँगीर की पत्नी प्रख्यात नूरजहाँ के नाम पर रखा गया था। इसका मूल नाम दहमाड़ी अथवा दहमाल अथवा जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है। दहमाहड़ी था यद्यपि उसने किसी दुर्ग का उल्लेख नहीं किया है। तारीख-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ए-अलफी में इसे दमाल कहा गया है तथा "हिन्दुस्तान की सीमाओं पर एक उन्नत पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित" बताया गया है। इब्राहीम गजनवी ने एक लम्बे घेरे के बाद इस दुर्ग पर अधिकार किया था। जिले का नाम पठावट है तथा मैदानों में अवस्थित इसकी राजधानी को पठियान अथवा पठियानकोट कहा जाता था जिसे वर्तमान समय में आंशिक परिवर्तन के बाद पठानकोट कहा जाता है। परन्तु यह नाम हिन्दू राजपूतों की पठान जाति से लिया गया है न कि प्रसिद्ध मुसलमान पठानों अथवा अफगानों से १८१५ ई० में रंजीत सिंह ने यहाँ के राजा को बन्दी बना लिया था तथा इस देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

नूरपुर के पूर्व में, पठानियाँ परिवार की एक शाखा के छोटे राज्य कोटिला पर भी इसी समय सिक्खों का अधिकार हो गया तथा इसे सिक्ख राज्य में मिला लिया गया।

कोट लेहार, ज्वालामुखी के दक्षिण पूर्व में जसवाल दून में एक छोटा राज्य था। यह सामान्यत: कांगड़ा का आश्रित राज्य था।

सतद्रू

चीनी तीर्थ यात्री ने श-तो-तु-लो अथवा सतद्रू जिले को व्यास में २००० ली अथवा ३३३ मील कहा है जिसकी पश्चिमी सीमा के रूप में एक विशाल नदी है। राजधानी को कुलू के दक्षिण की ओर ७०० ली अथवा ११७ मील तथा बैरात के उत्तर पूर्व में ८०० ली अथवा १३३ मील की दूरी पर दिखाया गया है। परन्तु इन संख्याओं में कोई एक संख्या त्रुटिपूर्ण है क्योंकि कुलू तथा बैरात के मध्य की दूरी मानचित्र पर सीधे माप से ३३६ मील अथवा मार्ग दूरी से ३६० मील से कम नहीं है। अत: दोनों स्थानों के बीच दूरियों में एक दूरी में सीधी रेखा से लगभग ११० मील अथवा ७०० ली अथवा दिकांश के आधार पर चक्कर दार मार्ग से लगभग १५० मील अथवा १००० ली की कमी है। यह उल्लेखनीय है कि मथुरा से थानेसर तक समानान्तर मार्ग पर वापसी यात्रा में भी इतनी ही मात्रा की कमी है। इस दूरी को तीर्थ यात्री ने १२०० ली अथवा २०० मील के स्थान पर केवल ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है जबकि वास्तविक दूरी १९९ मील है। चूंकि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों मार्गों में किसी अज्ञात कारणों से समान मात्रा में कमी कर दी गई है अत: यह सम्भवत: पश्चिमी रेखा की यह कमी सतद्रू तथा बैरात के बीच दक्षिणी भाग में निहित रही हो जो मथुरा तथा थानेसर के मध्य समानान्तर रेखा के समीप है। अन्त में मैं पहले के दो स्थानों के मध्य की दूरी में १५० मील की वृद्धि कर दूंगा जिससे कुल दूरी २८३ मील हो जायेगी। बैरात की इस शुद्ध दूरी तथा कुलू से दक्षिण में ११७ मील की उल्लिखित दूरी से सतद्रू की स्थिति सरहिन्द के विशाल नगर से प्राय: ठीक-ठीक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिल जायेगी जो इतिहास एवम् प्रथाओं दोनों में देश के इस भाग का प्राचीनतम स्थान माना गया है।

सरहिन्द के वर्तमान खण्डहरों में पूर्णतयः पश्चतवर्ती मुसलमानी इमारतों के खण्डहर है परन्तु हिन्दुओं के समय यह स्थान निश्चित ही किसी महत्व का स्थान रहा होगा क्योंकि दिल्ली के प्रथम मुसलमान सुल्तान मुहम्मद गोरी ने इस स्थान पर घेरा डाला था और अपने अधिकार में कर लिया था। प्रचलित धारणा के अनुसार यह कहा जाता है कि नगर को सरहिन्द अथवा "हिन्द की हद (सीमा)" का नाम कुछ समय पूर्व दिया गया था जब यह नगर हिन्दुओं तथा गजनी एवम् लाहौर के मुस्लिम शासकों के बीच सीमान्त नगर था। परन्तु यह नाम सम्भवतः प्राचीन है क्योंकि ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर ने कुलू निवासियों, कुलूट के पश्चात् तथा ब्रह्मपुर के निवासियों के उल्लेख से थोड़ा पूर्व सैरन्ध जाति का उल्लेख किया है। ब्रह्मपुर, जैसा कि हमें चीनी तीर्थ यात्री से ज्ञात होता है, हरिद्वार के उत्तर में पर्वतीय प्रदेश की राजधानी थी। अतः सैरन्ध अथवा सिरिन्ध निवासी उस विस्तृत क्षेत्र में बसे होंगे जहाँ वर्तमान सरहिन्द अवस्थित है और इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं हो सकता कि दोनों नाम एक ही हैं। परन्तु वराह मिहिर की भौगोलिक सूची उसके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्य पराक्षर की सूची की अक्षरशः नकल है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् जीवित नहीं था।

यदि हम कुलू तथा सतद्रू के बीच की रेखा के उत्तरी अर्द्ध भाग में ११० मील की वृद्धि को स्वीकार कर लें तो सतद्रू की स्थिति हाँसी की स्थिति से मिल जायेगी जो सरहिन्द से भी अधिक शक्ति एवम् प्रसिद्धि का प्राचीन मोर्चेबन्द नगर है। परन्तु ह्वेनसांग ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि सतद्रू की सीमा व्यास में केवल ३३३ मील थी तथा यह पश्चिम में एक विशाल नदी जो कि केवल सतलज अथवा सतद्रू नदी हो सकती है से घिरा हुआ था अतः यह पूर्णतयः असम्भव है कि हाँसी ही के स्थान का संकेत किया गया हो क्योंकि यह स्थान उपर्युक्त के समीपस्थ विन्दु से भी १३० मील से अधिक दूरी पर है।

भटनेर के प्रसिद्ध दुर्ग का स्थान, पश्चिम में सतलज से घिरे एक छोटे जिले के विवरण के अनुकूल होगा और कुलू की शुद्ध दूरी से भी मिल जायेगा परन्तु इसकी दिशा दक्षिण के स्थान पर दक्षिण पश्चिम है तथा बैरात से इसकी दूरी तीर्थ यात्री द्वारा दी गई १३३ मील की दूरी के स्थान पर २०० मील से अधिक है। फिर भी बैरात का दिकांश भटनेर के पक्ष में है क्योंकि चीनी तीर्थ यात्री का दक्षिण पश्चिम निश्चित ही दक्षिण पूर्व के स्थान पर गलती से लिखा गया था। अन्यथा मथुरा से बैरात की दूरी ८३ मील की कथित दूरी के स्थान पर लगभग २५० मील होती। यदि हम ५०० ली के स्थान पर १५०० ली पढ़ना स्वीकार कर लें तो भटनेर तथा बैरात की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुलनात्मक स्थिति तीर्थ यात्री के विवरण से भली प्रकार मिल जायेगी क्योंकि हाँसी के मार्ग से दोनों स्थानों के बीच की मार्ग दूरी लगभग २५० मील है। यह भी प्रायः सम्भव है कि प्रारम्भिक चीनी भाषा के शी अथवा सा में त्रुटि हो गई हो जो पो अथवा भा के समान है और यदि ऐसा है तो चीनी अक्षर पो-तो-तू-लो भटस्थल अथवा भटनेर का प्रतिनिधित्व करेगा। भटनेर का अर्थ है "भटियों का दुर्ग" परन्तु नगर को बन्द अथवा बन्दू कहा जाता था जो सम्भवतः भटस्थल का संक्षिप्त स्वरूप हो जैसे मारू मरूस्थल का सामान्य संक्षिप्त स्वरूप है। परन्तु नाम एवम् स्थिति में सुखद समानताओं के होते हुए भी मेरा झुकाव इस विचार की ओर है कि सरहिन्द ही वह स्थान था जिसकी ओर तीर्थ यात्री ने सतद्रू की राजधानी होने का संकेत दिया है। इस निष्कर्ष की पुष्टि तीर्थ यात्री के इस कथन से होती है कि इस देश में स्वर्ण मिलता था। जहाँ तक मेरा ज्ञान है यह कथन सरहिन्द के उत्तर में निचली पहाड़ियों पर लागू होता है। जहाँ सतलज की कुछ छोटी सहायक नदियों में अब भी सोना मिलता है।

सरहिन्द को सतद्रू की राजधानी स्वीकार कर लेने से जिले की सीमाओं को इसके आकार से प्रायः निश्चित किया जा सकता है। पश्चिम तथा उत्तर में यह जिला शिमला के पड़ोस से लेकर लुधियाना के नीचे तिहाड़ा तक १०० मील से कुछ अधिक दूरी तक सतलज से घिरा हुआ है। दक्षिण में इसकी सीमा तिहाड़ा से अम्बाला तक लगभग १०० मील तक फैली हुई है तथा पूर्व में अम्बाला से शिमला तक लगभग इतनी ही विस्तृत है। इस प्रकार उल्लिखित व्यास में मैदानों में लुधियाना तथा सरहिन्द के जिलों सहित, शिमला के पश्चिम तथा दक्षिण के पर्वतीय राज्यों का पर्याप्त भाग सम्मिलित रहा होगा। चूंकि सतलज के पूर्व में यह ही एक मात्र जिला है जिसे उत्तरी भारत की सीमाओं में सम्मिलित किया जाता हैं अतः मेरा अनुमान है कि यह अवश्य ही पड़ोसी जलन्धर राज्य का आश्रित रहा होगा।

ताकी अथवा पञ्जाब

सिन्धु से व्यास तक तथा पर्वतों के अधोभाग से मुल्तान के नीचे पाँच नदियों के सङ्गम तक पञ्जाब का सम्पूर्ण समतल उस राज्य के अन्तर्गत था जिसे ह्वेनसांग ने शो-क्या अथवा ताकी कहा है। ह्वेनसांग ने चीनी अक्षर सी को (दनककाट) सी को दनककाट के नाम से निहित संस्कृत के त के लिये प्रयुक्त किया है। दनककाट का नाम कन्हारी तथा कारली (१) में पश्चिमी कन्दराओं के शिलालेखों में कम से कम पाँच

---

(१) डा० स्टीवेन्सन ने इस नाम को यूनानी क्षेनोक्रेटीज़ के पाली स्वरूप में पढ़ा है परन्तु कन्हरी तथा कारली के सभी शिला लेखों में इसे स्पष्ट रूप से एक नगर अथवा देश के नाम के रूप में लिखा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बार प्राप्त हुआ है। ह्वेनसांग की यात्राओं के विवरण में इस नाम को तो नो-क्यिा-शी क्यिा लिखा गया है जिसके अन्तिम दो अक्षर परिवर्तित किये गये हैं। यह अब्बुरिहान का दनका है जो—जैसा कि आगे देखा जायेगा—सम्भवतः अमरावती के आधुनिक नगर के समीप कृष्णा नदी पर अवस्थित ० धरनी कोट के प्राचीन नगर के समान है। अतः सी-क्यिा-ताकी का प्रतिनिधित्व करता है जो प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में पञ्जाब के राज्य एवम् इसकी राजधानी का नाम था, ठीक उसी प्रकार जैसे लाहौर रंजीतसिंह के राज्य एवम् राजधानी का नाम था। राजधानी की स्थिति का उल्लेख बाद में किया जायेगा। इतना उल्लेख पर्याप्त होगा कि यह राजधानी अधिक प्राचीन राजधानी शी-की-लो के कुछ ही मीलों के भीतर थी जिसे काफी समय पूर्व प्रोफेसर लासेन ने महाभारत के साकला (शाकल) अथवा एरियान के सांगला के अनुरूप बताया था। महाभारत में शाकल के निवासियों को मद्र, अरट्ट, जारटिक तथा बाहिक (१) कहा गया है तथा हेमचन्द्र के शब्द संग्रह में बाहिकों को टक्कों के समान बताया गया है। पुनः राजतरङ्गिणी में टक्क देश के जिले को गुज्जर (चेनाब नदी के समीप गुजरात) राज्य का भाग बताया गया है जिसे राजा अलखान ने विवश होकर ८८३ तथा ९०३ ई० के बीच काश्मीर को समर्पित कर देना पड़ा था। इन कथनों से स्पष्ट है कि साकल टक्कों की शक्तिशाली जाति की प्राचीन राजधानी थी जिनके देश को उन्हीं के नाम पर टक्कदेश कहा जाता था। ह्वेनसांग ने वस्तुतः नवीन राजधानी के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु मेरा विश्वास है कि इसका नाम ताकी अथवा टक्कावर था जिसे मैं कण्ठस्थवर्ण क को श्वास में उच्चारत ह में बदलने से Penting-erian सूची के टहोरा के अनुरूप स्वीकार करूंगा। इस सूची में टहोरा को सिकन्द्रिया ब्यूसोफालस के विपरीत स्पातुरा से ७० रोमन मील, ६४⅓ ब्रिटिश मील की दूरी पर बताया गया है।

अब मैं प्रारंभिक मुसलमान लेखकों की ओर ध्यान दूंगा जिन्होंने काश्मीर तथा सिन्ध का उल्लेख किया है। अतः जिन्होंने इन दोनों प्रान्तों के मध्य पंजाब जैसे इतने महत्वपूर्ण देश का उल्लेख करने में शायद ही भूल की हो। सर हेनरी इलियट के अनुसार मसूदी ने ९१५ ई० में सिन्ध का उल्लेख इस प्रकार किया था। (२) "एस सिन्ध

---

(१) महाभारत तथा विष्णु पुराण में इस नाम को बालिहक कहा गया है परन्तु कुलूटों का अनुसरण करने के कारण यह निश्चित प्रतीत होता है कि शुद्ध नाम बाहिक है।

(२) सर एच० एम० इलियट की पुस्तक "भारत के मुस्लिम इतिहासकार" पृ० ५६ तथा प्रोफेसर डाइसन के संस्करण में इसका नाम ताफन लिखा गया है परन्तु स्प्रेंजर ने 'मसूदी' के अपने अनुवाद में इसके अनेक भिन्न नाम दिये हैं जैसे ताफी, ताकन ताफन तथा ताकीन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का मिहरान एस सिन्ध की उन्नत भूमि, बुद्ध के राज्य में किन्नौज (कन्नौज) से सम्बन्धित प्रदेश से, तथा काश्मीर, एल कन्धार एवम् एट ताकीन के सर्वज्ञात उदगम स्थानों से निकलती है। इसकी सहायक नदियाँ जो इन देशों से निकलती हैं एल मुल्तान तक चली जाती हैं तथा वहाँ से संयुक्त नदी को मिहरान का नाम प्राप्त होता है।" इस पुस्तकांश से ताकीन शब्द का अभिप्राय निश्चित ही पंजाब की पहाड़ियों से रहा होगा। काबुल तथा सिन्धु दोनों ही गांधार अथवा एल कन्धार से होकर प्रवाहित होती हैं, झेलम काश्मीर से आती है तथा व्यास एवम् सतलज जालन्धर तथा कहलुर से होकर जाती हैं जो ह्वेनसांग के समय कन्नौज के अधीन थे। सिन्ध की अन्य सहायक नदियों में केवल चेनाब तथा रावी रह जाती हैं अतः इनका बहाव ताकीन राज्य से होकर रहा होगा। गांधार तथा कन्नौज के उल्लेख से ज्ञात होता है कि मसूदी ने नदियों के वास्तविक उद्गम स्थानों का उल्लेख नहीं किया वरन् उसने पहाड़ियों की निचली श्रेणियों का उल्लेख किया है जहाँ यह नदियाँ मैदानों में प्रवेश करती हैं। अतः मसूदी के समय ताकीन मुल्तान के उत्तर में पंजाब के मैदानों एवम् निचली पहाडियों का नाम रहा होगा जो उस समय काबुल के ब्राह्मण राजा के अधीन थे।

सर हेनरी इलियट ने इस नाम को ताकीन पढ़ा है तथा गिल्डीमिस्टर ने अपनी पुस्तक में ताफन लिखा है। प्रथम पाठ को अबुरिहान तथा रशीदुद्दीन का समर्थन प्राप्त है जो इस कथन में सहमत है कि केलारज़िक (लार्ज्क) के विशाल हिमाच्छादित पर्वत जो अपने गुम्बद स्वरूप से डीमावैण्ड के सदृश है उनको ताकीशर तथा लोहावर की सीमाओं से देखा जा सकता है। इलियट ने एक गद्यांश में ताकीशर को शुद्ध कर काश्मीर लिखा है परन्तु यह परिवर्तन पूर्णतः अस्वीकार्य है क्योंकि पर्वत को काश्मीर से दो फरसांग अथवा लगभग ८ मील दूर होने का विशेष उल्लेख किया गया है। कोई भी व्यक्ति इसी प्रकार कह सकता है कि सेन्टपाल का गिरजाघर लुडगेट पहाड़ी तथा विण्डसर से दिखाई देता है। यहाँ जिस पर्वत का संकेत दिया गया है वह काश्मीर के पश्चिम में दयमूर अथवा नांगा पर्वत है जिसकी ऊँचाई २६६२९ फुट है तथा जिसे मैंने २०० मील दूर चिनाब नदी पर रामनगर से बारम्बार देखा है। इसी लेखक के एक अन्य पुस्तकांश में सर हेनरी ने इस पर्वत को (१) कलारचल कहा है तथा दोनों स्थानों को जहाँ से यह पर्वत देखा जा सकता है उसने ताकस तथा लोहावर का नाम दिया है। यह ताकस अथवा ताकीशर मेरे विचार में ह्वेनसांग के सोकिया अथवा ताकी तथा मसूदी के ताकीन नामक स्थान है।

---

(१) यदि यह पर्वत इब्नबतूना के कराचल अथवा "कालापर्वत" के समान है तो नांगा पर्वत से इसकी अनुरूपता प्रायः निश्चित है क्योंकि वर्फ के न होने के कारण नङ्गा पर्वत काला दिखाई देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यापारी सुलेमान सर्व प्रथम मुस्लिम लेखक है जिसने ताकी का उल्लेख किया है तथा जिसने ८५१ ई० में पूर्व की यात्रा की थी, जब उसकी यात्रा का विवरण लिखा गया था। ताफक का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि यह बहुत बड़े विस्तार का क्षेत्र नहीं था तथा यहाँ का राजा दुर्बल था तथा पड़ोसी राजकुमारों का आश्रित था। परन्तु उसने यह भी लिखा है कि उसके पास "सम्पूर्ण भारत की सर्व श्रेष्ठ गौर वर्ण स्त्रियाँ थीं।" चूँकि फारसी चरित्र में ताफक तथा ताकीन लगभग एक समान है अतः ताफक को पञ्जाब के अनुरूप समझने में मुझे कोई हिचक नहीं है जहाँ (पञ्जाब) की स्त्रियाँ विशेषतः निचली पहाड़ियों की स्त्रियाँ, भारत में सबसे गौर वर्ण एवम् श्रेष्ठ हैं।

इब्न-खुरदाद बा ने—जिसकी मृत्यु ९१२ ई० में हुई थी, ताफ़ा के राजा को प्रसिद्धि में बलहा-रा से द्वितीय स्थान पर बताया है। अन्त में, काज़विनी ने तैफन्द को दुर्गम पर्वत के शिखर पर एक सुदृढ़ भारतीय दुर्ग कहा है जिसे महमूद गजनी ने १०२३ ई० में अपने अधिकार में कर लिया था। यह विवरण सांगला की वास्तविक पहाड़ी से मिलता है जो तीन ओर से प्रायः अगम्य है तथा चौथी ओर से जल के कारण सुरक्षित है।

ताकीन, ताफन, ताफक, ताफ़ा, ताकस तथा ताकीशर के अल्पमात्र भिन्नता वाले नामों को मैं केवल ताकी अथवा ताकीन के मूल स्वरूप के विभिन्न उच्चारण मात्र समझता हूँ जिन्हें स्वरों की विशिष्ट चिह्नों के बिना लिखने पर भिन्न-भिन्न प्रकार से पढ़ा जा सकता है। एम० रिनाड ने इसे ताबन लिखा है जिसे स्वरों के विशिष्ट चिह्नों के अभाव में ताफ़न के अन्य स्वरूप के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार से पढ़ा जा सकता है। अतः मेरा यह निष्कर्ष है कि देश के नाम का वास्तविक स्वरूप ह्वेनसांग द्वारा दिया गया ताकी अथवा ताका था। राजधानी का नाम सम्भवतः या तो ताकीन था अथवा तक्कावर, जिनमें प्रथम नाम काज़बिनी के तैफन्द से ठीक-ठीक मिलता है तथा दूसरा नाम पेन्टिंगेरियन सूची के ताह्मोरा से मिलता है। मैं इसे प्रायः निश्चित समझता हूँ कि यह नाम टाक अथवा टक जाति से लिया गया होगा जो एक समय पञ्जाब के असंदिग्ध शासक थे तथा जो आज भी झेलम तथा रावी के बीच निचली पहाड़ियों में अनेक कृषक जातियों के रूप में निवास करते हैं।

इस जाति के पूर्ववर्ती महत्व को सम्भवतः इस तथ्य से भली-भाँति दिखाया जा सकता है कि प्राचीन नागरी स्वरूप जो बामियान से लेकर यमुना के तट तक सम्पूर्ण प्रदेश में अब भी प्रचलित है, उसे टाकरी नाम दिया गया था जिसका कारण सम्भवतः यह था कि इस विशिष्ट स्वरूप को टाकों अथवा टक्कों ने प्रचलित किया था। मैंने इस भाषा के स्वरूप को सिन्धु के पश्चिम तथा सतलज के पूर्व व्यापारियों में और साथ ही साथ काश्मीर तथा कांगड़ा के ब्राह्मणों में इसी नाम से प्रचलित पाया है। शिलालेखों में तथा काश्मीर एवम् कांगड़ा की मुद्राओं पर इसका प्रयोग किया गया है। इसे मण्डी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सती स्मारकों तथा पिन्जोर के शिलालेखों में भी देखा जा सकता है और अन्त में, काश्मीर की राजतरङ्गिणी की एक मात्र प्रतिलिपि टाकरी लिपि में सुरक्षित रखी गई थी। मैंने पेशावर तथा शिमला के बीच २६ विभिन्न स्थानों से इस वर्ण माला की प्रतिलिपियाँ प्राप्त की है। इनमें अधिकांश स्थानों में टाकरी को मुण्डा तथा लुण्डी (अथवा मुण्डे-लुण्डे) भी कहा जाता है परन्तु इन शब्दों के अर्थ अज्ञात हैं। इस वर्ण-माला की मुख्य विशेषता यह है कि स्वरों को व्यञ्जनों के साथ नहीं जोड़ा जाता परन्तु छोटा 'अ' के एक मात्र अपवाद को छोड़ उन्हें अलग-अलग लिखा जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस वर्णमाला में गणनात्मक संख्याओं के प्रारम्भिक अक्षरों का लगभग वही स्वरूप है जैसा स्वरूप वर्तमान समय में प्रयोग की जाने वाली संख्याओं का है।

सातवीं शताब्दी में ताकी राज्य तीन प्रान्तों में विभाजित था, उत्तर तथा पश्चिम में ताकी, पूर्व में शोरकोट तथा दक्षिण में मुल्तान। ताकी प्रान्त में सिन्धु नदी से व्यास नदी तक मुल्तान जिले के उत्तर का भू-भाग अथवा सिन्ध सागर, रिचना तथा बारी के तीन दोआबों के उत्तरी भागों सहित सम्पूर्ण चज दोआब सम्मिलित था। शोरकोट प्रान्त में इन दोआबों के मध्य भाग सम्मिलित थे तथा मुल्तान प्रान्त में इनके निचले भाग सम्मिलित थे। यह भी सम्भव है कि मुल्तान का अधिकार क्षेत्र सिन्धु के पश्चिम और साथ ही साथ सतलज के पूर्व फैला हुआ हो जैसा कि अकबर के समय में था।

ताकी अथवा उत्तरी पंजाब

ताकी प्रान्त नें प्राचीन भारत के प्रसिद्ध स्थानों में अनेक स्थान सम्मिलित थे जिनमें कुछेक सिकन्दर के युद्धों में प्रसिद्ध हुए, कुछेक को बौद्ध इतिहास में ख्याति प्राप्त हुई और अन्य स्थान केवल जनसाधारण की दूर-दूर तक फैली हुई प्रथाओं में प्रसिद्ध हुए थे। निम्नलिखित सूची में प्राचीन स्थानों में सर्वोधिक महत्व के स्थानों के नाम पश्चिम से पूर्व उनकी भौगोलिक स्थिति के अनुसार दिये गये हैं। दोआबों के नामों का प्रचलन अकबर ने दो नदियों के नामों को मिला कर किया था। इस प्रकार चज, चेनाब तथा झेलम नदियों के दोआब का संक्षिप्त नाम है, रिचना, रावी तथा चेनाब का तथा बारी, व्यास तथा रावी नदियों के बीच के स्थान का संक्षिप्त नाम है।

सिन्ध सागर दोआब	(१) जोबनाथ नगर अथवा भिड़ (२) बुकेफल अथवा दिलावर
चज के दोआब	(३) निकेया अथवा मोंग (४) गुजरात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रिचना दोआब
- (५) शाकल अथवा सांगला
- (६) ताकी अथवा असरूर
- (७) नरसिंह अथवा रांसी
- (८) अम्मकाटिस अथवा अम्बकाः

बारी दोआब
- (९) लोहावर अथवा लाहौर
- (१०) कुसावर अथवा कसूर
- (११) चिना पट्टी अथवा पट्टी

जोबनाथनगर अथवा भिड़

भिड़ अथवा भेड़ा का आधुनिक नगर झेलम के बायें अथवा पूर्वी तट पर अवस्थित है परन्तु नदी के दूसरे तट पर अहमदाबाद के समीप खण्डरों का अत्यधिक विस्तृत टीला है जिसे पुराना भिड़ अथवा राजा जोबनाथ अथवा चोबनाथ के रूप में जोबनाथ नगर कहा जाता है। इस स्थान पर नमक के काफलों के दो बड़े मार्ग क्रमशः लाहौर तथा मुल्तान की ओर मुड़ जाते हैं और प्राचीन समय की राजधानी इसी स्थान पर थी तथा मेरा विश्वास है कि सिकन्दर महान् के समकालीन सोफीटीज़ की राजधानी भी इसी स्थान पर थी। एरियन के अनुसार सिकन्दर ने सोपीथोस की राजधानी के स्थान पर ही वह स्थान निश्चित किया था जहाँ क्रेटेरस तथा हेफस्टियन को नदी के दोनों तटों पर अपना पड़ाव डालकर स्वयं सिकन्दर के नेतृत्व में नौकाओं के वेड़े एवम् फिलिप के नेतृत्व में सैनिकों के मुख्य दल की प्रतीक्षा करनी थी। चूँकि सिकंदर निश्चित स्थान पर तीसरे दिन पहुँच गया था अतः हम जानते हैं कि सोफीटीज़ की राजधानी हाईडस्पीज़ पर, निकाया से भरी नौकाओं की तीन दिन की यात्रा पर थी। अब, भिड़ नौका यात्रा द्वारा मोंग से केवल तीन दिन की यात्रा की दूरी पर है जो जैसा कि मैं दिखाने का प्रयत्न करूंगा—प्रायः निश्चित ही निकाया की स्थिति थी। जहाँ सिकन्दर ने पोरस को पराजित किया था। पिण्ड दादन खाँ द्वारा अपना स्थान ग्रहण किये जाने के समय तक भिड़ ही देश के इस भाग का सदैव मुख्य नगर था। भिड़ के स्थान पर ही चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने ४०० ई० में झेलम नदी को पार किया था तथा ग्यारह शताब्दी पश्चात् साहसी बाबर ने भारत में अपना प्रथम सैनिक अभियान भिड़ के विरुद्ध चलाया था।

सोफीटीज के शासन क्षेत्र के सम्बन्ध में प्राचीन उल्लेख परस्पर विरोधी है। स्ट्रैबों के कथन में इस प्रकार लिखा है—कुछ लेखकों ने एक राजा सोपीथीज़ के देश कथेइया को दो नदियों (हाईडस्पीज तथा अकेस्नीज) के मध्य के प्रदेश में अवस्थित बताया है। कुछ लेखकों ने इसे अकेस्नीज तथा हाईड्राओटीज के दूसरी ओर एक अन्य पोरस, प्रथम पोरस के भतीजे—जिसे सिकन्दर ने बन्दी बना लिया था—की सीमाओं पर अवस्थित बताया है और उन्होंने उसके देश को गांधारिस कहा है।" मेरा विश्वास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि इस नाम को गुन्दलबार अथवा गुन्दर बार के आधुनिक जिले के अनुरूप समझा जा सकता है। बार शब्द का प्रयोग प्रत्येक दोआब के मध्य भाग के लिये किया गया है जिसकी ऊँची भूमि में दोनों नदियों का जल सिंचाई कार्य हेतु नहीं पहुँचाया जा सकता। इस प्रकार सन्दल अथवा सन्दर बार झेलम एवम् चेनाब के मध्य चज दोआब के मध्य भाग का नाम है। गुन्दल बार दोआब का ऊपरी भाग जिसको लेकर वर्तमान गुजरात जिला बनाया गया है उस समय सिकन्दर के प्रतिद्वन्दी प्रसिद्ध पोरस के अधिकार में था तथा सन्दर बार दोआब का ऊपरी भाग उसके भतीजे, अन्य पोरस के अधिकार में था जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने गडारोडाय के पास शरण ली थी। टिप्पणी कारों ने इस नाम को बदल कर गङ्गारीडाय अथवा गङ्गा तट के निवासी कर दिया है परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दिवोडोरस की पुस्तक सम्भवतः सर्व शुद्ध है तथा गंडारीडाय गङ्गडारिस जिले के पड़ोस के निवासियों का नाम रहा होगा जो सोफीटीज़ के अधीन थे।

भारतीय राजा का शासन हाईडस्पीस तथा अकेसिनीज़ के मध्य दोआब तक ही सीमित नहीं था क्योंकि स्ट्रैबों ने लिखा है कि "सोपीथीज़ की सीमाओं में सेन्धा नमक का एक पर्वत है जो (नमक) सम्पूर्ण भारत के लिये पर्याप्त है।" चूंकि यह विवरण नमक की पहाड़ियों की सर्व ज्ञात खानों की ओर संकेत करता है अतः सिन्ध सागर दोआब का सम्पूर्ण ऊपरी भाग सोपीथीज के राज्य में रहा होगा। अतः उसका अधिकार क्षेत्र पश्चिम में सिन्धु से लेकर पूर्व में अकेसीनीज तक फैला हुआ था और इस प्रकार उसमें वर्तमान पिण्ड दादन तथा शाहपुर के सम्पूर्ण जिले सम्मिलित थे। प्लिनी के लेख में दिये गये एक देश के नाम के दो अक्षरों में साधारण अदला-बदली करने से भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नमक की मूल्यवान खानें सोपीथीज़ अथवा सोफीटीज़ के राज्य में थी। प्लिनी द्वारा इस देश के नाम ने सभी टिप्पणी कारों को अभी तक दुविधा में रखा है। प्लिनी का कथन है कि "जिस समय सिकन्दर महान् अपने भारतीय अभियान पर था अलबानिया के शासक ने उसे एक असमान्य आकार का कुत्ता भेंट में दिया था। जिसने उसके सामने ही एक शेर तथा एक हाथी दोनों पर ही सफलता पूर्वक आक्रमण किया था। उसके अनुकर्त्ता सोलिनस ने देश के नाम में किसी प्रकार के परिवर्तन के बिना इसी कथा को दोहराया है। अब स्ट्रैबो दिवोडोरस तथा कर्टियस के संयुक्त साक्षी से हम जानते हैं कि सिकन्दर को इन लड़ाकू कुत्तों की भेंट देने वाला भारतीय राजा सोफीटीज़ था। अतः वह ही अलबानिया का शासक रहा होगा। प्रथम दो अक्षरों की साधारण अदला-बदली से मैं इस नाम को लबानिया पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ। इस प्रकार अलबान लबान बन जायेगा जिससे तुरन्त ही यह संकेत मिलता है कि अभी तक के भ्रान्तिपूर्ण नाम का मूलरूप संस्कृत का 'लवण' था। प्लिनी ने पर्वत का नाम ओरोमीनस रखा है तथा उसका कथन है कि यहाँ के राजा को स्वर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा मोतियों की अपेक्षा नमक से अधिक आय प्राप्त होती थी। यह नाम सम्भवतः संस्कृत के रौमक के लिये लिखा गया है जो पण्डितों के अनुसार रूमा नामक देश की पहाड़ियों से निकाले गये नमक का नाम है। एच० एच० विलसन ने रूमा को साम्भर के अनुरूप बताया है और चूंकि रौम का अर्थ नमक है अतः यह सम्भव है कि राजपूताना की सांम्भर झील तथा पञ्जाब की नमक की पहाड़ियों दोनों को ही यह नाम दिया गया हो।

सिकन्दर के इतिहासकारों ने सोफीटीज़, उसके देश तथा उसकी अधीन जनता के सम्बन्ध में अनेक विचित्र एवम् विस्तृत विवरण सुरक्षित रखे हैं। स्वयं राजा के सम्बन्ध में कर्टियस ने लिखा है कि वह बर्बर लोगों में सुन्दरता के लिये प्रख्यात था डिवोडोरस ने यह जोड़ दिया है कि वह छः फुट लम्बा था। मेरे पास यूनानी कारीगरी की एक मुद्रा है जिसके एक ओर टोप धारण किए हुए एक सिर बनाया गया है और दूसरी ओर एक विशिष्ट नाम सहित खड़ा मुर्गा दिखाया गया है। इस बात को विश्वास करने में अनेक अच्छे कारण हैं कि यह मुद्रा भारतीय राजा से सम्बन्धित रही होगी। इसका चेहरा अति तीक्ष्ण तथा विशिष्ट आकृति के लिये उल्लेखनीय है। सोफीटीज़ की जनता भी अपनी व्यक्तिगत सुन्दरता के कारण प्रसिद्ध थी। डिवोडोरस के अनुसार वह अपनी सुन्दरता को सुरक्षित रखने के लिए उन सभी बच्चों की हत्या कर देते थे जो सुन्दर नहीं होते थे। स्ट्रैबो ने कथायी की इसी वस्तु का उल्लेख किया है परन्तु उसने चूंकि यह लिखा है कि यह लोग सर्व सुन्दर व्यक्ति को अपना राजा चुना करते थे, उसका विवरण सोफीटीज़ की जनता के लिये ही दिया गया होगा क्योंकि सांगला के कथाइयों का अपना कोई राजा नहीं था। फिर भी कथायी तथा सोफीटीज़ की जनता के सम्बन्ध में दिये गये सभी लेखकों के विवरणों में इतनी अधिक गड़बड़ी है कि यह अति सम्भव प्रतीत होता है कि वह दोनों एक ही जनता के नाम थे। निश्चित ही यह एक दूसरे के पड़ोसी थे और चूंकि दोनों की विशिष्ट प्रथायें एक समान प्रतीत होती हैं और व्यक्तिगत सुन्दरता में समान रूप से उल्लेखनीय हैं। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वह एक ही जाति के विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित रहे होगें।

बुकेफल अथवा दिलावर

सिकन्दर अथवा पोरस के बीच युद्ध का स्थान काफी लम्बे समय से विद्वानों की कल्पना शक्ति एवम् आकर्षण केन्द्र रहा है। न्यायप्रिय एलफिन्स्टन ने इसे जलालपुर के विपरीत बताया है परन्तु बनर्जी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यह स्थान झेलम के समीप रहा होगा, क्योंकि यह तरतारी से आने वाले विशाल मार्ग पर अवस्थित है। सिकन्दर को इस मार्ग का अनुसरण करते हुए बताया गया है। १८३६ में जनरल कोर्ट ने इस विषय पर विवेचना की थी जिन्हें अपने प्रारम्भिक सैनिक प्रशिक्षण एवम् पञ्जाब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लम्बी अवधि के निवास से निरीक्षण हेतु प्राप्त असाधारण अवसरों से किसी सुनिश्चित विचार पर पहुँचने के सम्भव साधन प्राप्त हुये थे। जनरल कोर्ट ने सिकन्दर के पड़ाव को झेलम में निश्चित किया, नदी पार करने का स्थान झेलम से ऊपर ३ कोस अथवा ६ मील की दूरी पर खिलीपटम में, पोरस के साथ युद्ध का स्थान झेलम से ८ मील पूर्व जाबा नदी पर पट्टी कोटी में, तथा निकाया की स्थिति को वेस्सा अथवा भेसा के स्थान पर बताया, जो पथी अथवा पट्टी कोटी के ३ मील दक्षिण पूर्व में है। स्वर्गीय लार्ड हार्डिंग को इस विषय में अत्यधिक रुचि थी और उन्होंने १८४६ तथा १८४७ में मेरे साथ दो बार इस विषय पर पत्र-व्यवहार किया था। उनका विचार मेरे विचार से मिलता है कि सिकन्दर का पड़ाव सम्भवतः जलालपुर के समीप था। अगले वर्ष जनरल कोर्ट ने पोरस एवम् सिकन्दर के युद्ध क्षेत्र का विस्तृत विवरण छापा था जिसमें उन्होंने सिकन्दर के पड़ाव को झेलम में तथा पोरस के पड़ाव को नदी के दूसरे तट पर नोरङ्गाबाद के समीप बताया था। नदी पार करने के स्थान को उन्होंने झेलम से लगभग १० मील ऊपर भूना में तथा युद्ध क्षेत्र को सुखचेनपुर के ३ मील उत्तर पकराल के समीप निश्चित किया था। १८६३ तक यह प्रश्न इसी स्थिति में रहा और उस समय पञ्जाब के अपने दौरे पर मुझे जलालपुर से लेकर झेलम तक हाईडस्पीस के तटों का समुचित निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सिकन्दर की गतिविधियों पर विवेचना करने से पूर्व मैं जलालपुर से झेलम के मध्य नदी के साथ-साथ विभिन्न स्थानों का पश्चिम की ओर से वहाँ पहुँचने के सभी मार्गों सहित उल्लेख करना उचित समझता हूँ। जब हम उस स्थान का निर्णय कर लेंगे जो बुकेफल के विवरण से सर्वोधिक समानता रखता है तो हम सिकन्दर के पड़ाव के रूप में जलालपुर तथा झेलम के अपेक्षाकृत दावों पर निश्चय करने की स्थिति में हो जायेंगे। इस विवेचन में मै जिन दूरियों का उल्लेख करूंगा वह सभी वास्तविक माप से ली गई है।

झेलम नगर, जलालपुर से ३० मील उत्तर पूर्व तथा लाहौर से ठीक १०० मील उत्तर, उत्तर पश्चिम में नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। प्राचीन नगर के अवशेषों में वर्तमान नगर के पश्चिम लगभग १३०० फुट वर्गाकार एवम् ३० फुट ऊँचा एक विशाल ध्वस्त टीला सम्मिलित है जो टूटी हुई ईंटो एवं चीनी के बर्तनों से ढंके खेतों से घिरा हुआ है। वर्गाकार टीले को मैं दुर्ग के खण्डहर समझता हूँ कहा जाता है कि इसका नाम पुट्टा था। वर्षा के पश्चात् इस टीले से आज भी अनेक मुद्रायें प्राप्त होती है परन्तु वह मुद्रायें जिन्हें मैं एकत्रित कर सका था वह सभी पश्चात्वर्ती इण्डो-सीथियन राजाओं, काबुल के ब्राह्मणों तथा काश्मीर के राजाओं से सम्बन्धित थीं। चूंकि जनरल कोर्ट तथा जनरल एबाट ने पिछले वर्षों में इसी प्रकार की तथा इससे पूर्व समय की अनेक मुद्रायें प्राप्त की थी अतः यह निश्चित है कि यह नगर ईसा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम शताब्दी से पूर्व का रहा होगा। परन्तु उत्तरी पञ्जाब से होकर जाने वाले दो मुख्य मार्गों में एक पर अवस्थित होने के इतने अधिक लाभ हैं कि मेरे विचार में अत्यधिक प्राचीन समय में यह नगर बसा होगा। पुराने टीले की खुदाई में प्राप्त बड़ी-बड़ी ईंटों की प्राप्ति से इस विचार की पुष्टि होती है।

दारापुर के समीप का ध्वस्त नगर जिसका बर्नस तथा कोर्ट ने उल्लेख किया है—झेलम से २० मील नीचे तथा जलालपुर से १० मील ऊपर नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। उनके समय में यह टीला निर्जन था परन्तु १८३२ ई० के लगभग दिलावर के निवासियों पश्चिम की पहाड़ी पर अवस्थित गाँव को त्याग कर, ध्वस्त नगर के स्थान पर बस गये थे। उस समय से पूर्व इस स्थान को प्रायः पिण्ड अथवा 'टीला' कहा जाता था यद्यपि इसका वास्तविक नाम उधम नगर अथवा उदीनगर कहा जाता है। बर्नोज ने भी इसी नाम का उल्लेख किया है परन्तु कोर्ट ने जिन्होंने इन खण्डहरों की ओर दो बार संकेत किया है, किसी नाम का उल्लेख नहीं किया है। हो सकता है कि उन्होंने इन नामों को गघीराखी के अन्तर्गत माना हो जिसके खण्डहरों को उन्होंने "जलालपुर के समीप से लेकर दारापुर तक हाईडस्पीस के" तटों पर फैले हुये बताया है। इस विवरण के अनुसार यह खण्डहर लम्बाई में ६ अथवा ७ मील से कम नहीं होंगे। मैं यह सम्भव समझता हूँ कि दो विभिन्न स्थानों के मध्य कुछ शङ्का रही है जिन्हें मिलाकर खण्डहरो का एक ही विस्तृत क्षेत्र बना दिया गया है। गिरझाक, जिसे मैं कोर्ट के गगीराखी का मूल स्वरूप समझता हूँ, जलालपुर के उत्तर में पहाड़ी के शिखर पर एक प्राचोन ध्वस्त दुर्ग है, जो जनसाधारण के अनुसार अति विस्तृत था। परन्तु यह दारापुर से कम से कम ८ मील की दूरी पर है तथा गहरी कन्दहार खाइयों द्वारा तथा जिन पहाड़ियों के अधोभाग में दिलावर अवस्थित है उन पहाड़ियों की ऊँची खड़ी श्रेणियों द्वारा दारापुर से अलग कर दिया गया है। बर्नस ने भी प्राचीन नगर को "तोन अथवा चार मील" विस्तृत कहा है परन्तु यह निश्चित ही अतिशयोक्तिपूर्ण है क्योंकि मैं खण्डहरों को लम्बाई में एक मील तथा चोड़ाई में आधा मील के बाद नहीं ढूंढ सका था। इन अवशेषों के अन्तर्गत, लगभग आधा मील की दूरी पर दो विशाल टीले तथा उसके मध्य दो छोटे टीले हैं। दक्षिणी टीले जिस पर दिलावर अवस्थित है—शिखर पर लगभग ५०० फुट वर्गाकार है तथा अधोभाग में यह ११०० अथवा १२०० फुट है एवं इसकी ऊँचाई ५० से ६० फुट है। उत्तरी टीला जिस पर दारापुर अवस्थित है—६०० फुट वर्गाकार तथा २० से ३० फुट ऊँचा है। इन टीलों के मध्य के खेत टूटी ईंटों तथा चीनी के बर्तनों से ढके हुए हैं तथा कहा जाता है कि सम्पूर्ण स्थान पर एक ही नगर के अवशेष हैं। दिलावर के भवनों की दीवारें इस टीले से खोद कर निकाली गई विशाल पुरानी ईंटों से बनाई गई है जो आकार में दो प्रकार की है। एक ११½ × ८¾ × ३ इञ्च मोटी है और दूसरी इससे केवल आधी मोटाई की हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिलावर के टीले से पुरानी मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। कहा जाता है कि दिलावर से जलालपुर बाजार को यह वस्तुयें भेजी जाती है ठीक उसी प्रकार जैसे जोबनाथ नगर के अवशेषों से पिण्ड दादन को यह वस्तुयें प्राप्त होती है। मैंने जिन मुद्राओं को प्राप्त किया था वह प्रथम इण्डोसीथिन राजाओं, काबुल के ब्राह्मणों, काश्मीर के राजाओं तथा कारलूकी हजारा के प्रमुखों, हसन एवं उसके पुत्र मुहम्मद के समय की है। अतः यह स्थान ईसा काल के दूसरी शताब्दी के समय से बसा होगा। कहा जाता है कि राजा भारती ने—जिसकी आयु अज्ञात है—इस नगर का निर्माण करवाया था। फिर भी मेरा निष्कर्ष है कि अपनी स्थिति के कारण दिलावर अत्यधिक प्रारम्भिक काल में बस गया होगा क्योंकि यह झेलम के मार्ग पर उस विन्दु पर नियंत्रण करता है जहाँ पश्चिम की ओर से आने वाला निचला मार्ग बुनहार नदी के मुहाने से ठीक नीचे पहाड़ियों को छोड़ देता है।

जलालपुर नगर, झेलम नदी के पश्चिमी तट पर उस स्थान पर अवस्थित है जहाँ कन्दार खाई नदी के पुराने मार्ग से मिल जाती है। यह नदी अब दो मील दूर है और मध्यवर्ती भाग जिसका कुछ भाग छोटे वृक्षों से ढंका हुआ है—अब भी रेतीला है। कहा जाता है कि नगर का यह नाम अकबर के सम्मान में रखा गया था जिसके समय में सम्भवतः यह अधिक समृद्ध स्थान रहा होगा। परन्तु नदी के हट जाने के समय से और विशेष रूप से पिण्ड दादन की स्थापना के समय से यह स्थान धीरे-धीरे घटता गया और अब यहाँ पर लगभग ४००० निवासियों सहित केवल ७३८ गृह हैं। इस स्थान को देखने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस नगर का प्रारम्भिक विस्तार वर्तमान विस्तार से लगभग तीन अथवा चार गुणा अधिक रहा होगा। यह भवन नमक की पहाड़ियों के दूरस्थ पूर्वी छोर की अन्तिम ढलान पर बनाए गये हैं। यह स्थान सड़क से धीरे-धीरे १५० फुट की ऊँचाई तक ऊपर उठ जाता है। इसका पुराना हिन्दू नाम गिरझाक बताया जाता है और चूँकि इस नाम को अब्दुल फजल की आइने-अकबरी में सिन्ध-सागर का केरचक (गिरजक पढ़ें) लिखा गया है अतः हमारे पास इस बात का प्रमाण है कि यह नाम अकबर के समय तक प्रचलित था और उसके समय में इसका नाम बदल कर जलालपुर रखा गया था। परन्तु जनसाधारण 'मङ्गल दी पहाड़ी' के शिखर पर दीवारों के अवशेषों को आज भी गिरझाक नाम से पुकारते हैं। यह पहाड़ी जलालपुर से ११०० फुट ऊंची उठी हुई है। जन श्रुतियों के अनुसार गिरझाक पश्चिम उत्तर पश्चिम में ११ मील की दूरी पर बाघनवाल के पुराने मन्दिर तक विस्तृत था। परन्तु यह केवल अज्ञानता की सामान्य अतिशयोक्ति है जैसा कि अन्य सभी प्राचीन स्थानों के सम्बन्ध में किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह नगर किसी समय पश्चिम की ओर कुछ अधिक दूरी तक विस्तृत था क्योंकि उस ओर लगभग आधे मील की दूरी तक सम्पूर्ण स्थान पर चीनी के बर्तनों के टुकड़े अधिक मात्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में फैले हुए हैं। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है क्योंकि यहाँ पर प्राप्त होने वाली मुद्रायें सिकन्दर के उत्तराधिकारियों के समय की है। परन्तु मेरा विश्वास है कि यह स्थान अत्यधिक पुराना है क्योंकि निचले मार्ग के दक्षिण पूर्वी छोर पर अपनी अनुकूल स्थिति के कारण निश्चित ही यह स्थान अधिक प्रारम्भिक काल में बस गया होगा। अतः मेरा विचार है कि यह स्थान रामायण के गिरिराज के अनुरूप समझा जा सकता है। प्रथाओं में काम कमारत नाम के केवल एक राजा का नाम रखा गया है जिसे मोंग के संस्थापक मोगा की बहिन का पुत्र बताया जाता है। मुगलबेग ने इस नाम को घर-जेहाक लिखा है और यहाँ के कुछ निवासियों द्वारा भी इस नाम को इस प्रकार लिखा गया है क्योंकि यह नाम गिरि-जोहाक अथवा जोहाक की पहाड़ी से लिया गया है परन्तु इसके उच्चारण के अनुसार इसे झाक लिखा जाता है।

झेलम से जलालपुर तक नदी का मार्ग पर्वतों की लगभग दो समानान्तर श्रेणियों के बीच उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर है। यह श्रेणियाँ सामान्य रूप से टीला तथा पभी पहाड़ियों के नाम से ज्ञात है। टीला श्रेणी जो लम्बाई में लगभग ३० मील है, मङ्गला से नीचे नदी के विशाल पूर्वी घुमाव से लेकर जलालपुर के १२ मील उत्तर में बुनहार नदी तक पश्चिमी तट के साथ फैली हुई है। टीला का अर्थ है शिखर, अथवा पहाड़ी और इसका पूरा नाम गोरख नाथ का टीला है। इसका पुराना नाम बालनाथ का टीला था। यह दोनों नाम शिखर पर बने मन्दिर से लिये गये हैं जो प्रारम्भ में बालनाथ के रूप में सूर्य का मन्दिर था परन्तु जहाँ वतमान समय में शिव के स्वरूप गोरखनाथ की पूजा होती है। फिर भी दूसरा नाम अधिक पुराना नहीं है क्योंकि बुगलबेग जिसने १७८४ तथा १७९४ ई० के बीच इस देश का सर्वेक्षण किया था—इसे "जोगियान-दो-टिब्बी, अथवा जोगियों की अटारी कहा है जिनके मुखिया को बिलनाट कहा जाता है।" अब्बुल फजल ने भी "बलनाट की कन्दरा" तथा जोगियों अथवा भक्तों का उल्लेख किया है जिनके नाम पर कभी-कभी इस पहाड़ी को जोगी टीला कहा जाता है। परन्तु बालनाथ का नाम सम्भवतः सिकन्दर के समय से अधिक पुराना है क्योंकि प्लूटार्च ने लिखा है कि जिस समय पोरस सिकन्दर का सामना करने के लिए अपनी सेना को एकत्रित कर रहा था उस समय राजकीय हाथी सूर्य की पवित्र पहाड़ी की ओर भागा तथा मानव भाषा में उसने घोषणा की, कि "ए महान् राजा, तुम गिगासीयस के पूर्वज हो अतः तुम सिकन्दर का विरोध त्याग दो क्योंकि स्वयं गिगासियस भी जोव की जाति से सम्बन्धित था।"

"सूर्य की पहाड़ी" बालनाथ का टीला का केवल अक्षर सा अनुवाद है परन्तु प्लूटार्च का कथन है कि इसे बाद में "हाथी का पहाड़ी" कहा जाता था जिसे मैं बाल-नाथ से इसकी अनुरूपता का एक अन्य प्रमाण समझता हूँ, क्योंकि जनसाधारण में इस नाम को सामान्यतः बिलनाट पुकारा जाता है और चूँकि मुगलवेग ने इसे इसी नाम से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखा है अतः मैसीडोनियाँ के निवासियों ने जो फारस से होकर उस समय वहाँ पहुँचे थे, इसे निश्चित ही गलती से फिल-नाथ, अथवा पिल-नाथ अर्थात् 'हाथी' समझ लिया होगा। परन्तु सिकन्दर का पड़ाव झेलम अथवा जलालपुर कहीं भी रहा हो यह निश्चित है कि मैसीडोनिया के निवासी इस महत्वपूर्ण पहाड़ी की ओर आकर्षित हुये होंगे क्योंकि यह हाईडसपेस से ५० मील के भीतर सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र से ३२४२ फुट अथवा नदी के स्तर से लगभग २५००० फुट ऊँची है।

नदी के पूर्वी तट पर पहाड़ियों की सभी श्रेणी भिम्बर के पड़ोस के लेकर रसूल तक लगभग ३० मील तक फैली हुई है। यह श्रेणी बहुत नीची है क्योंकि उच्चतम बिन्दु समुद्र से १४०० फुट से अधिक ऊँचा नहीं है तथा नदी के स्तर से ५०० फुट से कम है। परन्तु पहाड़ी के दोनों ओर ऊँचा नीचा एवम् दुर्गम स्थान एक रुकावट का काम करता है जो उतना ही दुर्गम है जितना कि एक अधिक उन्नत पहाड़ी हो सकती है। पञ्जाब पर अङ्ग्रेजी अधिकार हो जाने के समय तक पभी पहाड़ियों को रसूल के उत्तर पूर्व में पांच मील की दूरी पर केवल कोहरी दर्रे के मार्ग से तथा झेलम के दस मील दक्षिण पूर्व में खारियान दर्रे से एक पगडण्डी द्वारा पार किया जा सकता था। यद्यपि मुख्य सड़क को अब खारियान दर्रे से ले जा । जा चुका है फिर भी मूसलाधार वर्षा के पश्चात् यह सड़क बन्द हो जाती है।

पश्चिम की ओर से हाईडस्पीस तक पहुँचने के लिए सिकन्दर के पास दो विभिन्न मार्ग थे जिन्हें बाबर ने ऊपरी एवम् निचला मार्ग कहा है। सिन्धु नदी से हसन अब्ब-दाल अथवा शाहढेरी तक यह दोनों मार्ग एक ही थे। तत्पश्चात् ऊपरी मार्ग मारगल दर्रे के रास्ते रावलपिण्डी तथा मानिक्याल से होकर घमाक तथा बकराल तक चला गया है जिस स्थान से यह मार्ग काहन नदी के मार्ग से टीला श्रेणी के मध्य रिक्त स्थान से होते हुए रोहतास तक नीचे चला जाता है और वहाँ से खुले मैदान से होकर झेलम तक चला जाता हैं। बकराल से झेलम तक एक पगडण्डी भी थी जो रोहतास से लग-भग छः मील उत्तर पूर्व में टीला श्रेणी से होकर जाती है। परन्तु यह दर्रा घोड़ों तथा ऊँटों के लिये सदैव भयानक तथा पैदल यात्रियों के लिए भी कठिन मार्ग था। शाहढेरी से रोहतास के मार्ग से झेलम तक यह ऊपरी मार्ग ९४ मील लम्बा था परन्तु अब इसे नई सड़क द्वारा घटाकर ८७ मील कर दिया गया है। इस मार्ग के कारण रोहतास तथा घमाक के मार्ग से दो लम्बे घुमाओं से बचा जा सकता है।

निचला मार्ग तक्षशिला अथवा शाहढेरी से मारगल दर्रे से होकर जङ्गी तक जाता है जहाँ से यह चाऊनतरा से होकर दुधियाल की ओर चला जाता है। इस स्थान पर यह सड़क दो शाखाओं में बंट जाती है। दक्षिण की ओर जाने वाला मार्ग चकवाल तथा नमक की खानों के मार्ग से पिण्ड दादन तथा अहमदाबाद तक चला जाता है। पूर्व की ओर जाने वाला मार्ग असनोट तथा बुनहार नदी के मार्ग से रसूल के विपरीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिलावर तक अथवा असनोट तथा वङ्ग के मार्ग से जलालपुर तक चला जाता है। शाहढेरी से दुधियाल की दूरी ५५ मील है। वहाँ से असनोट तक ३३ मील है और तत्पश्चात् दिलावर अथवा जलालपुर तक प्रत्येक २ मील दूर है इस प्रकार इस मार्ग से सड़क की कुल दूरी ११८ मील है। यदि यात्री नमक की पहाड़ियों के अधोभाग से सीधे जलालपुर चला जाये तो उपर्युक्त दूरी को घटाकर ११४ मील किया जा सकता है। एक तीसरा मार्ग भी है जो मानिक्याल स्तूप से ६ मील दक्षिण में मण्डरा पर ऊपरी मार्ग से अलग हो जाता है तथा चकोवाल तथा पिण्ड दादन के मार्ग से जलालपुर चला जाता है। इस मार्ग से शाहढेरी से जलालपुर तक की कुल दूरी ११६$\frac{3}{4}$ मील अथवा नमक की पहाड़ियों से मार्ग को छोड़कर सीधे जलालपुर जाने से ११२$\frac{3}{4}$ मील है। इन तीन विभिन्न मार्गों की दूरी क्रमशः १०६, ११४ तथा ११२$\frac{3}{4}$ मील है और दूरी ११२$\frac{1}{4}$ मील है।

अब प्लिनी ने सिकन्दर के सर्वेक्षको दिवोगनिटीज़ तथा बैटन द्वारा दिये गये माप के आधार पर तक्षशिला से हाईडसपीज़ की दूरी १२० रोमन मील आँकी है जो स्मिथ के "प्राचीनता के कास में निश्चित ०६१६३ की दर से ११०$\frac{1}{3}$ मील के समान है। चूंकि प्लिनी की प्रत्येक रतिलिपियों में एक ही संख्या दी गई है अतः हमें इसे उस मार्ग की वास्तविक दूरी के स्वरूप में स्वीकार कर लेना चाहिए जिसका सिकन्दर ने तक्षशिला से हाईडसपीज़ पर अपने पड़ाव तक अनुसरण किया था। इस दूरी की शाहढेरी से झेलम तथा जलालपुर की उपरोक्त दूरियों से तुलना करने पर हम निस्संकोच झेलम को अस्वीकार कर सकते हैं जो कथित दूरी से कम से कम १६ मील कम है जबकि जलालपुर इस दूरी से २ मील से कम के अन्तर पर है। परन्तु एक अन्य आपत्ति भी है जो समान रूप से झेलम के विरुद्ध है। स्ट्रैबो के अनुसार "हाईडसपीज़ की दूरी तक सिकन्दर की यात्रा की दिशा अधिकांश रूप से दक्षिण की ओर थी। तत्पश्चात् हिपानीज़ तक यह पूर्व की ओर अधिक थी।" अब यदि मानचित्र पर सिन्धु नदी पर ओहिन्द से तक्षशिला के मार्ग से झेलम तक खींची रेखा को आगे बढ़ाया जाए तो यह रेखा गुजरात तथा सोद्रा से होकर जलन्धर तथा सरहिन्द तक चली जाएगी। चूंकि गङ्गा नदी तक जाने के लिए यह सबसे उत्तरा मार्ग है जिसका संभवतः सिकन्दर अनुसरण कर सकता था अतः झेलम से होकर उसका मार्ग एक निरन्तर सीधी रेखा पर रहा होगा और यह स्ट्रैबो के स्पष्ट कथन का पूर्ण विरोधी है। यदि हम जलालपुर के दावे को स्वीकार कर लें तो यह कठिनाई दूर हो जायगी क्योंकि दिशा में परिवर्तन २५ दिकांश पूर्व में अधिक रहा होगा। झेलम के विरोध में तीसरी आपत्ति यद्यपि पिछली आपत्तियों के समान ठोस आपत्ति नहीं है फिर भी यह एक ही विचार के पक्ष में एक अतिरिक्त साक्षी के रूप में महत्वपूर्ण है। एरियान के अनुसार निकाया से हाईडसपीज़ में नीचे की ओर आते समय नौकाओं का बेड़ा सोपिथीज़ की राजधानी में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरे दिन पहुँचा था। मैं यह पहले ही सिद्ध कर चुका हूँ कि सोपिथीज़ का निवास जोबनाथ नगर अथवा अहमदाबाद में था जो लदी हुई नाव के लिए जलालपुर से तीन दिन की यात्रा पर परन्तु झेलम से छः दिन की यात्रा पर है। चूंकि इन प्रत्येक भिन्न परीक्षणों में सभी तथ्य जलालपुर के पक्ष में, और झेलम के उतने ही विरोधी हैं, अतः मेरा विचार है कि हम जलालपुर को सिकन्दर के पड़ाव के सम्भावित स्थान के रूप में उचित रूप से स्वीकार कर सकते हैं।

अब हमें यह देखना है कि जलालपुर के पास नदी एवम् प्रदेश सिकन्दर द्वारा हाईडसपीज़ को पार करने के अभियान तथा पोरस के साथ पश्चात्वर्ती युद्ध के कथित विवरण से किस प्रकार सहमत होगा। एरियन के अनुसार "नदी के तट पर बाहर की ओर निकला हुआ बन क्षेत्र था तथा पड़ाव से १७$\frac{1}{8}$ मील ऊपर तथा इसके ठीक सामने घने जङ्गल सहित एक टापू था।" कर्टियस ने भी घने जङ्गल वाले टापू का उल्लेख "उसके सैनिक अभियान पर पर्दा डालने योग्य स्थान" के रूप में किया है। उसने यह भी लिखा है कि "यहाँ पर एक गहरी खाई भी थी जो उसके पड़ाव से अधिक दूर नहीं थी तथा जिसमें न केवल पैदल सेना छिप सकती थी वरन् घुड़सवार सेना भी छिपे रूप में रह सकती थी।" एरियन से हमें ज्ञात होता है कि यह खाई नदी के समीप नहीं थी क्योंकि "सिकन्दर अपनी सेना को तट से कुछ दूरी पर ले गया था ताकि शत्रु को यह आभास न हो कि वह घने जङ्गल अथवा टापू की ओर जा रहा है।" जलालपुर के उत्तर में एक खाई है जो दोनों इतिहासकारों द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार है। यह खाई कन्दरनाला का पाट है जो अपने उद्गम स्थान से जलालपुर तक ६ मील के बाद मरुभूमि में लुप्त हो जाती है। इस खाई के ऊपर एक मार्ग सदैव रहा है परन्तु झेलम की ओर जाने वाली सड़क दुर्गम थी। समुद्र से १०८० फुट तथा नदी स्तर से ३४५ फुट ऊँचे कन्दर शिखर से यह सड़क ३ मील तक उत्तरी दिशा में काशी नामक एक अन्य खाई के साथ नीचे चली जाती है। तत्पश्चात् यह सड़क अचानक पूर्व की ओर मुड़ जाती है और ६$\frac{1}{2}$ मील के बाद पुनः १$\frac{1}{2}$ मील दक्षिण की ओर जाती है जहाँ यह दिलावर से नीचे झेलम में मिल जाती है इस प्रकार जलालपुर से कुल दूरी ठीक १७ मील है। सिकन्दर की यात्रा की सम्भावना पर विचार करने के उद्देश्य से मैं स्वयं इस खाई के साथ-साथ सड़क पर गया था और मुझे सन्तोष है कि इस यात्रा में प्रथम आधे भाग में थोड़े उतार चढ़ाव के कारण होने वाली थकावट तथा दूसरे आधे भाग में मरुस्थल में चलने को कठिनाई को छोड़ अन्य कोई कठिनाई नहीं है। जैसा कि एरियन ने लिखा है, यह खाई "तट में कुछ दूरी पर है।" क्योंकि काशी का मोड़ झेलम से ७ मील की दूरी पर है और जैसा कर्टियस ने लिखा है यह खाई "अधिक गहरी खाई" भी है क्योंकि इसके प्रत्येक ओर पहाड़ियाँ १०० से २०० तथा ३०० फुट ऊँची उठ जाती हैं। अतः इस सम्बन्ध में दिये गये तीन प्रमुख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथ्यों में इस खाई का विवरण प्राचीन इतिहासकारों के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है।

अन्य छोटी-छोटी बातों में एक बात मुझे नदी के उस भाग से विशेष रूप से सम्बन्धित प्रतीत होती है जो जलालपुर से ठीक ऊपर है। एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने नदी तट के साथ-साथ धावक प्रहरी नियुक्त किये थे जो एक दूसरे से केवल इतनी दूरी पर थे कि वह परस्पर देख सकें एवम् उसकी आज्ञायें प्रसारित कर सकें। अब, मेरा विश्वास है कि चैतन्य शत्रु के सम्मुख यह कार्य दिलावर तथा जलालपुर के मध्य नदी तट को छोड़ अन्य किसी स्थान पर नहीं किया जा सकता था। अन्य सभी भागों में नदी के पश्चिमी तट पर कोई बाधा नहीं है परन्तु इस भाग में घनी एवम् पथरीली पहाड़ियाँ नदी की ओर ढलवा हो जाती हैं तथा अकेले सन्तरियों के छिपाने के लिये पर्याप्त स्थान प्रदान करती हैं। चूंकि नदी तट के साथ की दूरी १० मील से कम है तथा पड़ाव के पूर्वी छोर से यह ७ मील से अधिक दूर नहीं था अतः इस बात को समझना सरल है कि सिकन्दर ने क्यों अधिक लम्बे मार्ग—जिस पर उसने स्वयं आगे बढ़ना था—की अपेक्षा इस मार्ग पर सन्तारियों को नियुक्त किया था। नदी मार्ग में एक चट्टान की उपस्थिति एक अन्य ऐसी बात है जहाँ कर्टियस के अनुसार एक नाव टकरा गई थी। आज भी कोटेरा, मेरियाल, मलिकपुर तथा शाह कुबोर के स्थान पर नदी में चट्टानें मिलती हैं और यह सभी स्थान दिलावर तथा जलालपुर के मध्य है। कोटेरा गाँव एक घने जङ्गल वाले उभड़े भाग के अन्तिम छोर पर अवस्थित है जो दिलावर से एक मोल नीचे नदी के ऊपर उभड़ा हुआ है इस घने उभड़े भाग के साथ की चट्टान सहित मैं एरियन के ओक्ता तथा कर्टियस के पेत्रा के अनुरूप समझता हूँ। इस चट्टान के दूसरी ओर घने जङ्गल वाला टापू था जिसके कारण उभड़े भाग का निचला भाग नदी के दूसरे तट से नहीं देखा जा सकता था। झेलम के इस भाग में अनेक टापू हैं परन्तु जब एक ही वर्ष इनमें किसी एक टापू को समाप्त करने के लिये है तो २००० वर्षों के पश्चात् सिकन्दर के टापू को ढूंढने को आशा करना असङ्गत होगा। परन्तु १८४६ ई० में कौटेरा के सामने २½ मील लम्बा तथा आधा मील चौड़ा इस प्रकार का एक टापू था जो आज की विशाल रेतीले तट के रूप में दिखाई देता है। चूंकि यह यात्रा वर्षा ऋतु में हुई थी। अतः विशाल रेतीले तट के टापू पर झाऊ की झाड़ियों का निकल आना स्वाभाविक था जिनकी ऊँचाई पैदल सेना तथा पैदल घुड़-सवारों की गतिविधियों को छिपाने के लिए पर्याप्त थीं।

मेरे विश्वासानुसार दोनों पड़ावों की स्थिति इस प्रकार थी—तक्षशिला के मोफ़िज के नेतृत्व में ५००० भारतीय सैनिकों सहित लगभग ५०,००० सैनिकों के साथ सिकन्दर का मुख्यालय जलालपुर में था तथा उसका पड़ाव सम्भवतः जलालपुर से दो मील उत्तर पूर्व में शाह कबीर से लेकर जलालपुर के नीचे ४ मील पश्चिम दक्षिण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पश्चिम से स्यादपुर तक विस्तृत था। पोरस का मुख्यालय मोंग से ४ मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में तथा जलालपुर से ३ मील दक्षिण पूर्व में मुहाबतपुर के पास रहा होगा। हाथियों, घुनवारियों तथा रथ सेना सहित उसको ५०००० सेना भी मैसोडोनिया की सेना के समान ही विस्तृत क्षेत्र में रही होगी अतः इसका विस्तार मुहाबतपुर से २ मील ऊपर तथा ४ मील नीचे रहा होगा। ऐसी स्थिति में सिकन्दर के पड़ाव का वाम पक्ष कोटेरा के घने उभड़े भाग से केवल ६ मील दूर रहा होगा जहाँ वह नदी को पार करने के प्रयत्न को गुप्त रखना चाहता था तथा भारतीय सेना का दाहिना पार्श्व मोंग से २ मील तथा कोटेरा के विपरीत बिन्दु से ६ मील दूर रहा होगा।

चूँकि मेरा तत्कालिक उद्देश्य सिकन्दर एवं पोरस के युद्ध स्थल की पहचान करना है न कि युद्ध के उतार चढ़ाव का उल्लेख करना, अतः सिकन्दर के निजी पत्रों के आधार पर प्लूटार्च द्वारा युद्ध सम्बन्धी विवरण को उद्धृत करना पर्याप्त होगा— "उसने एक गहरी काली एवं तूफानी रात का लाभ उठाते हुए अपनी पैदल सेना के एक अंश तथा चुने हुए घुड़सवारों सहित भारतीयों से कुछ ही दूरी पर नदी के छोटे टापू पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर उसे एवं उसके सैनिकों की अत्यधिक भयानक तूफान तथा गरजते बादलों एवम् चमकती हुई बिजली सहित वर्षा का सामना करना पड़ा।" परन्तु तूफान एवम् वर्षा के होते हुये भी वह आगे बढ़ते गये तथा छाती तक गहरे जल को पार करते हुये वह सुरक्षा पूर्वक नदी के दूसरे तट तक पहुँच गये। सिकंदर के पत्रों को उद्धृत करते हुये (१) प्लूटार्च लिखता है, "नदी के पार पहुँच जाने पर वह घुड़सवार सेना सहित ढाई मील तक बढ़ गया और उसकी पद सेना पीछे थी। उसका यह अनुमान था कि यदि शत्रु अपनी घुड़सवार सेना सहित आक्रमण करे तो उसकी निजी सेना उससे श्रेष्ठ होनी चाहिये और यदि वह अपनी पद सेना की गतिविधियों को बढ़ाए तो उसकी पद-सेना उनका सामना करने के लिए समय पर पहुँच सके।" एरियन से हमें पता चलता है कि जैसे ही शत्रु ने टापू एवं मुख्य भूमि के मध्य जल को पार करना आरम्भ किया उन्हें भारतीय गुप्तचरों ने देख लिया था और उन्होंने तुरन्त पोरस को सूचना दी। कुछ कठिनाइयों के पश्चात् नदी को पार करने पर सिकन्दर ने अपनी ६००० पद सेना तथा १०००० घुड़सवारों की छोटी सेना को सङ्गठित करने हेतु विश्राम किया तत्पश्चात् वह "५००० घुड़ सवारों सहित शीघ्रता

---

(१) 'सिकन्दर की जीवनी' में सर डब्लू नेपियर ने दोनों जनरलों की उचित सराहना की है। सिकन्दर द्वारा कारनिकस को पार करने के कार्य का उल्लेख करते हुए उनका कथन है कि 'सिकन्दर की सैनिक योग्यता के लिये इस कार्य की उसके हाईडस्पीज़ पार करने एवं पोरस को पराजित करने के कार्य से तुलना नहीं की जा सकती, उस महान व्यक्ति के सम्मुख वह उसी साहसिक कार्य को नहीं कर सकता था।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से आगे वढ़ गया और पद-सेना को सुविधानुसार एवं अनुशासन पूर्वक आगे बढ़ने के लिये पीछे छोड़ गया।'' जिस समय यह गतिविधियाँ हो रही थीं पोरस ने दो अथवा ३ हजार घुड़सवारों एवं एक हजार बीस रथों सहित अपने पुत्र को सिकन्दर का सामना करने के लिए भेजा। दोनों सेनायें नदी पार करने के स्थान से २½ मील, अथवा मोंग से लगभग दो मील उत्तर पूर्व में आमने-सामने खड़ी हुईं। यहाँ गीली एवं चिकनी मिट्टी पर रथ व्यर्थ सिद्ध हुए और सभी पर शत्रु का अधिकार हो गया फिर भी यह युद्ध तीव्र रहा होगा क्योंकि सिकन्दर के प्रिय घोड़े बुकेफ़लस को युवक राजकुमार (पोरस का पुत्र) ने घातक चोट दी थी और वह स्वयं अपने ४०० साथियों सहित मारा गया था। जब पोरस को अपने पुत्र की मृत्यु की सूचना मिली तो तुरत ही उसने अपनी अधिकांश सेना लेकर सिकन्दर का सामना करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु एक मैदान में पहुँचने पर जहाँ भूमि कठिन तथा चिकनी नहीं थी परन्तु ठोस एवं रेतीली थी और उसके रथों की गतिविधियों के अनुकूल थी उसने अपना बढ़ाव रोक दिया और अपनी सेना को युद्ध हेतु तैयार करने लगा। उसके २०० हाथी पद-सेना के आगे लगभग एक प्लेथरन अथवा १०० फुट की दूरी पर पंक्तिबद्ध खड़े थे तथा उसके रथ एवं घुड़सवार पास में ही नियुक्त किये गये थे। इस प्रबन्ध के अनुसार उत्तर पूर्व की ओर सम्मुख सेना का अगला भाग नदी तट से लखनावाली तक लगभग ४ मील के क्षेत्र में फैला होगा और सेना का मध्य विन्दु जहाँ तक सम्भव है वर्तमान मौंग नगर के स्थान पर रहा होगा। इस स्थान के चारों ओर मिट्टी ठोस एवं रेतीली है परन्तु उत्तर पूर्व की ओर जहाँ सिकन्दर ने युवक भारतीय राजकुमार का सामना किया था भूमि पर ठोस लाल मिट्टी की तह जमी हुई है जो वर्षा ऋतु के पश्चात् भारी एवं चिकनी हो जाती है। (१)

जब सिकन्दर ने भारतीय सेना की व्यूह रचना को देखा तो उसने अपनी पद-सेना की प्रतीक्षा के लिए तथा शत्रु के स्थानों का भेद लेने के लिए, पड़ाव डाल दिया। चूँकि घुड़सवार सेना में उसकी सेना पोरस की सेना से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी उसने पोरस की सेना के मध्य भाग पर आक्रमण न करने का निश्चय किया क्योंकि वहाँ हाथियों की सुदृढ़ पंक्ति को अपार पद-सेना की सहायता प्राप्त थी। उसने दोनों मोर्चों पर आक्रमण करने एवं भारतीयों को अव्यवस्थित करने का निश्चय किया। स्वयं सिकन्दर के नेतृत्व में सेना के दाहिने भाग ने शत्रु की घुड़सवार सेना को हाथियों की

(१) मैं युद्ध के कुछ दिनों पश्चात त्रिलियान वाल की युद्ध भूमि के वास्तविक निरीक्षण के पश्चात लिख रहा हूँ। उस समय देश में मूसलाधार वर्षा हो चुकी थी। दोनों ही युद्ध पाभी पहाड़ियों के दक्षिणी छोर तथा मौंग नगर के बीच एक ही स्थान पर लड़े गये थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंक्ति तक पीछे ढकेल दिया, तत्पश्चात् हाथियों की सेना आगे बढ़ी और मैसीडोनिया की सेना के बढ़ाव को रोक दिया। "पोरस ने जहाँ कहीं घुड़सवारों को बढ़ते देखा उसने हाथियों के साथ उनका सामना किया परन्तु यह सुस्त एवम् स्थूल पशु घोड़ों की तीव्र गतिविधियों का सामना न कर सके।" अन्त में घायल एवम् भयभीत हाथी मद-मत्त होकर भाग खड़े हुए और अपनी एवम् शत्रु सेना को रौंदने लगे। तत्पश्चात् भारतीयों की छोटी घुड़सवार सेना घेरे में आ गई और मैसीडोनिया निवासियों ने उसे पराजित कर दिया। लगभग सभी घुड़सवार मारे गये। भारतीय पद सेना के अधिकांश भाग पर चारों ओर से विजयी घुड़सवारों द्वारा आक्रमण होने लगा और यह सेना जो अभी तक शत्रु का सफलतापूर्वक सामना कर रही थी इस आक्रमण के बाद अस्त-व्यस्त हो गई और भाग खड़ी हुई। एरियान का कथन है कि तत्पश्चात् "क्रेटरस तथा उसके साथी सैनिकों ने, जो नदी के दूसरी ओर थे, मैसीडोनिया की सेना की विजय श्री का अनुमान लगाते ही नदी के पार हो गये और भागते हुए भारतीयों का भयानक रूप से बध किया।"

उपरोक्त कथन से, जिसे मैंने उद्धृत किया है यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के पड़ाव से युद्ध क्षेत्र को देखा जा सकता था। अब, यह कथन मोंग के आस-पास के भू-भाग के लिए विशेष रूप से सत्य है। यह मैदान शाह कबीर के स्थान पर सिकन्दर के पड़ाव के पूर्व से सरलता पूर्वक देखा जा सकता था। निकटतम बिन्दु केवल दो मील की दूरी पर है। सिकन्दर के पड़ाव के रूप में जला .पुर के पक्ष में इस अन्तिम सुदृढ़ साक्षी के पश्चात् मैं इस रुचि पूर्ण प्रश्न पर विचार विमर्श समाप्त करता हूँ। परन्तु यूनान के इतिहासकार श्री ग्रोटे जैसे कुछ पाठक अब भी यह सोचते हैं कि जनरल एबाट ने अपने इस विचार के पक्ष में "अत्यधिक स्वीकार्य कारण" दिये हैं कि सिकन्दर का पड़ाव झेलम में था। अतः मैं यहाँ यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि पवराल गाँव जिसे उसने युद्ध क्षेत्र के रूप में चुना है झेलम से १४ मील से कम दूरी पर नहीं है। अतः सिकन्दर के पड़ाव से इसे देखना असम्भव है। मैं एबाट की निजी स्वीकृति को भी उद्धृत कर सकता हूँ कि सुखेत्र नदी का तल जो एक मील रेतीला समतल है, "भारी वर्षा के पश्चात् तीव्र धारा वाली नदी बन जाती है और अधिक रेत के कारण यह सैनिक अभियान के प्रतिकूल हो जाता है।" अब, यह सुखेत्र नदी वस्तुतः पबराल तथा झेलम के विपरीत भारतीय पड़ाव के बीच पड़ती है और चूँकि हमें ज्ञात है कि युद्ध से पूर्व की रात मूसलाधार वर्षा हुई थी अतः युद्ध के समय से सुखेत्र को पार करना असंभव रहा होगा और इसी प्रकार जड़ नदी को भी पार करना असम्भव रहा होगा, जो सुखेत्र नदी के ठीक नीचे झेलम में मिलती है। मध्य की इन दो नदियों के कारण जो चाहे गीली हो अथवा सूखी, भारतीय सेना के लिये विशेष रूप से भारतीय सेना और उनके रथों को पार जाने के लिए समान रूप से बड़ी बाधा रही होगी।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुकेफल की स्थिति पर विचार विमर्श अभी शेष है । स्ट्रैबों के अनुसार बुकेफल का नगर नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था जहाँ सिकन्दर ने इसे (नदी) पार किया था परन्तु प्लूटार्च का कथन है कि यह हाईडसपीज़ के समीप उस स्थान पर था जहाँ बुकेफलस दफनाया गया था । परन्तु एरियान का कथन है कि इसका निर्माण उस (सिकन्दर) के पड़ाव के स्थान पर किया गया था तथा उसके अश्व की स्मृति में इसका नाम बुकेफल रखा गया था । दिवोडोरस, कर्टियस तथा जसटन ने वास्तविक स्थिति को अनिश्चित छोड़ दिया है परन्तु वे सभी इस बात पर सहमत हैं कि यह निकाया की ओर जाने वाली नदी के दूसरे तट पर था । जिसका निर्माण निश्चित ही युद्ध के स्थान पर किया गया था । हमारे पथ प्रदर्शन के लिए केवल इन विपरीत कथनों की उपलब्धि के कारण किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना कठिन है । स्ट्रैबों अथवा एरियान का अनुसरण करने के परिणाम स्वरूप हमें बुकेफल के दिलावर अथवा जलालपुर के स्थान पर दिखाना पड़ेगा । दोनों स्थान मौंग के युद्ध क्षेत्र से समान दूरी पर है और मौंग को मैं निस्सङ्कोच निकाया का स्थान समझता हूँ । यदि दोनों नगर एक ही योजनानुसार बनाए गए हों, जो कि असम्भव नहीं है तो बुकेफल के प्रतिनिधि के रूप में दिलावर अधिक अनुकूल है क्योंकि इसका ध्वस्त टीला आकार एवम् ऊंचाई में मोंग के समान है । एक अन्य स्थान पर मैंने इस बात की सम्भावना का उल्लेख किया है कि जिस जिले में दिलावर अवस्थित है उसका बुगियाद अथवा बुगियाल नाम बुकेफालिया का संक्षिप्त नाम हो सकता है । परन्तु यह केवल एक अनुमान है । मैं केवल इस विषय पर इस तथ्य को छोड़ अन्य कुछ नहीं कह सकता कि जलालपुर का प्राचीन नाम निश्चित ही गिरजात था जबकि दिलावर का नाम पूर्णतयः अनिश्चित है क्योंकि उदिनगर का नाम कम से कम तीन विभिन्न स्थानों के लिए प्रयुक्त किया गया है । दिलावर तथा जलालपुर के दावे, स्थिति सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण बिन्दु को छोड़ सम्भवतः सन्तुलित हैं और इस स्थिति में जलालपुर निश्चित ही श्रेष्ठ है और चूंकि यह श्रेष्ठता सिकन्द्रिया के संस्थापक के तीव्र निरीक्षण से नहीं बची होगी अतः मेरां विचार है कि जलालपुर ही बुकेफल के प्रसिद्ध नगर का स्थान रहा होगा ।

निकाया अथवा मोंग

मोंग की स्थिति का उल्लेख पहले किया जा चुका है, परन्तु मैं यह दोहरा सकता हूँ कि यह नगर जलालपुर से ६ मील पूर्व में तथा दिलावर के दक्षिण में इतनी ही दूरी पर था । इसका उच्चारण मोंग अथवा मूंग किया जाता है परन्तु इसे लिखने में नासिका सम्बन्धी चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता और कहा जाता है कि इसका निर्माण राजा मोगा अथवा मूगा ने करवाया था । उसे राजा शङ्कहर भी कहा जाता है जिसे मैं शकों का राजा समझता हूँ । उसके बन्धु राम ने रामपुर अथवा राम नगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक रसून का निर्माण करवाया था जो मोंग के छः मील उत्तर पूर्व में तथा दिलावर के ठीक दूसरी ओर है। उसका भांजा काम-कमारत गिरजाक अथवा जलालपुर का राजा था। प्राचीन ध्वस्त टीला. जिस पर मोंग अवस्थित है ६०० फुट लम्बा ४०० फुट चौड़ा तथा ५० फुट ऊँचा है और यह चारों ओर से अनेक मीलों तक दिखाई देता है। यहाँ पर पुरानी विशाल ईंटों से बने ६७५ गृह तथा ५००० निवासी हैं जो मुख्यतः जाट हैं। पुराने कुएँ बहुत अधिक हैं और मुझे सूचना देने वाले के अनुसार उनकी ठीक संख्या १७५ है।

मैं यह पहले ही लिख चुका हूँ कि मोंग को मैं निकाया अर्थात् उस नगर का स्थान समझता हूँ जिसे सिकन्दर ने पोरस के साथ अपने युद्ध के स्थान पर बनवाया था। मेरे विचार में इस विषय पर प्राप्त साक्षी उतनी ही पूर्ण हैं जितनी कि हम आशा कर सकते हैं परन्तु मुझे अभी भी इस बात का विश्लेषण करना है कि किस प्रकार निकाया का नाम मोंग हो गया। इस तथ्य से कि श्री राबर्ट के तक्षशिला के शिलालेख में महाराजा मोगा का उल्लेख किया गया है। इस प्रथा की पुष्टि होता है कि नगर का निर्माण राजा मोगा ने करवाया था। अब, मोगा एवम् मोआ एक ही नाम है तथा मोआ अथवा मोअस की मुद्रायें मोंग में आज भी प्राप्त होती हैं परन्तु इन मुद्राओं पर सामान्य यूनानी चिह्नों से 'निक' बनता है जिसे मैं निकाया, अर्थात् मुद्रा बनाने के स्थान-का संक्षिप्त स्वरूप समझता हूँ। यदि यह अनुमान सही है और मैं विश्वास करता हूँ कि यह ऐसा ही है, तो निकाया महान राजा मोग का मुख्य मुद्रा नगर रहा होगा। अतएव यह अत्यधिक महत्वपूर्ण नगर रहा होगा। चूंकि राजा मोग को मोंग के संस्थापक के रूप में बताया जाता है अतः हम उचित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उसने मोगा ग्राम के नवीन नाम के अन्तर्गत इसका पुर्ननिर्माण करवाया होगा अथवा इसका विस्तार करवाया होगा और मोगा ग्राम को बालचाल की भाषा में मोगाँव अथवा मोंग कर दिया होगा। मोंग के सभी इण्डो-सीथियन राजकुमारों की मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है और मैं इस बात में सन्देह का कोई कारण नहीं देखता कि यह स्थान सिकन्दर के समय जितना पुराना है। नाम विहीन इण्डो-सीथियन राजा की ताँबे की मुद्रायें विशेष रूप से इतनी मात्रा में प्राप्त होती है कि उन्हें आस पड़ोस में सामान्यतः मोंगा साही कहा जाता है।

गुजरात

गुजरात नगर चेनाब नदी के ६ मील पश्चिम में झेलम से लाहौर जाने वाले मुख्य मार्ग पर अवस्थित है। प्रारम्भ में नगर को हैरात तथा जिले को हैरात देश कहा जाता था। (१) इसकी मूल स्थापना को बचनपाल नामक एक सूर्यवंशी राजा

(१) मेरे विचार में हैरात, अराट्ट का उच्चारित स्वरूप है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से सम्बन्धित बताया जाता है जिसके सम्बन्ध में अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसके पुनर्निर्माण को अली खाँ नामक एक गुज्जर से सम्बन्धित किया जाता है जिसका नाम आश्चर्यजनक रूप से गुज्जर के राजा अलखान से मिलता है जिसे संगकर वर्मा ने ८८३ तथा ६०१ ई० में पराजित किया था। इन जनश्रुतियों का अनुसरण करने से गुजरात को, १३०३ ई० में नष्ट हुआ तथा ६६६ हिजरी अथवा १५८८ ई० में अकबर के शासन में गुज्जरों द्वारा पुनः निर्मित बताया जाता है।

साकल अथवा सांगला,

सिकन्दर के सांगला को काफी समय पूर्व ब्राह्मणों का शाकल तथा बौद्धों का सागल स्वीकार कर लिया गया है और यदि भाग्यवश ६३० ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रा न की होती तो इसकी निश्चित सम्भवतः आज भी अनिश्चित रहती। एरियान तथा कर्टियस दोनों ने सांगला को हाइड्राओटीज़ अथवा रावी के पूर्व में बताया है परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा सूची से पता चलता है कि यह रावी के पश्चिम में और जहाँ तक सम्भव है वर्तमान 'सांगला वाला तीबा' अथवा सांगला पहाड़ी के स्थान पर था। मैं सर्वप्रथम १८३६ ई० में इस स्थान से परिचित हुआ था जब मुझे विल्फोर्ड द्वारा एकत्रित मुगलबेग के हाथ के बने मानचित्र की एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई थी जिसने 'एशियाटिक रिसर्चेज़' में इसकी स्थिति का तीन बार उल्लेख किया है परन्तु मैं १८५४ ई० तक इस स्थान का कोई भी विवरण प्राप्त नहीं कर सका। उस समय मुझे कर्नल जी हेम्लिटन जो इस स्थान पर गये थे—तथा केप्टन ग्रेव जिन्होंने इस स्थान का सर्वेक्षण किया था—से यह सूचना प्राप्त हुई कि सांगला वस्तुतः एक पहाड़ी है जिस पर भवनों के चिह्न शेष हैं तथा जिसके एक ओर जल भी उपलब्ध है। पञ्जाब में भ्रमण करते समय मैं स्वयं इस पहाड़ी पर गया था और अब मैं सन्तुष्ट हूँ कि यह ही सिकन्दर का सांगला रहा होगा यद्यपि इसकी स्थिति इतिहासकारों द्वारा दिये गये विवरण के समदृश्य नहीं है।

ह्वेनसांग के समय में शी-को, लो अथवा शाकल जर्जर अवस्था में था और जिले का मुख्य नगर शी-किया अथवा चीकिया था जिसे ठक अथवा टक भी पढ़ा जा सकता है। तीर्थ यात्री ने इस नवीन नगर को शाकल के २३ मील उत्तर पूर्व में वताया है परन्तु उस क्षेत्र के भीतर चूँकि सम्पूर्ण प्रदेश खुला हुआ एवम् समतल था अतः यह निश्चित है कि इङ्गित स्थान पर किसी नगर के होने की सम्भावना नहीं हो सकती फिर भी इसी दिशा में, परन्तु १६ मील की दूरी पर मुझे असरूर नामक एक विशाल नगर के अवशेष मिले थे जो तीर्थ यात्री द्वारा त्सीकिया के नवीन नगर के दिये गये उल्लेख से प्रायः ठीक-ठीक मिलता है। इस स्थान की स्थिति को निश्चय करना आवश्यक है क्योंकि आने के समय तथा जाने के समय भी ह्वेनसांग के आंकड़े शाकल के स्थान पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे सम्बन्धित हैं। काश्मीर से तीर्थ यात्री, पूंच के मार्ग से निचली पहाड़ियों के एक छोटे नगर राजपुरा गया था जिसे अब राजौरी कहा जाता है तत्पश्चात् वह दक्षिण पूर्व में एक पर्वत के ऊपर तथा चिन-त-लो-पो-किया नामक नदी के पार शी-यी-पू लो अथवा जयपुरा (सम्भवतः हफ़ीज़ाबाद) तक गया था। जहाँ वह एक रात ठहरा था। उपर्युक्त नदी चन्द्रभाग अथवा आधुनिक चेनाब है। दूसरे दिन वह ट्सीक्या पहुँचा था इस प्रकार कुल दूरी ११६ मील थी। चूँकि दक्षिण पूर्व दिशा की यात्रा तीर्थ यात्री को रावी के पूर्व में ले जाती है, अतः हमें उसके त्रुटि पूर्ण दिकांश को शुद्ध करने के सर्व श्रेष्ठ साधन के रूप में उसके पश्चात्वर्ती मार्ग में किसी ज्ञात स्थान को ढूँढना होगा। इस निश्चित स्थान को हम शी-लान-तो-लो, सर्व प्रसिद्ध जलन्धर में प्राप्त करते हैं जिसे तीर्थ यात्री ने ५००×५०×१४० अथवा १५० ली अथवा ट्सीक्या के पूर्व में कुल मिलाकर ६९० अथवा ७०० ली की दूरी बताया है। अतः जहाँ तक सम्भव है यह स्थान राजौरी तथा जलन्धर के समान दूरी पर था। अब, मानचित्र पर सीधी रेखा से असरूर इन दोनों स्थानों से ठीक ११२ मील की दूरी पर है और चूँकि यह निस्सन्देह अधिक विस्तार का एक अति प्राचीन स्थान है, मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि यह स्थान ह्वेनसांग द्वारा वर्णित ट्सीक्या नगर रहा होगा।

६३० ई० में तीर्थयात्री ने शाकल की दीवारों को पूर्णयतः जर्जर अवस्था में पाया था परन्तु उनकी नीवें शेष थीं जिनका घेरा लगभग ३½ मील था। इन खण्डहरों के मध्य में उस समय भी प्राचीन नगर का एक छोटा भाग बसा हुआ था जिसका व्यास केवल १ मील था। नगर के भीतर एक सहस्र भिक्षुओं का मठ था जिन्होंने हिनय्यान अथवा बौद्ध धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अध्ययन किया था। इसके साथ ही २०० फुट ऊँचा एक स्तूप था जहाँ पिछले चार बुद्धों ने अपने पद चिह्न छोड़े थे। यहाँ से १ मील से कुछ कम, उत्तर पश्चिम में २०० फुट ऊँची एक अन्य स्तूप था जिसका निर्माण सम्राट अशोक ने उस स्थान पर करवाया था जहाँ पिछले चार बुद्धों ने न्याय पर विवेचना की थी। सांगला वाला तीबा एक त्रिभुज के दो किनारे बनाती हुई एक छोटी चट्टानी पहाड़ी है जिसका खुला भाग दक्षिण पूर्व की ओर है। पहाड़ी का उत्तरी भाग २१५ फुट ऊँचा उठ जाता है परन्तु उत्तर पूर्वी भाग केवल १६० फुट ऊँचा है। त्रिकोण का भीतरी भाग धीरे-धीरे दक्षिण पूर्व की ओर ढलवाँ होता जाता है और फिर एकाएक यह धरती से ३२ फुट ऊँचे अति ढलवाँ तट पर समाप्त हो जाती है। इस तट पर किसी समय ईंटों की एक दीवार थी जिनके चिह्न मैं पूर्वी छोर पर ढूंढ सका था जहाँ यह चट्टान के साथ मिल जाती थी। सम्पूर्ण क्षेत्र में टूटी हुई ईंटें फैली हुई हैं जिनमें मुझे दो वर्गाकार आधार-शिलाएँ मिली थीं। ये ईंटें बहुत बड़े आकार अर्थात् १५×९×३ इञ्च बड़ी हैं। पिछले १५ वर्षों में इन ईंटों को बहुत बड़ी संख्या में हटा दिया गया है। लगभग ४००० ईंटें उत्तर में ६ मील की दूरी पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माट नामक विशाल गाँव में ले जाई गई थी और इतनी हीं मात्रा में इन ईंटों को सर्वेक्षण कार्य हेतु एक अटारी के निर्माण के लिए पहाड़ी के शिखर पर ले जाया गया था। पहाड़ी का अधोभाग प्रत्येक ओर से १७०० से १८०० फुट अथवा व्यास में प्राय: एक मील था। पूर्वी तथा दक्षिणो किनारों पर पहाड़ी पर पहुँचने का मार्ग आधा मील लम्बी तथा लगभग एक चौथाई मोल चौड़ी एक विशाल दलदल से ढका हुआ था जो प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में सूख जातो है परन्तु वर्षा काल में इसकी सामान्य गहराई प्राय: तीन फुट होतो है। सिकन्दर के समय में यह एक तालाब रहा होगा जिसकी गहराई प्रति वर्ष को वर्षा में पहाड़ी से बह कर आने वाली मिट्टी से धीरे-धीरे कम हो गई है। पहाड़ी के उत्तर पूर्वी किनारे पर दो विशाल भवनों के अवशेष हैं जिनसे मुझे १७½ × ११ × ३ इंच के बहुत बड़े आकार की पुरानी ईंटें प्राप्त हुई थी। समीप ही एक पुराना कुँआ है जिसे कुछ समय पूर्व भ्रमण-कारी यात्रियों द्वारा साफ किया गया था। उत्तर पश्चिमी भाग में १००० फुट की दूरी पर २५ से ३० फुट ऊँची तथा लगभग ५० फुट लम्बा मुण्डा-का-पुरा नामक एक निचला पर्वत पृष्ठ है जो पहले ईंटों से बने भवनों से ढका हुआ था। दक्षिण में १¾ मील की दूरी पर अरना तथा छोटा सांगला नामक तीन छोटी पहाड़ियों का एक अन्य पर्वत पृष्ठ है। यह सभी पहाड़ियाँ उसी गहरी भूरी चट्टान की है जो चन्योट तथा चनाब के पश्चिम कराना पहाड़ियों में मिलती है। इस चट्टान में अधिक लोहा होता है परन्तु ईंधन की कमी के कारण इसे निकाला नहीं जाता। ह्वेनसांग ने भी लोहे की उत्पत्ति का उल्लेख किया है।

इस विवरण की चीनी तीर्थ यात्री के विवरण से तुलना करने पर मैं केवल दो स्थानों को पहचान सकता हूँ। प्रथम स्थान आधुनिक नगर का स्थान है जो व्यास में प्राय: एक मील था तथा खंडहरों पर अवस्थित था। इसे मैं स्वयं पहाड़ो ही समझता हूँ जो विवरण से ठीक-ठीक मिलती है तथा निचले खुले समतल के किसी भी भाग की अपेक्षा इसकी सुरक्षित स्थिति के कारण लोग यहाँ आकर बस गये होगें। दूसरा अशोक का स्तूप है जो नगर के भीतर मठ के उत्तर पश्चिम में एक मील से कम दूरी पर अवस्थित था। इसे मैं मुण्डा-का-पुरा नामक उत्तर पश्चिम के निचले पर्वत पृष्ट के अनुरूप समझता हूँ जिसके उत्तर पश्चिमी छोर पर उच्चत्तम बिन्दु ४००० फुट अथवा नगर के त्रिभुजा कोण क्षेत्र से तीन चौथाई से अधिक दूरी पर है। पहाड़ी के उत्तर तथा पश्चिम भाग के समतल में टूटे हुए चीनी के बर्तन तथा ईंटों के टुकड़े अधिक दूरी तक फैले हुए हैं जिनसे यह पता चलता है कि यह नगर किसी समय इन दोनों दिशाओं में विस्तृत रहा होगा। परन्तु इन अवशेषों का सम्पूर्ण व्यास १½ अथवा १¼ मील अथवा ह्वेनसांग के माप के आधा से अधिक प्रतीत नहीं होता। शाकल के सम्बन्ध में ब्राह्मणों द्वारा दिये गये विवरण को प्रोफेसर लासेन ने अपनी 'पैन्टापोटामियां इन्डिका' में महाभारत से लिया होगा। उस कविता के अनुसार मद्रों की राजधानी शाकल,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एरावती अथवा रावी के पश्चिम अपगा नामक छोटी नदी पर अवस्थित थी। मद्रों को जारटिक तथा बाहिक भी कहा जाता था। इस स्थान पर पूर्व की ओर से पीलू वन के सौम्य मार्गों से पहुँचा जा सकता था।

"पीलू पञ्जाब के इस प्रदेश में समान्यतम लकड़ी है और रिचना दुआब में विशेष रूप से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पीलू वन के इन सौम्य मार्गों पर यात्री को दुर्भाग्य-वश लुटेरों द्वारा अपने कपड़ों से वञ्चित किये जाने का भय था। महाभारत के लेखक के इस विवरण को पुष्टि ह्वेनसांग ने ६३० ई० में की थी तथा पुनः मैंने १८६३ ई० में इस विवरण की पुष्टि की है। शाकल छोड़ने पर चीनी तीर्थ यात्री पूर्व की ओर पो-लो-शी वृक्षों के वन में गया था जहाँ उसके दल को ५० लुटेरों का सामना करना पड़ा, जिन्होंने उनके कपड़े छीन लिए। नवम्बर १८६३ में मैं पूर्व की ओर से पीलू वृक्षों के निरन्तर जङ्गल से होकर शाकल के समीप गया था तथा मैंने पहाड़ी के अधोभाग पर अपना खेमा गाड़ा था। रात्रि के समय डाकुओं के दलों ने तीन बार खेमे तक पहुँचने का प्रयत्न किया परन्तु मेरे प्रहरी कुत्तें की सतर्कता के कारण उन्हें देख लिया गया। एम० जुलीन ने ह्वेनसांग के पो-लो-शी को पालासा अर्थात् ढाक वृक्ष कहा परन्तु वन में चूंकि ह्वेनसांग के समय से पूर्व एवम् पश्चात् पीलू वृक्ष थे, मैं पी-लो शी को शुद्ध कर पीलो लिखने का प्रस्ताव करूँगा। मेरा अनुमान है कि चीनी तीर्थ यात्री की जीवनी के सम्पादक ने जो सम्भवतः पीलू शब्द से अनभिज्ञ था—ह्वेन-सांग द्वारा बारम्बार उल्लिखित सर्व ज्ञात पलासा को इस विश्वास के कारण बदल दिया था कि ऐसा करने से वह एक आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण शुद्धि कर रहा है।

यह प्रदेश मद्र देश अथवा मद्रों के जिले के नाम से अब भी सर्व ज्ञात है। कुछ लोगों के अनुसार यह व्यास से झेलम तक विस्तृत था परन्तु अन्य लेखक इसे केवल चेनाब तक विस्तृत बतलाते हैं। जहाँ तक अपग नदी का सम्बन्ध है, मेरा विश्वास है कि इसे आयक नाम की एक छोटी नदी के अनुरूप समझा जा सकता है जो स्यालकोट के उत्तर पूर्व में जम्मू की पहाड़ियों से निकलती है। स्यालकोट के पश्चात् आयक नदी सोधरा के समीप पश्चिम की ओर मुड़ जाती है जहाँ वर्षा ऋतु में इसका अतिरिक्त जल चेनाब नदी में चला जाता है। तत्पश्चात् यह नदी बङ्का तथा नन्दनवा से भुटाला तक दक्षिण-दक्षिण पश्चिम दिशा में मुड़ जाती है तथा असरूर से कुछ मीलों की दूरी तक यह इसी दिशा में प्रवाहित होती है। यहाँ यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है जो असरूर के पूर्व एवम् पश्चिम से होकर गुजरने के बाद सांगला वाला तीबा के २½ मील दक्षिण में पुनः मिल जाती है। राजस्व सम्बन्धी सर्वेक्षण मानचित्रों में इस नदी के मार्ग को सांगला के दक्षिण-पश्चिम में १५ मील की दूरी तक दिखाया गया है जहाँ इसे नानन्वा नहर कहा जाता है। असरूर के एक बुद्धिमान व्यक्ति ने मुझे सूचित किया था कि उसने दक्षिण-पश्चिम में २० कोस की दूरी तक नानन्वा का मार्ग देखा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था और यह भी बताया कि वह सदा से यही सुनता आया है कि यह नदी अधिक दूर जाकर रावी में गिरती है। अतः यही एरियान की 'छोटी नदी' रही होगी जिसके समीप, हाईडस्पीज़ के साथ अपने सङ्गम से नीचे अकेसिनीज़ के ११½ मील पूर्व सिकंदर ने अपना पड़ाव डाला था। अतः उस समय आयक का प्रवाह सांगला के नीचे अधिक दूरी तक रहा होगा और सम्भवतः यह रावी में गिरती होगी जैसा कि मुझे सूचना देने वाले ने कहा है। असरूर तथा सांगला के समीप आयक अब सभी ऋतुओं में सूखी रहती है परन्तु असरूर से केवल २४ मील ऊपर ठकवाल के स्थान पर शाहजहाँ के शासन काल के समय तक इसमें जल रहा होगा क्योंकि उस समय उसके पुत्र दारा शिकोह ने यहाँ से अपने आखेट स्थान शेखूपुरा तक एक नहर बनवाई थी जिसे आयक अथवा झिलरी नहर भी कहा जाता हैं।

शाकल के बौद्ध उल्लेख, मुख्य रूप से बुद्ध धर्म से सम्बन्धित इसके इतिहास का संकेत करते हैं। इनमें सात राजाओं की एक कथा आती है जो राजा कुश की पत्नी प्रभावती का हरण करने के लिए सांगल की ओर गये थे। परन्तु राजा हाथी पर चढ़ कर नगर के बाहर उन्हें मिला तथा "मैं कुश हूँ", की घोषणा इतनी ऊँची आवाज में की कि उसका गर्जन सम्पूर्ण संसार में सुना गया और सातों राजा भयभीत होकर भाग गये। यह कथा अम्ब-काप के सात बन्धुओं एवं बहनों से सम्बन्धित हो सकती है। अम्ब-काप सांगला के पूर्व में केवल ४० मील की दूरी पर है। ईसा काल के प्रारम्भ से पूर्व साँगल राजा मिलिन्द की राजधानी थी जिसका नाम पवित्र नागसेन के चतुर विरोधी के रूप में सभी बौद्ध देशों में प्रसिद्ध है। उस समय इस प्रदेश को योन अथवा यवन कहा जाता था जो सम्भवतः यूनानी विजेताओं अथवा उनके इन्डो-सीथियन-उत्तराधिकारियों की ओर संकेत करता है। परन्तु नागसेन को चूंकि बुद्ध के ४०० अथवा ५०० वर्ष पश्चात् जीवित बताया गया है अतः मिलिन्द का समय अनिश्चित है। मिलिन्द ने स्वयं कहा है कि उसका जन्म अलसद्दा में हुआ था जो सांगल से २०० योजन अथवा १४०० मील की दूरी पर था। अतः निस्संदेह वह एक विदेशी था और अतिश्योक्तिपूर्ण दूरी के होते हुए भी मैं उसके जन्म स्थान को काबुल के लगभग ४० मील उत्तर में हिन्दूकुश के अधोभाग पर अवस्थित सिकन्द्रियां ओपीयाने के अनुरूप समझूंगा। इससे कुछ समय पश्चात् शाकल मिहिरकुल के अधीन था जिसने मगध के राजा बालादित्य के विरूद्ध एक असफल आक्रमण से अपना राज्य खो दिया था। परन्तु विजेता द्वारा स्वतन्त्र कर दिए जाने के पश्चात् उसने कपट पूर्वक काश्मीर पर अधिकार कर लिया। मुझे ६३३ ई० तक शाकल के किसी उल्लेख का ज्ञान नहीं है। ६३३ ई० में ह्वेनसांग इस स्थान पर गया था और उसने त्शो-क्या के पड़ोसी नगर को एक विशाल राज्य की राजधानी के रूप में बताया है जो सिन्धु से व्यास तक तथा पहाड़ियों के अधोभाग से पांच नदियों के संगम तक विस्तृत था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांगला के अधिकृत वर्णन एरियन तथा कर्टियस के ऐतिहासिक उल्लेखों एवं दिवोडोरस के आकस्मिक उल्लेख तक सीमित है। कर्टियस ने इसे केवल "एक विशाल नगर कहा था जो न केवल एक दीवार से वरन् एक दलदल से भी सुरक्षित था।" परन्तु यह दलदल गहरी थी क्योंकि यहाँ के कुछ निवासी इसे तैर कर पार कर गये थे। एरियन ने इसे एक झील कहा है परन्तु उसने यह भी जोड़ दिया है कि यह गहरी नहीं थी, नगर की दीवार के समीप थी तथा एक द्वार इस ओर खुलता था। उसने नगर को कृत्रिम एवं प्राकृतिक रूप से ईंटों की दीवारों एवं झील के कारण सुरक्षित बताया था। नगर के बाहर एक निचली पहाड़ी थी जिसे कथायियों ने अपने पड़ाव के सुरक्षार्थ गाड़ियों की तीन पंक्तियों से घेर रखा था। इस छोटी पहाड़ी को मैं उत्तर-पश्चिम ओर मुण्डपापुरा नामक निचले पर्वत पृष्ठ के अनुरूप समझूँगा जो निश्चित ही नगर की दीवारों के बाहर प्रतीत होगा क्योंकि टूटी हुई ईंटें एवम् बर्तनों के टुकड़े इतनी दूर तक नहीं फैले हुए हैं। मेरा निष्कर्ष है कि पहाड़ी का पड़ाव मुख्य रूप से अन्य स्थानों से भाग कर आये हुए व्यक्तियों द्वारा स्थापित किया गया था जिनके लिए जन-पूर्ण नगर में कोई स्थान नहीं था। यह पहाड़ी नगर की दीवारों के समीप रही होगी क्योंकि यूनानियों द्वारा गाड़ियों की द्वितीय पंक्ति को छिन्न-भिन्न किये जाने के पश्चात् कथायियों ने नगर में शरण ली थी और नगर के द्वार बन्द कर दिये थे। अतः यह स्पष्ट है कि गाड़ियों की तीन पंक्तियाँ पहाड़ी को केवल तीन ओर से घेर सकती थीं और चौथी दिशा में वह नगर की ओर खुली थीं। इस प्रकार पहाड़ी अस्थाई एवम् वाह्य रक्षा पंक्ति के रूप में सम्बन्धित रही होगी जहाँ से सैनिक दबाव पड़ने पर दीवारों के पीछे सुरक्षित हो सकते थे। चूंकि सिकन्दर द्वारा अधिकार में ली गई गाड़ियों की संख्या केवल ३०० थी, यह पहाड़ी अति छोटी रही होगी क्योंकि यदि हम प्रत्येक पंक्ति में १०० गाड़ियों को स्वीकार करे तो भीतरी पंक्ति जहाँ वह १०, १० फुट के फासले पर खड़ी की गई थीं। अधोभाग के तीन ओर लम्बाई में १००० फुट से अधिक नहीं थी। मध्य पंक्ति को भीतरी पंक्ति से ५० फुट आगे रखने पर इसकी लम्बाई १२०० फुट रही होगी और इसी दूरी के अनुसार वाह्य पंक्ति १४०० फुट अथवा एक चौथाई माल से थोड़ा अधिक रही होगी। अब यह मुण्डापुरा पहाड़ी के आकार से इतनी अधिक मिलती है कि मुझे अपनी अनुरूपता के सही होने का अधिक विश्वास होता है क्योंकि टालमी ने इन गाड़ियों का प्रयोग झील के बाहर अकेली रुकावट के रूप में किया था अतः हमें इनकी संख्या ज्ञात हो जाती है क्योंकि १७ फुट की दूरी पर ३०० गाड़ियाँ ५००० फुट से अधिक विस्तृत नहीं रही होगी। परन्तु झील के तट पर अनेक वृक्ष रहे होंगे अतः हो सकता है कि यह रुकावट ६००० फुट तक विस्तृत रही होगी। अब, यह उल्लेखनीय है कि यह लम्बाई मेरे सर्वेक्षणानुसार वाह्य पंक्ति से ठीक मिलती है जो वर्षा ऋतु में झील के सर्वाधिक विस्तार को दिखाती है। मैं किसी दीवार अथवा खाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का चिह्न नहीं देख सका जिसकी सहायता लेकर सिकन्दर ने नगर का घेरा डाला था परन्तु मैं असन्तुष्ट भी नहीं था क्योंकि दो हजार वर्षों की वर्षा ने इन्हें काफी समय पूर्व समाप्त कर दिया होगा।

कशायनो ने रात्रि के समय झील पार कर बचने का असफल प्रयत्न किया था परन्तु गाड़ियों की बाधा से वह आगे नहीं बढ़ सके और उन्हें पुनः नगर में खदेड़ दिया गया। तत्पश्चात् दीवार को सेन्ध लगा कर तोड़ दिया गया और आक्रमण के बाद इस स्थान पर यूनानियों का अधिकार हो गया। एरियन के अनुसार इस आक्रमण में १७,००० कथायन मारे गये तथा ७०,००० को बन्दी बना लिया गया। कर्टियस ने मृत कथायनों की संख्या ८००० दी है। मैं यह समझता हूँ कि त्रुटि अथवा अतिश्योक्ति के कारण एरियन के आंकड़े अशुद्ध हैं क्योंकि यह एक छोटा नगर था और ४०० अथवा ५०० वर्ग फुट के पीछे एक व्यक्ति की दर से इस नगर में १२,००० से अधिक निवासी नहीं हो सकते। यदि हम इस संख्या को बाहर से भाग कर आने वालों की संख्या के कारण दुगना अथवा तिगुना भी कर दें कुछ तो संख्या लगभग ३०,००० रही होगी। अतः मैं एरियन की संख्याओं को ७,००० मृत एवं १७,००० बन्दी पढ़ना चाहूँगा। इस प्रकार मृतकों की संख्या कर्टियस की संख्या से मिल जायेगी तथा उसकी कुल संख्या सम्भावित आंकड़ों से मिल जायेगी।

कर्टियस तथा एरियन दोनों इस कथन में सहमत हैं कि सिकन्दर ने सांगला के विरुद्ध जाने से पूर्व हाईड्राओटीज को पार किया था। अतः जिसे नदी के पूर्व में होना चाहिये था। परन्तु ह्वेनसांग के विस्तृत आंकड़े इतने यथार्थ हैं, महाभारत में इस का विवरण इतना स्पष्ट है तथा दोनों नामों की समानता इतनी समरूप है कि उन्हें सरलता पूर्वक अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अब, एरियन तथा कर्टियस दोनों ने यह लिखा है कि सिकन्दर गंगा की ओर तीव्र गति से जा रहा था जब उसे सूचना मिली कि "कुछ स्वतन्त्र भारतीयों एवं कथायनों ने उसके उस ओर अग्रसर होने पर उससे युद्ध करने का निश्चय कर लिया है। इस सूचना के मिलते ही सिकन्दर ने कथायनों की ओर प्रस्थान किया अर्थात् अपनी यात्रा की पूर्व दिशा को बदल कर उसने सांगला की ओर प्रस्थान किया। शत्रु को अपने पीछे न छोड़ने की ही निरन्तर योजना थी जिसका सिकन्दर ने एशिया में अपने सैनिक अभियानों में अनुसरण किया था। जिस समय वह ईरान की ओर बढ़ रहा था, वह टायर पर घेरा डालने के लिये मुड़ गया, डारियस के हत्यारे बीसस का पीछा करते समय वह दरङ्गियाना तथा अरकोसिया पर अधिकार करने के लिये दक्षिण की ओर मुड़ गया और जिस समय वह भारत में प्रवेश करने की उत्कृष्ट इच्छा रखता था वह अपने सीधे मार्ग से मुड़ कर एओरनास का घेरा डालने चला गया था। कथायनों की ओर से भी समान उत्तेजना थी। टायर, दरगियाना तथा एओरनास के निवासी बजारियनों की भाँति ही वह सिन्कदर का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामना करने के स्थान पर उसे टाल देना चाहते थे परन्तु आक्रमण होने की स्थिति में उन्होंने उसका सामना करने का निश्चय कर लिया था। उस समय सिकन्दर हाईड्राओटीज़ अथवा रावी के पूर्वी तट पर था और नदी से यात्रा करने के दूसरे दिन वह पिम्प्रम नगर पहुँचा था जहाँ उसने घोड़ों को आराम देने के विचार से पड़ाव किया था और तीसरे दिन वह सांगला पहुँचा था। चूंकि दो दिनों की यात्रा के पश्चात् ही उसे विश्राम करने पर बाध्य होना पड़ा अतः यह यात्रायें २५ मील प्रति दिन की दर की कठिन यात्रायें थीं जबकि अन्तिम दिन की यात्रा १२ से १५ मील की साधारण यात्रा थी। अतः सांगला नदी तट के पड़ाव से ६० अथवा ६५ मील की दूरी पर रहा होगा। अब, लाहौर से सांगला पहाड़ियों की ठीक यही दूरी है जो (लाहौर) सम्भवतः सिकन्दर के पड़ाव का स्थान था जब उसे कथायनों के विरोध की सूचना मिली थी। अतः मेरा विश्वास है कि सिकन्दर ने गंगा की ओर जाने का अपना विचार तुरन्त छोड़ दिया और अधीनता अस्वीकार करने के दुःसाहस के परिणाम स्वरूप सांगला के निवासियों को दण्ड देने के लिये उसने रावी को पुनः पार किया।

ताकी तथा असरूर

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि असरूर ह्वेनसांग के शीकिया का सम्भावित स्थान था जो ६३३ ई० में पञ्जाब की राजधानी थी। यह लाहौर तथा पिण्ड भटियाँ के मध्य सड़क के २ मील दक्षिण में अवस्थित था और प्रथम स्थान से ४५ मील तथा द्वितीय स्थान से २४ मील की दूरी पर था। सांगला से सड़क की दूरी से यह १९ मील दूर है परन्तु सीधे मार्ग से यह दूरी १६ मील से अधिक नहीं है। इसके प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है परन्तु जनसाधारण का कथन है कि मूल रूप से इसे उदयनगर अथवा उदनगरी कहा जाता था और अकबर के शासन काल तक कई शताब्दियों तक यह स्थान निर्जन था। अकबर के समय में उग्र शाह नामक एक डोगर ने एक मस्जिद का निर्माण करवाया था जो टीले के ऊपर आज भी दिखाई देती है १८×१०×३ इञ्च की विशाल ईंटों से जो खण्डहरों के चारों ओर प्राप्त हैं तथा प्रतिवर्ष की मूसलाधार वर्षा के पश्चात् यहाँ प्राप्त होने वाली इण्डो-सीथियन मुद्राओं की अपार संख्या से इस स्थान की कथित प्राचीनता की पुष्टि होती है। अतः यह स्थान ईसा काल से पूर्व की प्रथम शताब्दी जितना पुराना है और इसकी स्थिति से मैं इसे सिकन्दर का पिम्प्रम समझता हूँ।

असरूर के अवशेषों में १५६०० फुट अथवा प्रायः तीन मील के घेरे का एक विस्तृत टीला है। इसका उच्चतम बिन्दु उत्तर पश्चिमी भाग में है जहाँ यह टीला पास के खेतों से ५९ फुट ऊपर उठ जाता है। यह भाग जिसे मैं प्राचीन राजमहल समझता हूँ ६०० फुट लम्बा तथा ४०० फुट चौड़ा एवम् प्रायः नियमित आकार का है। इसमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२१ फुट व्यास का एक पुराना कुआँ है जिसे अनेक वर्षों से प्रयोग में नहीं लाया गया तथा जो अब सूखा है। राजमहल २५ फुट ऊँचे विशाल टीलों की पंक्ति से घिरा हुआ है जिसका घेरा ८१०० फुट अथवा १½ मील था तथा जो प्रत्यक्ष रूप से इस स्थान का दुर्ग था। यह टीले विशाल बुर्जों की भाँति गोलाकार एवम् उन्नत है। दुर्ग के पूर्वी एवं दक्षिणी किनारों पर खण्डहरों का समूह १० से १५ फुट रह जाता परन्तु दुर्ग से इनका आकार दुगना है तथा यह निस्सन्देह प्राचीन नगर के ही खण्डहर है। मैं प्राचीन भवनों के चिह्न नहीं ढूंढ सका क्योंकि यहाँ की सभी ईंटें खानगाह मसरूर के स्थान पर उग्र शाह की समाधि पर ले जाई गई हैं परन्तु मस्जिद के चारों ओर की दीवार की पुरानी ईंटों में मैं तीन विभिन्न प्रकार की ईंटें देख सका था जो केवल कुछ महत्वपूर्ण भवनों से सम्बन्धित रही होंगी। मुझे १५ इञ्च लम्बी तथा ३ इञ्च मोटी पञ्चभुजाकार ईंटें प्राप्त हुई थी जो संकुचित छोर पर १० इञ्च तथा दूसरे छोर पर १०½ इञ्च चौड़ी थी। यह ईंटें किसी स्तूप अथवा कुएँ के लिये हो सकती थी और सम्भवत: यह कुएं के लिये ही थीं क्योंकि वर्तमान कुएँ का व्यास २१ फुट है। असरूर उस समय ४५ घरों का एक छोटा गाँव है।

ह्वेनसांग ने त्सी-किया को शाकल के उत्तर पूर्व में २½ मील की दूरी पर बताया है परन्तु इस स्थान पर किसी भी नगर के कोई चिह्न नहीं है अतः मैं यह संभव समझता हूँ कि वास्तविक आंकड़े १९ मील रहे होंगे जो सांगला तथा असरूर के मध्य सड़क की दूरी है यद्यपि सीधी रेखा से यह दूरी १६ मील से अधिक नहीं है। त्सी-किया का घेरा लगभग २० ली अथवा ३ मील से कुछ अधिक था और यह आंकड़े असरूर के खण्डहरो के सम्बन्ध में मेरे आंकड़ों, १५,६००० फुट अथवा ३ मील से भली-भाँति मिलते हैं। ह्वेनसांग के समय में यहाँ १० मठ थे परन्तु कुछ बौद्ध धर्मावलम्बी एवं अधिकांश जनता ब्राह्मणों के देवताओं की पूजा करती थी। नगर के उत्तर पूर्व में १० ली अथवा २ मील की दूरी पर अशोक का २०० फुट ऊँचा स्तूप था जो उस स्थान की ओर संकेत करता था जहाँ बुद्ध ने विश्राम किया था एवं जिसमें बुद्ध के अवशेषों का अधिकांश भाग रखा गया था। मेरे विचार में इस स्तूप को असरूर के उत्तर में दो मील की दूरी पर थट्टा सैयदों के समीप सालार के छोटे टीले के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है।

रासी अथवा नरसिंह

सीकिया छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग पूर्व की ओर ना-लो-सेग-पो अथवा नरसिंह गया था जिसके बाद उसने पो-लो-शी-अथवा पीलू वृक्षों के बन में प्रवेश किया था जहाँ-जैसा कि पहले बताया जा चुका है उसे लुटेरों का सामना करना पड़ा था। मेरा विश्वास है कि रांसी का विशाल ध्वस्त टीला नर-सिंह नगर का प्रतिनिधित्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता है जो शेखूपुरा के ९ मील दक्षिण में तथा असरूर के पूर्व उत्तर में २५ मील की दूरी पर तथा लाहौर के पश्चिम में इतनी ही दूरी पर अवस्थित है। सि अथवा सिंह, सिंह का सामान्य भारतीय संक्षिप्त स्वरूप है तथा रन एवं नर के उच्चारण की अदला-बदली सर्व ज्ञात है जैसा कि नरवर के दक्षिण में लगभग ३५ मील की दूरी पर ग्वालियर राज्य के एक विशाल नगर रनोट अथवा नरोद के सम्बन्ध में तथा कटहर अथवा रोहेलखण्ड की राजधानी लखनोर के स्थान पर नखलोर के सम्बन्ध में किया गया है। अतः रांसी के सम्बन्ध में हमारे पास न केवल स्थिति की समानता का तथ्य है वरन् नामों में भी चीनी तीर्थ यात्री के नरसिंह से अत्यधिक समानता का तथ्य है। यह अनुरूपता अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हमें प्राचीन लेखकों द्वारा बताई गई पूर्वी दिशा के स्थान पर ह्वेनसांग द्वारा सांगला को रावी के पश्चिम में दिखाने की सत्यता का सर्वाधिक निश्चित प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

राँसी के खण्डहरों में, उत्तर से दक्षिण की ओर ६०० फुट लम्बा तथा पूर्व से पश्चिम ५०० फुट चौड़ा एवम् २० से २५ फुट की सामान्य ऊँचाई का एक विशाल टीला है। यह विशाल आकार की टूटी हुई ईंटों से ढका हुआ है और शोरा उत्पादकों को यहाँ प्रायः मुद्रायें मिल जाती हैं। शोरकोट, मुल्तान तथा हड़प्पा इत्यादि पञ्जाब के सभी ध्वस्त टीलों में शोरा प्रचुर मात्रा में मिलता है और यह शोरा चूंकि केवल बसे हुये स्थानों से प्राप्त होता है अतः यह इस बात का निश्चित प्रमाण है कि रांसी का टीला प्राकृतिक न होकर अनेक शताब्दियों के परिणाम स्वरूप मलवे के कृत्रिम रूप से इकट्ठे हो जाने से बना है। रांसों में नौगज अथवा नौ गज के एक राक्षस का मकबरा है जिसे मैं निर्वान अथवा मृत्यु के पश्चात् बुद्ध की लेटी हुई प्रतिभा समझता हूँ। बर्मा में आज भी ईंटों एवम् मिट्टी की इसी प्रकार की विशालकाय प्रतिमायें बनती है जो ध्वस्त अवस्था में नौगज मकबरे के समान दिखाई देती हैं। चूंकि यह विश्वास किया जाता है कि मृत्यु के समय बुद्ध पूर्वोन्मुख था अतः सभी निर्वान प्रतिमायें उत्तर से दक्षिण की ओर इसी दिशा में रखी जायेगी और चूंकि भारत में मुसलमानों के मकबरे भी इसी दिशा में रखे जाते हैं अतः मेरा विश्वास है कि प्रारम्भिक मुसलमानों ने युद्ध में मरे अपने नेताओं की कबर हेतु इन बुद्ध प्रतिमाओं का प्रयोग किया होगा। इस विषय में मुझे आगे चलकर और भी कुछ कहना होगा परन्तु यहाँ राँसी की प्राचीनता के एक अन्य प्रमाण के रूप में ही इसका उल्लेख कर रहा हूँ।

अम्बकापी अथवा अमकटीस

अम्ब एवं कापी प्राचीन नगरों के अवशेषों के रूप में दो ध्वस्त टीलों के नाम हैं जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इनके नाम एक भाई बहन के नाम पर पड़े थे जिनकी कथा का वर्णन मैं मानिक्याल के अपने विवरण में कर चुका हूँ। इस कथा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुसार इस परिवार में सिर-कुप, सिर-सुक तथा अम्ब नामक तीन बन्धु एवं कापी, कल्पी, मुण्डी तथा मण्डे ही नामक चार बहनें थी और इनमें प्रत्येक ने शेखपुरा के दक्षिण में तथा राँसी के समीप ही एक नगर का निर्माण करवाया था। इन नगरों के अवशेष निम्न स्थानों पर बताये जाते हैं।

प्रथम—सिर-कप शेखपुरा के ६ मील दक्षिण में बलरह नामक गाँव के समीप अवशेषों का एक टीला है। यह उल्लेखनीय है कि सिन्ध सागर दोआब की कथाओं में बलरह के नाम को सिर-कप से सम्बन्धित बताया जाता है। इन कथाओं में इस बल-रह स्तूप को इस राजा का स्थान बताया जाता है।

द्वितीय—सिर-सुक, शेखपुरा के ३½ मील दक्षिण में, तथा सिर-कप टीले के २½ मील उत्तर में मुराद गाँव के समीप एक ध्वस्त टीला है।

तृतीय—अम्ब, शेखपुरा से ६ मील से कुछ अधिक दक्षिण में तथा रांसी के एक मील पूर्व में एक विशाल ध्वस्त टीला एवम् गाँव है।

चतुर्थ—कापी अथवा कांपी जैसा कि इसे लिखा जाता है एवम् इसका उच्चा-रण किया जाता है, लाहौर की ओर जाने वाले उच्च मार्ग पर अम्ब के २½ मील पूर्व में एक छोटा टीला है।

पञ्चम—काल्पी, सिर कप एवम् अम्ब के टीलों के मध्य भूईपुर नामक ग्राम के समीप एक अन्य छोटा टीला है।

छठा—मुण्डी, रांसी एवम् अम्ब के दक्षिण में ८ मील की दूरी पर बाग बच्चा नदी के पश्चिमी तट पर एक ध्वस्त टीला एवम् गाँव है।

सातवां—मुण्डे ही अम्ब एवं कापी के दक्षिण पूर्व में दोनों से ३½ मील की समान दूरी पर एक ध्वस्त टीला एवं गांव है।

यह सभी टीले बाग बच्चा नदो के पश्चिमी तट पर हैं तथा लाहौर के पश्चिम की ओर लगभग २५ मील की औसत दूरी पर है। उपर्युक्त सभी गाँव लाहौर जिले के विशाल मानचित्र में देखे जा सकते हैं परन्तु टीलों को केवल सड़कपुर परगना के विशाल मानचित्र में दिखाया गया है। मैं यह उल्लेख कर चुका हूँ कि बाग़ बच्चा नदी का नाम सम्भवतः "भूखे शेर के सात बच्चों" की कथा से सम्बन्धित है जिनके नाम उपर्युक्त सात टीलों के नामों में सुरक्षित रखे गये हैं। यहाँ भी उसी कथा का उल्लेख किया जाता है जो सिन्ध सागर दोआब में इतनी जनप्रिय है। स्यालकोट का राजा रसालू एक मानव सिर की शर्त पर सिर-कप से चौपड़ खेलता है और शर्त जीत जाने पर शर्त की वस्तु के स्थान पर उसकी पुत्री कोकिला से विवाह कर लेता है। जन साधारण को इस कथा के सत्य होने पर असंदिग्ध विश्वास है और अपने विश्वास के प्रमाण स्वरूप वह निम्नलिखित कविता को उद्घृत करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"अम्ब कप पाई लड़ाई
कल्पी बहन छुड़ावण आई"

'जब अम्ब कप में झगड़ा हुआ तो उनकी बहन कल्पी उनका झगड़ा समाप्त कराने आई।

चुंकि वह इस झगड़े के स्वरूप का कोई उत्तर नहीं दे सकते थे अतः इस कविता से सात बन्धुओं एवं बहनों के सम्बन्ध में हमारी सूचना में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है। फिर भी मैं इतना कहना चाहूँगा कि अम्ब एवम् कापी ये दो नामों का मिश्रण इतना पुराना है जितना टालमी का समय, क्योंकि उसने अमकारीज़ अथवा अमकापीज़ नामक नगर को रावी के पश्चिम में एवं लवोकला अथवा लाहौर के निकटस्थ प्रदेश में दिखाया है।

अम्ब का टीला ६०० वर्ग फुट है तथा इसकी ऊँचाई २५ से ३० फुट है और चूंकि लगभग ६०० फुट की चोड़ाई तक चारों ओर के खेत टूटे हुए बर्तनों से ढके हुए हैं अतः प्राचीन नगर का पूर्ण विस्तार ८००० फुट से कम नहीं होगा अथवा इसका घेरा ३ मील से अधिक होगा। यह टीला भी बड़े आकार की टूटी हूई ईंटों से ढका हुआ है जिन में मैंने ढाली गई इटों के अनेक टुकड़े प्राप्त किये थे। मुझे भूरे रंग के एक बलुआ पत्थर का टुकड़ा एवं लोहे की छड़ का चित्तकबरा टुकड़ा प्राप्त हुआ था जो सांगला तथा कराना पहाड़ियों में प्राप्त टुकड़ों के समान था। जन साधारण के कथनों के अनुसार इस कथन का निर्माण राजा अम्ब ने १८०० अथवा १६०० वर्ष पूर्व अथवा ईसवी काल के प्रारम्भ के समय करवाया था। इस तिथि के अनुसार यह तीनों बन्धु इण्डो-सीथियनों की यूची अथवा कुषान जाति के तीन महान राजाओं हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क के समकालीन थे और अन्य कारणों के आधार पर मैं उन्हें इन्हीं राजाओं के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

लोहावर अथवा लाहौर

लाहौर का विशाल नगर जो लगभग ६०० वर्षों तक पञ्जाब की राजधानी रहा है राम के पुत्र लव अथवा लो द्वारा बनवाया गया था और उन्हीं के नाम पर इसका नाम लोहावर रखा गया था। अब्बु-रिहान ने इसी स्वरूप के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है परन्तु इसके तत्कालिक स्वरूप का लाहौर नाम जिसे मुस्लिम विजेताओं ने शीघ्र अपना लिया था अब सर्व प्रसिद्ध हो गया है। श्री थार्टन ने रुचिकर सूचनाओं से ओत-प्रोत एक पूर्ण एवम् योग्य विवरण में इसके इतिहास का उल्लेख किया है। उसने लाहौर को टालमी के लबोकला के अनुरूप स्वीकार किया है। (१) जो लव नाम का

(१) टालमी के अनुसार उसके लबोकला की लाहौर से अनुरूपता का उल्लेख सर्व प्रथम कीपर्ट के द्वारा 'भारत के मानचित्र' में मिलता है। "हिस्ट्री एण्ड एन्टीक्यू-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिनिधित्व करने के लिये प्रथम दो अक्षरों लबो के लेने से मेरे विश्वासानुसर सही है। परन्तु मैं कला को परिवर्तित कर लका पढ़ूँगा और इस प्रकार यह नाम लबोलक अथवा लवालक अर्थात् 'लव का पेट' बन जायेगा।

ह्वेनसाँग ने लाहौर का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि यह निश्चित है कि ताकी से जलन्धर जाते समय वह इस स्थान से होकर गया होगा। उसने लिखा है कि वह ताकी की पूर्वी सीमा पर एक विशाल नगर में एक मास तक रहा था और चूंकि पूर्व में इस राज्य का विस्तार व्यास नदी तक था अतः पूर्वी सीमा के 'विशाल नगर' को रावी के स्थान पर व्यास नदी पर देखना होगा। अधिक सम्भावना यह है कि यह नगर कसूर नगर था। लाहौर का प्रथम विशिष्ट उल्लेख महमूद गजनी के आक्रमणों में मिलता है जब काबुल की घाटी के ब्राह्मण राजाओं ने पेशावर तथा ओहिन्द से निकाल दिये जाने के पश्चात्, पहले झेलम नदी पर भिड़ के स्थान पर अपनी राजधानी बनाई और बाद में लाहौर के स्थान पर इस प्रकार फरिश्ता ने महमूद के दो उत्तरोत्तर विरोधियों जयपाल एवम् उसके पुत्र आनन्दपाल को लाहौर का राजा कहा है। यह हिन्दू परिवार १०३१ ई० में पदच्युत हो गया जब लाहौर गजनी के अधीन मुस्लिम गवर्नर का निवास स्थान बन गया था। (१) एक शताब्दी से कुछ समय पश्चात् ११५२ ई० में जब ग़ोर अफगानों ने बहराम को गजनी से निष्कासित किया तो उसके पुत्र खुसरो ने लाहौर में राज्य सत्ता सम्भाल ली। परन्तु यह राज्य ११८६ ई० तक केवल दो पीढ़ियों तक चल सका। ११८६ ई० में इस जाति के अन्तिम शासक खुसरो मलिक के बन्दी बना लिये जाने पर गजनी की सत्ता का अन्तिम रूप से ह्रास हो गया।

कुसावर अथवा कसूर

जन साधारण की प्रथाओं के अनुसार कसूर का निर्माण राम के पुत्र कुश ने करवाया था जिसके नाम पर इसका नाम कुसावर रखा गया था और लोहावर के समकालीन नगर की भाँति ही इस नाम के दो व्यंजनों में अदला-बदली द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। यह नगर लाहौर के दक्षिण-दक्षिण पूर्व में ३२ मील की दूरी पर पुरानी व्यास नदी के ऊँचे तट पर अवस्थित है और प्रचलित है कि किसी समय इस नगर में १२ दुर्ग थे जिनमें अब केवल सात हैं। इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है। किसी महत्व के भवन अथवा अवशेष यहाँ नहीं है परन्तु इन अवशेषों का विस्तार बहुत अधिक

टिज आफ लाहोर" के लेखक श्री टी० एच० थार्टन की खोज से इसकी पुष्टि होती है।

(१) यह तिथि फरिश्ता से ली गई है परन्तु अरबी तथा संस्कृत लेखों सहित महमूद की मुद्रायें भी प्राप्त हैं जो १०१६ हिजरी में महमूदपुर में बनाई गई थीं। श्री थामस ने इसे लाहौर के अनुरूप माना है। अबु-रिहान तथा अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने लाहौर की राजधानी मण्धुकूर के भ्रष्ट स्वरूप से इसका उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है तथा फिरोज के विपरीत व्यास एवम् सतलज के पुराने सङ्गम स्थान एवम् लाहौर के मध्य मार्ग पर इसकी स्थिति इतनी अनुकूल है कि यह स्थान अविक प्रारम्भिक काल से बसा होगा। इसकी स्थिति भी सुदृढ़ है क्योंकि दक्षिण में यह व्यास नदी से एवम् अन्य सभी ओर गहरी खाइयों से सुरक्षित है। प्राचीन नगर की सीमाओं को निर्धारित करना प्राय: असम्भव है क्योंकि वर्तमान नगर के उपनगरों में मकबरों मस्जिदों एवम् अन्य बड़ी इमारतों के खण्डहर फैले हुए हैं परन्तु मेरे विचार में इसका कुल विस्तार एक वर्ग मील से कम नहीं था जिससे एक दीवार युक्त नगर का घेरा लगभग चार मील हो जायेगा। इनमें अनेक मकबरे वर्तमान नगर से ठीक एक मील की दूरी पर है और खण्डहरों से भरे मध्यवर्ती क्षेत्र का कम से कम आधा भाग नगर से सम्बन्धित रहा होगा। अत: यह सम्भव प्रतीत होता है कि ताकी की पूर्वी सीमा अर्थात् व्यास नदी पर यही "विशाल नगर" रहा होगा जहाँ ताकी की राजधानी से चिनापट्टी जाते समय ह्वेनसांग एक मास तक ठहरा था। दुर्भाग्यवश उसने सामान्य विस्तृत वर्णन को छोड़ दिया है क्योंकि इसकी स्थिति के निर्धारण में हमारी सहायतार्थ इस तथ्य को छोड़ अन्य कुछ भी नहीं है कि यह लाहौर के विपरीत व्यास के दाहिने तट पर किसी स्थान पर अवस्थित था।

चिनापट्टी अथवा पट्टी

ह्वेनसांग ने चिनापट्टी नगर को ताकी के पूर्व मे ८३ मील की दूरी पर दिखाया है। यह स्थिति कसूर से २७ मील उत्तर पूर्व तथा व्यास नदो से १० मोल पश्चिम में अवस्थित एक विशाल एवम् अधिक प्राचीन नगर चिनापट्टी से ठीक-ठीक मिलती है। ह्वेनसांग ने इस नगर के पश्चात् जिस स्थान को यात्रा की थी दुर्भाग्यवश उसकी कथित दूरी में कुछ त्रुटि है अन्यथा चिनापट्टी की स्थिति का निर्धारण जलन्धर के सर्व ज्ञात नगर से दिकांश एवम् दूरी के आधार पर किया जा सकता था। ह्वेनसांग की जीवनी में चिनापट्टी को तामस-वन मठ के उत्तर पश्चिम की ओर आठ मील की दूरी पर बताया गया है। यह मठ जलन्धर से २५ मील दक्षिण पश्चिम में था। परन्तु ह्वेनसांग की यात्राओं के विवरण में मठ को चिनापट्टी से ८३ मील को दूरी पर दिखाया गया है। यह अन्तिम दूरी पूर्णतया: असम्भव है क्योंकि इसमे चिनापट्टी ताकी के ८३ मील पूर्व में होने के स्थान पर इससे ३० मोल उत्तर में चला जायेगा। तीर्थ यात्री ने अपनी पुस्तक में इसे ताकी के ८३ मील पूर्व में बताया है। दूसरो ओर आठ मील की कम दूरी इस नगर को व्यास नदी के रेतीले मार्ग में ले जायेगी जहाँ आज तक कोई नगर नहीं बसा है। अत: मैं इसे २५ मील पढ़ने का प्रस्ताव करूंगा जिससे चिनापट्टी पट्टी नगर के स्थान पर उसो स्थिति में हो जायेगा जिसे पहले ही ताकी से दिकांश एवं दूर के आधार पर निश्चित किया जा चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पट्टी अत्यधिक प्राचीनता का ईंटों का विशाल नगर है। बर्न्स के अनुसार इसका निर्माण अकबर के समय में हुआ था परन्तु उसका कथित निश्चित रूप से गलत है क्योंकि यह नगर हुमायूं के समय में परगना का मुख्य स्थान था जिसे उसने अपने दास जौहर को दे दिया था। अबुल-फज़ल ने इसे पट्टी हैबतपुर कहा है और आज भी यह हैबतपुर पट्टी के नाम से ज्ञात है। जन साधारण के अनुसार नगर को यह मुस्लिम नाम हैबत खाँ से प्राप्त हुआ था जिसका समय अज्ञात है। परन्तु मेरे विचार में यह सम्भव है कि उसे हैबत खाँ शेरवानी समझना चाहिये जो सिकन्दर लोदी के समय में प्रमुख सरदार था तथा जिसने फारस यात्रा से वापसी पर हुमायूं के विरुद्ध अफगान राजा की सेनाओं का नेतृत्व किया था। पट्टी की प्राचीनता नगर के आस-पास प्राप्त जली हुई ईंटों एवं पुराने कुओं की संख्या से प्रमाणित होती है। सम्राट हुमायूं के दास जौहर ने ३०० वर्ष पूर्व इन पुराने सूखे कुआं का उल्लेख किया था और ईंटों के विचित्र बनावट से बर्न्स चकित रह गया था जिसका कथन है "यहाँ के घर ईंटों के बने हुए हैं और यहाँ की गलियों में भी ईंटें बिछाई गई हैं। इसके पड़ोस में कुआँ खोदते समय कुछ श्रमिकों को एक अन्य पुराना कुआँ प्राप्त हुआ था जिस पर एक हिन्दू लेख था। इसमें लिखा था कि इसका निर्माण किसी अगरतूता ने करवाया था जिसके सम्बन्ध में प्रथाओं में कोई उल्लेख नहीं मिलता।" मैं बर्न्स के कुछ ही वर्ष पश्चात् १८३८ में इस स्थान पर गया था परन्तु मुझे यह शिला-लेख नहीं मिल सका।

प्राचीनता का एक अन्य प्रमाण एक लम्बी कबर अथवा मकबरे की उपस्थिति है जिसे जनता बर्न के अनुसार "पट्टी का नो गज" कहती है परन्तु ये मकबरे जो उत्तर पश्चिमी भारत में सामान्य रूप से पाये जाते हैं सामान्यतः गजनियों से सम्बन्धित किये जाते हैं जो इस्लाम धर्म के प्रारम्भिक काल में काफरों के विरुद्ध लड़ते हुए मारे गये थे। अतः मैं इन कबरों को महमूद गजनी के समय की एवं इनके ऊपर बनाये गये ईंटों के मकबरों को अकबर के शासन काल में निर्मित बतलाऊँगा।

ह्वेनसांग के अनुसार चिना पट्टी के जिले का घेरा ३३३ मील था। इन आंकड़ों के अनुसार इस जिले में पहाड़ियों के अधोभाग से लेकर फिरोजपुर के समीप व्यास एवम् सतलज के पुराने सङ्गम स्थान तक व्यास तथा रावी के मध्य सम्पूर्ण ऊपरी दोआब सम्मिलित रहा होगा। ची-न-पो-ती-अथवा चिना पट्टी के नाम को महान् इण्डो-सीथियन सम्राट कनिष्क के समय से सम्बन्धित किया जाता है जिसने अपने चीनी अतिथियों के लिए यह स्थान निश्चित किया था। यात्री ने यह भी जोड़ दिया है कि चीनियों के निवास से पूर्व भारत में न तो आड़ू थे न नाशपातियाँ और यह दोनों चीनी अतिथियों द्वारा लाये गये थे। नाशपातियों को ची-न-नी अथवा चीनानी अर्थात् चीन से लाया गया कहा जाता था तथा आड़ूओं को ची-न-लो-शी-फो-ता-लो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा चीना राज पुत्र अर्थात् चीनी राजा का पुत्र कहा जाता था। यह पूर्णतयः सही नहीं है कि नाशपाती एवम् आड़ू दोनों फल ही पड़ोस की पहाड़ियों में पाये जाते हैं परन्तु आजकल दो प्रकार के आड़ुओं की कृषि की जाती है एक गोल एवम् रसभरे तथा दूसरे चिपटे एवम् मीठे। प्रथम को हिन्दी में आड़ू तथा फारसी में शफतालू कहा जाता है यह पूर्णतयः भारतीय फल है परन्तु दूसरा जिसे चीनी शफतालू कहा जाता है सम्भवतः वही फल है जिसे ह्वेनसांग ने चीन से लाया गया बतलाया है।

शोरकोट

शोरकोट खण्डहरों का एक विशाल टीला है जिससे परगना अथवा शोर खण्ड अथवा रिचना दोआब के निचले भाग का शोरकोट नाम रखा गया है। बर्न्स ने इस स्थान की यात्रा की थी और उसने इस स्थान का उल्लेख "एक मिट्टी के एक टीले के रूप में किया है जो ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है तथा इतना उन्नत है कि इसे ८ मील के घेरे से देखा जा सकता है।" उसने यह भी लिखा है कि यह सेहवान के टीले से अधिक बड़ा है जो (सेहवान) डी-ला-होस्टे के आंकड़ों के अनुसार १२०० फुट लम्बा तथा ७५० फुट चौड़ा है। मेरी सूचना के अनुसार शोरकोट हड़प्पा से अधिक छोटा है तथा अकबर के आकार का अर्थात् २००० फुट लम्बा तथा हजार फुट चौड़ा है परन्तु इन दोनों से ऊँचा है। यह टीला बड़े आकार की ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है जो इसकी प्राचीनता का असंदिग्ध प्रमाण है। बर्न्स को जन साधारण ने सूचित किया था कि लगभग १३०० वर्ष पूर्व पश्चिम में किसी राजा ने उनके नगर का विनाश किया था। स्थिति के कारण बर्न्स इसे वह स्थान समझता है जहाँ सिकन्दर घायल हुआ था और उसके अनुसार सिकन्दर ने ही इस नगर का विनाश कराया था। मैंने भी इस नगर के विनाश की इसी कथा को सुना था परन्तु मैं इसे श्वेत हूणों से सम्बन्धित समझता हूँ जिन्होंने छठीं शताब्दी में अथवा प्रथा में दिये गये समय में ही पश्चिम की ओर से पञ्जाब में प्रवेश किया था।

इस नगर की स्थापना को शोर नामक एक कल्पित राजा से सम्बन्धित किया जाता है जिसके सम्बन्ध में नाम को छोड़ अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं है। मैं यह सम्भव समझता हूँ कि शोरकोट स्टीफन्स बाईजेन्टाईन का सिकन्दरिया सोरियाने है जिसने इस तथ्य को छोड़ अन्य कोई संकेत नहीं दिया है कि यह भारत में था। यह दोनों नाम इतने ठीक-ठीक मिलते हैं कि मुझे इस प्रस्ताव को रखने की प्रेरणा मिलती है कि फिलिप ने शोरकोट का विस्तार किया होगा एवं इसे सुदृढ़ बनाया होगा जिसे सिकन्दर ने ओक्सड्रेकाय तथा मल्ली के गवर्नर के रूप में पीछे छोड़ दिया था। यह प्रस्ताव उस समय अधिक सम्भव प्रतीत होता है जब हम यह देखते हैं कि शोरकोट हाइडस्पीज़ तथा एकिसनीज़ के सङ्गम स्थान से मल्ली की राजधानी तक सिकन्दर के सीधे मार्ग में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ता था। अतः मैं इसे मल्ली नगर के अनुरूप स्वीकार करूँगा जिसने डियोडोरस तथा कर्टियस के अनुसार अल्प कालीन घेरे के पश्चात् आत्म-समर्पण कर दिया था। कर्टियस ने इसे नदियों के सङ्गम स्थान से २८$\frac{3}{4}$ मील बताया है और यह स्थिति शोरकोट की स्थिति से ठीक-ठीक मिलती है। एरियन का विवरण अन्य अनेक महत्वपूर्ण बातों में अन्य दोनों इतिहासकारों के विवरणों से भिन्न है। उसका कथन है कि नदियों के सङ्गम स्थान को छोड़ने के पश्चात् सिकन्दर ने जिस प्रथम नगर पर अधिकार किया था वह एकिसीनीज़ (चेनाब) से ४६ मील दूर था तथा इस पर आक्रमण कर अधिकार किया गया था। मेरा अनुमान है कि यह नगर कोट कमलिया था और मैं दोनों विवरणों के त्रुटि को एरियन द्वारा इस अभियान के दिये गये विस्तार से तुलना करने से समझाऊँगा। सिकन्दर ने अपनी सेनाओं को तीन बड़े दलों में विभाजित किया। इनमें अग्रिम दल हीफस्टियन के नेतृत्व में पाँच दिन पूर्व यात्रा कर रहा था। मध्य दल का नेतृत्व वह स्वयं कर रहा था तथा अन्तिम दल जो टालमी के नेतृत्व में था तीन दिन के पश्चात् अनुसरण कर रहा था। चूंकि यह आक्रमण मल्ली के विरुद्ध था अतः मेरा निष्कर्ष है कि सेना ने सीधे मार्ग से शोरकोट के मार्ग से मुल्तान की ओर यात्रा की थी। जो निश्चय ही मल्ली की राजधानी थी। इस प्रकार शोरकोट पर हीफास्टियन ने अधिकार किया होगा जो सेना के अग्रिम दल का नेतृत्व कर रहा था। जिस समय मैं कोट कमालिया का विवरण दूंगा उसी समय मैं सिकन्दर के निजी मार्ग का उल्लेख भी करूंगा।

शोरकोट की प्राचीनता का अनुमान यहाँ प्राप्त होने वाली मुद्राओं से लगाया जा सकता है। इनमें मुख्यतः सभी कालों की इण्डो-सीथियन तांबे की मुद्रायें हैं, कुछेक हिन्दू मुद्राओं के नमूने भी हैं तथा मुस्लिम काल की मुद्रायें अधिक मात्रा में मिलती हैं। अपोलोदोतस का एक मात्र ताँबे की मुद्रा वर्न्स को प्राप्त हुई थी। इन आंकड़ों से मैं अनुमान लगाऊँगा कि यह नगर निश्चित ही एरियन तथा पञ्जाब के यूनानी राजा के समय जितने प्रारम्भिक काल में बस गया होगा तथा १२६ ई० पू० से २५० ई० तक अथवा उससे भी कुछ समय पश्चात् इण्डो-सीथियनों के आक्रमण के समय यह नगर समृद्ध अवस्था में था। चूंकि शोरकोट में मुझे प्राप्त होने वाली हिन्दू मुद्रायें काबुल की घाटी तथा पञ्जाब के ब्राह्मण राजाओं तक ही सीमित थीं अतः मेरा निष्कर्ष है कि मध्य काल में यह स्थान या तो निर्जन था अथवा बहुत ही जर्जर अवस्था में था तथा दसवीं शताब्दी में इनमें किसी ब्राह्मण राजा ने या तो इस पर पुनः अधिकार स्थापित किया था अथवा इसे पुर्नजीवित किया था।

कोट-कमालिया

कोट कमालिया रावी के उत्तरी तट के दाहिने छोर पर जो नदी के इस ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकतम बढ़ाव की सीमा है—एक अकेले टीले पर अवस्थित छोटा परन्तु प्राचीन नगर है। यह हाइडस्पेस तथा एकिसीनीज के सङ्गम स्थान से ४४ मील दक्षिण पूर्व में तथा शोर के ३५ मील पूर्व-दक्षिण पूर्व में है। यहाँ जली हुई ईंटों का एक प्राचीन टीला है और शोरकोट तथा हड़प्पा के विनाश के समय ही किसी पश्चिमी राजा द्वारा इसका विनाश बताया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार इसका आधुनिक नाम कमालु-उद-दीन नामक एक मुस्लिम गवर्नर के नाम से लिया गया था परन्तु यह निश्चित बात नहीं है और मैं इसे प्रायः सम्भव समझता हूँ कि इस नाम का मूल रूप मल्ली जाति से लिया गया था जो आज भी देश के इस भू-भाग में निवास करती है। परन्तु नाम चाहे पुराना हो अथवा नहीं यह निश्चित है कि यह स्थान अति प्राचीन स्थान है और मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि इसे मल्ली के विरुद्ध आक्रमण के समय सिकन्दर द्वारा अधिकृत प्रथम नगर के अनुरूप समझा जाना चाहिये।

एरियन द्वारा दिया गया उपर्युक्त आक्रमण का विवरण इतना स्पष्ट एवम् संक्षिप्त है कि मैं उसी के शब्दों को उद्धृत कर इसका वर्णन करूँगा। नदियों के संगम स्थान को छोड़ने के पश्चात् सिकन्दर ने "एक मरुप्रदेश से मल्ली के विरुद्ध प्रस्थान किया तथा प्रथम दिन एकसीनीज के तट से ११.३ मील की दूरी पर एक छोटी नदी के तट पर अपना खेमा खड़ा किया। अपने सैनिकों को भोजन एवम् विश्राम हेतु थोड़ा समय देने के पश्चात् उसने प्रत्येक व्यक्ति को सभी बर्तन पानी से भर लेने की आज्ञा दी और ऐसा हो जाने पर उसने शेष दिन एवम् पूरी रात अपनी यात्रा जारी रखी और दूसरे दिन प्रातःकाल वह एक ऐसे नगर पहुँचा जहाँ अनेक मल्लियों ने भाग कर शरण ली थी और यह नगर एकिसीनीज़ से ४५ मील की दूरी पर था।" उपर्युक्त छोटी नदी मेरे विश्वासानुसार आयक नदी का निचला मार्ग है जो पहाड़ियों की वाह्य शृङ्खला से निकलती है तथा स्यालकोट के समीप से प्रवाहित होकर सांगला की ओर चली जाती है। इससे नीचे कुछ दूरी तक इस नदी का पाट दिखाई देता है। यह झङ्ग के १८ मील पूर्व में पुनः दिखाई देती है और शोरकोट के १२ मील पूर्व में अन्तिम रूप से लुप्त हो जाती है। सिकन्दर ने इन दो स्थानों के बीच किसी स्थान पर आयक नदी को पार किया होगा क्योंकि मरुप्रदेश जिसे उसने पार किया था इसके तुरन्त बाद शुरू हो जाता है। यदि वह दक्षिण की ओर जाता तो वह शोरकोट में पहुँचता परन्तु इस ओर उसे किसी मरुस्थल का सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि उसका मार्ग खादर अथवा चेनाब की घाटी के निचले प्रदेश से होकर गुजरता था। दक्षिणी दिशा में ४६ मील की यात्रा उसे हाईड्राओटीज़ अथवा रावी के दाहिने तट पर ले जाती है और यह एक ऐसा स्थान है जहाँ एरियन के अनुसार सिकन्दर एक अन्य रात्रि की यात्रा के पश्चात् पहुँचा था। चूँकि यह यात्रा गो धूली के समय से सूर्योदय के समय तक निरंतर रही अन्त यह यात्रा १८ अथवा २० मील की यात्रा से कम नहीं हो सकती। यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूरी कोट कमालिया से तुलम्बा के विपरीत रावी की दूरी से ठीक-ठीक मिलती है। अतः सिकन्दर की यात्रा की दिशा दक्षिण पूर्व की ओर रही होगी, सर्व प्रथम आयक नदी तक जहाँ उसने सैनिकों को विश्राम देने तथा पानी भरने के लिए पड़ाव किया और तत्पश्चात् सन्दर बार नामक ठोस मिट्टी एवम् जलविहीन प्रदेश को पार किया। सन्दर बार सन्दर अथवा चन्द्र नदी का मरुस्थल है। इस प्रकार नदी की स्थिति, निर्जन प्रदेश का उल्लेख तथा नदियों के सङ्गम स्थान से नगर की दूरी, यह सभी कोट कमालिया के दुर्ग की ओर संकेत करने में हम सहमत हैं जहाँ सिकन्दर ने आक्रमण किया था।

एरियन ने इस स्थान का दीवारयुक्त नगर के रूप में उल्लेख किया है जहाँ दुर्गम चढ़ाई के स्थान पर एक दुर्ग था जिसे भारतीयों ने अधिक समय तक सुरक्षित रखा। अन्त में एक भीषण आक्रमण के बाद इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया तथा यहाँ के २००० सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया गया।

हड़प्पा

जिस समय सिकन्दर उपर्युक्त नगर पर आक्रमण में व्यस्त था उस समय एरियन के अनुसार उसने पेरडिक्कस को घुड़सवार सेना सहित "मल्ली के एक अन्य नगर की ओर भेजा था जहाँ भारतीयों के एक बहुत बड़े दल ने भाग कर शरण ली थी।" उसकी आज्ञा उसके वहाँ पहुँचने तक नगर को घेरे रखने की थी परन्तु वहाँ के निवासियों ने पेरडिक्कस के समीप आने की सूचना मिलते ही नगर को त्याग दिया तथा आस पास की दलदल में शरण ली थी। मुझे विश्वास है कि यह नगर हड़प्पा था। दलदलों का उल्लेख यह प्रदर्शित करता है कि यह रावी के समीप रही होंगी और चूंकि पेरडिक्कस को सिकन्दर के आगे आगे भेजा गया था अतः यह कोट कमालिया से आगे अर्थात् इसके पूर्व अथवा दक्षिण पूर्व की ओर रहा होगा। यह हड़प्पा की ठीक-ठीक स्थिति है जो कोट कमालिया के १६ मील पूर्व दक्षिण पूर्व में तथा रावी के दूसरे ऊँचे तट पर अवस्थित है। उसके आस-पास निचली भूमि में अनेक दलदलें हैं।

दो सर्व प्रसिद्ध यात्रियों बर्न्स तथा मसोन न हड़प्पा का विवरण दिया है और मैं यद्यपि भिन्न समय में इस स्थान पर तीन बार रहा हूँ परन्तु इन दोनों यात्रियों द्वारा दिये गये विवरण में अधिक जोड़ना मेरे लिए सम्भव नहीं है। बर्न्स ने खण्डहारों के विस्तार को "लगभग तीन मील के घेरे में होने का अनुमान लगाया है जो वास्तविक विस्तार से $\frac{1}{2}$ भाग अधिक है क्योंकि खण्डहरों का वास्तविक टीला प्रत्येक ओर आधे मील अथवा दो मील घेरे का एक असमान चतुर्भुज बनाता है।" परन्तु इसमें केवल दीवार युक्त नगर के अवशेष सम्मिलित हैं जिसमें हम उचित रूप से उपनगरों अथवा टूटी हुई ईंटों एवम् अन्य अवशेषों से ढके खेत भी सम्मिलित कर सकते हैं जिससे प्राचीन नगर का कुल विस्तार बर्न्स द्वारा अनुमानित विस्तार से मिल जायेगा। मसोन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने एक प्रथा का उल्लेख किया है जिनके अनुसार हड़प्पा किसी समय पश्चिम की ओर चिचावन्ती तक अर्थात् १२ मील की दूरी तक विस्तृत रहा होगा जिससे कम से कम नगर के पूर्ववर्ती विस्तार एवम् महत्व में जनसाधारण का विश्वास प्रगट होता है।

खण्डहरों का अधिकांश ढेर पश्चिमी भाग में है जहाँ यह टीला मध्य में ६० फुट की ऊँचाई तक ऊपर उठ जाता है। इस स्थान पर विशाल ईंटों की बनी अनेक विशाल दीवारें हैं जो निस्सन्देह किसी विस्तृत भवन की अवशेष हैं। टीले के अन्य भाग ३० से ५० फुट की भिन्न-भिन्न ऊँचाई के हैं जिनमें अधिकांश टीले पूर्णतयः टूटी हुई ईंटों के ढेर हैं। प्रथाओं में अज्ञात काल के किसी राजा हड़प्पा ने इसकी स्थापना की थी तथा छठीं शताब्दी में पश्चिम के किसी राजा ने इस नगर का विनाश करवाया था जिसने शोरकोट का विनाश भी कराया था और जिसे मैं श्वेत हूणों का नेता समझता हूँ। इस राजा के पाप कर्मों से जो प्रत्येक विवाह में पति के विशेषाधिकारों का प्रयोग करना चाहता था—यह प्रदेश देवताओं के कोप का भाजन बना और हड़प्पा अनेक शताब्दियों तक निर्जन रहा। चूंकि यहाँ प्राप्त होने वाली मुद्रायें शोरकोट से प्राप्त मुद्राओं के समान हैं अतः मेरा विचार है कि दोनों स्थानों का समान भाग्य रहा होगा। अतः मैं इसके विनाश का उत्तरदायित्व अरबों पर डालूंगा जिन्होंने ७१३ ई० में मुल्तान पर अधिकार के बाद तुरन्त सम्पूर्ण पञ्जाब को रौंद डाला था।

अकबर

अकबर गाँव लाहौर से मुल्तान की ओर जाने वाले ऊँचे मार्ग पर गुगेरा से ६ मील दक्षिण पश्चिम में तथा लाहौर से ८० मील की दूरी पर अवस्थित है। प्राचीन नगर के खण्डहरों में जो गाँव के समीप ही है—१००० फुट के वर्ग का एक विशाल टीला है जिसके उत्तरी छोर पर २०० फुट वर्गाकार तथा ७५ फुट ऊँचा दुर्ग है। इन खण्डहरों में दक्षिणी छोर पर ८०० फुट लम्बा तथा ४०० फुट चौड़ा एक अन्य निचला टीला भी है। यह अत्यधिक प्राचीन स्थान रहा होगा क्योंकि मुझे २०×१०×३½ इञ्च की अत्यधिक बड़ी ईंट प्राप्त हुई थीं जिनका पिछली अनेक शताब्दियों से उत्पादन नहीं हुआ है। यह स्थान १८२३ ई० तक निर्जन था जब गुलाबसिंह पोविन्दिया ने वर्तमान अकबर गाँव की स्थापना की थी। प्राचीन नाम अब पूर्णतयः लुप्त हो चुका है और हमें इस बात का दुःख है क्योंकि खण्डहरों में प्राप्त होने वाली हुई ईंटों से यह ज्ञात होता है कि इस स्थान पर निर्माण कला के महत्वपूर्ण भवन रहे होंगे।

सतगढ़

सतगढ़ गुगेरा के १३ मोल पूर्व ऊँचे तट के बाहर निकले हुये भागों में एक भाग पर अवस्थित है जो पूर्व में रावी के घुमावों की अन्तिम सीमा है। नाम का अर्थ है 'सात दुर्ग' परन्तु इस समय इनमें एक भी दिखाई नहीं देता। एक टीले पर ईंटों का दुर्ग एवम् टूटी हुई ईंटों एवम् अन्य अवशेषों से ढके अनेक अकेले टीले हैं जो प्राचीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर के स्थान का संकेत देते हैं। इण्डो सीथियन राजाओं एवम् उनके बाद के राजाओं की प्राचीन मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। अतः यह स्थान सम्भवतः ईसा काल के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक निरन्तर बसा हुआ है।

दोपालपुर

दिल्ली के पठान सम्राटों के शासन काल में दीपालपुर उत्तरी पञ्जाब की राजधानी थी। यह फिरोज शाह का मनवांछित निवास स्थान था। उसने नगर के बाहर एक विशाल मस्जिद का निर्माण करवाया तथा यहाँ की भूमि की सिंचाई हेतु सतलज से एक नहर निकलवाई थी। तैमूर के आक्रमण के समय आकार एवम् महत्व में यह केवल मुल्तान से दूसरे नम्बर पर था परन्तु यह प्रचलित था कि यहाँ ८४ बुर्ज, ८४ मस्जिदें तथा ८४ कुएँ थे। वर्तमान समय में यह प्रायः निर्जन है क्योंकि दो द्वारों के मध्य जाने वाली केवल एक गली में ही लोग बसे हुए हैं। आकार में यह लगभग १६०० फुट का एक चतुर्भुज है जिसके दक्षिण पूर्वी भाग में ५०० फुट का एक चतुर्भुज बाहर की ओर निकला हुआ है। दक्षिण पश्चिम में एक उन्नत ध्वस्त टीला है जिसे एक दुर्ग का खण्डहर कहा जाता है। नगर से यह एक पुल से जुड़ा हुआ है जो आज भी खड़ा हुआ है और इसकी उन्नत एवम् नियन्त्रण करने वाली स्थिति के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह अवश्य ही एक दुर्ग रहा होगा। पूर्व तथा दक्षिण में भी अवशेषों के लम्बे टीले हैं जो निस्सन्देह उपनगरों के अवशेष हैं। दुर्ग एवम् उपनगरों सहित दोपालपुर के वास्तविक खण्डहर लम्बाई में तीन चौथाई मील तथा चौड़ाई में आधा मील फैले हुए हैं अर्थात् इनका घेरा २½ मील है परन्तु समृद्धि के दिनों में यह नगर अधिक बड़ा रहा होगा क्योंकि पूर्व की ओर नहर के किनारे तक सभी खेत ईंटों से भरे हुए हैं। फिरोजशाह की मस्जिद इसी नगर के समीप बनवाई गई थी। दीवारों से बाहर नगर के विस्तार का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि तैमूर के आक्रमण के समय दोपालपुर निवासियों ने भटनेर में शरण ली होगी और यदि उनका नगर सुरक्षित योग्य होता तो वह ऐसा नहीं करते।

इस स्थान की स्थापना राजा देवपाल द्वारा बताई जाती है जिसकी तिथि अज्ञात है। फिर भी इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है क्योंकि भीतरी भाग जहाँ अभी मकान बना लिये गये हैं दुर्ग की तोपों के स्थान सहित एक समतल पर है। पुरानी मुद्रायें जो यहाँ अधिक मात्रा में प्राप्त होती हैं यही प्रदर्शित करती है कि दीपालपुर इण्डो-सीथियनों के समय से ही बसा हुआ रहा होगा। अतः मैं इसे टालमी के डैडाला के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ जो लबोकला तथा अमकाटीज अथवा लाहौर एवम् अम्बकायी के दक्षिण में सतलज नदी पर अवस्थित था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजुधान अथवा पाक पटन

अजुधान का प्राचीन नगर दीपालपुर के २८ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नदी के वर्तमान मार्ग से १० मील की दूरी पर पुरानी सतलज के ऊँचे तट पर अवस्थित है। कहा जाता है कि इसका निर्माण एक हिन्दू सन्यासी अथवा उसी नाम के एक राजा ने करवाया था जिसके सम्बन्ध में अन्य कुछ नहीं लिखा गया है। दोआब का यह भाग अभी भी सुराट देश के नाम से ज्ञात है जिससे अन्य यूनानी लेखकों के सुद्रेकाय अथवा ओक्षड्रेकाय का स्मरण हो आता है। अब, यूनानी लेखकों ने सुद्रेकाय को सदैव मल्लियों से जोड़ा है ठीक उसी प्रकार जैसे मुस्लिम इतिहासकारों ने अजुधान तथा मुल्तान को एक साथ जोड़ दिया है। अतः मेरा विचार है कि हमें अजुधान तथा इसके पड़ोसी दीपालपुर को सूद्रकों अथवा सूरकों के दो मुख्य नगरों के रूप में देखना चाहिये। जो सिकन्दर के समय में भारत की स्वतन्त्र जातियों में थे। दियोनीसियस तथा नोनस ने हुडरकाय नाम का प्रयोग किया है। प्लिनी ने सैड्राकाय का—जो स्ट्रैबो के सुड्रकोय से मिलता है तथा दिवोडोरस ने इसे सुरकौसाय लिखा है। केवल कर्टियस तथा एरियन ने ओक्षड्राकाय लिखा है। स्ट्रैबो ने यह भी जोड़ दिया है कि वह बुच्चस के वंशज थे। मैटीलोन के चरीस ने लिखा है कि भारतीय देवता का अर्थ "शराबी" है अतः मेरा अनुमान है कि उन लोगों ने जो स्वयं को बुच्चस का वंशज होने का दावा करते थे उन्होंने स्वयं को सुराक अथवा बचीडाय भी कहा होगा। सुड्रकाय में ड अक्षर यूनानियों ने व्यर्थ रूप से जोड़ दिया है। एरियन के अड्रैस्टाय तथा दिवोडोरस के अन्ड्रिसताय में भी यही अक्षर जोड़ा गया है। इन लोगों का संस्कृत नाम अराष्ट्रक था जिसे जस्टिन ने अपने अरिस्टोय शब्द में समुचित रूप से सुरक्षित रखा है। सुराकाई अर्थात् सुरा के वंशज ही इसका वास्तविक यूनानी स्वरूप होगा। दिवोडोरस द्वारा दिये गये लम्बे नाम में इसकी पुष्टि होती है जिसे सम्भवतः संस्कृत सुरा तथा कुश "मदमत्त" से लिया गया है। इस प्रकार इसका साधारण अर्थ होगा 'शराबी' और इसमें सन्देह नहीं कि यह उपनाम उनके पड़ोसी आर्यों ने दिया होगा जो पञ्जाब की तुरानियन जनता को उपनाम देने में अधिक उदार थे। इस प्रकार सांगला के कथाओं को महाभारत में "लुटेरे बाहिक" और साथ ही साथ "शराबी" एवम् "गोमांसाहारी" कहा गया है। उन्हें मद्र, बाहिक, अरट्ट तथा जारट्रिक्क आदि भिन्न-भिन्न नामों से अलंकृत किया गया है। एक बार भी उनके निजी नाम से उनका उल्लेख नहीं किया गया जबकि सिकन्दर के इतिहासकारों से हमें ज्ञात होता है कि उनका वास्तविक नाम कठायी था जो आज भी वर्तमान काठी शब्द में सुरक्षित है। अतः मैं स्वीकार करता हूँ कि अधिकांश जाति सम्बन्धी विशिष्ट नाम जिन्हें यूनानियों ने हमारे लिये छोड़ रखा है केवल उपनाम अथवा अपशब्द युक्त पदवियाँ थी जो ब्राह्मणवादी आर्यों ने अपने तुरानियन पड़ोसियों के लिये प्रयोग में लाये गये थे। उदाहरणार्थ कम्बिर स्थोली नाम, जिसे एरियन ने हाड्राओटीज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा रावी के तट के निवासियों को दिया है सम्भवतः संस्कृत के कपिस स्थल अर्थात् शराब खाने से लिया गया है जो सुराकौसस अथवा शराबियों के स्थान हेतु स्वभाविक अपशब्द होगा। इसी प्रकार ओक्षड्काय को मैं असुरक अथवा राक्षस समझूंगा।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या सुराक अथवा "शराबी" इस जाति का वास्तविक नाम हो सकता था। एरियन ने ओक्षड्काय को हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज़ के सङ्गम स्थान का निवासी कहा है जहाँ कटियस ने सोबी, दियोडोरस ने इबोय तथा स्ट्रैबो ने सिबोय निवासियों को दिखाया है। इस त्रुटि के एकमात्र उत्तर में यह दे सकता हूँ कि यह सोबी अथवा फरिश्ता के चोबिया तथा सोरी अथवा सुराक के बीच सम्भावित सन्देह के कारण हो सकता है। प्रथम नाम सोपीथोज़ अथवा सोफीटीज की जनता का नाम था, जिसका राज्य हाईडस्पीज तथा अकिसीनीज़ के सङ्गम स्थान से ऊपर नमक की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। दूसरे नाम को मैं शोरकोट से सम्बन्धित करूँगा जिसे मैं पहले ही सिकन्द्रिया सोरियाने के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। यह आज भी शोर जिले की राजधानी है जो हाईडस्पीज़ तथा अकिसीनीज़ के सङ्गम स्थान से ठीक नीचे पड़ता है। अतः सोबी सोरी के पड़ोसी थे और इनमें प्रथम जाति नदियों के सङ्गम से ऊपर के प्रदेश में तथा द्वितीय जाति इस स्थान से नीचे निवास करती थी।

सोरी अथवा सुराक जाति की इस स्थिति से एरियन के इस कथन का उत्तर मिलता है कि कठायी ओक्षड्राकोय एवम् मल्ली के सहयोगी मित्र थे। यह पड़ोसी जातियाँ थी जो सदैव परस्पर युद्ध में व्यस्त रहती थीं परन्तु सामान्य शत्रु के सम्मुख एक हो जाया करती थीं।

प्लिनी ने सुद्रकों की सीमा में सिकन्दर के अभियानों को हाईफासिस अथवा व्यास नदी के दूसरे तट तक सीमित बताया है। इस बिन्दु से सैड्रस नदी अर्थात् हैसीड्रस अथवा सतलज नदी तक की दूरी को उसने १५४ मील बताया है और सैड्रस से जोमानीज़ अथवा यमुना तक इतनी ही दूरी बताई है। परन्तु व्यास से यमुना तक अथवा पहाड़ियों के अधोभाग से प्रथम नदी पर कसूर तक तथा दूसरी नदी पर करकाल तक की दूरी १५० से १६० मील है अतः मेरा अनुमान है कि प्लिनी की मूल पुस्तक में केवल एक ही दूरी का उल्लेख किया गया है। हाइफसिस के पूर्वी तट का प्रसिद्ध स्थान जहाँ सिकन्दर ने "विश्राम एवम् रुदन" किया था कसूर तथा बज़िदपुर के विपरीत सतलज एवम् व्यास नदियों के पुराने सङ्गम स्थान से कुछ दूरी पर इन दोनों नदियों के बीच निचली भूमि पर कहीं रहा होगा। इस बिन्दु से ऊपर २० मील की दूरी तक दोनों नदियाँ प्रारम्भिक काल से १७९६ ई० तक प्रायः समानान्तर एवम् एक दूसरे से कुछ ही मीलों के अन्तर पर बहती हैं। १७९६ ई० में अचानक ही सतलज नदी ने अपना मार्ग बदल दिया और अब यह हरी-की-पटन के पास व्यास से मिलती है। २० मील के भीतर इन दो नदियों के मध्य का क्षेत्र इतना छोटा था कि सिकन्दर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पड़ाव से यमुना की दूरी का उल्लेख करते समय इसे भूल जाना सम्भव था। फिर भी मेरा विश्वास है कि सिकन्दर के समकालीनों ने वस्तुतः इसका उल्लेख किया था क्योंकि यमुना तट की दूरी का वर्णन करने के बाद प्लिनी का कथन है कि "कुछ प्रतिलिपियों में ५ मील अधिक जोड़ दिया गया है।" अब यह रोमन मील व्यास के पूर्वी तट से सतलज के पुराने मार्ग की दूरी का सही-सही वर्णन करते हैं और सम्भव है कि कुछेक प्राचीन लेखकों ने इस माप को कम महत्वपूर्ण समझकर इसकी अवहेलना की हो। सभी आंकड़ों पर सामान्य रूप से विचार करने से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर की वेदी के स्थान को हरी-की-पटन से कुछ मील नीचे सतलज के वर्तमान मार्ग पर देखना चाहिये और यह सोबरांव के सर्व ज्ञात खेतों से अधिक दूर नहीं था जो सतलज के पुराने मार्ग के अनेक घुमाओं से ५ मील से अधिक दूर नहीं है। अतः सिकन्दर के के समय में सुड्राकाय अथवा सुराकस की सीमायें इस विन्दु तक विस्तृत रही होंगी।

कई शताब्दियों तक अजुधान सतलज को पार करने का मुख्य घाट रहा है। यहाँ पर पश्चिम की ओर से डेरा ग़ाज़ी खाँ तथा डेरा इस्माईल खाँ से आने वाले दो मार्ग मिलते हैं। प्रथम मार्ग मानकेरा शोरकोट तथा हड़प्पा के रास्ते आता है दूसरा मार्ग मुलतान से होकर आता है। इसी स्थान पर महान् विजेताओं, महमूद एवम् तैमूर ने तथा महान यात्री इब्न बतूता ने सतलज नदी को पार किया था। कहा जाता है कि पञ्जाब में लूट-पाट के अपने अभियानों के समय सबुक्तगीन ने ३६७ हिजरी अथवा ६७७-७८ ई० में इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया था और पुनः ४७२ हिजरी अथवा १०७९-८० ई० में इब्राहिम गज़नवी ने इस पर अधिकार किया था। तैमूर के आक्रमण के समय अधिकांश जनता भाग कर भटनेर चली गई थी और शेष जनता को उस निर्मोहर बर्बर ने प्रसिद्ध फकीर फरीदुद्दीन शकर गञ्ज के सम्मान में छोड़ दिया था जिसकी समाधि अजुधान में है। इस फकीर से इस स्थान को पाक पट्टन अथवा "शुद्ध व्यक्ति के घाट" का आधुनिक नाम प्राप्त हुआ है। शुद्ध व्यक्ति फरीद को कहा गया है जिसके अन्तिम दिन अजुधान में व्यतीत हुये थे। कहा जाता है कि निरन्तर उपवासों के कारण उसका शरीर इतना शुद्ध हो गया था कि क्षुधा को शान्त करने के लिये वह मिट्टी तथा पत्थरों सहित किसी भी वस्तु को मुँह में डालते तो यह तुरन्त चीनी में परिवर्तित हो जाती थी। इसी कारण उसका नाम शक्कर गञ्ज अर्थात् 'शक्कर का भण्डार' रखा गया था। इस अद्भुत शक्ति को फारसी के एक सर्व प्रसिद्ध दोहे में लिखा गया है :—

"सङ्ग दर दस्त-ओ-गुहार गरदद,
ज़हेर दर काम-वो-शक्कर गरदद।"

जिसका अर्थ इस प्रकार से किया जा सकता है। 'उसके हाथ में पत्थर मोती बन जाते हैं तथा उसके मुँह में विष मधु समान हो जाता है।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी स्मृति में लिखे एक अन्य दोहे से हमें ज्ञात होता है कि उसकी मृत्यु ६६४ हिज़री अथवा १२६५-६६ ई० में हुई थी और उस समय उनकी आयु ९५ वर्ष की थी। परन्तु अजुधान का पुराना नाम ही एक मात्र नाम है जिसका उल्लेख १३३४ ई० में इब्न बतूता ने तथा १३९७ में तैमूर के इतिहासकारों द्वारा किया गया है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि पाक पट्टन का वर्तमान नाम अपेक्षाकृत पश्चात्वर्ती समय का होगा। सम्भवतः यह अकबर के शासन काल से अधिक पुराना नहीं है जब इस फकीर के वंशज नूर-उद-दीन ने अपनी प्रार्थनाओं द्वारा सम्राट के उत्तराधिकारी का जन्म पर अपने घराने की पूर्ववर्ती ख्याति प्राप्त कर ली थी।

मुल्तान प्रान्त

पञ्जाब का दक्षिणी प्रान्त मुल्तान है। ह्वेनसांग के अनुसार इसका घेरा ६६७ मील था जो नदियों के मध्य वास्तविक प्रदेश के घेरे से इतना अधिक है कि उपरोक्त घेरे के अनुसार यह प्रान्त नदी पार तक विस्तृत रहा होगा। अकबर के समय में कम से कम १७ जिले अथवा भिन्न-भिन्न परगने मुल्तान प्रान्त से सम्बन्धित थे जिनमें उच, दिरावल मोज तथा मरोट आदि वह सभी जिले जिन्हें मैं पहचान सकता हूँ सतलज के पूर्व में थे। यह नाम इस बात को दर्शाने के लिये पर्याप्त हैं कि मुल्तान की पूर्वी सीमा घघर नदी के पुराने मार्ग से परे बीकानेर की मरु भूमि के समीप तक विस्तृत थी। इस प्रदेश को जो अब बहालपुर की सीमाएं बनाता है विशाल मरुस्थल की प्राकृतिक रुकावट इसे पूर्व के समृद्ध प्रान्तों से अलग करती है। एक सुदृढ़ सरकार के अन्तर्गत यह सदैव मुल्तान का एक भाग रहा है और दिल्ली के मुस्लिम साम्राज्य के पतन के समय ही बहावल खाँ ने एक भिन्न छोटा राज्य की स्थापना की थी। अतः मेरा अनुमान है कि सातवीं शताब्दी में मुल्तान प्रान्त की सीमाओं में नदियों के बीच के प्रदेश के अतिरिक्त बहावलपुर को वर्तमान सीमाओं का उत्तरी अर्द्ध भाग सम्मिलित रहा होगा। उत्तरी सीमा को पहले ही सिन्धु नदी पर डेरा दीन पनाह से लेकर सतलज नदी पर पाक पट्टन तक, १५० मील विस्तृत बताया जा चुका है। पश्चिम में खानपुर तक सिन्धु नदी की सीमान्त रेखा १६० मील लम्बी है। पूर्व में पाक पट्टन से पुरानी घघर नदी तक यह सीमा ८० मील है तथा दक्षिण में खानपुर से घघर तक इस सीमा की लम्बाई २२० मील है। कुल मिलाकर यह सीमा रेखा ६६० मील है। यदि ह्वेनसांग के आंकड़े पञ्जाब के छोटे कोस पर आधारित थे तो कुल घेरा ६६७ मील का $\frac{२१}{३२}$ वाँ भाग अथवा ४३७ मील होगा और इस स्थिति में यह प्रान्त दक्षिण में मिठानकोट से आगे विस्तृत नहीं हो सकता था।

मुल्तान के भूगोल का वर्णन करते समय उन महान् परिवर्तनों को ध्यान में रखना आवश्यक है जो इस प्रान्त में प्रवाहित होने वाली सभी नदियों के मार्गों में हुये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। तैमूर तथा अकबर के समय में चेनाब तथा सिन्धु नदियों का सङ्गम मिठानकोट के वर्तमान सङ्गम स्थान से ६० मील ऊपर उछ के विपरीत होता था। यह उस समय भी अपरिवर्तित था जब १७८८ ई० में रेनेल ने "भारत का भूगोल" लिखा था और उसके बाद १७९६ ई० में जब विल्फोर्ड के सर्वेक्षक मिर्ज़ा मुगल बेग ने इस स्थान की यात्रा की थी उस समय भी यह अपरिवर्तित था परन्तु वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में सिन्धु नदी धीरे-धीरे अपना मार्ग बदलती गई और उछ के ऊपर २० मील की दूरी पर अपने पुराने मार्ग को छोड़ मिठानकोट में पुराने मार्ग में पुनः प्रवाहित होने तक इस नदी का प्रवाह दक्षिण-दक्षिण पश्चिम की ओर है।

रावी एवम् चेनाब का वर्तमान सङ्गम मुल्तान से ३० मील से अधिक ऊपर दिवाना सनन्द के समीप होता है परन्तु सिकन्दर के समय में हाईड्राओटीज़ तथा अकिसीनीज़ का संगम मल्ली की राजधानी से कुछ दूर नीचे की ओर होता था जिसे (मल्ली) मैं मुल्तान के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। पुराना मार्ग अब भी है और मुल्तान जिले के बड़े मानचित्रों में इसे समुचित रूप से दिखाया जाता है। यह वर्तमान मार्ग को सराय सिधु में छोड़ देती है तथा दक्षिण दक्षिण पश्चिम की ओर ३० मील तक घुमावदार मार्ग से प्रवाहित होती है। तत्पश्चात् यह अठारह मील के लिए अचानक पश्चिम की ओर मुल्तान तक प्रवाहित होती है और मुल्तान के दुर्ग का पूरी तरह घेर डालने के बाद मुल्तान के नीचे ५ मील तक पश्चिम की ओर चली जाती है। तत्पश्चात् यह अचानक दक्षिण दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और १० मील के बाद यह चेनाब के पाट की निचली भूमि में अन्तिम रूप से लुप्त हो जाती है। आज तक रावी अपने प्राचीन मार्ग से चिपटी हुई है और अधिक बाढ़ के समय नदी का पानी आज भी पुराने मार्ग से मुल्तान तक चला जाता है जैसा कि दो अवसरों पर मैं स्वयं देख चुका हूँ। परिवर्तन की तिथि अज्ञात है परन्तु निश्चित ही यह परिवर्तन ७१३ ई० में मुल्तान पर मुहम्मद बिन कासिम के अधिकार के बाद हुआ है और पुराने मार्ग से निकाली गई नहरों की अत्यधिक संख्या से मेरा अनुमान है कि मुख्य नदी अपेक्षाकृत निकट भूतकाल तक और सम्भवतः तैमूर के आक्रमण के समय तक पुराने मार्ग से प्रवाहित थी। फिर भी यह परिवर्तन अकबर के शासन काल से पूर्व हुआ था क्योंकि अबुलफज़ल ने चेनाब तथा झेलम के सङ्गम से चेनाब तथा रावी के सङ्गम स्थान को २७ मील तथा अन्तिम स्थान से चेनाब तथा सिन्धु के सङ्गम स्थान को ६० मील की दूरी पर बताया है और यह दोनों आंकड़े इन नदियों की पश्चात्वर्ती स्थिति से मिलते हैं।

व्यास एवं सतलज का वर्तमान संगम केवल १७९० ई० में हुआ है जब सतलज धर्म कोट में अपना पुराना मार्ग त्याग कर हरी-की पट्टन में व्यास नदी से मिलती है। पिछली अनेक शताब्दियों तक यह संगम स्थान निरन्तर कसूर तथा फीरोजपुर के बीच हरी-की-पट्टन के घाट से कुछ ऊपर रहा था। जौहर ने १५५५ ई० में तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अबुल फज़ल ने १५९६ ई० में इस संगम का उल्लेख किया है। यद्यपि फिरोज़पुर के समीप दोनों नदियों का संगम स्थान काफी समय से निर्धारित रहा है फिर भी कुछ समय पश्चात् भी व्यास नदी का जल पुराने मार्ग से प्रवाहित होता रहा है क्योंकि अबुल फज़ल ने लिखा है कि—"फिरोज़पुर के समीप १२ कोस की दूरी तक व्यास एवं सतलज नादियाँ संयुक्त रूप से प्रवाहित हैं। तत्पश्चात यह हर, हरी, दण्ड तथा नूरनी नामक चार छोटी नादियों में विभाजित हो जाती हैं और यह चारों मुल्तान नगर के समीप पुनः मिल जाती हैं।" व्यास एवं सतलज के यह पुराने मार्ग अभी भी देखे जा सकते हैं और इनसे सतलज तथा व्यास के ऊँचे तट के मध्य सम्पूर्ण दोआब में सूखी नहरों का जटिल जाल बिछा हुआ है। ग्लेडविन द्वारा आईन-ए-अकबरी के अनुवाद में दिये गये नामों में अब कोई नाम नहीं मिलता। मेरे विचार में इसका कारण फारसी वर्णमाला की त्रुटि है जिसके कारण नामों का उच्चारण करने में निरन्तर त्रुटि हुआ करती है। मैं हर को परा, हरी को राधी तथा नूरनी को सूक-नई समझता हूँ जो हड़प्पा के दक्षिण में व्यास नदी के सूखे मार्ग हैं। दण्ड सम्भवतः सतलज का एक पुराना मार्ग धमक अथवा दन्क है जो आगे चल कर भटियारी कहलाती है तथा महलसी, कहरूर तथा लोधरान से होकर चेनाब से अपने संगम से थोड़ा ऊपर अपने नवीन मार्ग में मिल जाती है। हमारे अधिकांश मानचित्रों में पुराने व्यास को भटियारी के निचले मार्ग में मिलता हुआ दिखाया गया है जबकि इसका सुनिश्चित एवं जीवित मार्ग शुजाहाबाद से २० मील नीचे चेनाब में मिलता है और इसका दूरस्थ दक्षिणी बिन्दु भटियारी के समीपस्थ घुमाव से १० मील की दूरी पर है।

ऊपर बताये गये परिवर्तन पञ्जाब की नदियों के केवल प्रमुख परिवर्तन हैं जो बारम्बार अपना मार्ग बदल देते हैं। व्यास नदी के परिवर्तन उल्लेखनीय हैं क्योंकि इस नदी ने लगभग अपना स्वतन्त्र मार्ग त्याग दिया है और अब यह सतलज की सहायक नदी मात्र रह गई है। इस प्रकार कलोवाल के नीचे चेनाब की घाटी लगभग ३० मील चौड़ी है तथा गुगेरा के समीप रावी की घाटी २० मील चौड़ी है। दोनों नादियों की दूरस्त सीमायें सुनिश्चित ऊँचे तटों द्वारा निर्धारित हैं जिन पर पञ्जाब के अधिक प्राचीन नगरों में अधिकांश नगर अवस्थित हैं। मुल्तान खण्ड में यह प्राचीन स्थान अधिक संख्या में दिखाई देते हैं परन्तु यह सभी अब अधिकांश रूप से निर्जन तथा नाम विहीन है तथा सम्भवतः नदियों के वहाँ से हट जाने के साथ-साथ जनसाधारण ने इन्हें त्याग दिया होगा। तुलम्बा के प्राचीन नगर के साथ निश्चित ही यही कारण था जिसे रावी के मार्ग में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप १५० वर्ष पूर्व ही त्याग दिया बताया जाता है क्योंकि इस परिवर्तन से नगर को पानी का मिलना पूर्णतय बन्द हो गया था। तुलम्बा के पश्चिम दक्षिण पश्चिम में २० मील की दूरी पर एक ध्वस्त नयर अटारी के निर्जन हो जाने का यही कारण था यद्यपि यह तुलम्बा से कुछ समय पश्चात् निर्जन हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस नगर की जल पूर्ति पुरानी रावी से एक नहर द्वारा की जाती थी। अपने वर्तमान विवरण में मैं जिन स्थानों का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ वह निम्न प्रकार से है :—

बारी दोआब
(१) तुलम्बा
(२) अटारी
(३) मुल्तान

जलन्धर पीठ संगम पर
(४) कहरोर
(५) उन्छ

इनमें चार स्थान भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हैं और द्वितीय स्थान अटारी को मैंने इसके विस्तार एवं स्थिति के कारण सम्मिलित किया है जिसने निश्चित ही सिकन्दर एवं पञ्जाब के अन्य विजेताओं का ध्यान आकर्षित किया होगा।

तुलम्बा

तुलम्बा नगर मुल्तान से ५२ मील उत्तर पूर्व में रावी के बायें तट पर अवस्थित है। यह चारों ओर से ईंटों की दीवार से घिरा हुआ है तथा यहाँ के गृह मुख्यतः तुलम्बा के प्राचीन दुर्ग से लाई गई जली ईंटों से बनाये गये हैं। यह दुर्ग वर्तमान नगर से एक मील दक्षिण में अवस्थित है। मसोन के अनुसार यह "प्राचीन समय में विशेष रूप से सुदृढ़ दुर्ग रहा होगा" और निस्सन्देह यह ऐसा ही था क्योंकि तैमूर ने इसे अछूता छोड़ दिया था अन्यथा इस पर घेरा डालने से उसकी प्रगति में बाधा पड़ती थी। विचित्र बात है कि यह स्थान बर्न्स के उल्लेखों से बचा रहा क्योंकि इसकी उन्नत दीवारें जिन्हें अधिक दूरी से देखा जा सकता है सामान्यतः यात्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। मैं दो बार इस स्थान पर गया हूँ। इसमें एक खुला हुआ नगर था जो दक्षिण की ओर से १००० फुट चतुराकार एवम् उन्नत दुर्ग से सुरक्षित है। इसकी बाहरी दीवारें मिट्टी की बनी हुई हैं और बाहर से २० फुट ऊँची है। इसके ऊपर इसी ऊँचाई की मिट्टी की एक अन्य दीवार है। प्रारम्भ में इन दोनों दीवारों में १२×८×२½ इञ्च की ईंटें लगाई गई थीं। मिट्टी की दीवार के भीतर १०० फुट चौड़ा स्थान अथवा खाई है। जिसने ४०० फुट वर्गाकार एवम् ४० फुट ऊँचे भीतरी दुर्ग को चारों ओर से घेर रखा है और इसके मध्य में ७० फुट ऊंचा एक चतुर्भुजाकार दुर्ग है जो सम्पूर्ण दुर्ग पर नियन्त्रण करता है। चारों ओर फैले हुए ईंटों के अनेकानेक टुकड़े तथा बाहरी ओर अनेक स्थानों पर ईंटों के लगाये जाने के चिह्न जनसाधारण के इन कथनों की पुष्टि करते हैं कि मिट्टी की दीवारों में पहले ईंटें लगाई गई थीं। मैं यह बता चुका हूँ कि इस प्राचीन दुर्ग को लगभग ३०० वर्ष पूर्व रावी के जल मार्ग में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप त्याग दिया गया था क्योंकि यह स्थान पूर्ण रूपेण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रावी के जल पर निर्भर था। ईंटों के हटाये जाने के कार्य को शुजावल खाँ से संबंधित किया जाता है जो मुल्तान के महमूद लङ्ग का दामाद एवम् वजीर था तथा १५१० से १५१५ तक उसके उत्तराधिकारी का बहनोई था।

तुलम्बा की प्राचीनता प्रथाओं एवम् विशाल आकार की ईंटों से प्रमाणित होती है जो मुल्तान के खण्डहरों एवम् उसकी दीवारों में प्राप्त प्राचीनतम ईंटों के समान हैं। प्राचीन नगर को तैमूर ने लूट लिया था एवम् जलाकर भस्म कर दिया था ओर यहाँ के निवासियों का बध करवा दिया था। परन्तु यह दुर्ग उसकी क्रूरता से बच गया था। इसका कारण कुछ अंशों तक इसकी अपनी सुदृढ़ स्थिति थी और कुछ अंशों का यह कारण था कि आक्रमणकारी शीघ्र अति शीघ्र दिल्ली की ओर जाना चाहता था। एक प्रथा के अनुसार महमूद गजनी ने तुलम्बा पर अधिकार कर लिया था जिसके सत्य होने की अधिक सम्भावना है क्योंकि यह नगर उसके मुल्तान जाने के सीधे मार्ग से कुछ ही परे रहा होगा। इसी कारण से मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि यह नगर भी सिकन्दर द्वारा अधिकृत नगरों में रहा होगा। मसोन ने पहले सूचना दी है कि यह "मल्ली को राजधानी" थी अथवा सम्भवतः यह "ब्राह्मणों के अधिकार में एक दुर्ग था जिन्होंने हठ पूर्वक इसकी रक्षा की जबकि यह रक्षा उनके लिये घातक थी और यह दुर्ग प्रत्यक्ष रूप से मल्ली की राजधानी का एक भाग था।" परन्तु मैं इनमें किसी भी प्रस्तात्र से सहमत नहीं हूँ अतः मैं अब सिकन्दर के मार्ग के इस भाग के विभिन्न विवरणों पर विचार एवं उनकी तुलना करूँगा।

कोट कमालिया के अपने विवरण में मैं इस स्थान को, हाईडस्पीज़ तथा अकिसीनीज के संगम स्थान से मल्ली के विरुद्ध यात्रोपरान्त सिकन्दर द्वारा अधिकृत प्रथम नगर के अनुरूप समझने के कुछ ठोस कारण बता चुका हूँ। एरियन ने तब लिखा है कि "अपने सैनिकों को भोजनादि एवं विश्राम हेतु कुछ समम देने के पश्चात् सिकन्दर ने रात्रि के प्रथम पहर में आगे बढ़ना शुरू किया तथा उस रात की कठिन यात्रोपरान्त लगभग सूर्योदय के समय हाइड्रावोटीज़ नदी पर पहुँच गया और यह जानकर कि मल्ली राज्य के कुछ दलों ने कुछ ही समय पूर्व नदी को पार किया है उसने तुरन्त उन पर आक्रमण कर दिया और अनेक सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया और अपनी सेना सहित स्वयं नदी पार कर उस ओर भाग कर जाने वाले शत्रुओं का पीछा किया। उसने अनेक सैनिकों का बध करा दिया और अनेक बन्दी बना लिये। फिर भी कुछ सैनिक बच कर भाग निकले और एक नगर में चले गये जो कृतिम एवं प्राकृतिक रूप से सुदृढ़ बना हुआ था।" आठ अथवा नौ घण्टों की सम्पूर्ण रात्रि की यात्रा २५ मील से कम नहीं रही होगी जो कोट कमालिया से तुलम्बा के विपरीत रावी की ठीक दूरी है। अतः मेरा अनुमान है कि यहाँ सिकन्दर ने रात्रि नदी को पार किया होगा और मैं तुलम्बा को ही "कृत्रिम एव प्राकृतिक रूप से सुदृढ़ बनाया गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर" समझता हूँ जिससे कृतिम कार्य था। ईंटों की दीवार एवम् प्राकृतिक सहयोग मिट्टी की दीवारों के अनेक टीलों के रूप में था। कर्टियस का विवरण एरियन के विवरण से मिलता है, "एक नदी के तट पर एक अन्य राष्ट्र ने ४००० सैनिकों की सेना लेकर उसका सामना किया। नदी पार कर उसने उन पर आक्रमण कर दिया और जिस दुर्ग में उन्होंने शरण ली थी उस पर भीषण आक्रमण कर अधिकार कर लिया।" दिवोडोरस ने अगलसाय नामक जाति के सम्बन्ध में इसी कथा का उल्लेख किया है कि उन्होंने ४००० पैदल सेना एवम् ३ हजार घुड़सवार सेना एकत्रित कर सिकन्दर का सामना किया था। यह भी विवरण प्रत्यक्ष रूप से एक ही स्थान की ओर संकेत करते हैं जो रावी के बायें तट के समीप एक सुदृढ़ दुर्ग था। यह विवरण हड़प्पा के लिए भी उपयुक्त हो सकता है परन्तु मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि यह सम्भवतः वह नगर था जिसके विरुद्ध पेरडिक्कस को भेजा गया था। इसके अतिरिक्त कोट कमालिया से इसकी दूरी १६ मील से अधिक नहीं है। इसके विपरीत तुलम्बा सभी बातों का उचित उत्तर दे सकता है और यह मल्ली की राजधानी मुल्तान की ओर जाने वाले मार्ग पर अवस्थित है जिस ओर सिकन्दर अग्रसर हो रहा था।

अगलसाथ अथवा अगलेसेनसाय का नाम भ्रम में डालने वाला है। एरियन के अनुसार नगर की जनता मल्ली थी परन्तु यह उल्लेखनीय है कि दिवोडोरस तथा कर्टियस ने कुछ समय पूर्व तक ओक्षड्रकाय अथवा मल्ली के नाम का उल्लेख नहीं किया था। जस्टिन ने गेस्टियानी नामक जाति को अरेस्टाय अथवा कगायी जाति के साथ सम्बन्धित किया है अतः इन्हें मल्लों अथवा ओक्षड्रकाय के समान होना चाहिये। अलग अथवा अगलासा नगर का नाम रहा होगा परन्तु दुर्भाग्यवश तुलम्बा अथवा आस-पास के किसी भी स्थान के नाम से इसकी समानता नहीं है।

अटारी

सभी इतिहासकारों ने मल्ली के विरुद्ध सैनिक अभियान के अन्तर्गत सिकन्दर द्वारा अधिकृत तीसरे नगर का उल्लेख एक ही ढंग से किया है। एरियन के अनुसार "सिकन्दर तब ब्राह्मणों के किसी नगर की ओर बढ़ा जहां उसकी सूचनानुसार मल्लियों का एक अन्य दल शरण लिये हुए था।" जिस पर आक्रमण होने की स्थिति में उन्होंने अपने घरों को आग लगा दी और उस अग्नि में जल कर भस्म हो गये। इस घेरे के समय लगभग ५००० मल्ली मारे गये तथा उनका शौर्य इतना महना था कि बहुत कम व्यक्ति जीवितावस्था में शत्रु के हाथ लगे।" कर्टियस तथा दिवोडोरस दोनों ने ही अग्नि एवं दुर्ग की सेना द्वारा ठोस मुकाबला किये जाने का उल्लेख किया है। अन्तिम लेखक ने इस सेना की संख्या २०,००० बताई है जिनमें केवल ३० ० सैनिक दुर्ग में जाकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरक्षित हो सके। यहाँ उन्होंने सिकन्दर से सन्धि कर ली। कर्टियस ने भी लिखा है कि दुर्ग को कोई क्षति नहीं हुई थी तथा सिकन्दर ने अपनी सैनिक टुकड़ी छोड़ दी थी।

यह सभी विवरण अटारी के ध्वस्त नगर एवं दुर्ग का स्थिति एवं आकार से भली-भाँति मिलते हैं जो तुलम्बा के २० मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में तथा मुल्तान की ओर जाने वाली सड़क पर अवस्थित है। इन अवशेषों में ७५० फुट वर्गाकर तथा ३५ फुट ऊँचा एक सुदृढ़ दुर्ग है जिसके चारों ओर खाई है तथा जिसके मध्य में ५० फुट ऊँचा एक बुर्ज है। दो किनारों पर नगर के अवशेष हैं जिनसे २० फुट ऊँचा एवं १२०० फुट वर्गाकार टीला बना हुआ है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र १८०० फुट लम्बा एवं १२०० फुट चौड़ा खण्डहरों का एक ढेर है। इसके इतिहास के सम्बन्ध में कोई प्रमाण तक नहीं है परन्तु ईंटों का विशाल आकार यह दिखाने के लिये पर्याप्त है कि यह महत्व-पूर्ण प्राचीनता का स्थान रहा होगा। प्राचीन नगर का नाम अज्ञात है। अटारी केवल पड़ोस के गाँव का नाम है जिसे निकट भूत काल में सिक्खों के अटारीवाला परिवार के किसी सदस्य ने स्थापित करवाया था। परन्तु इसके विस्तार एवं दृढ़ता को देखकर एवं तुलम्बा तथा मुल्तान के मध्य इसके अनुकूल स्थिति से मेरा अनुमान है कि अटारी के ध्वस्त टीले को ब्राह्मणों के सुदृढ़ नगर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जहाँ सिकन्दर का डट कर मुकाबला किया गया था।

कर्टियस ने इस नगर के सम्बन्ध में कुछ विस्तृत विवरण दिया है जिसकी ओर एरियन अथवा दिवोडोरस ने संकेत तक नहीं किया, परन्तु वह कुछ महत्व दिये जाने के हकदार है क्योंकि सम्भव है कि इसे दोनों सहयोगियों के कथनों में किसी एक से सम्बन्धित किया जा सके। उसने लिखा है कि "सिकन्दर ने एक नाव में बैठ कर दुर्ग की परिक्रमा की थी" जो सम्भव हो सकता है क्योंकि इस खाईं को निश्चित रूप से इच्छानुसार रावी के जल से भरा जा सकता था जैसा कि मुलतान की खाईं के सम्बन्ध में किया जा सकता है। अब, अटारी का पुराना दुर्ग आज भी चारों ओर खाईं से घिरा हुआ है जिसे समीप से गुजरती पुरानी नहर से भरा जा सकता था। इस स्थान पर नहरों के मार्गों की संख्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मैंने अटारी के ठीक पश्चिम में इन नहरों के १२ समानान्तर पुराने मार्ग गिने थे और यह सभी नहरें सराय सिधु के दक्षिण में पुरानी रावी से निकाली गई थी। अतः मैं इस सम्भावना को स्वीकार करने के लिये पूर्णतयः तत्पर हूँ कि ब्राह्मणों का नगर चारों ओर से जल से भरी खाईं से घिरा हुआ था और सिकन्दर उनकी मोर्चा बन्दी देखने के उद्देश्य से इस खाईं में गया था। परन्तु जब कर्टियस यह लिखता है कि गङ्गा को छोड़ भारत की तीन बड़ी नदियाँ अर्थात् सिन्धु, हाईड्राओटीज़ तथा अकिसीनीज़ दुर्ग के चारों ओर खाईं बनाने के लिये एक साथ मिल जाती हैं तो मैं केवल यह अनुमान लगा सकता हूँ कि यह विवरण सम्भवतः पाँच नदियों के संगम स्थान नीचे किसी अन्य नगर के पश्चात्वर्ती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घेरे के विवरण से त्रुटिपूर्वक लिया गया है अथवा लेखक ने दुर्ग की खाइयों एवं नादियों के संगम के दो विभिन्न विवरणों को एक साथ मिला दिया है। दिवोडोरस ने भी नदियों के संगम का उल्लेख किया है परन्तु उसने इनके जाल-द्वारा किसी दुर्ग के चारों ओर खाईं बनाये जाने का कोई संकेत नहीं दिया अतः यह सम्भव है कि तीन नादियों का यह विवरण कर्टियस की कल्पना की उड़ान हो सकती है।

मुल्तान

मुल्तान की प्रसिद्ध महानगरी मूल रूप से रावी के दो टापुओं पर अवस्थित थी परन्तु नदी ने काफी समय पूर्व ही अपना पुराना मार्ग त्याग दिया है तथा अब इसका निकटतम बिन्दु ३० मील से अधिक दूरी पर है। परन्तु बाढ़ के समय रावी का जल अब भी पुराने मार्ग में प्रवाहित होता है तथा मैंने दो बार मुल्तान की खाइयों को नदी के अतिरिक्त जल से भरते हुए देखा है। (१) मुल्तान के अन्तर्गत दीवारों से घिरा एक नगर एवं एक सुदृढ़ नगर है जो पुरानी रावी के विपरीत किनारों पर अवस्थित थे। यह नदी किसी समय इन दोनों के बीच एवं इनके चारों ओर प्रवाहित थी। इनके मूल स्थान पर दो छोटे टीले थे जिनकी ऊँचाई प्रदेश की सामान्य ऊँचाई से ८ अथवा १० फुट से अधिक नहीं थी। इनकी वर्तमान ऊँचाई ४५ से ५० फुट तक है और ३५ से ४० फुट की यह भिन्नता कई शताब्दियों से खण्डहरों के एकत्रित हो जाने के कारण है। मैंने व्यक्तिगत रूप से यहाँ की प्राकृतिक मिट्टी तक अनेक कुएँ खुदवा कर इस तथ्य की पुष्टि की थी। प्राकृतिक मिट्टी से मेरा आश्रय ईंटों राख एवं मानव अधिकार के अन्य प्रमाणों से रहित मिट्टी से है।

दुर्ग को एक असमान अर्ध व्यास कहा जा सकता है जिसका अर्ध व्यास अथवा उत्तर की ओर उन्मुक्त सीधी रेखा २५०० फुट लम्बी अथवा नगर की ओर तिरछा भाग ४१०० फुट है। इस प्रकार इसका पूर्ण व्यास ६६०० फुट अथवा १$\frac{1}{4}$ मील है। इस नगर में चार द्वारों के पार्श्व में दो-दो बुर्जों सहित ४६ बुर्ज थे। दीवार युक्त नगर जिसमें तिरछे अर्ध व्यास के दो तिहाई भाग तक दुर्ग को घेरा हुआ है, की लम्बाई ४२०० फुट एवं इसकी चौड़ाई २४०० फुट है जिसकी लम्बी सीधी रेखा दक्षिण पश्चिम की ओर है। नगर एवं दुर्ग सहित मुल्तान की दीवारों का कुल व्यास १५०० फुट

---

(१) बर्न्स ने 'पंजाब, बोखारा आदि की यात्राओं' मे ग़लती से मुल्तान के आस-पास के प्रदेश के जल मग्न होने का कारण "चेनाब एवं उसकी नहरों" को बताया है। यदि वह स्थलमार्ग से स्थान पर जल मार्ग से यात्रा करता तो उसे यह स्पष्ट हो जाता कि यह जल रावी में बाढ़ आ जाने से वहाँ आया था तो सराय सिधु से अपने पुराने मार्ग में प्रवाहित होकर मुल्तान की ओर आ जाती है। मैंने १८५६ ई० की अगस्त में इस क्षेत्र की यात्रा की थी तथा रावी के पुराने मार्ग को पूर्ण बाढ़ में देखा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा लगभग ३ मील है एवं उपनगरों सहित इस स्थान का पूर्ण व्यास ४½ मील है। यह अन्तिम आंकड़े ह्वेनसांग के आंकड़ों के अत्याधिक समीप है। जिसने मुल्तान के व्यास को ३० ली अथवा ५ मील बताया है। यह आंकड़े एलफिन्स्टन के आकड़ों से अधिक समानता रखते है जिसने मुल्तान को "पूर्ण व्यास में साढ़े चार मील से कुछ अधिक" बताया है और उसके आंकड़े सामान्यतः शुद्ध है। जिस समय एलफिनस्टन तथा बर्न्स ने इस दुर्ग को देखा था, यहाँ खाइयाँ नहीं थीं क्योंकि मूलतः यह रावी के जल से घिरा हुआ था। परन्तु बर्न्स की यात्रा के कुछ हो समय पश्चात् रणजीतसिंह के प्रतिभाशालो गवर्नर सांवनमल द्वारा एक खाईं खुदवाई गई थो। कहा जाता है कि इसकी दीवारों का निर्माण शाहजहाँ के सबसे छोटे पुत्र मुरादबख्श ने करवाया था। परन्तु १८५४ ई० में मुल्तान के दुर्ग को गिराते समय मैंने देखा था कि यह दीवारें सामान्यतः दो पंक्तियों में थीं जिसकी बाहरी दीवार लगभग ४ फुट मोटी तथा भीतरी ३½ फुट से ४ फुट माटा थी। (१) अतः मेरा निष्कर्ष है कि मुरादबख्श में केवल बाहरी दीवार का निर्माण करवाया था। सम्पूर्ण दीवारें बाहरी दीवारों को छोड़ जली हुई ईंटों एवम् मिट्टी की बनी हुई है। बाहरी दीवार पर चूने का ६ इञ्च मोटा पलस्तर किया हुआ है। मुल्तान अनेक विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है परन्तु यह सभी नाम विष्णु अथवा सूर्य से सम्बन्धित हैं। इस दुर्ग के किसी समय के प्रसिद्ध मन्दिर में सूर्य की पूजा की जाती थी। अब्बुरेहान ने कश्यपपुर, हंसपुर, भागपुर, साम्भपुर, नामों का उल्लेख किया है और इस सूची में मैं प्रह्लादपुर तथा अधिष्ठान के नाम जोड़ देना चाहता हूँ। जनता की प्रथाओं के अनुसार कश्यपपुर का निर्माण कश्यप ने करवाया था जो १२ अदित्यों एवम् दैत्यों का पिता था। यह अदित्य अथवा सूर्य देवता अदिति के पुत्र थे जबकि दैत्य दिति के पुत्र थे। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र हिरणकश्यप नाम का दैत्य था जो विष्णु के सर्व व्यापी होने के तथ्य को स्वीकार न करने के कारण सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। जिसके कारण नरसिंह अवतार हुआ था। उसका उत्तराधिकारी उसका अधिक प्रसिद्ध पुत्र एवं विष्णु का उत्साही पुजारी प्रह्लाद था जिसके नाम पर नगर का नाम प्रह्लादपुर रखा गया था। उसका प्रपौत्र बाण, जिसे बाणासुर कहा जाता था कृष्ण का असफल विरोधी था जिसने (कृष्ण) मुल्तान पर अधिकार कर लिया था। यहाँ कृष्ण के पुत्र साम्ब ने मित्रवन की वृक्षबाटिका में

---

(१) यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि सीखी दरवाजा के समीप दीवार को गिराने पर मुझे वह दोनों गोले प्राप्त हुए थे जिन्हें १०० पौण्ड की प्रसिद्ध तोप से फेंका गया था। इस तोप का प्रयोग सिखों के भङ्गी मिस्सल ने इस शताब्दी के प्रारम्भ काल में मुल्तान के विरुद्ध किया था। यह दोनों गोले ७ फुट मोटी ईंटों की दीवार के पार चले गये थे तथा दोनों ही एक दूसरे से केवल ३ फुट के भीतर थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शरण ली थी एवम् मित्र अथवा सर्य की उपासना से उसका कोढ़ जाता रहा था। तत्पश्चात् उसने अविष्ठान अर्थात् "प्रथम पूजा स्थान" नामक मन्दिर में मित्र की स्वर्ण मूर्ति बनवाई थी और इस प्रकार साम्ब द्वारा प्रारंभ की गई सूर्य की पूजा मुल्तान के स्थान पर वर्तमान समय तक प्रचलित है।

कृष्ण के पुत्र साम्ब की कथा का उल्लेख भविष्य पुराण में मिलता है और चूंकि इस पुराण में मित्रवन को चन्द्रभाग अथवा चेनाब नदी के तट पर दिखाया गया है अतः यह ग्रन्थ अपेक्षाकृत पश्चात्वर्ती समय में लिखा गया है जब मुलतान के समीप पुरानी रावी के प्रवाहित रहने की सभी स्मृतियाँ लुप्त हो चुकी थीं। फिर भी अन्य ग्रन्थों से हम जानते हैं कि मुल्तान के स्थान पर सूर्य की पूजा अधिक प्राचीन समय से प्रचलित है। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने अत्यधिक सुसज्जित देवता की स्वर्ण मूर्ति सहित एक सुन्दर मन्दिर को देखा था जिसमें भारत के सभी भागों के राजा भेंट भेजा करते थे। अतः प्रारम्भिक अरब विजेताओं में यह स्थान "स्वर्ण मन्दिर" के नाम से प्रसिद्ध था तथा मसूदो ने इस बात को पृष्टि की है कि एल मुल्तान का अर्थ "स्वर्ण की चरागाहे" था। ह्वेनसांग ने इसे म्यू-लो-सान पो कहा है जो श्री एम विविन डी सेन्ट मार्टिन के अनुसार मूलस्थान।पुर का अनुवाद है। स्वयं जनसाधारण में यह स्थान मूल-स्थान नाम से प्रचलित है जो अबुरिहान द्वारा उदधृत मूल-तान के स्वरूप से मिलता है जिसे एक काश्मीरो लेखक से लिया गया था। मूल का अर्थ है "जड अथवा उत्पत्ति" तथा बोल चाल की भाषा में थान का अर्थ है "स्थान अथवा पूजा गृह।" इस प्रकार मूल-स्थान का अर्थ है "मूल का मन्दिर" जिसे (मूल को) मैं सूर्य का विशिष्ट नाम समझता हूँ। अमरकोश में सूर्य का एक नाम ब्रधन दिया गया है जो मूल का पर्यायवाचो शब्द है। अतः ब्रधन को लेटिन के रडिक्ष अथवा रेडियस से सम्बन्धित किया जा सकता है परन्तु रडिक्ष न केवल मूल उत्पत्ति अथवा जड़ का संकेत करता है वरन् एक विशेष जड़-मूली का प्रतिनिधित्व भी करता है। इसी प्रकार मूल, उत्पत्ति अथवा जड़ और मूलक, मूली का संकेत करते हैं। सूर्य की किरण एवं मूली का परस्पर सम्बन्ध दोनों की आकृति में समानता में निहित है अतः रोडियस अथवा मूल शब्दों का प्रयोग एक चक्के की सींखचियों के लिए भी किया जाता है। विल्सन का कथन है कि मूल-स्थान का अर्थ है "स्वर्ग, आकाश, अन्तरिक्ष, वायुमण्डल, परमात्मा" और इनमें प्रत्येक नाम आकाशीय अन्तरिक्ष के अविष्ठाता के रूप में सूर्य के लिये प्रयोग किया जा सकता है। इन्हीं कारणों से मेरा अनुमान है कि "मूल किरणों के देवता के रूप में सूर्य को केवल एक विशिष्ट उपाधि है तथा मूलस्थानपुर का अर्थ केवल "सूर्य मन्दिर वाला नगर" है। भाग तथा हंस सूर्य के दो सर्व ज्ञात नाम है अतः भागपुर एवम् हंसपुर मुल्तान के पर्यायवाची शब्द हैं। प्राचीनतम नाम कश्यपपुर अथवा सामान्य उच्चारणा-नुसार कश्यपुर बताया जाता है जिसे मैं हेकायटस के कलपापुरोस तथा हिरोदतस के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कस्पातुरोस और साथ ही साथ टालमी के कश्पीरा के अनुरूप समझता हूँ। अन्तिम नगर को रहुडिस अथवा रावी के निचले जलमार्ग पर सन्दोभाग अथवा चन्द्रभाग के साथ अपने सङ्गम स्थान से ठीक ऊपर एक मोड़ पर अवस्थित बताया गया है। अतः कश्पीरा की स्थिति कश्यपपुर अथवा मुल्तान की स्थिति से ठीक-ठीक मिल जाती है जो रावी के पुराने तट के उस विन्दु पर अवस्थित है जहाँ यह नदी दक्षिण पूर्व से पूर्व की ओर मुड़ जाती है। यह अनुरूपता सर्वोधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि कश्पीरेई की सीमाओं में जिसकी सीमायें काश्मीर से मथुरा तक विस्तृत थीं मुल्तान अथवा कश्पीरा ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के मध्य में पञ्जाब का मुख्य नगर था। परन्तु सातवीं शताब्दी में इसे मूलस्थान अथवा मुल्तान का नाम प्राप्त हो चुका था और अबुरिहान के समय तक अरब लेखकों को यही एक मात्र नाम ज्ञात था। संस्कृत का ज्ञान होने के कारण अबु-रिहान को स्थानीय साहित्य में झांकने का अवसर प्राप्त हुआ और इसी साहित्य से उसने उपर्युक्त नामों में कुछ नाम प्राप्त किये थे। भविष्यपुराण में अदयस्थान अथवा "प्रथम मन्दिर" नाम सूर्य के मूल मन्दिर को दिया गया था जिसे कृष्ण के पुत्र साम्ब ने बनवाया था परन्तु अदया सम्भवतः आदित्य अथवा सूर्य का अपभ्रन्श है जिसे सामान्यतः अदित अथवा एत लिखा जाता है जैसा कि अदित्यवार अथवा रविवार के लिये अदितवार अथवा एतवार में किया गया है। बिलादूरी ने इस मूर्ति को हज़रत अयूब की मूर्ति कहा है और यह आदित्य के स्थान पर अयूब पढ़े जाने की त्रुटि के कारण लिखा गया है। प्रह्लादपुर अथवा पह्लादपुर नरसिंह अवतार के मन्दिर से सम्बन्धित है जिसे आज भी पह्लादपुरी कहा जाता है। बर्न्स जिस समय मुल्तान में था उस समय यह मन्दिर इस नगर का मुख्य मन्दिर था परन्तु इसकी छत जनवरी १८४९ के घेरे में बारूद के भण्डार में आग लग जाने के कारण उड़ गई थी और आज तक इसका पुर्ननिर्माण नहीं कराया गया है। यह मन्दिर दुर्ग के उत्तर-पश्चिमी कोण पर बहावल के मकबरे के समीप है। सूर्य का प्रसिद्ध मन्दिर दुर्ग के मध्य में था परन्तु औरङ्गजेब के समय में इसे तोड़कर इसके स्थान पर जामा-ए-मस्जिद का निर्माण करवाया गया था। यही मस्जिद सिक्खों का बारूद भण्डार थी जिसे १८४९ में उड़ा दिया गया था।

कश्यपपुर को टालमी के कस्पीरा अनुरूप स्वीकार करने से मैं यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि मुल्तान ईसवी काल द्वितीय शताब्दी के मध्य भाग में रावी के तट पर अव्यथित था। दुर्भाग्यवश ह्वेनसांग ने नदी का कोई उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसकी यात्रा के कुछ समय पश्चात् सिध के चच्च नामक ब्राह्मण राजा ने मुल्तान पर आक्रमण किया तथा इस पर अधिकार कर लिया था और उसके आक्रमण के विस्तृत विवरण से पता चलता है कि रावी सातवीं शताब्दी के मध्य भाग में भी इसकी दीवारों के नीचे बहती थी। इनसे यह भी पता चलता है कि उस समय व्यास नदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुल्तान के पूर्व एवम् दक्षिण में स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित थी। सिन्ध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार चच्च व्यास नदी के दक्षिणी तट पर पाभिया अथवा बहोया तक बढ़ा था और वहाँ से वह मुल्तान के पूर्व में कुछ ही दूरी पर रावी नदी के तट पर अवस्थित सुकह अथवा सिक्का तक बढ़ गया था। इस स्थान के सुरक्षा सैनिकों ने शीघ्र ही इसे त्याग दिया और मुल्तान की ओर हट कर रावी नदी के तट पर चच्च का सामना करने के उद्देश्य से राजा बज्हर से मिल गये। एक भीषण युद्ध पश्चात् मुल्तानी चच्च द्वारा पराजित हुए और अपने दुर्ग में चले गये जिसने एक दीर्घकालीन घेरे के पश्चात् सन्धि वार्ता के परिणाम स्वरूप आत्म समपर्ण किया।

चच्च के आक्रमण के संक्षिप्त उल्लेख से हम मल्ली की राजधानी के विरुद्ध सिकन्दर के अभियान को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे। अपने अन्तिम उल्लेख में मैंने उसे सुदृढ़ ब्राह्मण नगर में छोड़ा था जिसे मैं मुल्तान के उत्तर पूर्व में ३४ मील की दूरी पर तथा तुलम्बा से आने वाले उच्च मार्ग पर अवस्थित अटारी के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ। यहाँ मैं एरियन के विवरण को पुनः उद्धृत करूँगा। "अपनी सेनाओं को ताजा करने के लिए एक दिन ठहरने के पश्चात् उसने अपनी यात्रा का रुख उसी राष्ट्र के अन्य निवासियों की ओर किया जिन्होंने उसकी सूचना के अनुसार अपने नगरों को त्याग दिया था तथा मरुभूमि में चले गये थे। अन्य एक दिन के विश्राम के पश्चात् उसने पाईथन तथा घुड़सवारों के नेता दिमिट्रियस को अपनी सम्पूर्ण सेनाओं एवं पैदल सेना की एक टुकड़ी के साथ तुरन्त नदी की ओर वापिस जाने की आज्ञा दी। इसी समय में उसने सेनाओं को मल्ली की राजधानी के विरुद्ध भेजा जहाँ, उसको सूचना दी गई थी कि अन्य नगरों के अनेक निवासी अधिक सुरक्षा के लिए भाग कर आ गये थे।" यहाँ हम देखते है कि सिकन्दर ने ब्राह्मणों के नगर से राजधानी तक केवल दो यात्राएँ की थीं जो अटारी तथा मुल्तान के मध्य ३४ मील की दूरी से अधिक अच्छी तरह मिलता है। मल्ली अथवा माली के मुख्य नगर को ढूढ़ते समय हमें यह याद रखना चाहिए कि मुल्तान सदैव निचले पञ्जाब की राजधानी रहा है तथा यह अन्य किसी स्थान की अपेक्षा आकार में चौगुणा है एवं निश्चित ही देश के इस भाग का सबसे सुदृढ़ दुर्ग है। यह सभी गुण मल्लो के मुख्य नगर में भी थे। यह देश की राजधानी थी, यहाँ एरियन के अनुसार पचास हजार सैनिक अथवा सुरक्षा सैनिकों की सबसे बड़ी संख्या थी और इसी कारण यह सबसे बड़ा स्थान था और अन्त में, यह स्थान सबसे सुदृढ़ स्थान रहा होगा क्योंकि एरियन ने लिखा है कि अन्य नगरों के निवासी "अपनी अधिक सुरक्षा हेतु" भाग कर इस नगर में आ गये थे। इन कारणों से मैं पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ कि मल्ली की राजधानी का नगर आधुनिक मुल्तान था परन्तु जैसे-जैसे हम एरियन के विवरण को पढ़ते जायँगे उपर्युक्त अनुरूपता की अधिक पुष्टि होती जाएगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकन्दर के समीप आने पर भारतीय सैनिक अपने नगर के बाहर आ गये तथा "हाईड्राओटीज़ नदी को पार कर उन्होंने नदी के तट पर अपनी सेनाओं को खड़ा कर दिया जो अधिक ढालुआ एवं दुर्गम था। उनका विचार था कि इस प्रकार वह उसके मार्ग को अवरुद्ध कर देंगे·········। जब वह वहाँ पहुँचा एवं उसने शत्रु की सेनाओं को सामने तट पर खड़े देखा तो उसने बिना विलम्ब किए अपने साथ लाई गई घुड़सवार सेना सहित नदी में प्रवेश किया।" प्रारम्भ में भारतीय सैनिक पीछे हट गये, "परन्तु जब उन्होंने यह अनुमान लगाया कि उनका पीछा करने वाली सेना घुड़सवार सेना की एक टुकड़ी है तो वह पुनः पीछे मुड़ आए और संख्या में ५० हजार होने के कारण उन्होंने उसका सामना करने का निश्चय किया।" इस विवरण से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर पूर्व की ओर से मुल्तान की ओर बढ़ा होगा तथा चच के समान ही उसका बढ़ाव देश के प्राकृतिक भू-भाग द्वारा निर्धारित रहा होगा। अब, मुल्तान से ऊपर पुरानी रावी का मार्ग १८ मील तक ठीक पश्चिम में है और इसके परिणामस्वरूप सिकन्दर की यात्रा उसे सुकह अथवा सिक्का के दुर्ग तक ले गई होगी जो मुल्तान के पूर्व में कुछ ही दूर पर रावी के तट पर अवस्थित था। इस बिन्दु से आगे एक ही विवरण दोनों विजेताओं की प्रगति का उल्लेख करेगा। रावी के पूर्वी तट का नगर इसके सैनिकों द्वारा त्याग दिया था। जो नदी के पार चले गये हैं जहाँ उन्होंने पढ़ाव तथा युद्ध किया था और पराजित हो जाने पर उन्होंने दुर्ग में शरण ली थी। सुकह दुर्ग वर्तमान मारीसीतल के समीप किसी स्थान पर रहा होगा जो मुल्तान के २१ मील पूर्व में रावी के पुराने तट पर अवस्थित है।

राजधानी पर आक्रमण के समय सिकन्दर को गहरी चोट लगी थी तथा उसके सैनिकों ने न वृद्धों को छोड़ा, न स्त्रियों को और न बच्चों को ही। प्रत्येक जीव को उन्होंने तलवार के घाट उतार दिया। डिवोडोरस एवं कर्टियस ने इस नगर को प्राक्सुड्रेकाय लोगों का नगर कहा है परन्तु एरियन ने इस विचार का विशेष रूप से खण्डन किया है "क्योंकि यह नगर" उसके कथनानुसार, "मल्लियों का नगर था तथा उन्होंने ही सिकन्दर को घायल किया था।" वस्तुतः मल्ली ओक्षुड्रेकायों की सेनाओं के साथ मिलने एवं सिकन्दर के साथ युद्ध करने का विचार रखते थे परन्तु शुष्क एवं ऊसर प्रदेश से होकर सिकन्दर के तीव्र एवं अचानक आक्रमण ने शत्रु सेनाओं को मिलने नहीं दिया और इस प्रकार वह एक दूसरे की सहायता नहीं कर सके।" स्ट्रैबो ने भी लिखा है कि सिकन्दर मल्लियों के नगर पर अधिकार करते समय घायल हुआ था।

जिस समय सिकन्दर ने मल्ली के विरुद्ध अपना अभियान आरम्भ किया था उस समय उसने हेफायशियन की सेना के मुख्य भाग सहित पाँच दिन पूर्व आगे भेज दिया था और उसे अकिसीनीज़ तथा हाईड्राओटीज़ के सङ्गम पर उसके पहुँचने तक प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी। तदानुसार मल्ली की राजधानी पर अधिकार कर लेने के पश्चात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"जितना शीघ्र उसका स्वाथ्य उसका साथ दे सका उसने स्वयं को हाइड्राओटीज़ नदी के तट तक ले जाये जाने की आज्ञा दी और तत्पश्चात् नदी मार्ग द्वारा पड़ाव तक ले जाए जाने की आज्ञा दी जो हाईड्राओटीज़ तथा अकिसीनीज़ के सङ्गम के समीप था, जहाँ हेफायशियन सेना का तथा नियरकस जल सेना का नेतृत्व कर रहा था।" यहाँ उसने ओक्षुड्रकाय एवम् मल्लो के राजदूतों का सम्मान किया जो मित्रता करने के लिए उपस्थित हुए थे। तत्पश्चात् वह अकिसीनीज़ के मार्ग से सिन्धु नदी से इसके सङ्गम स्थान तक गया जहाँ उसने, "परडीकस के आने तक अपनी नौकाओं के बेड़े को रोके रखा। जो अपने मार्ग में भारत की स्वतन्त्र जातिओं में अवस्तानी जाति का दमन करने के पस्चात् अपनी सेना सहित वहाँ पहुँचा था।"

सातवीं शताब्दी के मध्य में चच्च द्वारा मुल्तान पर अधिकार किये जाने के समय रावी नदी दुर्ग की दीवारो के नीचे प्रवाहित थी परन्तु ७१३ ई० में जिस समय मुहम्मद बिन कासिम ने इस दुर्ग पर घेरा डाला था तो बिलदूरी के कथनानुसार, "नगर की जलपूर्ति, नदी से निकली एक नहर द्वारा होती थी (एम रीबाड ने नदो का नाम नहीं लिखा है।) मुहम्मद ने इस नहर को काट दिया और प्यास से पीड़ित निवासियों ने इच्छानुसार आत्म-समर्पण कर दिया। शस्त्र धारण करने योग्य सभी व्यक्तियों का बध कर दिया गया और मन्दिर के ६००० पुजारियों सहित स्त्रियों एवं बच्चों को दास बना लिया गया।" कहा जाता है कि एक देश द्रोही ने मुहम्मद को यह नहर दिखाई थी। मैं इस विवरण को एक प्रमाण स्वरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि रावी का मुख्य प्रवाह अपने पुराने मार्ग से हट चुका था परन्तु यह पूर्णतयः असम्भव है कि जल की कमी के कारण मुल्तान को आत्म-समर्पण करने पर बाध्य होना पड़ा हो। मैं यह बतला चुका हूँ कि रावी की एक शाखा मुल्तान के दुर्ग एवं नगर के मध्य से होकर जाती थी जहाँ अधिकांश समय में लेशमात्र मिट्टी हटाने से जल प्राप्त किया जा सकता है और कुछ मिनटों की साधारण खुदाई से यहाँ हर समय जल प्राप्त किया जा सकता है। कहा जाता है कि इदरिसी के समय भी नगर का भू-भाग एक छोटी नदी द्वारा सींचा जाता था और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि रावी की कोई शाखा मुल्तान से होकर प्रवाहित रही होगी। यद्यपि आत्म-समर्पण के सम्बन्ध में बिलदूरी का विवरण निश्चित ही त्रुटिपूर्ण है फिर भी मैं यह विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि अन्य सभी परिस्थितियाँ पूर्णतयः सत्य हो सकती है। अतः जब रावी का मुख्य प्रवाह मुल्तान से दूर हो गया तो भी यह नगर जिसके दुर्गोन्मुख भाग में दीवारें नहीं बनाई गई थीं—नदी के पुराने मार्ग से पास दुर्ग तक बनी नवीन दीवारों से सुरक्षित किया गया होगा। इस नवीन दीवारों में नहर अथवा रावी की शाखा जो कुछ भी यह रही हो को प्रवाहित रखने के लिए स्थान छोड़ा गया होगा। जो आधुनिक काल समान रहे होंगे। इदरिसी ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि मुल्तान की रक्षा एक दुर्ग द्वारा की गई थी जिसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चार द्वार थे तथा जिसके चारों ओर खाईं थी। अतः मेरा अनुमान है कि मुम्मद बिन कासिम ने नगर में प्रवाहित जल धारा को अन्य मार्ग में मोड़ देने से मुल्तान पर अधिकार कर लिया था, ठीक उसी प्रकार जैसे साईरस ने बेबीलोन पर अधिकार किया था। इस प्रकार वह नदी के सूखे मार्ग से वह नगर में प्रवेश कर सकता था और तत्पश्चात् यह प्रायः सम्भव है कि जल के अभाव के कारण दुर्ग को आत्म-समर्पण करना पड़ा हो। आजकल इस दुर्ग में अनेक कुएँ हैं परन्तु उनमें केवल एक कुआँ ही प्राचीन बताया जाता है और एक कुआँ ५००० सैनिकों के एक छोटे दल की जलपूर्ति के लिये भी अपर्याप्त है।

कहरोर

कहरोर का प्राचीन नगर मुल्तान के दक्षिण पूर्व में ५० मील की दूरी पर तथा बहावलपुर से २० मील उत्तर-पूर्व में पुरानी व्यास नदी के तट पर अवस्थित है। इसका उल्लेख उन नगरों में एक नगर के रूप में किया जाता है जो सातवीं शताब्दी के मध्य में मुल्तान पर अधिकार किये जाने के पश्चात् चच को समर्पित कर दिये गये थे। परन्तु कहरोर की ख्याति ७९ ई० में विक्रमादित्य तथा शकों के मध्य महान युद्ध का स्थान होने के कारण है। अबु-रिहान ने इसे मुल्तान तथा लोनी दुर्ग के मध्य अवस्थित बताया है। अन्तिम नाम सम्भवतः कहरोर से ४४ मील पूर्व दक्षिण-पूर्व तथा मुल्तान के ७० मील पूर्व दक्षिण-पूर्व में सतलज नदी के पुराने मार्ग के समीप अवस्थित एक प्राचीन नगर लुधान के लिये लिखा गया है। अतः इसकी स्थिति मुल्तान एवं लुधान के मध्य में है जैसा कि अबु रिहान ने लिखा है।

उछ

उछ का प्राचीन नगर मुल्तान के दक्षिण दक्षिण पश्चिम में ७० मील की दूरी पर तथा मिठानकोट के स्थान पर सिन्धु नदी के साथ पचन्द के वर्तमान सङ्गम स्थान से ४५ मील उत्तर पूर्व में पचनद के पूर्वी तट पर अवस्थित है। सिन्धु नदी के मार्ग में यह परिवर्तन विल्फोर्ड के सर्वेक्षक मिर्जा मुगल बेग के समय में हुआ था जिसने १७८६ ई० से १७९६ तक पञ्जाब एवं काबुल का सर्वेक्षण किया था और इस भाग का सर्वेक्षण १७८७-८. में किया गया था। नाला पुरान के नाम से पुराना मार्ग अब भी जीवित है। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में ही उच्च का अर्थ है ऊँचा, उन्नत अतः उच्च नगर ऊँचे स्थान पर अवस्थित किसी नगर का एक सामान्य नाम है। इस प्रकार हमें दिल्ली के ४० मील दक्षिण पूर्व में काली नदी के ऊँचे तट पर अवस्थित ऊँचा गाँव का नाम प्राप्त होता है जिसे मुसलमानों ने बुलन्दशहर कहा है। एक अन्य उच्च झेलम तथा चेनाब के सङ्गम स्थान के पश्चिम में एक टीले पर मिलता है तथा एक टीले पर ही अवस्थित तीसरा उच्छ हमारे वर्तमान विवरण का विषय है। बर्नस के अनुसार उच्छ तीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'विशिष्ट नगरों का बना हुआ है जो एक दूसरे से कुछ हजार गजों की दूरी पर है तथा प्रत्येक नगर ईंटों की दीवारों से घिरा हुआ है। यह सभी अब जर्जर अवस्था में है। मसोन ने केवल दो विभिन्न नगरों का उल्लेख किया है परन्तु जन साधारण का अपना कथन यह है कि किसी समय यहाँ उच्च नगर नाम के सात विभिन्न नगर थे। मुगलबेग के मानचित्र में उच्छ के सामने टिप्पणी दी गई है, "जिसमें सात विशिष्ट ग्राम है।" मसोन के अनुसार उच्छ मुख्य रूप से "पूर्ववर्ती नगरों के अवशेषों के कारण प्रसिद्ध है जो अधिक विस्तृत थे तथा जिनसे इस स्थान की पूर्वकालीन स्मृद्धि की पुष्टि होती है।" बर्नस के अनुसार उच्छ एक टीले पर अवस्थित है जो भवनों के अवशेषों से बना हुआ है। यह विचार निश्चित ही सही है क्योंकि यह नगर बारम्बार नष्ट हुआ है एवं इसका पुनर्निर्माण किया गया है। ९३१ हिजरी अथवा १५२४-२५ ई० में हुसेन शाह अरगुन द्वारा इस स्थान के अन्तिम महान् घेरे के पश्चात् उच्छ की दीवारों को भूमि सात कर दिया गया था एवं इसके द्वार तथा अन्य सामग्री नाव द्वारा भक्खर ले जाई गई थी। पञ्जाब की नदियों के पुराने सङ्गम स्थान पर अवस्थित होने के कारण यह स्थान प्राचीनतम समय से महत्वपूर्ण स्थान बन गया होगा। तद्नुसार हमें एरियन से ज्ञात होता है कि सिकन्दर ने "दो नदियों के सङ्गम स्थान पर एक नगर के निर्माण की आज्ञा दी। उसका विचार था कि इस स्थिति के लाभों के कारण यह नगर समृद्ध एवं जन-पूर्ण हो जायेगा।" सम्भवतः यह वही नगर है जिसका रशीददुद्दीन ने सिकन्दर के पश्चात् सिन्ध के शासक काफन्द के पुत्र आयन्द के अधीन सिन्ध के चार राज्यों में एक राज्य की राजधानी के रूप में उल्लेख किया है। उसने इस स्थान को असकालन्द-उसह कहा है जो अलेकजैन्ड्रिया-उच्च अथवा उस्सा का सरल भ्रष्ट स्वरूप है। यूनानियों ने उच्च को सम्भवतः उत्साह लिखा था। मेरा भी विचार है कि उच्छ चच-नामा का इस-कन्दर अथवा सिकन्द्रिया रहा होगा जिसे मुल्तान पर आक्रमण के समय चच ने अपने अधिकार में कर लिया था। मुस्लिम अधिकार के पश्चात् इस स्थान का उल्लेख इसके स्थानीय नाम उच्च से किया गया है। महमूद गजनवी एवं मुहम्मद गोरी ने इस स्थान पर अधिकार कर लिया था तथा नासुरुद्दीन कुबाचा के अधीन यह अपर सिन्ध का मुख्य नगर था। कुछ समय पश्चात यह मुल्तान के स्वतन्त्र राज्य का एक भाग था जिसकी स्थापना तैमूर के आक्रमण के पश्चात फैली अराजकता के समय में हुई थी। १५२४ ई० में सिन्ध के शाह हुसेन अववा हसन अरगुन ने इस पर अधिकार कर लिया था और जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ इसकी दीवारों को भूमिसात कर दिया गया था परन्तु मुल्तान पर अधिकार के पश्चात हुसेन ने उच्छ के पुर्ननिर्माण की आज्ञा दी और अपनी तत्कालीन विजय को सुरक्षित रखने के लिए एक विशाल सेना वहाँ छोड़ गया। अकबर के शासन काल में उच्छ को स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अबुल फजल ने इसे मुल्तान के विभिन्न जिलों में सम्मिलित किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्टियस ने पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान को सम्ब्रकाय अथवा सब्रकाय से तथा दिवोडोरस ने इसे सम्बस्ताय जाति का प्रदेश कहा है। एरियन ने कम से कम इस नाम से इनका उल्लेख नहीं किया है परन्तु मेरा विचार है कि ओसदी जिन्होंने नदियों के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी वह इसी जाति के लोग थे। यः भी सम्भव है कि अवस्तानी जिन्हें परडिक्कस ने पराजित क्रिया था इसी जाति से सम्बन्ध रखते थे। परडिक्कस को सिकन्दर ने रावी के पूर्व में भेजा था जहाँ उसने एक नगर पर अधिकार किया था जिसे मैं हड़प्पा के अनुरूप बता चुका हूँ। मेरा अनुमान है कि उसका अभियान दीर्घ-कालीन रहा गोगा क्योंकि सिकन्दर को-जिसकी गतिविधियाँ उसके घायल हो जाने के कारण शिथिल पड़ गई थीं-नदियों के संगम स्थान पर उसकी प्रतीक्षा हेतु रूकने पर बाध्य होना पड़ा था। अतः यह अत्यबिक सम्भव प्रतीत होता है कि उसने सतलज के तट पर अजुधान तथा यूनानी पताका फहराई हो जहाँ से वह इसो मार्ग से साथ-साथ लुधान मैलसी, कहरोर तथा लोधरान होते हुए उछ के स्थान पर सिकन्दर के पड़ाव तक गया होगा। इस मार्ग में उसे जोहिया राजपूतों का सामना करना पड़ा होगा जो आदि काल से अजुधान से उछ तक सतलज नदी के दोनों तटों पर बसे हुए हैं। अतः मेरा विचार है कि अबस्तानी जिन्हें परडिक्कस ने पराजित किया था उन्हें जोहिया राजपूत स्वीकार किया जा सकता है। मुल्तान के आस-पास के प्रदेश को अब भी जोहिया बार अथवा यौद्धेयावार कहा जाता है।

जोहिया राजपूत, लङ्गवीर अथवा लकवीर, माधोवीर अथवा माधेरा तथा अदमवीर अथवा अदमेरा नामक तीन जातियों में विभाजित है। सम्ब्रकाय भी तीन शाखाओं में विभाजित प्रतीत होते हैं जो एक स्वतन्त्र भाँति के लोग थे तथा जिन्होंने एक शासक की अनुपस्थिति में यूनानियों का सामना करने के लिए तीन सैनिक अधिकारियों को अपना नेता स्वीकार किया था। अब जोहिया जोद्धीया का संक्षिप्त रूप है जिसे संस्कृत में यौद्धेय कहा जाता है और इस जाति की मुद्रायें इसी काल की प्रथम शताब्दी से सम्बन्धित है जिनसे ज्ञात होता है कि यौद्धय उस समय भी तीन जातियों में विभक्त थे। यह मुद्रायें तीन प्रकार की हैं प्रथम मुद्रा में केवल जय यौद्धेय गनस्य लिखा गया है जिसका अर्थ है विजयी यौद्धय जाति की मुद्रा।" द्वितीय श्रेणी की मुद्रा में द्वि तथा त्रि लिखा गया है जो मेरे विचार में द्वितीयास्य तथा तृतीयास्य अर्थात् द्वितोय तथा तृतीय का संक्षिप्त स्वरूप समझता हूँ। जिसका प्रयोग यौद्धेयों की द्वितीय एवं तृतीय जाति की मुद्राओं के लिए किया गया था। चूंकि मुद्रायें सतलज के पूर्व में दीपालपुर, सतगढ़, अजुधान, कहरोर तथा मुल्तान और पूर्व में भटनेर, अभोर, सिरसा, हांसी, पानीपत तथा सोनपत में प्राप्त होती है अतः यह प्रायः निश्चित है कि यह मुद्रायें जोहिया जाति की मुद्रायें थी जो इस समय सतलज के दोनों किनारों पर बसे हुए हैं तथा जो अकबर के समय तक सिरसा में पाये जाते थे। इलाहाबाद के स्थान पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त के शिलालेख में यौद्धय जाति का उल्लेख मिलता है और इससे पूर्व पानिनी द्वारा जूनागढ़ में रुद्र दाम के शिला लेखों में इसका उल्लेख किया गया है। यह महान् व्याकरणाचार्य निश्चित ही चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्व हुआ है। यौद्धेय के सम्बन्ध में उसके उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह सिकन्दर के समय से पूर्व जानी मानी जाति थी। रुद्र दामा के शिलालेख में जहाँ यौद्धेयों का दमन करने का गर्व पूर्ण उल्लेख किया गया है यह स्पष्ट हो जाता है कि इस शक्तिशाली जाति की पताका सुदूर दक्षिण तक फहराई होगी अन्यथा सौराष्ट्र के राजकुमारों से उनका सामना नहीं हो सकता था। इन तथ्यों से मेरा अनुमान है कि सिकन्दर के समय में जोहिया राजपूतों का अधिकार क्षेत्र सम्भवतः भटनेर तथा पाकपट्टन से उच्छ एवं भख्खर के मध्य सब्ज़कोट तक विस्तृत रहा होगा।

अब मैं उन सभी जातियों के नामों पर विचार करूँगा जिन्होंने पन्जाब की नदियों के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की था। कर्टियस के अनुसार उन्हें सम्ब्रकाय अथवा सब्रकाय कहा जाता था। क्रोसियस ने उन्हें सब्रगाय कहा है तथा दिवोडोरस जिसने उन्हें नदी के पूर्वी तट का निवासी कहा है उसके अनुसार इस जाति को अम्बस्ताय कहा जाता था। यह शक्तिशाली लोग थे जो साहस एवं संख्या में भारत की जातियों में अद्वितीय थे। इनके सेना में ६०००० पैदल सैनिक, ६००० घोड़े एवं ५०० रथ थे। इनकी सैनिक ख्याति के कारण यह सम्भावित प्रतीत होता है कि यूनानियों ने इनके स्वभावनुसार इनका उल्लेख किया होगा। यौद्धेय का अर्थ है "यौद्धा अथवा सैनिक" अतः मेरा अनुमान है कि इसका वास्तविक यूनानी नाम संस्कृत समवाग्री के स्थान पर सम्म्रबाय रहा होगा जो तीन जातियों की सयुंक्त सेना के लिये उपयुक्त उपाधि रही हागी। इस प्रस्ताव की पृष्टि में मैं इस तथ्य का उल्लेख कर सकता हूँ कि जिस प्रदेश की राजधानी अब बीकानेर है उसे बागड़देस अथवा बागड़ी अथवा योद्धाओं का देश कहा जाता था जिनके नेता का नाम बागड़ी शव था। (१) भट्टी का अर्थ भी यौद्धा अथवा सैनिक है। अतः वर्तमान समय में हमें तीन ऐसी जातियाँ मिलती है जो स्वयं को 'यौद्धा' कहा करती हैं तथा जो सतलज के पूर्वी प्रदेश में बहुमत में हैं। यह जातियाँ इस प्रकार हैं—नदी के साथ-साथ निवास करने वाले यौद्धेय बीकानेर के बागड़ी तथा जैसलमेर के भट्टी। यह सभी चन्द्रवंशी होने का दावा करते हैं और यदि साम्ब्रागी का मेरा प्रस्तावित अर्थ सही है तो यह सम्भव है कि यह नाम यौद्धेयो की तीन जातियों के स्थान पर इन तीन जातियों के लिये प्रयोग किया गया हो।

---

(१) यह सूचना मुझे बीकानेर की सीमा में भटनेर के प्रसिद्ध दुर्ग के स्थान पर प्राप्त हुई थी। निश्चित ही यह नाम जहाँगीर के समय जितना पुराना है क्योंकि चैद-लिन टेरी ने बीकानेर को 'बकरों का मुख्य नगर' कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर भी मेरा विचार है कि सतलज के तट पर बसे रहने के कारण एवं अपनी असंदिग्ध प्राचीनता के कारण यौद्धेय जाति का दावा ठोस है। मैं अजुधान अथवा अयोधानम् अर्थात् 'युद्ध-क्षेत्र' की स्थापना का श्रेय इन्हें देता हूँ जो प्रत्यक्ष रूप से उनके निजी नाम यौद्धेय अथवा अजुधिया अर्थात् 'यौद्धा' से सम्बन्धित है। सम्भवतः इस नाम का अन्तिम स्वरूप एरियन के ओस्सदी में सुरक्षित है जिन्होंने पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। अतः एरियन की ओस्सदी जाति दिवोडोरस की सम्बस्ताय तथा कर्टियस की सम्ब्रकाय जाति थी जिन्होंने एक ही स्थान पर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिमी भारत

ह्वेनसांग के अनुसार पश्चिमी भारत सिन्ध, गुज्जर तथा बल्लभी नामक तीन विशाल राज्यों में विभाजित था। प्रथम राज्य के अन्तंगत डेल्टा एवं कच्छ द्वीप सहित पञ्जाब से समुद्र तक सिन्धु नदी की सम्पूर्ण घाटी सम्मिलित थी। द्वितीय राज्य में पश्चिमी राजपूताना तथा भारतीय मरुस्थल सम्मिलित थे तथा तीसरे राज्य में तटीय क्षेत्र के कुछ भाग सहित गुजरात का पठार सम्मिलित था।

सिन्ध

सातवीं शताब्दी में सिन्ध चार प्रमुख भागों में बटा हुआ था जिन्हें मैं अधिक स्पष्ट रूप से दिखाने के उद्देश्य से उनकी भौगोलिक स्थिति अर्थात् ऊपरी सिन्ध, मध्य सिन्ध, निचला सिन्ध एवं कच्छ, के क्रमानुसार दिखाऊंगा। यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपर सिन्ध के राजा के अधीन एक ही राज्य का भाग था। यह राजा ६४१ ई० में ह्वेनसांग की यात्रा के समय स्यू-तो-लो अथवा शूद्र था। कुछ समय पश्चात चच के समय में मंत्री बुद्धिमान ने राजा को सूचना दी थी कि सम्पूर्ण प्रदेश पूर्ववर्ती काल में चार जिलों में विभाजित था। प्रत्येक जिला अपने ही शासक के अधीन था जो चच के पूर्ववर्ती राजा की सार्वभौमिकता को स्वीकार करते थे इससे भी कुछ समय उपरान्त सिन्ध को कफन्द के पुत्र अयन्स के समय में चार प्रमुख भागों में विभाजित बताया गया है। कफन्द सिकन्दर महान के कुछ ही समय पश्चात सिन्ध का शासक था। यह चारों जिले ज़ोर असकलन्दुस, सामिद तथा लोहाना थे और जैसे-जैसे इनका उल्लेख ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित खण्डों में मिलता है इन सभी पर भी उसी समय विचार किया जायेगा।

अपर सिन्ध

अपर (ऊपरी) सिन्ध का अकेला राज्य जिसे सामान्य रूप से सिरो अर्थात "शिर अथवा ऊपरी" खण्ड कहा जाता है व्यास में ७००० ली अथवा ११६७ मील था और यदि पश्चिम में कच्छ गण्डाव के सम्पूर्ण क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जाये तो यह आंकड़े बहुत अधिक नहीं हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शक्तिशाली शासन के अधीन ऐसा ही रहा होगा और चच के पूर्ववर्ती शासक निश्चित ही शक्तिशाली थे। इस विचार धारा के अनुसार अपर सिन्ध में कच्छ गण्डाव काहन शिकारपुर तथा लरकाना, सिन्धु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पश्चिम में तथा इसके पूर्व सबजलपुर तथा खैरपुर के वर्तमान जिले सम्मिलित रहे होंगे। अतः सीमान्त रेखा की लम्बाई, उत्तर में ३४० मील, पश्चिम में २५० मील, पूर्व में १८० मील तथा दक्षिण में २६० मील अथवा कुल मिलाकर २०३० मील रही होगी। यह आंकड़े ह्वेनसांग द्वारा दिये गये आंकड़ों के अधिक समीप है।

सातवीं शताब्दी में प्रान्त की राजधानी का नाम पी-चेन-पो-पू-लो था जिसके अनुवाद स्वरूप एम जुलीन ने इसे विचवापुर कहा है। एम विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने यह प्रस्तावित किया है कि इसका संस्कृत नाम विचालपुर अथवा 'मध्य सिन्ध' का नगर था। परन्तु सिन्धी एव पञ्जाबी का विच एवम् हिन्दी का बीच संस्कृत से नहीं लिये गये हैं। सस्कृत में समान बात को व्यक्त करने के लिये मध्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। यदि ह्वेनसांग स्थानीय भाषा का अनुसरण करता तो उसका नाम हिन्दी के आधार पर बीचवापुर अथवा 'मध्य नगर' पढ़ जाता परन्तु ह्वेनसांग ने सदैव संस्कृत स्वरूप का प्रयाग किया है अतः मेरा विचार है कि हमें उसके पी-चेन-पो-पू-लो के मूलस्वरूप के लिये शुद्ध संस्कृत स्वरूप की खोज करनी चाहिये। अब, हमें प्रथाओं से एवं साथ ही साथ स्थानीय इतिहासकारों से पता चलता है कि ह्वेनसांग की यात्रा से पूर्व एवं पश्चात सिन्ध की राजधानी अलोर थी। अतः यह नवीन नाम किसी प्राचीन नगर का तनिक परिवर्तित नाम रहा होगा न कि द्वितीय राजधानी का हिन्दुओं के समय में विशाल नगरों को अनेक नाम दिये जाने की प्रथा थी जैसा कि हम मुल्तान के संबंध में देख चुके हैं। इनमें कुछ नाम केवल कविता सम्बन्धी विशेषण हैं—उदाहरणार्थ पाटलीपुत्र के लिये कुसुमपुर तथा नरवर के लिये पद्मपुर लिखा गया है। वाराणसी अथवा बनारस आदि कुछ नाम निर्देशक विशेषण के रूप में रखे गये थे। यह नाम काशी नगर के लिये यह दर्शाने के लिये रखा गया था कि यह वरण तथा असी नाम की छोटी नदियों के मध्य में अवस्थित था। इसी प्रकार एक सर्व प्रसिद्ध कथा के स्थान के रूप में कन्नोज को कान्य कुब्ज 'कुबड़ी कन्या' कहा जाता था। नामों की भिन्नता का अर्थ यह नहीं है कि नवीन राजधानी बनवाई गई थी। यह पुराने नगर की नवीन उपाधि भी हो सकती है अथवा यह किसी पुराने नाम का पुनरावृति हो सकती है जिसे अस्थाई रूप से त्याग दिया गया था। यह सत्य है कि सिन्ध के इतिहासकारों ने अलोर के किसी अन्य नाम का उल्लेख नहीं किया परन्तु ह्वेनसांग के समय में अलोर ही राजधानी थी अतः यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि इसका पी-चेन-पो-पू-लो इसी नगर का केवल एक अन्य नाम था।

यह महत्व पूर्ण है कि इस स्थान की अनुरूपता को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाये क्योंकि तीर्थयात्री ने राजधानी को सिन्धु नदी के पश्चिम में दिखाया है जबकि अलोर अथवा अरोर के वर्तमान अवशेष नदी के पूर्व में हैं। परन्तु यही भिन्नता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी अनुरूपता के शुद्ध होने की पुष्टि करती है क्योंकि सिन्ध नदी पूर्व काल में अलोर के पूर्व में पुराने मार्ग से प्रवाहित थी जिसे अब नारा कहा जाता है। जल मार्ग में परिवर्तन राजा दाहिर के समय अर्थात ह्वेनसांग की यात्रा के लगभग ५० वर्ष पश्चात हुआ था। स्थानीय इतिहासकार राजा दाहिर की धूर्तता को अलोर से सिन्धु नदी के हट जाने के कारण मानते हैं परन्तु पञ्जाब की सभी नदियाँ जिनका प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर है, धीरे-धीरे पश्चिम की ओर दबाव डालती है और पश्चिम की ओर यह दबाव पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर निरन्तर चक्कर काटने का स्वभाविक परिणाम है जिसके कारण इन नदियों का जल पश्चिमी तट की ओर अधिक दबाव डालना है। (१) प्रारम्भ में सिन्धु नदी अलोर श्रेणी के पूर्व में बहती थी। परन्तु धीरे-धीरे इसका जल पश्चिम की ओर बढ़ता गया और अन्त में नदी रोरी की पर्वत श्रेणियों के उत्तरी छोर से मुड़ गई और रोरो एवम् भक्कर के मध्य चूने की पहाड़ियों से अपना मार्ग बना लिया। चूँकि नदी के मार्ग का परिवर्तन राजा दाहिर के शासन काल के प्रारम्भ में हुआ बताया जाता है अतः यह परिवर्तन ६८० ई० में उसके सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही समय पश्चात् हुआ होगा क्योंकि इससे केवल ३० वर्ष पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम को अलोर जाने के लिये सिन्धु नदी को पार करना पड़ा था। अतः यह निश्चित है कि नदी ७११ ई० से पूर्व ही अपने वर्तमान मार्ग में स्थाई हो गई थी।

सिन्धु नदी का पुराना मार्ग आज भी नारा नाम से प्रख्यात है और अलोर के खण्डहरों से कच्छ के रन तक इसके जल मार्ग का सर्वेक्षण किया जा चुका है। अलोर से जकराओं लगभग १०० मील की दूरी तक इसका प्रवाह प्रायः ठीक दक्षिण की ओर है। इस स्थान पर यह नदी अनेक शाखाओं में विभाजित हो जाती है और प्रत्येक शाखा को भिन्न-भिन्न नाम दिया गया है। सबसे पूर्वी शाखा जिसे नारा का नाम प्राप्त है, किप्रा तथा उमरकोट के दक्षिण पूर्व में बहता है जिसके समीप यह दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ कर वङ्ग बाजार तथा रामक बाजार तक जाकर वहाँ कच्छ के विशाल रन में लुप्त हो जाता है। सबसे पश्चिमी शाखा को पुराना कहा जाता है और यह ब्राह्मनाबाद तथा नसोरपुर के खण्डहरों से होकर दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम में हैदराबाद

(१) वह सभी नदियाँ जिनका प्रवाह उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव से भूमध्य रेखा की ओर है धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ती हैं जबकि भूमध्य रेखा से उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव की ओर प्रवाहित नदियों का झुकाव पूर्व की ओर रहता है। यह विरोधी प्रभाव भूमि की ध्रुव एवम् भूमध्य रेखा सम्बन्धी गति की उसी भिन्नता का परिणाम है जिसके कारण आयन वृतों से भूमध्य रेखा की ओर निरन्तर बहने वाली वायु का उत्थान होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक चली जाती है जिसके नीचे यह पुनः दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। इनमें एक शाखा दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाती है तथा इसका जल हैदराबाद से १५ मील नीचे तथा जरक से १२ मील ऊपर वर्तमान नदी में गिरता है। गुनी नाम की दूसरी शाखा दक्षिण-पूर्व को ओर मुड़ती है तथा रोमक बाजार से ऊपर नाश में मिल जाती है। पुराना एवम् नारा के बीच कम से कम दो अन्य शाखाएँ हैं जो जकराओं के नीचे शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं परन्तु इनका जलमार्ग केवल आंशिक रूप से ज्ञात है। अलोर से जकराओं तक पुराना नारा का उत्तरी भाग शुष्क एवं रेतीला है जिसमें समय-समय पर सिन्ध नदी की बाढ़ का जल भर जाता है। उद्गम स्थान से जामीजी तक यह शाखा पश्चिम की ओर से एलोर की पहाड़ियों से निरन्तर घिरी हुई है और यह प्रायः २०० फुट से ३०० फुट तक चौड़ी एवम् २० फुट गहरी है। जामीजी से जकराओं तक, जहाँ यह शाखा ६०० फुट चौड़ी तथा १२ फुट गहरी है वहाँ नारा के दोनों ओर निचली रेतीली पहाड़ियों की चौड़ी श्रेणियाँ है। जकराओं से नीचे पश्चिमी तट की रेतीली पहाड़ियाँ अचानक समाप्त हो जाती है तथा बाढ़ के जल से बने समतल पर फैल कर नारा दो मुख्य शाखाओं में विभाजित हो जाता है और जैसे-जैसे यह शाखाएँ आगे बढ़ती जाती हैं इनका पाट चौड़ा होता जाता है और गहराई कम हो जाती है और अन्त में पश्चिमी शाखाएँ ठोस भूमि में, एवम् पूर्वी शाखाएँ दल-दलों के निरन्तर समूह में लुप्त हो जाती है। परन्तु हाला एवं किप्रा के नीचे पुनः प्रगट हो जाती है और इनका प्रवाह जारी रहता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

ऊपरी सिन्ध में उल्लेखनीय प्राचीन स्थान इस प्रकार है :—अलोर, रोरी, भक्खर तथा लरकाना के समीप महोर्त। सिकन्दर, चच, मुहम्मद बिन कासिम तथा हुसेनशाह अरगुन के सैनिक अभियानों में अन्य अनेक स्थानों का उल्लेख मिलता है परन्तु इन स्थानों के बीच की दूरी का उल्लेख न होने के कारण उनकी स्थितियों को पहचानना कठिन है, विशेषतः जबकि नामों में निरन्तर परिवर्तन हुए हैं। सिकन्दर के सैनिक अभियानों मे हमें मस्सनाए, सोग्डी, मुसिकानी तथा प्रायस्टी के नामों का उल्लेख सिलता है। इन सभी स्थानों को निश्चित ही ऊपरी सिन्ध में देखा जाना चाहिए। अब मैं इन्हें पहचानने का प्रयत्न करूँगा।

मस्सनाए तथा सोड्राए अथवा सोग्डी

पञ्जाब की नदियों के संगम स्थान को छोड़ने के पश्चात् सिकन्दर ने सिन्धु नदी के मार्ग से सोग्डी के राज्य में प्रवेश किया, जहाँ एरियन के अनुसार, ''उसने एक अन्य नगर का निर्माण करवाया था।'' दिवोडोरस ने इन्हीं लोगों का एक भिन्न नाम के अर्न्तगत उल्लेख किया है :—''नदी के मार्ग से अपनी यात्रा को जारी रखते समय नदी के दोनों तटों के निवासियों सोड्राए एव मस्सनाए जातियों ने उसकी अधीनता स्वीकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर ली एवं उसने एक अन्य सिकन्द्रिया की स्थापना की जहाँ उसने १०००० निवासी रखे थे।" कर्टियस ने यद्यपि इनके नामों का उल्लेख नहीं किया है फिर भी इन्हीं लोगों का उल्लेख इस प्रकार किया है :—"चौथे दिन वह अन्य राष्ट्रों में पहुँचा जहाँ उसने सिकन्द्रिया नामक एक नगर का निर्माण करवाया।" इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि एरियन के सोग्डी तथा दिवोडरस के सोड्राय एक ही जाति के लोग हैं यद्यपि मि० टाड ने प्रथम नाम को सोढा राजपूतों के अनुरूप तथा वाक्स ने द्वितीय नाम को नीच शूद्रों के अनुरूप स्वीकार किया है। सोढा राजपूत जो परमार राजपूतों की एक शाखा है उमरकोट के समीप सिन्ध के दक्षिणी पूर्वी जिले में बसे हुए हैं परन्तु एम, मुरडो जो अत्यन्त विश्वसनीय निरीक्षक हैं के अनुसार इस बात में विश्वास करने के अच्छे कारण प्रस्तुत हैं कि किसी समय सिन्धु नदी के तट पर अलोर के उत्तर तक सिन्धु नदी के तटों के विशाल क्षेत्र पर इस जाति का अधिकार था। सोढा राजपूतों के पूर्ववर्ती अधिकार क्षेत्र को इस सीमा को स्वीकार करते समय मैं आंशिक रूप से अबुल फज़ल के इस कथन से प्रभावित हुआ हूँ कि अकबर के शासन काल में भक्खर से उम्रकोट तक सम्पूर्ण प्रदेश में सोढा एवं झरेजा ा रहा करते थे। आंशिक रूप से यह विश्वास भी है कि दिवोडोरस के मस्सनाय लोग टालमी के मुसरनी हैं जिनका नाम मिठानकोट के नीचे सिन्धु नदी के पश्चिम में मुज़रका जिले में आज भी सुरक्षित है। टालमी ने मुसरना नामक जिले का उल्लेख भी किया है जिसे उसने अस्कन नाम की एक छोटी नदी के उत्तर में सिन्धु नदी की एक छोटी शाखा पर अवस्थित बताया है। अतः मुसरना नाम की शाखा कहान नामक छोटी नदी होगी जो पुलाजी तथा शाहपुर से होकर खान गढ़ अथवा जेकोबाबाद तक चली जाती है तथा मुसरना शाहपुर नगर हो सकता है जो शिकारपुर के उत्थान से कुछ समय पूर्व कुछ महत्वपूर्ण स्थान था। "आस-पास के प्रदेश में जो अब निर्जन हैं अधिक विस्तार तक कृषि के चिह्न प्राप्त होते हैं।" सोग्डी अथवा सोड्राय को मैं स्योराय के निवासियों के अनुरूप समझूँगा जिसे हुसेन-शाह अरघुन ने भक्खर से मुलतान जाते समय अपने अधिकार में कर लिया था। १५२५ ई० में उसके समय इसे "उस प्रदेश के सुदृढ़तय दुर्ग के रूप में" बताया गया है। तथापि यहाँ के सैनिकों ने इसे त्याग दिया तथा विजयी आक्रमणकारी ने इसकी दीवारों को मिट्टी में मिला देने की आज्ञा दे दी थी। इसकी वास्तविक स्थिति अज्ञात है परन्तु सम्भवतः यह सबज़ल-कोट तथा छोटा अहमदपुर के मध्य फाज़िलपुर के समीप था जहाँ मसोन को यह सूचना प्राप्त हुई थी कि वहाँ किसी समय एक महत्वपूर्ण नगर था तथा "इससे सम्बन्धित एवं संख्या में ३६० कुओं को उस समय भी जङ्गलों में देखा जा सकता था।" अब, पुराने मानचित्र में इसी स्थान पर अर्थात सब्जलकोट के लगभग ८ मील उत्तर पूर्व में Sirwahi सिरवाही नाम का एक गाँव अङ्कित किया गया है जो सम्भवतः सिन्धी इतिहास के स्योराई का प्रतिनिधि हो सकता है। यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीधी रेखा से उच्छ से ९६ मील नीचे तथा अलोर से ८५ मील ऊपर अथवा दोनों के लगभग मध्य में पड़ता है। जल मार्ग से उच्छ से उसकी दूरी एक तिहाई अधिक हो जायेगी अर्थात १२० मील से कम नहीं होगी और यह दूरी कर्टियस के इस कथन का समर्थन करती है कि सिकन्दर चौथे दिन इस स्थान पर पहुँचा था। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह अनुरूपतायें पूर्णतयः सन्तोषजनक नहीं हैं परन्तु जब हम सिन्धु नदी के मार्ग में हुए अनेक परिवर्तनों एवं इसके तट पर अवस्थित नगरों के नामों में हुए बारम्बार परिवर्तनों की ओर ध्यान देते हैं तो सम्भवतः उपर्युक्त अनुरूपतायें उतनी ही शुद्ध हैं जितनी शुद्ध उन्हें वर्तयान समय में बनाया जा सकता है। एरियन द्वारा सुरक्षित एक तथ्य फाज़िलका के समीप प्राचीन स्थान को सोग्डी नगर के अनुरूप स्वीकार किये जाने के पक्ष में हैं। तथ्य यह है कि इसी स्थान पर सिकन्दर ने क्रेटरस को सेना के मुख्य भाग एवं सभी हाथियों सहित अरकोटी तथा द्रंगी की सीमाओं के मार्ग से भेजा था। अब गण्डाव तथा बोलन दर्रे के मार्ग से पश्चिम की ओर सिन्धु नदी को पार करने का सर्वाधिक प्रचलित घाट बायें तट पर फजिलपुर तथा दाहिने तट पर कसमोर के मध्य पड़ता है। और चूंकि घाट अथवा नदी को पार करने के स्थान सदैव सड़क की स्थिति को निर्धारित करते हैं अतः मेरा अनुमान है कि क्रेटरस ने अरकोसिया तथा दरङ्गियाना की ओर अपनी लम्बी यात्रा को इसी स्थान से आरम्भ किया होगा। जो सिन्धु नदी से एक विशाल सेना के पश्चिम की ओर प्रस्थान करने के लिए सबसे उत्तरी स्थान है। फिर भी यह सम्भव प्रतीत होता है कि मुशिकनस के विद्रोह के कारण क्रेटरस को कुछ समय तक रुकना पड़ा हो क्योंकि एरियन ने सिकन्दर द्वारा सिन्दोमना के समीप ब्राह्मण नगर पर अधिकार करने के पश्चात् पुनः उसके प्रस्थान का उल्लेख किया है।

स्थानीय इतिहासकारों और साथ ही साथ प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने मुल्तान तथा अलोर के बीच भाटिया नामक एक सुदृढ़ दुर्ग को अवस्थित बताया है जिसे इसकी स्थिति को देखते हुए उस नगर के अनुरूप समझा जा सकता है, जिसे सिकन्दर ने सोग्डी राज्य में निर्मित करवाया था क्योंकि यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि देश के इस समतल भू-भाग में अधिक लाभकारी स्थान थे। दुर्भाग्यवश विभिन्न लेखकों ने नाम को विभिन्न रूप से लिखा है। इस प्रकार पोस्टनस ने इसे पाया, बाहिया तथा पाहिया, सर हैनरी इलियट ने इसे पाबिया, बाटिया तथा भाटिया कहा है जबकि प्राइस ने इसे बहाटिया कहा है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह तलहटी का स्थान है जहाँ जाम जानर ने सिन्ध नदी को पार किया था और सम्भवतः माटिला अथवा महाटिला भी यहीं स्थान था जो सातवीं शताब्दी में सिन्ध के छः विशाल दुर्गों में एक था।

फरिश्ता ने भाटिया को एक अति सुदृढ़ स्थान के रूप में बताया है जो एक उन्नत दीवार एवं गहरी चौड़ी खाईं से सुरक्षित बनाया गया था। ३९३ हिजरी, अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१००३ ई० में महमूद गजनी ने इस पर अधिकार कर लिया था। इस आक्रमण में अधिक देर तक दुर्ग की रक्षा करने के पश्चात् यहाँ का राजा बज्जर अथवा बाजी-राय मारा गया था। लूट में महमूद को कम से कम २८० हाथी प्राप्त हुए थे। यह हिन्दू शासक की समृद्धि एवं शक्ति का सर्वाधिक ठोस प्रमाण है।

मुशीकानी अलोर

सोग्डी अथवा सोड्राए की सीमाओं से सिकन्दर ने सिन्धु नदी के मार्ग से मुशीकानस नामक राजा की राजधानी तक अपनी यात्रा जारी रखी। स्ट्रैबो, दिवोडोरस तथा एरियन के अनुसार यह स्थान मुसिकनस की राजधानी थी जबकि कर्टियस के अनुसार यह मुसिकानी नाम के लोगों की राजधानी थी। एरियन से हमें पता चलता है कि सिकन्दर को इस राज्य के सम्बन्ध में यह सूचना दी गई थी कि "यह राज्य भारत के सभी राज्यों में सर्वाधिक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण है" तथा स्ट्रैबों से हमें ओनेसीक्रीटस का विवरण प्राप्त होता है कि "देश में प्रत्येक वस्तु प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती थी" जिससे यह पता चलता है कि स्वयं यूनानी इस स्थान की उपज को देखकर आश्चर्य चकित हो गये थे। अब, यह विवरण केवल ऊपरी सिन्ध के समृद्धशाली तथा शक्तिशाली राज्य के लिए हो सकते हैं। अलोर इस राज्य की कई वर्षों से जानी-मानी राजधानी थी। जब दूरियों का उल्लेख नहीं किया गया है तथा नामों में भिन्नता है ऐसी स्थिति में एक सामान्य विवरण से किसी स्थान की स्थिति को निर्धारित करना कठिन है जब तक कि स्थान अथवा निर्माण कार्यों के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएँ अथवा अन्य बातों का ज्ञान न हो जो इसकी अनुरूपता को सिद्ध कर सकते हैं। वर्तमान उदाहरण में हमारे निर्देशन हेतु इस सामान्य विवरण को छोड़ अन्य कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं है कि मुसिकनस का राज्य, "सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण था।" परन्तु सिन्ध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों एवं जन-श्रुतियाँ इस कथन में सहमत है कि अलोर देश की प्राचीनतम राजधानी थी अतः यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यह मुसिकनस की राजधानी थी। अन्यथा यह प्रसिद्ध नगर सिकन्दर के इतिहासकारों के ध्यान से पूर्णतः हट जाएगा जो यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त असम्भावित है। प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों से हमें ज्ञात है कि अलोर का प्रदेश समृद्ध एवं उपजाऊ था। यह सभी भूगोग शास्त्री इस स्थान की प्रशंसा में एक मत थे। अलोर के खंडहर चूने के पत्थर की पहाड़ियों की निचली श्रेणी के रिक्त स्थान के दक्षिण में अवस्थित हैं। यह श्रेणी भक्खर से दक्षिण की ओर लगभग २० मील तक विस्तृत है और अन्त में यह रेतीली पहाड़ियों की चौड़ी पक्तियों में लुप्त हो जाती है जो नगर अथवा सिन्धु नदी के पुराने मार्ग को पश्चिम की ओर से घेरे हुए है। किसी समय सिन्धु नदी की एक शाखा इस रिक्त स्थान से होकर बहा करती थी जो नगर को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर पश्चिम की ओर से सुरक्षित रखती थी। उत्तर-पूर्व में यह नदी की एक अन्य शाखा से सुरक्षित थी जो दूसरी शाखा से तीन मील की दूरी तक प्रवाहित थी। ६८० ई० में राजा दाहिर के समय दूसरी शाखा सम्भवत: सिन्धु नदी का मुख्य मार्ग थी जो प्राचीन नार के अपने मूल मार्ग से धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ती चली गई थी। स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार अन्तिम परिवर्तन भक्खर एवं रोरी के मध्य पहाड़ियों की श्रेणी के उत्तरी छोर से एक नहर निकाले जाने के कारण शीघ्र हो गया।

अलोर का वास्तविक नाम पूर्णतः निश्चित नहीं है। वर्तमान समय में सामान्य उच्चारण के अनुसार इसे अरोर कहा जाता है परन्तु यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इसका मूल नाम रोरा था तथा प्रारम्भिक व्यञ्जन अरबी के उपसर्ग अल से लिया गया है क्योंकि बिलदूरी, इदरिसी तथा अन्य अरब लेखकों ने इसे अलोर लिखा है। पड़ोस के रोरी नगर के नाम से उपर्युक्त शब्द व्युत्पत्ति शब्द का सर्मथन होता है क्योंकि नामों की इस प्रकार नकल करना भारत की एक सामान्य प्रथा है। अत: रोरा तथा रोरी का अर्थ होगा बड़ा तथा छोटा रोरा। संस्कृत में इस शब्द का कोई अर्थ नहीं है परन्तु हिन्दी में "शोर, चिल्लाहट, गर्जन" तथा 'ख्याति' के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। अतः यह सम्भव है कि नगर का पूरा नाम रोरापुर अथवा रोरानगर अर्थात् "प्रसिद्ध नगर" रहा होगा। अलोर के खण्डहरों के दो मील दक्षिण-पश्चिम में पहाड़ियों के अधोभाग पर अवस्थित एक गाँव को दिए गये नाम अभिजानू से मुझे उपर्युक्त अर्थ को प्रस्तावित करने का ध्यान हुआ था। अभिजान संस्कृत में 'ख्याति' के लिए प्रयुक्त किया जाता है और ह्वेनसांग के पी-चेन-पो-पू-लो से इसका सम्बन्ध असम्भावित नहीं है जिसे प्रारम्भ में ओ अक्षर जोड़ देने से अभिजानवपुर पढ़ा जा सकता है। मेरे विचार में यह सम्भव है कि अलोर टालमी का बिनागरा रहा होगा क्योंकि इसे सिन्ध नदी के तट पर ओसकना के पूर्व की ओर दिखाया गया है जो एरियन तथा कर्टियस का ओक्सीकनस प्रतीत होता है। टालमी द्वारा दिया गया नाम बिनाशरा सम्भवत: चीनी स्वरूप का विपरीत पाठ है क्योंकि पूलो अथवा पुरा नागरा के समान है तथा पीखिन पो प्रारम्भिक अक्षर बी का पूर्ण स्वरूप हो सकता है।

प्रत्यक्ष रूप से मुसिकनस का नगर कुछ महत्व-पूर्ण स्थान था क्योंकि एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने "क्रेटरस को नगर में एक दुर्ग का निर्माण करवाने की आज्ञा दी थी और वह स्वयं इस कार्य को पूर्ण होते देखने के लिए रुका था। यह कार्य पूर्ण हो जाने के पश्चात् उसने वहाँ पर एक सुदृढ़ सेना छोड़ दी थी क्योंकि यह दुर्ग पड़ोसी राज्यों को अपने नियन्त्रण एवं अधिकार में रखने के लिए अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता था।" इसमें सन्देह नहीं कि अलोर की स्थापना मूलरूप से इसी कारण की गई थी और यह नगर इस स्थान से नदी के हट जाने के समय तक जनपूर्ण रहा। उस समय भक्खर के सुदृढ़ दुर्ग ने इसका स्थान ले लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रोएस्ति-पोर्टीकनस, अथवा ओक्सीकनस

मुसिकनस की राजधानी से सिकन्दर ने अपनी नौकाओं के अपने बेड़े को सिन्धु नदी में नीचे की ओर जाने की आज्ञा दी थी जब कि, एरियन के अनुसार, वह स्वयं ओक्सीकनस नाम के पड़ोसी राजा के विरुद्ध बढ़ा तथा पहले ही आक्रमण में उसके दो मुख्य नगरों पर अधिकार कर लिया। कर्टियस ने ओक्सीकनस को प्रोएस्ति नामक लोगों का राजा कहा है तथा उसका कथन है कि सिकन्दर ने तीन दिन के घेरे के पश्चात् उसके मुख्य नगर पर अधिकार किया था। डिवोरस तथा स्ट्रैबो ने राजा को पोर्टीकनस कहा है। अब, इन विभिन्न विवरणों से सम्भावना का संकेत मिलता है कि यह नाम नगर का नाम था जिसे ऊँचा गाम अथवा पोर्टागाम के रूप में इसकी ऊँचाई के संकेत के आधार पर केवल "उन्नत नगर" समझा जा सकता है। कर्टियस द्वारा इसके दुर्ग के दो बुर्जों के गिरने से हुई "भयानक गड़गड़ाहट" के उल्लेख से प्रतीत होता है कि यह स्थान सामान्य ऊँचाई से अधिक ऊँचा रहा होगा अतः मैं इसे लरकाना से १० मील घार नदी के तट पर अवस्थित महोरता के विशाल टीले के अनुरूप समझूंगा। मसोन ने 'महोता नामक एक विशाल टीले पर अवस्थित एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहरों" के रूप में इसका उल्लेख किया है। सर्वेक्षकों ने इस नाम को महोरद्धा लिखा है जो सम्भवतः महा+उर्द+ग्राम अथवा "विशाल उन्नत नगर" के स्थान पर महोर्द के लिए लिखा गया है। और शुद्ध संस्कृत रूप में इसके आधुनिक नाम होने की सम्भावना नहीं है। मुझे उपर्युक्त अनुरूपता, न केवल नामों की अति सामानता के विवरण से वरन् सिन्धु नदी के पुराने मार्ग के सम्बन्ध में एलोर तथा महोंटा की अपेक्षाकृत स्थितियों के विवरण से भी अधिक सम्भावित प्रतीत होती है। वर्तमान समय में महोंटा नदी के कुछ ही मीलों के भीतर है परन्तु सिकन्दर के समय में, जब सिन्धु नदी नारा के मार्ग से प्रवाहित थी, नदी का निकटतम बिन्दु अलोर था जहाँ से महोरता दक्षिण पश्चिम में ४५ की दूरी पर था। अतः सिकन्दर को विवश होकर अपना नौकाओं का बेड़ा छोड़ देना पड़ा एवं उसे ओक्सीकनस के विरुद्ध जाना पड़ा। महोर्ता का स्थान सदैव व्यापारिक एवं राजनैतिक रूप में अधिक महत्व का स्थान रहा होगा क्योंकि यह सिन्ध से कच्छ गंडाव के मार्ग से कन्धार जाने वाली प्रधान सड़क पर नियन्त्रण रखता था। इसे त्याग दिए जाने के समय से इन्हीं लाभों के कारण महार्ता के १० मील पश्चिम में एक छोटी नदी पर अवस्थित लरकाना को सिन्ध के सर्वाधिक समृद्धशाली स्थानों में एक स्थान बना दिया है। घार नाम की छोटी नदी केलात के समीप निकलती है तथा मूल एवं गंडाव दर्रे की सम्पूर्ण लम्बाई का चक्कर लगाती है और अब यह नदी इन दर्रों के नीचे मरुस्थल में लुप्त हो गई है परन्तु इसके मार्ग को आज भी पहचाना जा सकता है। तथा यह नदी सिन्ध की सीमाओं पर पुनः प्रगट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती है तथा लरकाना एवं महोर्ता से होती हुई सिन्धु नदी में गिरती है । एक शक्तिशाली एवं न्याययुक्त शासक, जो प्राप्त जल के उचित विवरण को लागू कर सकता था, के अधीन घार नदी का तटीय प्रदेश पूर्व काल में सिन्ध का सर्वाधिक उपजाऊ जिला रहा होगा ।

मि० विलसन के अनुसार कर्टियस द्वारा दिया गया नाम प्रोएस्ति मरुभूमि के थलों अथवा मरूद्यान के निवासियों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है । उसने प्रस्थ अथवा प्रस्थल को थल के संस्कृत स्वरूप स्थल से लिए जाने का उल्लेख किया है । पश्चिमी भारत में किसी भी मरुद्यान के लिए सामान्य रूप से थल शब्द का प्रयोग किया जाता है । चूंकि यह नाम साधारण प्रोएस्ति है अतः मेरा विचार है कि इसे प्रस्थ से सम्बन्धित किया जाना चाहिए जिसे समतल भूमि के किसी भी स्पष्ट टुकड़े के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है अतः सहेवान तथा गंडाव के पड़ोसी पर्वतीय जिलों के विपरीत लरकाना के समीप समतल प्रदेश के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जा सकता है फिर भी यह सम्भावित प्रतीत होता है कि इसे टालमी के पिसका से सम्बन्धित रहा हो जिसे उसने एक छोटी नदी के निचले मार्ग पर अवस्थित बताया है । यह नदी ओस्कन से होकर सिन्धु नदी में गिरती है। अब, ओस्कन प्रायः निश्चित ही एरियन तथा कर्टियस का आवसीकनस है क्योंकि न केवल दोनों नाम पूर्णतः एक रूप है वरन् सिन्धु नदी के पश्चिम में एक छोटी नदी पर ओस्कन की भीतरी स्थिति ठीक-ठीक महोर्ता की स्थिति से मिलती है जिसे मैं ओवसीकनस के अनुरूप दिखा चुका हूँ । मेरा यह भी विचार है कि टालमी का बदाना जो छोटी नदी के ठीक उत्तर में पड़ता है आधुनिक गंडाव रहा होगा क्योंकि ब एवं ग अक्षर में निरन्तर अदला-बदला होती रही है । प्रारम्भिक अरब लेखकों की पुस्तकों में इसे सदैव कण्डाबिल कहा गया है ।

मध्य सिन्ध

मध्य सिन्ध का राज्य जो सामान्य रूप से विचालो अथवा "मध्य भूमि" के रूप में ज्ञात है, को ह्वेनसांग ने परिधि में २५०० ली अथवा ४१७ मील बताया है । इन छोटे आंकड़ों के अनुसार यह प्रान्त सिवान के आधुनिक जिले हैदराबाद के उत्तरी भाग तथा उमरकोट तक सीमित रहा होगा । इन सीमाओं में उत्तरी एवं दक्षिणी सीमाएँ १६० मील लम्बी तथा पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाएँ लगभग ४५ मील थी अथवा कुल मिलाकर इसकी परिधि ४१० मील से कम नहीं थी । ओ-फान-च-नाम मुख्य नगर ऊपरी सिन्ध की राजधानी से ७०० ली अथवा ११७ मील तथा निचले सिन्ध की राजधानी पित्तसिल से ५० मील की दूरी पर थी । चूंकि प्रथम नगर अलोर था तथा द्वितीय नगर प्रायः निश्चित ही यूनानियों का पट्टल अथवा हैदराबाद था अतः लिखित दूरियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुसार ओ-फान-च की स्थिति बम्भर-का तूल अथवा 'ध्वस बुर्ज' अथवा साधारण बम्भर नामक प्राचीन नगर के खण्डहरों के समीप निश्चित होगी । जन प्रथाओं के अनुसार यह नगर किसी समय ब्रह्मनवास अथवा ब्राह्मणाबाद के प्रसिद्ध नगर का स्थान था अत: ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित ओफानचा अथवा अवन्दा राज्य मध्य सिन्ध के प्रान्त से मिलता है जिसे आजकल विचालो कहा जाता है ।

वर्तमान समय में सेहवान, हाला, हैदराबाद तथा उमरकोट सिन्ध के उपर्युक्त खण्ड के मुख्य स्थान हैं । मध्य काल में हिन्दू शासन के अन्तर्गत सदुसान ब्राह्मण अथवा ब्राह्मवा तथा निरुनकोट विशाल नगर थे परन्तु जैसा कि मैं अभी दिखाने का प्रयत्न करूँगा निरुनकोट सम्भवतः आधुनिक हैदराबाद तथा प्राचीन पटाला था । अतः इसे निचले सिन्ध अथवा लार प्रान्त में सम्मिलित करना अधिक उचित होगा । ब्राह्मवा के समीप प्रारम्भिक मुसलमानों ने मसूर की स्थापना की थी जो उनके राज्यपालों ने निवास स्थान के रूप में प्रान्त की वास्तविक राजधानी का निर्माण किया था, शीघ्र ही यह नगर सम्पूर्ण सिन्ध का सबसे बड़ा नगर बन गया । सिकन्दर के समय में सिन्दोमान तथा ब्राह्मणों के एक नगर का उल्लेख किया गया है जिसे दिवोडोरस ने हरमतेलया नाम दिया है अब मैं सबसे उत्तरी स्थान से शुरू करते हुए इन स्थानों का विस्तृत विवरण करूँगा ।

सिन्दोमान-अथवा सेहवान

ओक्सीकनस के नगर से सिकन्दर अपनी सेनाओं को सम्बस के विरुद्ध ले गया जिसे उसने पहले भारतीय पर्वतों का गर्वनर घोषित किया था ।" राजा ने सिन्दोमान नामक अपनी राजधानी को त्याग दिया जिसे, एरियन के अनुसार सम्बत के मित्रों एवं घरेलू गृह सम्बन्धियों ने सिकन्दर को समर्पित कर दिया । ये सभी धन एवं हाथियों के उपहार सहित सिकन्दर से मिलने आये थे । कर्टियस ने राजा को सब्रुस कहा है परन्तु उसने राजधानी के नाम का उल्लेख नहीं किया । उसने केवल इतना लिखा है कि सिकन्दर ने "अनेक नगरों द्वारा अधीनता स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् सुदृढ़तम नगर को सुरंगें बना कर अधिकार में कर लिया था ।" दिवोडोरस द्वारा दिए गये विवरण में भी राजधानी के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु उसका कथन है कि सम्बस ३० हाथियों सहित अधिक दूरी तक पीछे हट गया था । स्ट्रैबों ने विस्तृत विवरण दिए बिना राजा सब्रस तथा उसकी राजधानी सिन्दोमान का उल्लेख किया है । केवल कर्टियस ने यह लिखा है कि सिकन्दर राजा के सुदृढ़तम नगर पर अधिकार करने के पश्चात् नावों के अपने बेड़े में वापिस आ गया था । अतः यह नगर भारत से कुछ दूरी पर रहा होगा । मैं भारत के इस भाग के प्राचीन भूगोल के पिछले सभी लेखकों से सिन्दोमान को सेहवान के अनुरूप स्वीकार करने पर सहमत हूँ । इसका आंशिक कारण नामों की समानता है एवं आंशिक रूप से लक्की पर्वतों से समीपता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण है। इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं हो सकता क्योंकि विशाल टीला जो किसी समय एक विशाल दुर्ग था मुख्य रूप से पहाड़ियों की लम्बी श्रेणी के छोर पर एक चट्टान पर सदियों से एकत्रित ध्वस्त भवनों के खण्डहरों से बना हुआ है। डी ला होस्टे ने १२०० फुट लम्बे, ७५० फुट चौड़े तथा ८० ऊँचे गोल टीले के रूप में इसका उल्लेख किया है। परन्तु मैंने जब १८२५ ई० में इसे देखा था तो मुझे यह आकार में चौकोर प्रतीत हुआ और मेरे विचार में यह बर्न्स के अनुमान से कुछ अधिक बड़ा एवं अधिक ऊँचा था। उस समय यह सिन्धु नदी की मुख्य शाखा पर अवस्थित था परन्तु नदी के मार्ग में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं और सभी पुराने मानचित्रों में इसे सिन्धु नदी की पश्चिमी शाखा पर अवस्थित दिखाया गया है। फिर भी प्राचीन समय में, जब नदी, नारा की पूर्वी शाखा में प्रवाहित थी, सेहवान, जकराब के स्थान पर इसके निकटतम बिन्दु से ६५ मील से कम दूरी पर नहीं था। जकराब के स्थान पर नारा, रेतीली पहाड़ियों को छोड देता है। वर्तमान समय में सेहवान नगर की जलपूर्ति पूर्णतयः सिन्धु नदी से होती है। जो न केवल नगर के पूर्वी सीमा पर बहती है वरन् अराल नामक एक छोटी शाखा के रूप में इसकी उत्तरी सीमा के साथ-साथ ही बहती है। यह शाखा विशाल चूर झील से निकलती है जिसकी जल पूर्ति दूसरे नारा अथवा सिन्धु नदी की विशाल पश्चिमी शाखा से होती है। चूंकि जल की प्राप्ति के बिना इस स्थान का बस जाना सम्भव नहीं था अतः यह निश्चित है कि मानचूर झील सिन्धु नदी के मार्ग में परिवर्तन से काफी समय पूर्व अवस्थित थी। मध्य में इसकी अपार गहराई को देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह एक प्राकृतिक गड्ढा है और चूंकि इस समय भी इस झील का जल दो छोटी नदियों द्वारा एकत्रित होता है जो दक्षिण में हाल लकी पर्वतों से निकलती है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह झील सेहवान की दीवारों तक विस्तृत रही होगी परन्तु पश्चिमी नारा की बाढ से सिंधु नदी तक एक अन्य मार्ग बन गया था और इस प्रकार इस झील का स्तर स्थाई रूप से नीचे हो गया। झील में मछलियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मछलियों के कारण ही इसका नाम मानचूर पड़ा है क्योंकि मनचूर संस्कृत मत्स्य तथा हिन्दी मच्छ अथवा मछली का केवल परिवर्तित स्वरूप है अतः मेरा विचार है कि मनचर केवल मच्छीवाला ताल अथवा मछलियों वाली झील का संक्षिप्त नाम रहा होगा।

एक विशाल झील के समीप उन्नत एकान्त चट्टान पर अवस्थित होने एवं खाद्यान्न एवं जल की प्रचुर उपलब्धि के कारण बनी अनुकूल स्थिति से सेहवान ने निश्चित ही सिन्ध के प्रारम्भिक निवासियों का ध्यान आकर्षित किया होगा। तदनुसार हम देखते हैं कि सभी लेखकों ने प्राचीन समय से इस स्थान के बसे होने के तथ्य को स्वीकार किया है। इस प्रकार एम० मुरडो का कथन है, "सेहवान असंदिग्ध रूप से अति प्राचीन स्थान है, सम्भवतः अलोर अथवा ब्राह्मन से भी अधिक प्राचीन है।" वर्तमान नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीविस्तान का संक्षिप्त रूप बताया जाता है जिसे यहाँ के निवासियों सीवी अथवा सबी के नाम पर सीविस्तान कहा जाता था। परन्तु सभी प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस नाम को कुछ भिन्न रूप से लिखा है। उदाहरणार्थ सदुस्तान अथवा सदुमान अथवा शारूसान। इनमें प्रथम दो नाम यूनानी सिन्दोमान अक्षर से मिलते हैं। अतः मैं सीविस्तान के नाम को हिन्दुओं द्वारा भगवान शिव के नाम से सम्बन्धित स्थान बनाये जाने की आधुनिक बातों को अस्वीकार करता हूँ। यूनानियों का सिन्दो एवं प्रारम्भिक मुसलमानों का सदु देश के संस्कृत नाम सिन्धु अथवा इसके निवासियों का सैन्धव अथवा सैन्धु की ओर संकेत करते हैं। अतः उनके दुर्ग अथवा उनकी राजधानी को सैन्धवास्थान अथवा सिन्धुस्थान कहा जाता होगा जो नासिका सम्बन्धी स्वर लोप के कारण अरब भूगोल शास्त्रियों का सदुस्तान बन गया होगा। इसी ढङ्ग से विलसन ने यूनानी सिन्दोमना को "संस्कृत के स्वीकृत शब्द सिन्दुमान अर्थात् 'सिन्ध के अधिकारी' से लिया है।" फिर भी मैं यूनानी नाम के सैन्धवा-वानम अथवा मैन्धुवान अर्थात् "सैन्धवों के निवासस्थान से सम्बन्धित स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

आश्चर्य है कि टालमी ने सेहवान जैसे उल्लेखनीय स्थान का किसी भी पहचान योग्य नाम के अन्तर्गत उल्लेख नहीं किया है। यदि हम प्राचीन समय के मुहाने के सर्वाधिक सम्भावित मुख्य स्थान के रूप में हैदराबाद को स्वीकार कर लें तो टालमी के सीड्रास को जो सिन्धु नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है सम्भवतः हैदराबाद से १२ मील ऊपर भटाली के प्राचीन स्थान से तथा पैसीपेडा का सेहवान के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। मेरा विचार है कि टालमी के ओसकन की ओक्सीकनस अथवा सिकन्दर के पोर्टोकनस तथा आधुनिक समय के महोटो नामक विशाल टीले मे अनुरूपता प्रायः निश्चित है। यदि ऐसा है तो पिस्का अथवा पसिपेदा सेहवान रहा होगा।

ह्वेनसांग ने सेहवान का उल्लेख नहीं किया है परन्तु सिन्ध के स्थानीय इतिहास में इस नगर को ७११ ई० में मुहम्मद बिन-कासिम द्वारा अधिकृत नगर के रूप में उल्लेख किया गया है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महमूद गजनी ने पुनः इस पर अधिकार कर लिया था और मुस्लिम शासन के अधीन यह स्थान सिन्ध के सर्वाधिक समृद्ध स्थानों में सम्मिलित हुआ प्रतीत होता है। वर्तमान समय में यह अति जर्जर अवस्था में है परन्तु इसकी स्थिति इतनी अनुकूल है कि किसी भी समय इसका निर्जन हो जाना सम्भव नहीं है।

ब्रह्माना अथवा ब्रह्मानाबाद

सिन्दोमना से सिकन्दर "वापिस नदी की ओर गया जहाँ उसने अपनी नौकाओं के बेड़े की प्रतीक्षा करने की आज्ञा दे रखी थी तत्पश्चात् नदी के मार्ग से नीचे की ओर जाते हुए चौथे दिन वह एक ऐसे नगर में पहुँचा जिससे होकर एक सड़क साबस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य की ओर जाती थी।" जिस समय सिकन्दर ने अलोर (मुसिकनस की राजधानी) के स्थान पर ओक्सीकनस के विरुद्ध प्रस्थान करने के विचार से अपनी नौकाओं के बेड़े को छोड़ा था उस समय वह सिन्दोमना की ओर जाने का विचार नहीं रखता था क्योंकि अधीनता स्वीकार कर लेने के पश्चात् राजा सम्बस को सिन्धु नदी के साथ-साथ पर्वतीय जिलों का क्षत्रप नियुक्त किया गया था। अतः उसने अपनी नौकाओं के बेड़े को नदी के किसी ऐसे स्थान पर प्रतीक्षा करने की आज्ञा दी होगी जो ओक्सीकनस की राजधानी से अधिक दूर नहीं था। इस स्थान को मैं कटोर तथा ताजल के नीचे पुराने नारा पर अवस्थित मरिजा-दण्ड के समीप किसी स्थान पर निश्चित करूँगा क्योंकि मोर्टा जिसे मैं ओक्सीकनस के मुख्य नगर के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ, अलोर तथा कटोर से समान दूरी पर है। तत्पश्चात् नदी के मार्ग से नीचे जाते हुये वह चौथे दिन एक ऐसे नगर में पहुँचा था जिससे होकर एक सड़क सम्बस के राज्य की ओर जाती थी। मरिजादण्ड अर्थात उस बिन्दु से जहाँ मेरे विचार में सिकन्दर पुनः अपने बेड़े पर आ गया था। ब्रह्मना अथवा ब्राह्मनाबाद के ध्वस्त नगर की दूरी स्थल मार्ग द्वारा सीधी रेखा से ६० मील अथवा जल मार्ग से ६० मील है चूँकि इस दूरी को चार दिनों में सरलता पूर्वक तय किया जा सकता था अतः मेरा निष्कर्ष है कि ब्राह्मना ब्राह्मणों का वास्तविक नगर था जिसका सिकन्दर के इतिहासकारों ने उल्लेख किया था। इस नगर के राजा ने पहले सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु यहाँ के निवासियों ने उसकी सहायता करने से इन्कार कर दिया और उन्होंने नगर के द्वारों को बन्द कर लिया। एक गहरी चाल से उन्हें नगर के बाहर आने पर उत्साहित किया गया और तत्पश्चात हुए युद्ध में टालमी को विष से बुझे खड्ग से कन्धे में गम्भीर चोट आई। टालमी की चोट के उल्लेख से हमें इस नगर को हरमतेलिया के अनुरूप स्वीकार करने में सहायता मिलती है। जिसे दिवोडोरस ने, "नदी पर ब्राह्मणो का अन्तिम नगर" कहा है। अब, हरमतेलिया ब्रह्मथल अथवा ब्राह्मना स्थल का केवल कोमल उच्चारण है। जैसे यूनानियों का हरमीज़ (कामदेव) भारतीयों के ब्रह्मा अथवा आदि देवता के स्वरूप है परन्तु ब्राह्मना, नगर का प्राचीन हिन्दू नाम था जिसे मुसलमानों में ब्रह्मना-बाद कहा था। अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि सिकन्दर द्वारा अधिकृत ब्राह्मणों का नगर नाम एवं स्थिति में ब्राह्मनाबाद के विशाल नगर से मिलता है।

दुर्भाग्यवश सिन्दोमना के अधिकार के पश्चात् एरियन द्वारा दिया गया विवरण अति संक्षिप्त है। उसके शब्द इस प्रकार हैं—"उसने एक ऐसे नगर पर आक्रमण किया एवं अधिकार कर लिया, जिसने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था। विद्रोह का अभियोग लगा कर उसने उन सभी ब्राह्मणों का वध करवा दिया जो उसके चंगुल में फँस गये थे।" यह विवरण दिवोडोरस के कथन से जिसने लिखा है कि, सिकन्दर, "विद्रोह का परिपालन करने वाले सभी व्यक्तियों को दण्ड देने पर सन्तुष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था तथा अन्य सभी को उसने क्षमा कर दिया था।" इन तीन विवरणों की तुलना करने से मेरा अनुमान है कि हरमतेलिया अथवा ब्राह्मना मुसिकनस के राज्य में था क्योंकि कटियस का कथन है कि नगर के राजा ने पहले सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी जबकि एरियन का कथन है कि उसने विद्रोह कर दिया था तथा दिवोडोरस ने यह जोड़ दिया है कि सिकन्दर ने विद्रोह का प्रतिपादन करने वालों को दण्ड दिया था। अब, यह सभी तथ्य मुसिकनस से सम्बन्धित है जिसने सर्व-प्रथम अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु बाद में विद्रोह कर दिया था और अन्त में उसका वध करवा दिया गया "तथा उसके साथ ही उन सभी ब्राह्मणों का भी वध हुआ जिन्होंने उसे विद्रोह करने की प्रेरणा दी था।" यह अनरूपता महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह पता चलता है कि मुसिकनस का राज्य पश्चिमी पर्वतों के अन्तर्गत ओक्सीकनस तथा सम्ब्रुस के दो बाह्य जिलों को छोड़ मुहाने तक सिन्धु नदी के सम्पूर्ण घाट में विस्तृत था। उसके राज्य का विस्तार जन साधारण द्वारा सिकन्दर को दी गई इस सूचना की व्याख्या करता है कि मुसिकनस का राज्य "सम्पूर्ण भारत में सर्वाधिक समृद्धि शाली एवं जनपूर्ण था।" इससे यह भी पता चलता है कि सम्बस किस कारण मुसिकनस से शत्रुता रखता था क्योंकि मुसिकनस के राज्य की दक्षिणी सीमाएं पश्चिम में सम्बस के राज्य से घिरी हुई थी। जस्टिन ने उस नगर के राजा को अम्बीगेर कहा है जहाँ टालमी एक विष में बुझे तार से घायल हुआ था। सम्भवतः मुसिकाती के शासक मुसिकानस का यह वास्तविक नाम था जिसके राज्य में ब्राह्मना नगर अवस्थित था।

खेद है कि टालमी द्वारा सुरक्षित किसी भी नाम को निश्चित रूप से ब्राह्मणों के इस नगर के अनुरूप नहीं बताया जा सकता। परबाली स्थिति एवं आंशिक रूप से नाम में इससे मिलता है क्योंकि प्रथम दो अक्षर, पर्व, बरम से अधिक भिन्न नहीं है तथा अन्तिम अक्षर अलि ब्रह्मथल, केथल अथवा हरमतेलिया का प्रतिनिधित्व हो सकता है। टालमी के समय के पश्चात मुस्लिम विजय के समय तक लगभग ६ शताब्दियों के समय में ब्राह्मनानगर के सम्बन्ध में हमें कोई सूचना नहीं मिलती। फिर भी सिन्ध की स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों से हमें ज्ञात होता है कि ब्राह्मना सिन्ध के उन चार प्रान्तों में एक प्रान्त का मुख्य नगर था जिनमें ५०७ ई० से ६४२ ई० तक रैस राज्य घराने के अधीन सिन्ध विभाजित था तथा यह नगर ६८० ई० में दाहिर के राज्यारोहण के समय तक प्रान्त का मुख्य नगर बना रहा। दाहिर ने सिन्धु नदी द्वारा अलोर के विनाश के पश्चात इसे अपनी राजधानी बनाया था। ६४१ ई० में ह्वेनसांग ने सिन्ध की यात्रा की थी और उसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। उसने राज्य को चार जिलों में विभाजित पाया था जिन्हें भिन्न-भिन्न दिखाने के लिए मैं ऊपरी सिन्ध, मध्य सिन्ध, निचला सिन्ध तथा कच्छ के नाम दे चुका हूँ। प्रथम भाग का उल्लेख मैं अलोर के अपने विवरण में दे चुका हूँ। द्वितीय, ओ-फान-च को मैंने अभी ब्रह्मनाबाद के अनुरूप बताया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। एम० जुलीन में चीनी अक्षर का अनुवाद अवन्द के रूप में किया है जिसके लिए समान अक्षर ढूढ़ना अति कठिन है परन्तु मुझे सन्देह है कि यह केवल ब्राह्मना के नाम का परिवर्तित स्वरूप है क्योंकि इस शब्द का बाहमना, बहमना, बाभना, बाबना बाभना आदि विभिन्न ढङ्ग से उच्चारण किया जाता है। मन्सूर के सम्बन्ध में लिखते समय इब्न हाऊकल ने लिखा है कि सिन्धी इसे बामी-वान कहा करते थे जिसे इदरसी ने बदल कर मीरमान लिखा है। हम जानते हैं कि मानसूर ब्राह्मना के अधिक समीप था। परन्तु सिन्ध के स्थानों की सूची में इदरसी ने मन्सूर के पश्चात् वन्दन अथवा कन्दन का नाम लिखा है जिसे मैं बामनवा अथवा सिन्धियों के उच्चारणानुसार वामनवा तथा वनवा का भिन्न उच्चारण समझता हूँ। चीनी अक्षर फान-जो ब्रह्मा का सर्व ज्ञात अनुवाद है और इससे इस विचार की पुष्टि होती है कि अवन्द बहमनवा अथवा ब्राह्मनाबाद का आंशिक रूप से परिवर्तित रूप है।

मुस्लिम विजय के कुछ ही समय पश्चात् ब्राहमना का स्थान मन्सूरा ने ले लिया था जिसे, बिलदूरी के अनुसार सिन्ध के विजेता मुहम्मद बिन कासिम के पुत्र अमरू ने स्थापित करवाया था तथा द्वितीय अब्बासीदी खलीफ अल मन्सूर जिसने ७५३ से ७७४ ई० तक शासन किया था, के नाम पर इस नगर का नाम रखा गया था परन्तु मसूदी के अनुसार इसकी स्थापना जमहूर द्वारा की गई थी जो अन्तिम खलीफा के समय ७४४ से ७४६ ई० तक सिन्ध का गवर्नर था। उसने अपने पिता मन्सूर के नाम पर नगर का नाम रखा था। यह नवीन नगर ब्राह्मनाबाद के इतने समीप बनवाया गया था कि इब्न होऊकल, अब्बु रेहान तथा इदरसी, सभी ने एक ही स्थान के रूप में इसका उल्लेख किया है। इब्न हाऊकल के शब्द इस प्रकार है, "मन्सूरा, जिसे सिन्धी भाषा में बामीवान कहा जाता है।" अब्बुरेहान का कथन है कि प्रारम्भ में इसे बहमनवा तथा तत्पश्चात् हमनाबाद कहा जाता था जिसे हम प्रारम्भ में ब अक्षर के जोड़ देने से बहमनाबाद पढ़ सकते हैं। यह अक्षर किसी कारणवश लुप्त हो गया होगा। यह नगर मिहरान अथवा सिन्धु नदी की पूर्वी शाखा पर अवस्थित था तथा १ मील लम्बा तथा उतना ही चौड़ा अथवा परिधि में प्रायः चार मील था। विभिन्न स्थानों की ओर जाने वाले मार्गों पर यात्रा में व्यतीत दिनों से इसकी स्थिति को हाला के पड़ोस में निश्चित किया जा सकता है। मुल्तान से यह १२ दिन की दूरी पर था। सेहवान के मार्ग से कंदाबिल तक ८ दिन की दूरी पर तथा मन्हाबारी के मार्ग से डेबल तक ६ दिन की यात्रा पर था, स्वयं मन्हाबारी मन्सूरा से ४ दिन की यात्रा पर था अतः यह नगर मुल्तान से सिन्धु नदी के मुहाने तक की दो तिहाई दूरी पर अथवा हाला के समान समानान्तर स्थिति में अवस्थित था।

अब, इसी स्थान पर श्री बेलासिस ने एक विशाल नगर के खण्डहर की खोज की है। इस स्थान के सम्बन्ध में अपनी जानकारी के लिए हम उनके उत्साह एवम्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिभा के आभारी हैं। यह खण्डहर हैदराबाद के ४७ मील उत्तर पूर्व में, हाला के २८ मील पूर्व अथवा पूर्व-उत्तर पूर्व में तथा पूर्वी नारा के २० मील पश्चिम में सिन्धु नदी के पुराने तट पर अवस्थित हैं। यह स्थान बम्भरा का-थूल अथवा "ध्वस्त बुर्ज" के रूप मे जाना जाता है क्योंकि यहाँ की एक मात्र भवन ईंटों का टूटा हुआ बुर्ज है। श्री बैलासिस के अनुसार इस स्थान का वर्तमान रूप इस प्रकार है "खण्डहरों का एक विस्तृत समूह जो अपने भवनों के मूल आकार के अनुसार आकार में भिन्न-भिन्न है।" बच्चा को घुमाने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली गाड़ी के माप के अनुसार इसकी परिधि ४ मील से कुछ गज कम है परन्तु बम्भरा-का-थूल के विशाल टीले के अतिरिक्त लगभग डेढ़ मील की दूरी पर "इसके अन्तिम राजा का निवास स्थान एवम् दोलोर का ध्वस्त एवम् विशिष्ट नगर है तथा अन्य दिशा में पाँच मील की दूरी पर देपुर नामक ध्वस्त नगर है जो राजा के प्रधान मन्त्री का निवास-स्थान था तथा इन नगरों के मध्य उपनगरों के खण्डहर है जो मीलों तक खुले प्रदेश में दूर-दूर तक फैले हुए हैं। बम्भरा-का-थूल का विशाल टीला "पूर्णतयः मिट्टी की प्राचीर से घिरा हुआ है जिस पर अनेक कंगूरे तथा बुर्ज बने हुए हैं।" अकबर के समय में इस मोर्चा बन्दी के अनेक अवशेष प्राप्त थे। अब्बुलफज्ल का कथन है कि "इस मोर्चा बन्दी में १४० बुर्ज था। (१) जो एक दूसरे से एक तनाब की दूरी पर थे। तनाब माप करने की एक रस्सी थी जिसे सम्राट अकबर ने लोहे की जन्जीरों द्वारा जोड़े बम्बुओं के स्थान पर परिवर्तित करने का आज्ञा दी। इसकी लम्बाई ६० इलाही गज थी जिससे ३० इञ्च की दर से तनाब की लम्बाई १५० फुट प्राप्त होता है। तथा इस लम्बाई का १४० से गुणा करने पर नगर की परिधि २१००० फुट अथवा लगभग ४ मील हो जाती है। स्मरण रहे कि इब्न हाऊकल ने मन्सूरा का एक मील वर्गाकार अथवा परिधि मे चार मील बताया है तथा श्री बेलासिस ने बम्भरा-का-थूल की परिधि को ४ मील से कुछ गज कम बताया है। आकार की पूर्ण समानता एवम् स्थिति का समीप समानता, जिसका मैं उल्लेख कर चुका हूँ, के कारण मेरा निष्कर्ष है कि बम्भरा-का-थूल का विशाल टीला सिन्ध के अरब गवर्नर की राजधानी मन्सूरा के ध्वस्त नगर का प्रतिनिधि है। अतः ब्राह्मना अथवा ब्राह्मनाबाद का हिन्दू नगर दिलूरा नामक खण्डहरों के टीले के पड़ोस में देखा जाना चाहिए जो विशाल टीले से केवल डेढ़ मील की दूरी पर है।

खण्डहरों की खोज करने वाले श्री बिलासिस के विशाल टीलों को स्वयं ब्राह्मना-

---

(१) आइने अकबरी में बुर्जों की संख्या १४०० बताई गई है जिससे नगर की परिधि ४० मील हो जायगी। प्रतिलिपि में इसकी संख्या १४० दी गई है। इलाही गज में ४१½ सिकन्दरी तनका हुआ करते थे और क्योंकि ६२ सिकन्द्रियों की औसतन चौड़ाई ७२·३४ इञ्च थी अतः इलाही गज की लम्बाई ३०.०२½ इञ्च रही होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाद के अनुरूप बताया है परन्तु इस सम्बन्ध में श्री थामस ने उचित आपत्ति की है। उनका कथन है कि खुदाई के बीच प्राप्त अनेकानेक मध्यकालीन मुद्राओं में, "हिन्दू मुद्राओं की संख्या सीमित है और यह भी अन्य प्रान्तों की मुद्रायें प्रतीत होती हैं जिनमें न कोई उल्लेखनीय समानता है न किसी युग विशेष का संकेत करती है।" स्थानीय मुद्राओं में पूर्ण रुपेण सिन्ध के अरब गवर्नरों की मुद्राओं के नमूने हैं। जिनके पार्श्व में मनसूरा का नाम खुदा हुआ है और जहाँ तक मुझे ज्ञान है एक भी ऐसी मुद्रा नहीं है जिसे सिन्ध के किसी हिन्दू राजा से सम्बन्धित किया जा सके। अतः खेद है कि श्री बिलासिस ने दिलूरा के छोटे टीले की अधिक खोज नहीं की जिससे सम्भवतः इसकी उच्च प्राचीनता का कोई सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त किया जा सकता।

स्थानीय ऐतिहासिक पुस्तकों एवम् जनश्रुतियों के अनुसार ब्राह्मनाबाद का विनाश दिलू राय नामक इसके शासक की धूर्तता के परिणामस्वरूप भूकम्प से हुआ था। इस शासक का समय सन्देहपूर्ण है। एम० मुदेरो ने इसे १४० हिजरी अथवा ७५७ ई० कहा है जब दिलू का बन्धु छोटा भाई मक्का की तीर्थ यात्रोपरान्त वापस आया था। परन्तु दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब मसूदी एवम् इब्न हौकल ने मनसूरा की यात्रा की थी यह उस समय भी समृद्धशाली नगर था अतः यह स्पष्ट है यह भूकम्प ६५० ई० से पूर्व नहीं आया था। दिलू एवम् छोटा भाई को ब्राह्मनाबाद के राय अथवा शासक अमीर का पुत्र बताया जाता है परन्तु यह विश्वास करना कठिन है कि मनसूरा में अरब शासन के समय ब्राह्मनाबाद में कोई हिन्दू शासक था। तथ्य यह है कि पञ्जाब तथा साथ ही साथ सिन्ध के सभी प्राचीन नगरों के सम्बन्ध में एक ही चिरपरिचित कथा बताई जाती है। शोरकोट, हड़प्पा तथा अटारो तथा साथ ही साथ अलार ब्राह्मना तथा बम्भूरा सभी को उनके शासकों के पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप ध्वस्त हुआ बताया जाता है। परन्तु तुलम्बा के सम्बन्ध में भी इसी कथा का उल्लेख किया जाता है और हम जानते हैं कि यह कथा झूठी है क्योंकि मैं इसके विनाश के वास्तविक कारण अर्थात् रावी द्वारा इस स्थान से हट जाने का उल्लेख कर चुका हूँ। श्री बिलासिस की खोज से यह स्पष्ट हो चुका है कि ब्राह्मना का विनाश भूकम्प के कारण हुआ था। मानव हड्डियाँ "मुख्य रूप से द्वार पर प्राप्त हुई थी। लगता है कि वह भागने की चेष्टा कर रहे थे। अन्य हड्डियाँ भवनों के भीतर कोनों पर मिली है। कुछ शव सीधे खड़े थे कुछ लेटे हुये थे जिनके चेहरे,, भूमि की ओर थे। कुछ एक बैठी अवस्था में ही दब गये थे। निश्चित ही नगर का विनाश अग्नि से नहीं हुआ था क्योंकि श्री रिचर्डसन ने लिखा है कि उन्हें कोयले अथवा जली हुई लकड़ी के चिह्न नहीं मिले और न ही प्राचीन दीवारों पर अग्नि के चिन्ह थे। इसके विपरीत उन्हें भी कमरों के कोनों में दबी हुई मानव हड्डियाँ प्राप्त हुई थीं। लगता है कि अपने भवनों को अपने ही ऊपर गिरते देखकर भय-भीत निवास कमरों के कोनों में इकट्ठा हो गये थे तथा मलबे में दब गये थे। श्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रिचर्डसन ने एक ऐसी ईंट उठाई थी जिसकी "नोक खोपड़ी में घुस गई थी तथा निकाले जाने पर हड्डी का टुकड़ा साथ आ गया था।" उनका निष्कर्ष श्री विलालिस के समान है अर्थात "नगर का विनाश प्राकृति की भयानक भूकम्प के कारण हुआ था।"

बम्भरा-की-थूल में प्राप्त प्राचीन मुद्रायें, नगर के प्रसिद्ध संस्थापक, मनसूर के पुत्र, जम्हूर के समय से मसूदी के समकालीन उमर के समय तक सिन्ध के अरब शासकों से सम्बन्धित हैं। अतः सम्पूर्ण समय अर्थात् ७५० ई० से ९४० ई० अथवा कुछ समय पश्चात् तक यह स्थान बसा हुआ था।

यह मेरे उस कथन से ठीक-ठीक मिलता है जिसके सम्बन्ध में मैं पहले लिख चुका हूँ कि दसवीं शताब्दी के प्रथम आधे भाग में मसूदी तथा इब्नहौकल की यात्रा के समय नगर समृद्ध अवस्था में था अतः मैं इसके विनाश का समय उस शताब्दी के द्वितीय अर्धभाग में समझता हूँ तथा यह ९७० ई० से पूर्व नहीं हुआ था। यह सत्य है कि अगली शताब्दी के प्रारम्भ में अब्बुरेहान ने मन्सूरा का उल्लेख किया है तथा इससे भी कुछ समय पश्चात् इदरीसी कज़विनी तथा रशीदुद्दीन ने इसका उल्लेख किया है परन्तु अन्तिम तीनों लेखक केवल ग्रन्थ संग्रहकर्ता थे तथा उनके विवरण तदानुसार पूर्व काल से सम्बन्ध रखते हैं फिर भी अब्बुरेहान मूल लेखक है और चूंकि भारतीय भाषाओं के ज्ञान के कारण उसे शुद्ध सूचनाएँ प्राप्त करने की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी अतः उसकी साक्षी यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि मन्सूरा उसके समय में बसा हुआ था। सिन्ध की मार्ग सूचना के सम्बन्ध में लिखते समय उसने कहा है, "एरोर से बाहमनवा जिसे एल मन्सूरा भी कहा जाता है २० परसङ्ग की दूरी है तत्पश्चात् नदी के मुहाने पर लोहरानी तक ३० परसङ्ग है।" अतः मन्सूरा उस समय बसा हुआ था जब अब्बुरेहान ने १०३१ ई० के लगभग अपनी पुस्तक लिखी थी परन्तु महमूद गज़नी के आक्रमणों में केवल एक लेखक ने इनका उल्लेख किया अतः यह प्रायः निश्चित है कि यह एक विशाल दुर्ग तथा देश की राजधानी के रूप में नहीं जाना जाता था अन्यथा वह लोभी एवम् लेटेरा विजेता इसके धन की ओर आकर्षित होता। यह सम्भव है कि अधिकांश निवासी जो महान् विपत्ति से बच गये थे अपनी दबी हुई सम्पत्ति को ढूंढ़ने के लिए ध्वस्त नगर में वापिस आ गये हों तथा यह भी सम्भव है कि उनमें अधिकांश ने पुराने स्थानों पर अपने भवनों का पुनः निर्माण करवाया हो परन्तु नगर की दीवारें गिर चुकी थी तथा नगर सुरक्षित नहीं था। नदी धीरे-धीरे दूर चली गई थी तथा यहाँ जल का अभाव था तथा यह स्थान कुल मिलाकर इतनी अधिक जर्जर अवस्था में था कि ४१६ हिजरी अथवा १०२५ ई० में जब सोमनाथ का विजेता सिन्ध से होकर वापिस गया तो मन्सूरा की लूट उसे उसके सीधे मार्ग से हट जाने की प्रेरणा देने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए प्रर्याप्त न थी। अतः प्राचीन राजधानी की यात्रा किए बिना अथवा उसकी ओर ध्यान दिये बिना वह सहवान के मार्ग से गजनी वापिस चला गया। यदि हम इब्न-अथीर के एक मात्र कथन को स्वीकार कर लें कि इस अवसर पर महमूद ने मन्सूरा में मुस्लिम गवर्नर की नियुक्ति की थी तो उपर्युक्त कथन में सन्देह किया जा सकता है।

निचला सिन्ध अथवा लार

ह्वेनसांग ने पित्तसिला के जिले अथवा निचले सिन्ध की परिधि को ३००० ली अथवा ५०० मील बताया है जो सिन्धु नदी के पूर्व में उमरकोट के मरुस्थल तक तथा पश्चिम में कुमारी मोन्ज के पर्वतों तक नदी के दोनों ओर विस्तृत छोटे प्रदेश सहित हैदराबाद से समुद्र तक सिन्धु नदी तक मुहाने के आकार से ठीक-ठीक मिलता है। इन सीमाओं में भीतर निचले सिन्ध के आंकड़े इस प्रकार हैं। पश्चिमी पर्वतों से उमरकोट के पड़ोस तक १६० मील, उसी स्थान से कुमारी मोन्ज तक ८५ मील; कुमारी-मोन्ज से सिन्धु नदी को कोरी मुहाने तक १३५ मील; तथा कोरी मुहाने से उमरकोट तक १४० मील अथवा कुल मिलाकर ५२० मील। इस भूमि में जिसे रेतीलो एवम् नमक युक्त कहा गया है अन्न एवम् सब्जियाँ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती हैं परन्तु फल एवम् फूल कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं और यह कथन वर्तमान समय तक मुहाने के सम्बन्ध में सत्य है।

सिकन्दर के समय में मुहाने का एक मात्र उल्लेखनीय स्थान पटाला कहा जाता है कि अपनी नौकाओं के बेड़े को चलाने के लिये वायु की प्रतीक्षा करते हुए निचले सिन्ध में निवास के लम्बे समय में उसने अनेक नगरों की स्थापना की थी। दुर्भाग्यवश इतिहासकारों ने इन स्थानों के नामों का उल्लेख नहीं किया है। केवल जस्टिन ने लिखा है कि सिन्धु तक अपनी वापसी के समय उसने बरसी नामक नगर का निर्माण करवाया था। अब मैं इसी का उल्लेख करूंगा। टालमी ने बारबरा, सोसीकाना, बोनिस तथा कोलक आदि अनेक स्थानों के नामों को सुरक्षित रखा है। प्रथम नाम सम्भवतः पैरीप्लस के बरबारकी, एमपोरियम तथा जस्टिन के बरसी के समान है। पैरीप्लस के लेखक के समय में निचले सिन्ध की राजधानी मिन्नागरा थी। जहाँ विदेशी व्यापारी बरबारकी से नदी के मार्ग से पहुँच सकते थे। सातवीं शताब्दी के मध्य में ह्वेनसांग ने केवल पित्तसिला अथवा पटाला का उल्लेख किया है परन्तु आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुहम्मद बिन कासिम के अभियान के इतिहासकारों ने हमारी अल्प सूची में देबल तथा निरनकोट के नाम जोड़ दिए हैं। दसवीं शताब्दी में अरब भूगोल शास्त्रियों ने इस सूची में वृद्धि की है। उन्होंने मनहातारा अथवा मनहाबारी को सिन्धु नदी के पश्चिम में देबल से दो दिन की यात्रा पर उस स्थान पर दिखाया है जहाँ देबल से आने वाली सड़क नदी के पार जाती है। अब मैं इन स्थानों का उत्तर से पश्चिम,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके स्थिति के अनुसार मुहाने के सिरे पर पटाला से प्रारम्भ कर उल्लेख करूगाँ।

पटाला, निरनकोट

एम मुर्डो, मसोन, बर्टन तथा ईस्टविक के एक मत साक्षी के अनुसार निरनकोट को हैदराबाद के स्थान पर निश्चित किया गया है। केवल सर हैनरी इलियट ने इसे जरक के स्थान पर दिखाया है क्योंकि उनका विचार है कि यह स्थान स्थानीय इतिहासकारों के विवरण से अधिक मिलता है, परन्तु चूंकि हैदराबाद नगर का आधुनिक नाम है जिसे जन साधारण अब भी निरनकोट के रूप में जानते हैं अतः निरून अथवा अरब इतिहासकारों तथा भूगोल शास्त्रियों के निरुनकोट के अनुरूप स्वीकार करने में कोई सन्देह नहीं प्रतीत होगा। अब्बुलफेदा ने इसकी स्थिति को देबल से २५ परसंग तथा मंसूरा से १५ परसङ्ग की दूरी पर बताया है जो इस्तरवरी तथा इब्न हौकल के अपेक्षाकृत कम निश्चित कथनों से मिलता है। जिन्होंने केवल इतना कहा है कि यह देबल तथा मंसूरा के बीच, परन्तु अन्तिम नगर के अधिक समीप है। यह नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था तथा अच्छे मोर्चाबन्द परन्तु छोटे नगर के रूप में इसका उल्लेख किया गया है जिसमें वृक्षों की संख्या कम थी। अब, हैदराबाद ब्राह्नाबाद अथवा मंसूरा के ध्वस्त नगर से ४७ मील तथा लारी-बन्दर से ८५ मील की दूरी है जिसे मैं प्राचीन देबल के सर्वाधिक सम्भावित स्थान के रूप में दिखाने का प्रयत्न करूँगा। जबकि जरक ब्राह्मणाबाद से ७४ मील तथा लारी-बन्दर से केवल ६० मील की दूरी पर था। अतः हैदराबाद की स्थिति जरक की अपेक्षा लिखित दूरियों से अधिक मिलती है। वर्तमान समय में सिन्धु नदी की मुख्य शाखा हैदराबाद के पश्चिम में बहती है परन्तु हम जानते हैं कि फुलेलो अथवा पूर्वी शाखा पूर्व काल में मुख्य नदी थी। एम मुर्डो के अनुसार हैद नदी के हैदराबाद से पश्चिम की ओर चले जाने की घटना १००० हिजरी अथवा १५६२ ई० के पूर्व से पहले हुई होगी तथा यह परिवर्तन नासिरपुर के ह्रास के समय से मिलती है जिसकी स्थापना केवल ७५१ हिजरी अथवा १३५० ई० में हुई थी। चूंकि अब्बुलफज़ल ने थट्टा प्रान्त के एक उपखण्ड के मुख्य स्थान के रूप में नासिर पुर का उल्लेख किया है अतः सिन्धु की मुख्य शाखा अकबर के शासन काल के प्रारम्भिक समय तक हैदराबाद के निरनकोट के पूर्व में प्रवाहित रही होगी।

निरूनकोट एक पहाड़ी पर अवस्थित है तथा इसके पड़ोस में एक झील थी जिसमें मुहम्मद कासिम का बेड़ा आ सकता था। सर हैनरी इलियट ने प्रथम को सिन्धु नदी के पश्चिम जरक की पहाड़ियों तथा द्वितीय को जरक के दक्षिण में हेलाई के समीप किंजूर झील के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु किंजूर झील सिन्धु नदी से सम्बन्धित नहीं है अतः सिन्धु नदी के मार्ग से बेड़े के ले जाए जाने के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता था अतः निरनकोट के प्रतिनिधि के रूप में हैदराबाद की अपेक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जरक को प्राप्त कथित लाभ समाप्त हो जाता है। सर हैनरी ने स्वीकार किया है "कि इसकी स्थिति का निर्धारण मुख्य रूप से अन्य स्थानों पर निर्भर करता है जिन्हें विवाद-ग्रस्त नगरों विशेषतयः देबल तथा मन्सूरा से सम्बन्धित किया जाता है।" प्रथम नगर को उन्होंने करांची से तथा अन्तिम नगर को हैदराबाद के अनुरूप स्वीकार किया है तथा इन्हीं के अनुसार ही वह निरनकोट को जरक के स्थान पर निश्चित करने के लिए बाध्य हैं। परन्तु 'सिन्ध में अरबों के परिशिष्ट' लिखने के पश्चात् श्री बिलासिस ने उसी स्थान पर बम्भरा-का-थूल नामक प्राचीन नगर की खोज की है जिसे काफी समय पूर्व एम मुर्डो ने ब्राहमनाबाद के स्थान के रूप में माना था। मंसूरा तथा ब्राहमणाबाद के प्रसिद्ध नगरों के स्थान से इसकी अनुरूपता के कारण हैदराबाद अथवा प्राचीन निरनकोट, बिलदूरी तथा चच्चनामा के निरून कोट के प्रतिनिधि के रूप में रह जाता है। बम्भर-का-थूल से इसकी ४७ मील की दूरी तथा लारी बन्दर से ८५ मील की दूरी अब्बुलफिदा के १५ तथा २५ परसंगों से प्रायः ठीक-ठीक मिल जाती है। यह भी पहाड़ी पर अवस्थित है अतः स्थान एवं नाम दोनों में यह निरनकोट से मिलता है। गंजा नामक पहाड़ी १½ मील लम्बी ७०० गज चौड़ी है और इसकी ऊँचाई ८० फुट है। वर्तमान दुर्ग ११८२ हिजरी अथवा १७६८ ई० में मीर गुलाम शाह द्वारा बनवाया गया था। पहाड़ी का लगभग एक तिहाई भाग, पश्चिमी छोर पर दुर्ग से घिरा हुआ है। मध्य भाग, मुख्य सड़क तथा नगर के घने भवनों से तथा उत्तरी भाग मकबरों से घिरा हुआ है।

६४१ ई० में जब चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने सिन्ध की यात्रा की थी वह कच्छ की राजधानी कोटेश्वर से ११७ मील ठीक उत्तर की ओर पी-तो-शो-लो तक गया था। तत्पश्चात् वह ३०० ली अथवा ५० मील उत्तर पूर्व की ओर ओ-फान-च तक गया था जिसे मैं ब्राहमणाबाद के अनुरूप बता चुका हूँ। एम० जुलीन ने चीनी अक्षर को पित्तशिला पढ़ा है परन्तु मैं इसे पाटशिला अथवा "चिपटी चट्टान" पढ़ने का इच्छुक हूँ। जो उस लम्बी समतल एवं खुली पहाड़ी का सही विवरण देता है जहाँ हैदराबाद अवस्थित है। यह नाम पातालपुर का स्मरण दिलाता है जो बर्टन के अनुसार हैदराबाद अथवा निरनकोट का प्राचीन नाम था और चूंकि यह नगर कोटेसर से ठीक १२० मील उत्तर में तथा ब्राहमणाबाद के ४७ मील दक्षिण पश्चिम में है अतः मुझे इसे चीनी तीर्थयात्री के पित्तसिला के अनुरूप स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है। पहाड़ी का आकार भी जो १½ मील लम्बा तथा ७०० गज चौड़ा अथवा परिधि में ३ मील है, पित्तशिला के आकड़ों से अधिक समीप है। ह्वेनसांग के अनुसार पित्तशिला की परिधि २० ली अथवा ३⅓ मील थी।

पातालपुर तथा पाटशिला के नामों से इस सम्भावना का संकेत मिलता है कि हैदराबाद सिकन्दर के इतिहासकारों का पटाला हो सकता है जिसे उन्होंने एक मत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से मुहाने के सिरे के समीप बताया है। अब, मुहाने का वर्तमान सिरा हैदराबाद से १२ मील ऊपरी मट्टारी के पुराने नगर के स्थान पर है जहाँ फुलेली सिन्धु नदी की मुख्य शाखा से अलग होती है। परन्तु प्राचीन काल में जब मुख्य नदी जिसे अब पुराना कहा जाता है अलोर तथा ब्राह्मणाबाद से होकर निरूनकोट तक जाती थी उस समय सिन्धु की शाखाओं के भिन्न-भिन्न होने का प्रथम स्थान या तो स्वयं हैदराबाद में था जहाँ से मियानी से होते हुए त्रिकाल तक एक शाखा जाती थी अथवा यह स्थान इससे १५ मील दक्षिण पश्चिम में था जहाँ अब फुलेली गुनी शाखा को दक्षिण की ओर ढकेल देती है तथा यह स्वयं पश्चिम दिशा में प्रवाहित होकर त्रिकाल के स्थान पर वर्तमान सिन्धु नदी में मिल जाती है। अतः प्राचीन मुहाने का मुख्य सिरा या तो हैदराबाद में था अथवा इससे १५ मील दक्षिण पूर्व में, जहाँ गुनी अथवा सिन्धु की पूर्वी शाखा फुलेली अथवा पश्चिमी शाखा से अलग होती है।

अब पटाला की स्थिति को अनेक स्वतन्त्र आंकड़ों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है :—

प्रथम—टालमी के अनुसार मुहाने का सिरा ओस्कन तथा लोनीबारे ओस्टियम नामक सिन्धु के पूर्वी मुहाने के ठीक मध्य में था इससे पटाला की स्थिति हैदराबाद के स्थान पर निश्चित होती है जो ओक्सीकनस की राजधानी अर्थात् लरकाना के समीप महोर्टा तथा कोरी अथवा सिन्धु नदी के पूर्वी मुहाने से समान दूरी पर है। कोरी लोनी नदी अथवा लोनी बारे ओस्टियम का मुहाना भी है।

द्वितीय—अरिस्टोबूलस सिन्धु के मुहाने को १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील आंका था। निर्यकस ने इसे १८०० स्टेडिया तथा ओनिसिक्रीटस ने २००० स्टेडिया आंका था। परन्तु पश्चिम में घार मुहाने से लेकर पूर्व में कोरी मुहाने तक वास्तविक तटीय लम्बाई १२० मील से अधिक नहीं है। हम अन्य लेखकों की अतिश्योक्तिपूर्ण संख्याओं की अपेक्षा अरिस्टोबूलस के अनुमान को अपना सकते हैं और चूंकि ओनिसिक्रीटस ने लिखा है कि मुहाने के तीनों किनारे समान लम्बाई के थे अतः सागर से पटाला की दूरी को १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील से १२५ मील स्वीकार किया जा सकता है। अब, घारा अथवा सिन्धु नदी के पश्चिमी मुहाने से हैदराबाद की दूरी ११० मील है तथा कोरी अथवा पूर्वी मुहाने से १३५ मील और यह दोनों दूरियाँ मुहाने के वास्तविक दूरी से समीप समानता रखती है। यह आंकड़े ओनिसिक्रीटस के विवरण का समर्थन करते हैं कि मुहाने से समभुज त्रिकोण बनता है। परिणाम स्वरूप पटाला नगर जो मुहाने के सिरे पर अथवा इसके समीप था प्रायः निश्चित रूप से वर्तमान हैदराबाद के अनुरूप समझा जा सकता है।

तृतीय—एरियन तथा कर्टियस के विवरणों की तुलना से प्रतीत होता है कि ब्राह्मणा अथवा ब्राह्मणों के नगर के स्थान पर पटाला के राजा ने सिकन्दर की अधी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नता स्वीकार कर ली थी परन्तु सिन्धु नदी में नीचे की ओर तीन दिन की यात्रा के पश्चात् सिकन्दर को सूचना मिली कि भारतीय शासक अपना देश त्याग कर मरु भूमि की ओर भाग गया है। सिकन्दर ने तुरन्त पटाला की ओर प्रस्थान किया। अब, सीधे स्थल मार्ग से ब्राह्मणाबाद से हैदराबाद की दूरी ४७ मील है परन्तु सिन्धु नदी का पुराना मार्ग नसीरपुर के मार्ग से घुमावदार रास्ते से जाता है अतः नदी तट के साथ-साथ बना मार्ग जिसे सेना ने निश्चित रूप से अनुसरण किया होगा ५५ मील से कम नहीं है जबकि जल मार्ग से इसकी दूरी ८० मील रही होगी। स्थल मार्ग से १० अथवा १२ मील की सामान्य दर से अथवा जल मार्ग से १८ अथवा २० मील की दर से प्रथम तीन दिनों में सिकन्दर स्थल मार्ग से हैदराबाद के १६ मील तथा जल मार्ग से २६ मील के भीतर पहुँच गया होगा और इस दूरी को उसने चौथे दिन की निरन्तर यात्रा के पश्चात् सरलता पूर्वक पूरा कर लिया होगा। पटाला से नदी की पश्चिमी शाखा के मार्ग से वह ४०० स्टेडिया अथवा ४६ मील दूर गया था जब उसके नव-सेना नायकों ने सर्व प्रथम सागरीय वायु का अनुमान लगाया। मेरा विश्वास है कि यह स्थान जरक था जो स्थल मार्ग से हैदराबाद से ३० मील तथा जल मार्ग से ४५ मील अथवा ४०० स्टेडिया की दूरी पर था। यहाँ पर सिकन्दर ने मार्ग दर्शकों की सहायता प्राप्त की तथा अधिक उत्साह के साथ यात्रा को जारी रखते हुए तीसरे दिन ज्वार भाटे के कारण उसे समुद्र की समीपता का ज्ञान हुआ। चूंकि सिन्धु नदी में ज्वार भाटा समुद्र से ६० मील के पश्चात् नहीं देखा जाता अतः मेरा निष्कर्ष है कि सिकन्दर उस समय नदी की पश्चिमी शाखा घाट पर अवस्थित बाम्भरा नामक स्थान पर पहुँचा होगा जो समुद्र से स्थल मार्ग से ३५ मील तथा जल मार्ग से लगभग ५० मील की दूरी पर है। जरक से इसकी दूरी स्थल मार्ग द्वारा ५० मील तथा जल मार्ग से ७५ मील है जिसे नौकाओं के बेड़े ने तीन दिन में सरलता पूर्वक पूरा कर लिया होगा। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पटाला समुद्र से काफी दूरी पर रहा होगा अर्थात् ज्वार भाटे से पहुँच की दूरी तथा तीन दिन की यात्रा एवं ४०० स्टेडिया दूर रहा होगा। स्थल मार्ग से यह दूरियाँ क्रमशः ३३ मील ५० मील तथा ३० अर्थात् कुल मिला कर ११३ मील है। जो अरिस्टोबूलस के १००० स्टेडिया अथवा ११५ मील के माप से प्रायः ठीक-ठीक मिलती है।

चूंकि उपर्युक्त तीनों स्वतन्त्र विचार धाराएँ पटाला के सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में एक ही स्थान की ओर संकेत करती हैं और चूंकि सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने इसे पतशिल कहा है तथा यह स्थान आज भी पाटलपुर के नाम से जाना जाता है। अतः मेरा विचार है कि हैदराबाद को प्राचीन पटाला के अनुरूप स्वीकार करने के लिए अधिक ठोस कारण उपस्थित हैं।

सिन्धु नदी के सम्बन्ध में अपने विवरण में एरियन ने लिखा है कि, "यह नदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने दो मुहानों के द्वारा एक त्रिभुजाकार आकार बनाती है जो मिश्र के मुहाने से किसी प्रकार कम नहीं है जिसे भारतीय भाषा में पाटला कहा जाता है।'' चूंकि यह कथन निर्यकस के विवरण पर आधारित है जिसे सिन्ध में लम्बी अवधि तक रहने के कारण जन-साधारण से बातचीत करने के प्रचुर अवसर प्राप्त हुए थे। अतः हम इसे तत्कालीन सिन्धियों के सामान्य विश्वास के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। अतः मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि यह नाम सिन्धु नदी के पूर्वी एवं पश्चिमी शाखाओं के मध्य प्रान्त के ''तुरही'' आकार के कारण पाटला अर्थात् ''तुरही फून'' से लिया गया है क्योंकि यह दोनों शाखाएँ जैसे-जैसे समुद्र के समीप होती हैं यह तुरही के मुंह के समान बाहर की ओर फैलती जाती है।

मैं इस प्राचीन नगर के स्थान पर यह विचार विमर्श एक अन्य नगर के उल्लेख किए बिना समाप्त नहीं कर सकता जिसका परस्पर विरोधी विवरण निरूनकोट से भ्रम पूर्वक सम्बन्धित प्रतीत होता है। यह नाम इस्तखरी का फिरूज़, इब्नहौकल का कन्नाजबर, इद्रीसी का फिरबुज़ है। इस्तखरी के अनुसार फिरूज़ देबल से चार दिन की यात्रा पर तथा मेहाबारी से दो दिन की यात्रा पर था जो स्वयं देबल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था। इब्नहाऊकल तथा इदरीसी इस बात पर सहमत हैं कि कन्नजबर तथा फिरबुज़ की ओर जाने वाली सड़क मनहा-बारी अथवा मनजाबारी से होकर जाती है जो देबल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित था। परन्तु उन्होंने देबल के पश्चात् सम्पूर्ण दूरी को चार की अपेक्षा १४ दिन बताया है। अब, इब्नहौकल तथा इदरीसी ने अपने नगर को मेकरान में बताया है। १४ दिन की कथित दूरी के कारण उन्हें उपर्युक्त स्थिति को स्वीकार करने के लिए प्रायः बाध्य होना पड़ा था जबकि प्रथम दो दिन की यात्रा मेकरान की विपरीत दिशा में पड़ती है। यदि हम देबल से चार दिन की संक्षिप्त दूरी को स्वीकार कर ले जिसे तीन भूगोल शास्त्रियों में प्रथम भूगोल शास्त्री इस्तफरी ने बताया है तो उनके अज्ञात नगर की स्थिति निरनकोट की स्थिति से ठीक-ठीक मिल जाएगी। मैं देबल को लारी बन्दर के समीप एक प्राचीन नगर, तथा मनहाबारी को थट्टा के अनुरूप समझूंगा जो लारी बन्दर तथा हैदराबाद के प्रायः मध्य में अवस्थित है। अब, इब्नहौकल ने विशेष रूप से लिखा है कि मनजाबारी ''मेरान के पश्चिम में अवस्थित था तथा वहाँ कोई भी व्यक्ति जो देबल से मनसूरा की ओर जाता उसे नदी को पार करना पड़ा होगा क्योंकि अन्तिम नगर मनजाबारी के विपरीत था।'' इस संक्षिप्त विवरण से पता चलता है कि मनजाबारी सिन्धु नदी की पश्चिमी शाखा पर अवस्थित था अतः निरनकोट तथा साथ ही साथ फिरूज़ अथवा कन्नजबर अथवा फिरबुज़ की ओर जाने वाली मुख्य सड़क पर अवस्थित था। अतः मैं यह प्रस्ताव करूंगा कि प्रथम नाम जो मनहाबारी से सम्बन्धित किया गया है सम्भवतः इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयोग निरून के लिए किया गया है तथा अन्य दोनों नाम निरूनकोट के लिये प्रयोग में लाए गये हैं क्योंकि मूल अरबी स्वरूप में इन्हें प्रायः समान रूप से लिखा जाता था। परन्तु मेकरान निश्चित ही लगभग समान नाम का एक स्थान था क्योंकि बिलादूरी ने लिखा है कि देबाल के विरुद्ध जाते सबय मुहम्मद कासिम ने मेकरान में किज़्बुन पर अधिकार कर लिया था। (१) इब्नहौकल के कन्नज़बर तथा इदरीसी के फिरबुज़ से इस्लाम की तुलना करने पर मैं यह सम्भव समझता हूँ कि यह नाम पंजगूर के लिए लिखा गया होगा जैसा कि एम० रिनाड ने प्रस्तावित किया है। १४ दिन की यात्रा इस स्थान की स्थिति से भली प्रकार मिल जाएगी।

जरक

जरक का छोटा नगर हैदराबाद तथा थट्टा के मध्य सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर प्रमुख स्थान पर अवस्थित है। जरक विचालो अथवा मध्य सिन्ध तथा लार अथवा निचले सिन्ध की वर्तमान सीमा है। निचले सिन्ध की सीमाओं को हैदराबाद तक विस्तृत स्वीकार करना पड़ा है ताकि यूनानियों का पटाला तथा चीनी तीर्थ यात्री के पितशिला को इसमें सम्मिलित किया जा सके। सम्भवतः यह खोर अथवा अलखोर नामक छोटा परन्तु जनपूर्ण नगर का स्थान है जिसे इदरिसी ने मनहाबारी तथा फिर बुज़ अर्थात् थट्टा तथा निरनकोट के मध्य बताया है। जरक से तीन मील नीचे खण्डहरों से ढकी एक अन्य निचली पहाड़ी है जिसे जन-साधारण काफिर कोट कहा करते हैं तथा राजा मनझीरा से इसे सम्बन्धित बतलाते हैं। मुख्य खण्डहर एक वर्गाकार कमरा है जिसे समान दूरी पर बने चौकोर खम्बों से सजाया गया है। इसे एक मन्दिर के अवशेष समझा जाता है। इन खण्डहरों में बौद्ध मूर्तियों के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए थे तथा पहाड़ी से कुछ दूरी पर प्राचीन भारतीय लिपि में कुछ शिला लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें मैं केवल पुत्रस तथा भग्वतस शब्द एवम् भिन्न भागों में कुछ अन्य शब्द पढ़ सका हूँ परन्तु यह सभी इस बात के प्रमाण हैं कि शिला लेख एवं अन्य खण्डहर बौद्ध कालीन हैं।

मीननगर, मनहाबारी अथवा थट्टा

थट्टा नगर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट से तीन मील, सटा हुआ नदी की मुख्य धारा से बागर अथवा पश्चिमी शाखा के अलग होने के स्थान से ४ मील ऊपर, एक निचली दलदल वाली घाटी में अवस्थित है। मि० लिटल वुड ने लिखा है कि "कूड़े का ढेर" जिस पर भवन खड़े किये गये हैं घाटी के स्तर से थोड़ा ऊपर उठ गया है।

---

(१) सर हेनरी इलियट ने इस्तखरी द्वारा दिये गये नाम को कनज़बून कहा है जिसे मुसलमान लेखकों ने फिरियून पढ़ा है। इन भिन्नताओं का सर्वाधिक सम्भावित उत्तर, निरून एवम् मेकरान की राजधानी के नामों के द्विविधात्मक अरबी स्वरूप में देखा जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६६६ ई० में कैप्टन हैमिल्टन ने इस स्थान की यात्रा की थी जिन्होंने इसे सिन्धु नदी से २ मील दूर एक खुले मैदान में अवस्थित बताया है। अतः यह अत्यधिक सम्भव है कि यह नगर मूल रूप से नदी तट पर अवस्थित था। परन्तु यह नदी धीरे-धीरे नगर से दूर चली गई। इसके नाम से भी इसी निष्कर्ष का संकेत मिलता है क्योंकि थट्टा का अर्थ है "नदी तट अथवा समुद्र तट।" अतः नगर थट्टा जो इस स्थान का सामान्य नाम है, का अर्थ इस प्रकार होगा, "नदी तट पर अवस्थित नगर।" इसकी तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। परन्तु एम० मुरडो जिनका कथन सामान्य रूप से अधिक शुद्ध है, का कथन है कि इसकी स्थापना ६०० हिजरी अथवा १४६५ ई० में सिन्ध के शासक अथवा जाम निजामुद्दीन नन्दा ने करवाई थी। उसके समय से पूर्व निचले सिन्ध का मुख्य नगर सम्मा जाति की राजधानी सामी नगर था जो थट्टा के स्थान से ३ मील उत्तर पश्चिम में एक उठते हुए मैदान में अवस्थित है। एम० मुरडो का कथन है कि इसकी स्थापना दिल्ली के अलाउद्दीन के समय में हुई थी जिसने ६६५ से ७१५ हिजरी अथवा १२६५ ई० से १३१५ ई० तक शासन किया था। कल्यानकोट अथवा तुग़लकाबाद का विशाल दुर्ग इससे पुराना है जो थट्टा के ४ मील दक्षिण पश्चिम में चूने के पत्थरों की पहाड़ी पर अवस्थित है। इसका दूसरा नाम गाज़ीबेग तुगलक से लिया गया है जो अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्तिम भाग में, चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुल्तान तथा सिन्ध का गवर्नर था।

थट्टा के स्थान को आधुनिक स्वीकार किया जाता है परन्तु सामी नगर कल्याण कोट के स्थानों को अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है। जन साधारण का यह विश्वास निस्सन्देह सही है क्योंकि मुहाने के सिरे पर अवस्थित होने के कारण यह सम्पूर्ण नदी पर नियम नियन्त्रण रखता है जबकि पर्वतीय दुर्ग सुरक्षा प्रदान करता है। लैफ्टीनेन्ट वुड ने टिप्पणी की है कि थट्टा का स्थान व्यापारिक उद्देश्यों के लिए अत्यन्त लाभ-पूर्ण है। यह सम्भव प्रतीत होता है कि प्राचीनतम समय से इसके पड़ोस में बाजार रहा हो। "परन्तु" उसने उचित रूप से यह जोड़ दिया है कि "क्योंकि मुहाने का सिरा एक निश्चित बिन्दु नहीं है अतः नदी के परिवर्तन के साथ-साथ इस नगर के स्थान में भी परिवर्तन हुआ होगा।" स्वभाविक है कि स्थान के परिवर्तन में, नामों में भी परिवर्तन हुआ होगा अतः मेरा विश्वास है कि थट्टा अरब भूगोल शास्त्रियों के मनहाबारी तथा पैरीपलस के लेखक के मनि नगर का वास्तविक स्थान था।

सभी लेखकों ने मनहाबरी को देबल से दो दिन की यात्रा पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित बताया है। अब, थट्टा इसी स्थान पर अवस्थित है जो लारी बन्दर से दो दिन की यात्रा पर अथवा ४० मील की दूरी पर सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है। आगे चल कर मैं बताऊंगा कि लारी बन्दर प्रायः निश्चित रूप से देबल के प्रसिद्ध नगर के कुछ ही मीलों के भीतर था। मनहाबारी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम को मेह्राबारी तथा मञ्जाबारी आदि भिन्न रूप से लिखा गया है जिसके लिए मैं प्रस्ताव करूँगा कि इसे हम सम्भवतः मण्डाबारी अथवा मण्डावरी अर्थात् "मण्डजाति का नगर" पढ़ सकते है। ठीक उसी प्रकार जैसे सामी नगर को "सम्मा जाति का नगर" कहा जाता है। नाम की मूल व्युत्पत्ति इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मण्ड जाति ईसा काल के प्रारम्भ से अधिक संख्या में निचले सिन्ध में बसी हुई है। इदरिसी ने मण्ड जाति को बहुसंख्यक एवं वीर जाति कहा है जो सिन्धु तथा भारत की सीमाओं पर मरुस्थल में बसी हुई है तथा यह जाति उत्तर में अलोर तक, पश्चिम में मेकरान था तथा पूर्व में ममेहेल (अथवा उमरकोट) तक फैली हुई है। इब्न हौकल ने लिखा है कि "मण्ड जाति के लोग मुल्तान की सीमाओं से समुद्र तक मिहरान के तट पर तथा मेकरान तथा फामहल (अथवा उमरकोट) के बीच मरु भूमि में बसे हुए हैं। उनके पास अनेक पशु एवम् चरागाहें थी तथा उनकी जनसंख्या अधिक थी।" इस समय से पूर्व ही रशीदुद्दीन ने इन्हें सिन्ध का निवासी कहा है। उसके विवरण के अनुसार नोहा के पुत्र हाम के दो वंशज मेद तथा जट, महाभारत के समय से पूर्व सिन्घ के निवासियों के पूर्वज थे। यह नाम मेर, मेड, मण्ड आदि भिन्न भिन्न रूप में लिखा गया है और यह सभी नाम वर्तमान समय में भी मिलते हैं। इन नामों के साथ मैं मिन्द नाम जोड़ दूँगा जो मसूदी द्वारा दिये गये नाम का स्वरूप है। पहले ही मैं इस जाति को प्राचीन लेखकों के मेदी तथा मण्ड्रेनो के अनुरूप बता चुका हूँ और चूंकि उनके नाम केवल ईसवी काल उत्तरी भारत में पाये जाते हैं अतः मेरा निष्कर्ष है कि मण्ड्रेनी तथा ओक्षस के इयाटी जिन्हें प्लिनी ने एक साथ जोड़ दिया है सकाय इण्डो सीथियन रहे होंगे जो पञ्जाब एवं सिन्ध में बसे हुए थे तथा जिन्होंने प्रारम्भिक मुसलमान लेख के मण्ड एवं जाट नाम से सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में सिन्धु नदी की सम्पूर्ण घाटी पर अधिकार कर रखा था।

यह दिखाने के लिए कि नाम के विभिन्न स्वरूप केवल उच्चारण के स्वभाविक परिवर्तन मात्र है, मैं शाहपुर तथा झेलम जिलों के दो विशाल मानचित्रों का उल्लेख कर सकता हूँ जो अन्तिम कुछ वर्षों में भारत के महा सर्वेक्षक द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। अन्तिम मानचित्र में जलालपुर से ६ मील ऊपर झेलम नदी पर अवस्थित एक गाँव का नाम मेरिआला लिखा गया है तथा प्रथम मानचित्र में इसे मण्डिआली लिखा गया है। अब्बुलफजल ने इसी स्थान को मेराली कहा है जबकि फरिश्ता ने इसका नाम मेरिआला बताया है। अन्त में विलफोर्ड के सर्वेक्षक मुगलवेग ने इसे मण्डिआला लिखा है जो मुझे दा विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त नाम से मिलता है जबकि जनरल कोट के मानचित्र में इसे मामरिआला लिखा गया है।

मैं मीन नगर अथवा "मीन का नगर" को इन्हीं लोगों से सम्बन्धित बताऊंगा। मीन नगर ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी में निचले सिन्ध की राजधानी थी। खरक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के इसी डोर की सूची में सकसटीन अथवा सिज़सतान के नगरों में एक नगर के रूप में बताए जाने के कारण हम जानते हैं कि मीन एक सीथियन नाम था। सिन्ध में इस नाम की उपस्थिति सीथियनों की उपस्थिति को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है परन्तु निम्न उल्लेख से सीथियनों एवं उपर्युक्त नाम का सम्बन्ध असंदिग्ध हो जाता है कि मीन नगर के शासक विरोधी पार्थियन जो परस्पर एक दूसरे को पदच्युत किया करते थे। यह पार्थियन ओक्षस के दहाए सीथियन थे जिन्होंने सिन्धु नदी की घाटी को इण्डोसीथिया का नाम दिया था तथा जिनकी पारस्परिक शत्रुता प्रारम्भिक मुसलमानों के मेड तथा जाटों की शत्रुता से अनुरूपता की ओर संकेत करती है।

मीन नगर का वास्तविक स्थान अज्ञात है तथा इसके स्थान के निर्धारण का प्रयत्न करने में हमारी सहायता बहुत कम आंकड़े उपस्थित हैं। चूंकि टालमी जिसने द्वितीय शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में लिखा है, इसका उल्लेख नहीं किया है। अतः मेरा अनुमान है कि या तो राजधानी को उस समय तक नवीन नाम नहीं दिया गया था अतः यह अधिक सम्भव है कि टालमी ने केवल पुराने नाम का उल्लेख किया है। यदि मैं मीन नगर अथवा "मीन का नगर" को मण्डाबारी अथवा "मण्ड जाति के स्थान" के अनुरूप स्वीकार करने में सही मार्ग पर हूँ तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि विशाल इण्डो-सीथियन राजधानी थट्टा में थी। इदरिसी ने मनहाबाद को एक निचले समतल पर अवस्थित तथा उद्यानों एवं बहते जल से घिरा हुआ नगर कहा है। केप्टन हमिल्टन ने थट्टा का इसी प्रकार उल्लेख किया है। उसका कथन है कि "यह नगर खुले मैदान में अवस्थित है तथा इन लोगों ने नगर में जल लाने के लिए तथा अपने उद्यानों के प्रयोग के लिए नदी से नहरें निकाल रखी थीं।" पैरीप्लस के लेखक के अनुसार व्यापारिक जहाज बारबारी के विक्रायलय पर रुका करते थे जहाँ समान उतार लिया जाता था तथा नदी मार्ग से राजधानी को भेजा जाता था। ठीक इसी प्रकार आधुनिक समय में समुद्री जहाज लारी बन्दर पर रुकते हैं जबकि व्यापारी अपना सामान स्थल अथवा जल मार्ग से थट्टा तक ले जाते हैं। मीन नगर की स्थिति का इतना स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि इसकी स्थिति के निर्धारण में इस उल्लेख से कोई सहायता नहीं मिलती। यदि यह थट्टा के स्थान पर था, जैसा कि मेरा विचार है, उस स्थिति में इसे टालमी के साओसीकना के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। जिसे मैं सूसीगाम अथवा "सूजाति का नगर" समझूंगा। उपर्युक्त शब्द व्युत्पति इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मण्ड अथवा मेड, सु अथवा अबार के विशाल जाति की शाखा थे जिन्होंने एक नाम दजला फरात नदी के मुहाने पर सुसिआना को तथा दूसरा नाम सिन्धु नदी के मुहाने पर अबीरिया को दिया था। फिर भी मुझे यह उल्लेख करना चाहिए कि एम० मुरडो के अनुसार "मिन्न नगर बारहवीं शताब्दी में मुलतान का एक आश्रित नगर था तथा अग्री जाति के एक शासक तथा सिकन्दर के वंशज के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार में था। यह लोहाना दरिया पर अवस्थित था जो बहमना से अधिक दूर नहीं है तथा उस परगना में है जिसे अब शहदादपुर कहा जाता है।" यह सन्देहास्पद स्थिति है कि पोस्टन अथवा इलियट ने इस उल्लेख को प्रमाणित नहीं किया है। अन्तिम लेखक जिसने अपनी पुस्तक तोहफात-उल-किराम का निरन्तर उल्लेख किया है, ने उपर्युक्त उल्लेख को एम० मुडरो से लिया है। इस विवरण में मैं यह जोड़ सकता हूँ कि अग्री एक सर्व प्रसिद्ध निचली जाति है जो नमक के उत्पादन में नियुक्त हैं अतः मैं यह स्वीकार करने का इच्छुक नहीं हूँ कि यह छोटा स्थान इण्डोसीथिया की विशाल राजधानी से किसी रूप में सम्बन्धित हो सकता है। इसके विपरीत मैं मीन नगर के नाम को केवल मीन का नगर समझता हूँ।

बरबारीके-विक्रयालय अथवा बम्भूरा

बम्भोरा अथवा बम्भूरा का ध्वस्त नगर घार खाड़ी के सिरे पर बसा हुआ है जिसे "स्थानीय व्यक्ति सिन्ध की प्राचीनतम बन्दरगाह का स्थान समझते हैं।" 'अब मकानों, बुर्जों एवं दीवारों' के खण्डहरों को छोड़ अन्य कुछ शेष नहीं है परन्तु दसवीं शताब्दी के लगभग बम्भूरा बम्भो राजा नामक एक शासक की राजधानी थी। जन साधारण की प्रथाओं के अनुसार सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा किसी समय बम्भूरा से होकर बहती थी। कहा जाता है कि यह शाखा थट्टा से कुछ ऊपर मुख्य नदी से अलग हो जाती थी। एम० मुडरो ने इस तथ्य के लिए तबकात-ए-अकबरी को उधृत किया है कि अकबर के शासन काल में यह शाखा थट्टा के पश्चिम से बहा करती थी। इसी तथ्य के लिए सर हेनरी इलियट ने एन-को को उधृत किया है जो अनेक वर्षों तक थट्टा में अङ्गरेज रेज़ीडेन्ट थे। १८०० ई० में लिखते हुए एन को ने कहा है कि "नदी के उस विचित्र परिवर्तन से जो थट्टा से कुछ ऊपर पिछले २५ वर्षों में हुआ है वह नगर छोटे मुहाने के कोण से बाहर चला गया है जहाँ यह पूर्ववर्ती समय में बिलोचिस्तान की पहाड़ियों की ओर मुख्य भूमि पर अवस्थित था।" उपर्युक्त कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि घार नदी अन्तिम शताब्दी के द्वितीय अर्ध भाग तक सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा थी परन्तु एम० मुडरो के अनुार इससे काफी समय पूर्व यह नदी नौकाओं के लिए अनुपयुक्त हो गई थी क्योंकि १२५० ई० के लगभग नदी के सूख जाने के कारण बम्भर तथा देबल दोनों त्याग दिए गए थे। मेरी निजी पूछताछ से इसी तिथि का पता चलता है क्योंकि देबल उस समय बसा हुआ था जब खुवजिम के जल्लुलदीन ने १२२१ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया था तथा १३३३ ई० में यहाँ केवल खण्डहर थे जब इब्नबतूता लारी बन्दर गया था जिसने सिन्धु नदी को विशाल बन्दरगाह के रूप में देबल का स्थान ले लिया था।

एम० मुडरो ने स्थानीय लेखकों को उदधृत कर यह प्रदर्शित किया है कि सिन्धु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदी की उपर्युक्त पश्चिमी शाखा सागार नदी कहलाती थी और उसका विचार है कि इसे टालमी की सागपा ओस्टियम के अनुरूप समझा जा सकता है। जो उसके समय में सिन्धु नदी की सबसे पश्चिमी शाखा थी । अतः यह प्रायः सम्भव है कि एम मुरडों का अनुमान सत्य हो कि सिन्धु नदी को यह वही शाखा थी जिससे सिकन्दर ने यात्रा की थी। फिर भी नवीन मानचित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि थट्टा तथा घारा के मध्य इस नदी से एक अन्य शाखा निकल कर बाईं ओर मुड़ गई थी जो २० मील तक दूसरी शाखा के समान्तर बहती थी। तत्पश्चात् यह शाखा दक्षिण की ओर मुड़ कर लारी बन्दर से कुछ नीचे नदी की मुख्य धारा से मिल जाती थी। अब यही शाखा बम्भूरा के २ अथवा ३ मील दक्षिण में बहती है। अतः नदी के पिटी, फुण्डी, क्यार तथा रिनटियानी मुहानों से इस नगर में पहुँचा जा सकता था। अतः मैं बम्बूरा नगर को न केवल बरके नगर के अनुरूप समझने का इच्छुक हूँ जिसे अपनी वापसी के समय सिकन्दर ने बनवाया था वरन् मैं इसे टालमी के बरबारी तथा पैरीप्लस के लेखक के बरबारी के एम्पोरियम के अनुरूप भी समझता हूँ। अन्तिम लेखक ने अपने समय में सिन्धु नदी की केवल मध्य शाखा को बरबारीके के स्थान तक व्यापारिक नौकाओं को उपयुक्त बताया है। अन्य सभी छः शाखायें संकीर्ण एवं छिछली थीं। इस कथन से प्रतीत होता है कि २०० वर्ष ईसा से पूर्व घार नदी का जल कम होना शुरू हो गया था। टालमी ने नदो के मध्य मुहाने को जो उस समय नौकाओं के प्रवेश के लिये उन्मुक्त था खारीफोन पोसीटियम कहा है। इस नाम को मैं आधुनिक समय की क्यार नदी के अनुरूप समझूंगा जो ठीक उस स्थान तक चली जाती है जहाँ घार की दक्षिणी शाखा लारी बन्दर के समीप मुख्य नदी से मिल जाती है।

उपर्युक्त विचार विमर्श से मेरा निष्कर्ष है कि घार की उत्तरी शाखा सिन्धु की पश्चिमी शाखा थी जिसमें सिकन्दर एवं नियरकस ने नौकाओं द्वारा यात्रा की थी तथा २०० ई० से पूर्व इसका जल अधिक दक्षिण की ओर एक अन्य शाखा अर्थात् दक्षिणी घार में चला गया जो लारी बन्दर से कुछ नीचे सिन्धु नदी की मुख्य धारा में मिल जाती है। पैरीप्लस के लेखक के समय में व्यापारी जहाज नदी की इसी शाखा से होकर बरबारीके तक जाते थे जहाँ इनका सामान उतार लिया जाता था तथा नौकाओं में लाद कर देश की राजधानी मीन नगर तक ले जाया जाता था। परन्तु कुछ समय पश्चात् यह शाखा भी इस व्यापार के लिये अनुपयुक्त हो गई। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब अरबों ने सिन्ध पर आक्रमण किया उस समय देवल सिन्धु नदी का मुख्य बन्दरगाह बन चुका था तथा इसने बम्भूरा अथवा प्राचीन बारबरीके का स्थान पूरी तरह ले लिया था। परन्तु यद्यपि घार नदी व्यापारिक नौकाओं के लिये उपयोगी नहीं रही फिर भी इसका जल १३ वीं शताब्दी तक प्राचीन नगर से होकर गुजरता था। ततपश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि यह नदी पूर्णयतः सूख गई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देबल सिन्धी अथवा देबल

देबल का प्रसिद्ध बन्दरगाह, अथवा सिन्धु नदी के मध्य कालीन व्यापारिक सामान के बिक्री का स्थान अभी तक अनिश्चित है। अब्बुलफजल तथा पश्चात्वर्ती मुस्लिम लेखकों ने देबल को थट्टा से मिला दिया है परन्तु उनके लिखने के समय देबल बसा हुआ नहीं था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वह सभी लेखकों को देबल थट्टा के नाम से भ्रम हो गया था जो (नाम) प्रायः थट्टा के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मणा अथवा ब्राह्मणाबाद को देबल कांगड़ा कहा जाता था तथा देबल के प्रसिद्ध बन्दरगाह को देबल सिन्धी का नाम दिया गया था परन्तु दीवल अथवा देबल का साधारण अर्थ एक मन्दिर है। अतः देबल सिन्धी का अर्थ सिन्धियों के नगर अथवा उसके समीप अवस्थित मन्दिर रहा होगा। मेजर बरटन ने लिखा है कि थट्टा के दुशालों को अब भी शाल-ए-देबाली कहा जाता है। परन्तु इससे केवल यह सिद्ध होता है कि देबल वह स्थान था जहाँ व्यापारी थट्टा को शालें प्राप्त किया करते थे। ठीक इसी प्रकार मुल्तानी मट्टी का नाम उस स्थान से लिया गया है जहाँ से व्यापारियों को यह वस्तु उपलब्ध होती थी क्योंकि यह मिट्टी वस्तुतः डेरा गाजीखाँन से आगे सिन्धु नदी के पश्चिम मे पहाड़ियों में पाई जाती है। इसी प्रकार भारतीय स्याही के नाम को भारत से लिया गया है जहाँ व्यापारियों ने इसे सर्वप्रथम प्राप्त किया था। यद्यपि अब यह सर्व ज्ञात है कि इसका उत्पादन चीन में होता है। सर हेनरी इलियट, जो सिन्ध के भूगोल के सम्बन्ध में अन्तिम अनुवेक्षक हैं, ने देबल को कराची के स्थान पर बताया है परन्तु उन्होंने स्वीकार किया है कि "कराची के पश्चात्" लारी बन्दर "द्वितीय सर्वाधिक सम्भावित स्थान है।" परन्तु मैं श्री क्रो के विचार को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि देबल कराची तथा थट्टा के मध्य किसी स्थान पर अवस्थित था। उनका विचार विशेष महत्व रखता है क्यों है एम० मुरदो तथा इलियट ने स्वीकार किया है कि "स्थानीय अनुवेक्षक के रूप में पर्याप्त अवसर प्राप्त होने के कारण उनका विचार संतुलित था।" सर हेनरी ने इस तथ्य के लिए चचनामा उद्धत किया है कि "विपत्ति के समय सिरनदीप के जहाज देबल के किनारे तक लाये जाते थे। वह यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि यह बन्दरगाह समुद्र के समीप रही होगी वहाँ तङ्गामरा जाति के समुद्री डाकू जो कराची से लारी बन्दर के समुद्र तट पर बसे हुए थे ने उन पर आक्रमण किया था। इस कथन से पता चलता है कि यदि देबल को कराची अथवा लारी बन्दर के अनुरूप स्वीकार नहीं किया जा सकता तो उसे इन दोनों स्थानों के बीच किसी स्थान पर देखा जाना चाहिए।

कराची के पक्ष में सर हेनरी इलियट ने बिलदूरी को उधृत किया है जिसने लिखा है कि १५ हिज़री अथवा सन् ६३६ ई० में हाकिम ने अपने भाई मुगीर को तेबल की खाड़ी में अभियान पर भेजा था परन्तु जैसे लेआनस नगर लेआन की खाड़ी के तट पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है उसी प्रकार यह आवश्यक नहीं है कि देबल, देबल की खाड़ी के तट पर था। वस्तुतः इब्न-खुर्दादबे ने इसे मेहरान के मुहाने से दो फर्साङ्ग की दूरी पर बताया है जिसे मसूदी ने अधिक बढ़ा कर दो दिन की यात्रा की दूरी पर बताया है। चूंकि देबल सिन्धु नदी पर अवस्थित था अतः इसे कराची के अनुरूप स्वीकार नहीं किया जा सकता जो नदी के मुहाने से दूर समुद्र तट पर बसा हुआ है। हमारे सभी लेखक इस कथन में सहमत हैं कि यह नगर मेहरान अर्थात नदी की मुख्य धारा अथवा बघार के पश्चिम में था जो लारी बन्दर से होकर बहती है तथा पिट्टी, फुण्डी क्यारी तथा पिन्टयानी नामक अनेक भिन्न मुहानों से होकर समुद्र में गिरती है। परन्तु एम० मुरडो ने भी यह प्रदर्शित करने के लिए स्थानीय लेखकों को उधृत किया है कि यह सिन्धु नदी की सागारा शाखा पर अवस्थित था जो बम्भूरा से होकर बहती था। इन विवरणों के अनुसार देबल घार नदी की दक्षिणी शाखा अथवा सागारा शाखा के संगम से कुछ नीचे बघार नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित रहा होगा। अतः इसकी स्थिति को अनुमानतः स्थान पर निश्चित किया जा सकता है जो लारी बन्दर से ५ मील उत्तर में, बम्भूरा से १९ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नदी के पिट्टी पिन्टयानी मुहानों से लगभग ३० मील दूर है। यह स्थिति सर हेनरी इलियट द्वारा उद्धृत अन्य शर्तों का भी पालन करती है कि देबल तंगाभारा जाति के डाकुओं के प्रदेश में कराची अथवा लारी बन्दर के मध्य में था। यह श्री क्रो द्वारा दिये गये स्थान से भी सहमत है जिन्होंने इसे कराची तथा थट्टा के मध्य बताया है जो नदी के मार्ग का अनुसरण करते हुए प्रदेश का ठीक-ठीक विवरण है क्योंकि देबल मुहाने की एक दूसरे को काटती हुई नदियों के मध्य अवस्थित था।

दुर्भाग्यवश मुहाने के इस भाग की सूक्ष्म खोज नहीं हुई है और मैं एक प्राचीन नगर के खण्डहरों के सम्बन्ध में अपनी अज्ञानता का यही कारण समझता हूँ। यह प्राचीन नगर १३३३ ई० में इब्नबतूता द्वारा उसी स्थान पर देखा गया था जो स्थान मैंने देबल के लिए चुना है। चूंकि इसका कथन अधिक महत्वपूर्ण है अतः मैं उसे पूर्ण रूपेण उधृत करूंगा—"तत्पश्चात् मैं सिन्ध के मार्ग से लाहरी नगर तक गया जो हिन्द महासागर के तट पर उस स्थान पर अवस्थित है जहाँ सिन्ध समुद्र में गिरती है। यहाँ एक विशाल बन्दरगाह है जहाँ इरान, यमन तथा अन्य स्थानों के जहाज आकर रुकते हैं। इस नगर से कुछ मीलों की दूरी पर एक अन्य नगर के खण्डहर प्राप्त है जहाँ मानव तथा पशुओं के आकार के पत्थर प्रचुर संख्या में मिलते हैं। इस स्थान के जन साधारण का विचार है कि उनके इतिहासकारों के विचारानुसार इस स्थान पर पूर्ववर्ती समय में एक नगर था जिसके अधिकांश निवासी इतने नीच थे कि भगवान ने उन्हें, उनके पशुओं को, उनकी जड़ी बूटियों को एवम् उनके बीजों तक को पत्थर बना दिया और वस्तुतः बीच के आकार के पत्थर यहाँ प्रायः असंख्य मात्रा में हैं।" मानव एवं पशुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के आकार के पत्थरों सहित नगर के विशाल खण्डहरों को मैं देबल के किसी समग्र महान बिक्री का केन्द्र का खण्डहर समझता हूँ। एम० मुरडो के अनुसार देबल के निवासी लारी बन्दर में चले गये तथा कैप्टन हेमिल्टन के अनुसार लारी बन्दर में बिलूचियों तथा मकरानियों से व्यापारियों की सुरक्षा के लिए 'पत्थरों का एक विशाल दुर्ग' था। मेरा विचार है कि यह कहना उचित एवं न्याय सङ्गत होगा कि देबल को छोड़ कर जाने वाले निवासी अपने प्राचीन नगर की सामग्री को नवीन नगर निर्माण हेतु ले गये होंगे अतः लारी बन्दर के दुर्ग के पत्थर देबल के निर्जन नगर से लाये गये होंगे। जिसके खण्डहरों ने १३३३ ई० में इब्नबतूता को अपनी ओर आकर्षित किया था।

इब्नबतूता के इस कथन को मैं 'अरेबियन नाइट में एक भारतीय नगर के विचित्र विवरण से सम्बन्धित करूँगा। यह विवरण जोबेदा की कहानी में मिलता है। इस कहानी के अनुसार यह स्त्री बसोरा के बन्दरगाह से चली थी तथा २० दिन की यात्रा के पश्चात् भारत में एक विशाल नगर के बन्दरगाह पर रुकी थी जहाँ उतरने पर उसने देखा कि वहाँ का राजा रानी तथा अन्य सभी निवासी पत्थर बन गये थे। केवल एक व्यक्ति इस परिवर्तन से बच गया था जो राजा का पुत्र था जिसे उसकी आया ने एक मुसलमान के रूप में उसका पालन किया था। यह आया स्वयं एक मुसलमानी दासी थी। अब यह कथा सिन्ध के स्थानीय इतिहासकारों के राजा दिलू तथा उसके बन्धु छोटा की कथा से मिलती है जिसके अनुसार छोटा मुसलमान बन गया था तथा राजा की धूर्तता के कारण ब्राहमना नगर के भूकम्प में नष्ट हो जाने पर केवल छोटा जीवित बचा था। चूंकि पञ्जाब एवम् सिन्ध के सभी मुख्य नगरों के खण्डहरों के लिये एक ही कथा की बारम्बार पुनरावृत्ति होती है अतः 'अरेबियन नाइट' की कथा के स्थान को उचित रूप से सिन्ध में दिखाया जा सकता है तथा चूंकि देबल ही समुद्र तट का एक मात्र विशाल नगर था तथा विक्री का मुख्य केन्द्र भी था जहाँ मुस्लिम व्यापारी व्यापार किया करते थे अतः मुझे यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि यही वह भारतीय नगर रहा होगा जहाँ जोबेदा ने सभी निवासियों को पत्थरों के रूप में देखा था।

एम० मुरडो के अनुसार ब्राहमना नगर का विनाश १४० हिजरी अथवा ७५७ ई० में हुआ था और चूंकि जोबेदा की कहानी को खलीफा हारूँ उल रशीद के समय से सम्बन्धित किया जाता है जिसने ७८६ ई० से ८०६ ई० तक शासन किया था अतः दोनों कथाओं को अनुरूप समझने में तिथि सम्बन्धी कठिनाई नहीं है।

देबल को सिन्धु नदी पर अवस्थित दिबाल अथवा दिबाल सिन्धी के नाम से सिन्धु नदी की मुख्य शाखा अथवा बघार नदी पर निश्चित किया जा सकता है। कैप्टन हेमिल्टन से हमें पता चलता है कि यह लारी बन्दर के समीप था। उनका कथन है कि सिन्धी नदी "सिन्धु नदी की केवल एक छोटी शाखा है और उस प्रदेश में इसका यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम लुप्त हो गया है जिसे यह इतना जल प्रदान करती है तथा अब इसे दीवेली अथवा सात मुखोवाली कहा जाता है।" इस कथन से पता चलता है कि लारी बन्दर की ओर जाने वाली सिन्धु नदी की शाखा को हेमिल्टन की यात्रा के समय अर्थात १६९९ ई० तक दीबाली कहा जाता था। यही सिन्धु नदी की पिटी शाखा थी, यह अनुमान मैं इसके दूसरे नाम सिन्धी से लगाता हूँ जिसे मैं टालमी की सिनथोन ओस्टियम अथवा पश्चिम की ओर से नदी का दूसरा मुहाना समझता हूँ। चूंकि पिटी बघार नदी का एक मुहाना है अतः यह स्थिति पिछले सभी लेखकों की एकमत साक्षी के आधार पर दी गई इसकी स्थिति से मिलती है।

हेमिल्टन के लिखने के समय से स्वयं लारी बन्दर निर्जन हो चुका है तथा मुहाने के पश्चिमी अर्द्ध भाग की आधुनिक बन्दरगाह धाराज है जो लारी बन्दर से केवल कुछ मील पूर्व में है।

कच्छ

सातवीं शताब्दी में सिन्ध का चौथा प्रान्त कच्छ था तथा अकबर के समय में भी यह सिन्ध का भाग था। ह्वेनसांग ने इसे सिन्ध की राजधानी जो उस समय सिन्धु नदी पर भक्खर के समीप अलोर में थी-से १६०० ली अथवा २६७ मील की दूरी पर अवस्थित बताया है। यह अन्य स्थान पर दिये गये विवरण से मिलता है जिसके अनुसार इसका मार्ग इस प्रकार था—अलोर से ब्राह्मना तक, ७०० ली दक्षिण तत्पश्चात पितशिला तक ३०० ली दक्षिण पश्चिम तथा वहाँ से कच्छ तक ७०० ली दक्षिण की ओर। इस प्रकार कुल दूरी १६५० ली थी। परन्तु इसकी सामान्य दिशा दक्षिण पश्चिम के स्थान पर दक्षिण है जो कच्छ की वास्तविक स्थिति से मिलती है। प्रान्त को ओ-तियेन-पो-ची-लो कहा गया है जिसे एम० जुलीन ने अध्यावकीला अथवा अत्यनवाकेला बना दिया है परन्तु उसके लिये उन्होंने अथवा एम विवीन डी सेन्ट मर्टिन ने सस्कृत के पर्यायवाची शब्द का उल्लेख नहीं किया है फिर भी मेरा विचार है कि यह शब्द औडम्बतीरा अथवा औडम्बर के लिये लिखा गया है। यह नाम प्रोफेसर लासेन के कच्छ निवासियों को दिया है। वे प्लिनी के औडम्बरे हैं परन्तु वर्तमान समय में इस नाम का कोई चिन्ह नहीं मिलता।

इस प्रान्त की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील बताई गई है और यदि इनके उत्तर में नगर पार करके सम्पूर्ण जिले को इसमें सम्मिलित न किया जाये तो उपर्युक्त परिधि अत्यधिक है। सम्भवतः यह जिला इसमें सम्मिलित था क्योंकि इस प्रदेश को सदैव कच्छ का भाग समझता गया है और अब भी यह इसी से सम्बन्धित है। इसकी उत्तरी सीमा को उमरकोट से लेकर माऊण्ट आबू तक विस्तृत स्वीकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर लेने से सीमा की सम्पूर्ण लम्बाई ७०० मील से कुछ अधिक होगी। की त्सी-शी-फा-लो नामक राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। एम० जुलीन ने इस नाम को खजिस्वरा तथा प्रोफेसर लासेन ने इस कच्छेश्वरा बना दिया है। परन्तु चूंकि चीनी अक्षर त्सी मस्तिष्क सम्बन्धी त का प्रतिनिधित्व करता है अतः मेरा विचार है कि त्सी का समान अर्थ होगा। अतः मैं इस नाम को कोटीश्वरा पढ़ूंगा जो कच्छ के पश्चिमी तट पर एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में तीर्थ यात्री के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि इसने इसी स्थान का उल्लेख किया है जिसे सिन्धु नदी तथा महा सागर के समीप प्रदेश की पश्चिमी सीमा कहा जाता है। यह विवरण पवित्र कोटेसर की स्थिति का सर्वोचित विवरण है जो कच्छ की पश्चिमी सीमा पर सिन्धु नदी की कोरी शाखा के तट पर तथा हिन्द महा-सागर के समीप अवस्थित है। निम्न कथन से उपर्युक्त अनुरूपता की पुष्टि होती है कि नगर के मध्य में शिव का प्रसिद्ध शिवालय था। इस स्थान का नाम कोटि+ईश्वर अथवा "एक करोड़ ईश्वर" से लिया गया है तथा छोटे लिङ्गम पत्थरों से सम्बन्धित है जो इस स्थान पर प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ईश्वर, शिव का सर्व प्रसिद्ध नाम है तथा लिंगम् उनका चिन्ह है।

एम० विवीन डी सेन्ट-मार्टिन ने इस राजधानी का कराची के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु अलोर से इसकी दूरी १३०० ली अथवा २१७ मील से अधिक नहीं है जबकि इस नाम का केवल प्रथम अक्षर चीनी अनुवाद से मिलता है। ह्वेनसांग ने नीचे एवं नम वायु वाले प्रदेश के ऊपर में इसका उल्लेख किया है तथा इसकी भूमि को नमक युक्त कहा है। यह विवरण कच्छ की निचली भूमि तथा नमक के मरुस्थल अथवा रन (संस्कृत का इरिना) के विवरण से ठीक-ठीक मिलता है। कच्छ का अर्थ है कीचड़ अथवा दलदल तथा इस प्रान्त का लगभग आधा भाग नमक का मरुस्थल है। परन्तु कराची की शुष्क एवं रेतीली भूमि के लिये यह विवरण अशुद्ध है। कोटेसर के ठीक दक्षिण में अनेक मीलों तक विस्तृत एक विशाल दलदल भी है।

सिन्धु के पश्चिमी जिले

सभी प्राचीन लेखक अरबी अथवा अरबाटोय तथा ओरिटोय अथवा होरिटोय नामक दो जङ्गली जातियों को निचली सिन्धु नदी के पश्चिम दिखाने में सहमत हैं। यह दोनों जातियाँ मूल रूप से भारतीय प्रतीत होती है। एरियन ने अरबी जाति के प्रदेश को पश्चिम में "भारत का अन्तिम भाग" कहा है तथा स्ट्रैबो ने भी इसे "भारत का भाग' कहा है परन्तु दोनों ने ओरिटाय को सम्मिलित नहीं किया है। कर्टियस ने होरिटाय को भारत में सम्मिलित किया है जबकि दिवोडोरस का कथन है कि वह भारतीयों से मिलते-जुलते थे तथा एरियन ने स्वीकार किया है कि ओरिटाय-जो देश के भीतरी भागों में बसे हुए थे तथा उनके कपड़े भारतीयों के ढङ्ग के कपड़े होते थे तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्हीं के समान अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते थे परन्तु उनकी भाषा एवम् रीति रिवाज भिन्न थे।" फिर भी सातवीं शताब्दी में कहीं अधिक योग्य लेखक चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने उनकी भाषा एवं रीति-रिवाजों को भारतीयों के समान बताया है। उसके अनुसार लङ्ग की-लो जो कच्छ में कोटेसर से २००० ली अथवा ३३३ मील पश्चिम में था—के निवासियों के रीति-रिवाज कच्छ के निवासियों से मिलते थे तथा उनकी लिपि भारतीय लिपि से समीप समानता रखती थी जबकि उनकी भाषा भारतीयों की भाषा से कुछ भिन्न थी। इन्हीं कारणों से मेरा विचार है कि ओरिटाय तथा अरबीटाय प्रदेश को उचित रूप से भारत की भूगोलिक सीमाओं में सम्मिलित किया जा सकता है यद्यपि यह प्रदेश ऐतिहासिक काल में इसकी राजनीतिक सीमाओं से बाहर रहे हैं। ईसवी पूर्व की छठीं शताब्दी के समय में भी यह डारियस हाईडस्पीज के आश्रित थे तथा १२ शताब्दियों पश्चात् ह्वेनसांग की यात्रा के समय यह ईरान के अधीन थे। परन्तु उनका भारतीय मूल स्वरूप असंदिग्ध है जैसा कि ओरिटाय के सम्बन्ध में लिखते समय मैं दिखाने का प्रयत्न करूँगा।

अरबी अथवा अरबीटोय

एरियन के अरबो, कर्टियस के अरबिटोय, टालमी के अरबिटी, दिवोडोरस के अम्ब्रीटोय तथा स्ट्रैबो के अरबीज़ हैं। कहा जाता है कि यह नाम अराबीज़, अरबीज़ अथवा अराबियस नदी से प्राप्त हुआ था जो उनकी सीमाओं में प्रवाहित थी तथा उनकी सीमाओं को ओरिटाय की सीमाओं से अलग करती थी। सिकन्दर को यात्राओं के विस्तृत विवरण को नियर्कस की डायरी से तुलना करने पर यह निश्चित हो जाता है कि यह सीमान्त नदी पुराली नदी थी जो लास के वर्तमान जिले से होकर सोनमियानी की खाड़ी में गिरती है। कर्टियस के अनुसार सिकन्दर पटाला से ६ दिनों की यात्रा के पश्चात अरबीटोय की पूर्वी सीमा पर तथा अन्य पाँच दिनों की यात्रा के बाद उनकी पश्चिमी सीमा पर पहुँचा था। अब, हैद्राबाद से कराची तक की दूरी ११४ मील है तथा कराची से सोनमियानी तक ५० मील। प्रथम दूरी सैनिकों द्वारा सामान्यतः ६ दिनों में तथा अन्तिम दूरी चार अथवा पाँच दिनों में पूरी की जाती है। अतः कराची अरबीटोय की पूर्वी सीमा पर रहा होगा और उन सभी अन्वेषकों की सामान्य अनुमति से स्वीकार किया गया है जिन्होंने टालमी के कोलक को क्रोकोल के रेतीले टापू के अनुरूप स्वीकार किया है जहाँ नियर्कस को अपने जहाजी बेड़े सहित रुकना पड़ा था। क्रोकोल कराची की खाड़ी में एक छोटा टापू है और इसे अरबी प्रदेश से दूर बताया गया है। यह सिन्धु नदी के पश्चिमी मुहाने से १५० स्टेडिया अथवा १७३/४ मील था जो कराची तथा घार नदी के मुहाने की तुलनात्मक स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। ऐसी हालत में हमें उचित रूप से स्वीकार करना होगा कि वर्तमान तटीय रेखा सिकन्दर के समय से व्यतीत हुई पिछली इक्कीस शताब्दियों में ५ अथवा ६ मील आगे बढ़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गई है। इस अनुरूपता की इस तथ्य से पुष्टि होती है कि "वह जिला जिसमें कराची अवस्थित है आज तक कर कल्ल कहलाता है।"

क्रोकोल छोड़ने पर निर्यकस की दाहिनी ओर इरोस पर्वत (मनोरा) तथा उसके बायें एक नीचा समतल टापू था। कराची के बन्दरगाह में प्रवेश करते समय की वस्तु-स्थिति का यह सही-सही उल्लेख है। मार्ग में अनेक छोटे-छोटे स्थानों पर रुकने के पश्चात् निर्यकस मोरोनटोबर पहुँचा जिसे जन साधारण "स्त्रियों का स्वर्ग' कहा करते थे। इस स्थान से उसने अरेवियस नदी के मुहाने तक ७० स्टेडिया तथा १५० स्टेडिया अथवा कुल मिला कर २२ मील की दो यात्रायें की। अरेबियस नदी अरेबी तथा ओरिटाय जातियों के राज्यों के बीच सीमा थी। मोरोनटोबार के नाम को मैं मूआरी के अनुरूप समझूंगा जो नाम रास मुआरी अथवा मोंज अन्तरीप अथवा पर्वतों की पब्ब श्रेणी के अन्तिम बिन्दु को दिया जाता है। बार अथवा बारी का अर्थ है जहाजों के रुकने का स्थान अथवा बन्दरगाह तथा मोरोनटा प्रत्यक्ष रूप से फारसी के मर्द अर्थात् पुरुष से सम्बन्धित है जिसका स्त्रीलिंग महरिन काश्मीरी भाषा में आज भी सुरक्षित है। इस बन्दरगाह को मोंज अन्तरीप तथा सोनमियानी के मध्य देखा जाना चाहिये परन्तु इसकी निश्चित स्थिति निर्धारित नहीं की जा सकती। एरियन द्वारा निर्यकस की यात्राओं के विवरण से दी गई दूरियों से मैं इसे बहार नामक एक छोटी नदी के मुहाने पर निर्धारित करने का इच्छुक हूँ। यह पहाड़ी नदी है जो मोंज अन्तरीप तथा सोनमियानी के लगभग मध्य में समुद्र में गिरती है। यदि मूआरी को मोरोनटोबार का संक्षिप्त स्वरूप समझने का मेरा विचार ठीक है तो अन्तरीप को निश्चित ही पड़ोसी बन्दरगाह से नाम मिला होगा। अरेबियस के मुहाने पर निर्यकस को पुराली के मुहाने पर आधुनिक सोनमियानी की खाड़ी के समान एक विशाल एवं सुरक्षित, बन्दरगाह मिला था जिसे पोट्टिङ्गर ने "जल की अति सौम्य सतह" कहा है "जहाँ-बड़े से बड़ा जहाज लङ्गर डाल सकता है।"

ओरिटोय, अथवा होरिटोय

अरेबियस नदी को पार करने के बाद सिकन्दर ने एक मरुस्थल से होकर सम्पूर्ण रात्रि की यात्रा की थी तथा प्रातः काल उसने एक जनपूर्ण प्रदेश में प्रवेश किया। तत्पश्चात् एक छोटी नदी पर पहुँच कर उसने अपना पड़ाव डाल दिया तथा फायशियन के अधीन मुख्य सेना के आने की प्रतीक्षा करने लगा। एरियन का कथन है कि इस सेना के आने पर सिकन्दर "देश के भीतर अधिक दूरी तक जाकर एक छोटे गाँव तक पहुँच गया जो ओरिटोय की राजधानी की अपेक्षा अधिक लाभदायक था। इसका नाम रम्बाकिया तथा सिकन्दर इसकी स्थिति से इतना प्रसन्न हुआ एवं यह अनुमान लगाते हुए कि यह एक समृद्धशाली एवं जनपूर्ण नगर बन जायेगा उसने हेफायशियन को इसकी सुरक्षा का भार सौंप दिया।" सिकन्दर के आगमन पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओरिटोय जाति ने विजेता की अधीनता स्वीकार कर ली जिसने अपोलोफ़नीज को उनका गवर्नर नियुक्त किया तथा लियोनाटस को एक विशाल सेना देकर, नौकाओं के बेड़े सहित निर्यकस के आगमन की प्रतीक्षा करने एवं नवीन नगर के निवासियों की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया। सिकन्दर के प्रस्थान के कुछ ही समय पश्चात ओरिटोय जाति ने यूनानियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा नये गवर्नर अपोलोफ़नीज का बध कर दिया परन्तु अकेले ल्योनाटस ने उन्हें पराजित किया तथा उनके सभी नेता मार डाले गये। निर्यकस ने इस पराजय के स्थान को अरेबियस तथा टोमेरस नदियों के मध्य तट पर अवस्थित कोकला पर दिखाया है। प्लिनी ने अन्तिम नदी को टोनबेरोज कहा है तथा उसका कथन है कि इसके आस-पास के प्रदेश में अच्छी कृषि होती थी।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर मैं ओरिटाय अथवा होरिटाय अथवा न्योटेरिटोय—जैसा कि दिवोडोरस ने उन्हें नाम दिया है—जाति को अघोर नदी के निवासियों के अनुरूप समझूंगा जिन्हें कण्ठ स्वर को दबाकर यूनानी अगोरिटाय अथवा एओरिटाय कहा करते होंगे। होरिटाय के प्रथम अक्षर में इसके चिह्न आज भी सुरक्षित है। नदी के तल में कीचड़ की अनेक परतें हैं जिन्हें अनादि काल से रामचन्द्र की-कूप अथवा 'रामच द्र का कुआं' कहा जाता है। इस स्थान पर दो प्राकृतिक कन्दरायें हैं। एक काली को समर्पित है दूसरी हिङ्गलाज अथवा हिंगूला देवी अर्थात "रक्तवर्ण देवी" को समर्पित की गई है। अन्तिम नाम काली का दूसरा स्वरूप है। परन्तु अघोर घाटी में तीर्थ यात्रा का मुख्य स्थान 'राम' से सम्बन्धित है। तीर्थ यात्री राम बाग में एकत्रित होते हैं क्योंकि राम एवम् सीता को इसी बिन्दु से यात्रा आरम्भ करते बताया गया है। तत्पश्चात यात्री गोरख तालाब तक जाते हैं जहाँ राम ने विश्राम किया था तथा वहाँ से टोंगभेरा तथा उस स्थान तक जाते हैं जहाँ राम को सेना सहित हिंगूलाज तक पहुँचने में असफलता के कारण बाध्य होकर वापस आना पड़ा था। रामबाग को मैं एरियन के रम्बाकिया, तथा तुङ्गभेरा को टालमी की टोनबरोस नदी एवम् एरियन की टोमेरस नदी के अनुरूप स्वीकार करूंगा। अतः रम्बाकिया के स्थान पर हमें सिकन्दर द्वारा स्थापित नगर को ढूंढना चाहिये जिसे पूरा करने के लिये ल्योनाटस को वहाँ छोड़ा गया था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि यही वह नगर है जिसका उल्लेख बाईजनटियम के स्टेफनस ने "मेलने की खाड़ी के समीप सोलहवें सिकन्दरिया" के रूप में किया है। निर्यकस ने ओरिटाय जाति की पश्चिमी सीमा को मलना नामक स्थान पर दिखाया है जिसे मैं अघोर नदी से लगभग २० मील पश्चिम में वर्तमान समय की मालान अन्तरीप अथवा रास मालान के पूर्व में मलन की खाड़ी के अनुरूप समझता हूँ। कर्टियस तथा दिवोडोरस दोनों ने इस नगर की स्थापना का उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने इसके नाम का उल्लेख नहीं किया। फिर भी दिवोडोरस ने लिखा है कि इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण समुद्र के समीप परन्तु ज्वार भाटे की पहुँच से दूर अधिक अनुकूल स्थान पर कराया गया था।

सिन्धु नदी के पश्चिम में इतनी दूरी पर एवम् सिकन्दर के समय में रामबाग के नाम की उपस्थिति अत्यधिक रुचिपूर्ण एवम् महत्वपूर्ण है क्योंकि इनसे न केवल प्राचीन काल में हिन्दू प्रभाव के विस्तार का पता चलता है परन्तु राम की कथा के अत्यधिक प्राचीन होने का पता भी चलता है। यह अत्यन्त असम्भावित है कि हिन्दू प्रभाव के ह्रास के पश्चात किसी स्थान के इस प्रकार का नाम दिया गया हो। बौद्ध धर्म के चरमोत्कर्ष के समय सिन्धु नदी के पश्चिम में अनेक प्रान्तों ने भारतीय धर्म स्वीकार कर लिया। जिससे यहाँ के निवासियों के रहन-सहन के ढङ्ग एवम् इनकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा होगा। परन्तु सिकन्दर का अभियान बौद्ध धर्म के विस्तार से पूर्व हुआ था अतः रम्बाकिया के प्राचीन नाम को मैं केवल डरियस हाईडस्पीज के पूर्ववर्ती समय से सम्बन्धित कर सकता हूँ।

ह्वेनसांग ने इन जिलों का उल्लेख लांग-की-लो के सामान्य नाम के अन्तर्गत किया है जिसे एम० जुलीन ने लङ्गला कहा है। परन्तु एम० डी सेन्ट मार्टिन ने इसे लङ्ग जाति से सम्बन्धित बताया है परन्तु यह अत्यन्त सन्देहस्पद है कि यह प्राचीन नाम रहा हो। विष्णु पुराण से उधृत अन्य नाम लङ्गलस, जांगलस का केवल परिवर्तन स्वरूप है जो प्रायः निश्चित रूप से शुद्ध स्वरूप है क्योंकि इसके तुरन्त बाद कुरु जांगलस का उल्लेख किया गया है। ह्वेनसांग ने राजधानी लांग की लो को कच्छ में कोटेसर से २००० ली अथवा ३३३ मील पश्चिम में बताया है परन्तु चूंकि इस दिक्रांश से यह स्थान हिन्द महासागर के मध्य में चला जायगा अतः इसकी वास्तविक दिशा उत्तर-पश्चिम होगी। अब, यह अन्तिम दिशा एवम् दूरी लाकोरियान के विशाल ध्वस्त नगर की स्थिति से मिलती है जिसे मसोन ने खोजदार तथा किलात के मध्य देखा था। पुराने मानचित्रों में इस नाम को केवल लाकूरा लिखा गया है जो मुझे चीनी नाम लांग की-लो अथवा लांकरा का उचित रूप से प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रतीत होता है। मसोन ने ध्वस्त मोर्चाबन्दी को "अपनी भव्यता एवम् ठोसपन के लिये तथा निर्माण कार्य में प्रत्यक्ष कौशल के लिये उल्लेखनीय कहा है।" इन खण्डहरों के विस्तार एवम् महत्व को देखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह एक विशाल नगर के अवशेष हैं जो पूर्ववर्ती काल में देश की राजधानी थी। चीनी तीर्थ यात्री ने प्रान्त को अनेक ली लम्बा एवम् चौड़ा कहा है। अतः यह स्पष्ट है कि यह प्रान्त जहाँ तक सम्भव है बलूचिस्तान के आधुनिक जिले के समान था। जिसकी वर्तमान राजधानी किलात लाकूरा से केवल ६० मील उत्तर में है। सातवीं शताब्दी में राजधानी को सू-न्यू-ली-शी-फा-लो कहा जाता था तथा इसकी परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। एम० जुलीन ने चीनी अक्षरों को सुनुरिस्वरा कहा है परन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुवाद भी नहीं किया है। परन्तु चूंकि ह्वेनसांग ने नगर के मध्य में शिव के भव्य मन्दिर का उल्लेख किया है अतः मेरा अनुमान है कि चीनी अनुवाद शम्भुरीश्वरा के लिये किया गया होगा जो "देवाधिदेव" के रूप में शिव की सर्व ज्ञात उपाधि है। यह स्वीकार कर लेने से कि उपर्युक्त नाम उचित रूप से मन्दिर से सम्बन्धित है, अन्य नाम लांग-की-लो, अथवा लाकरा को राजधानी तथा प्रान्त दोनों के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

गुर्जर

ह्वेनसांग ने पश्चिमी भारत के द्वितीय राज्य, क्यू-ची-लो अथवा गुर्जर को बलभी से १८०० ली अथवा ३०० मील उत्तर में तथा उज्जैन से २८०० ली अथवा ४६७ मील उत्तर पश्चिम में बताया है। राजधानी को पी-लो-मी-लो अथवा बालमेर कहा जाता था जो बलभी के खण्डहरों से ठीक ३०० मील उत्तर में है। उज्जैन से सीधी रेखा पर यह ३५० मील से अधिक नहीं है परन्तु वास्तविक मार्ग दूरी ४०० तथा ५०० मील के बीच है क्योंकि यात्री का उत्तर में अजमेर से होकर अथवा दक्षिण में अनलवार से होकर अरावली पर्वतों का चक्कर काटना पड़ता है। इस राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। अतः बीकानेर जैसलमेर तथा जोधपुर की वर्तमान रियासतों का अधिकांश भाग इसमें सम्मलित रहा होगा। इसकी सीमाओं को केवल अनुमानतः बताया जा सकता है, जो इस प्रकार है। उत्तर में बलर अथवा सिरदरकोट से झुनझुनू तक लगभग १३० मील पूर्व में झुनझुनू से आबू पर्वत के समीप तक २५० मील, दक्षिण में आबू से उमरकोट के समीप तक १७० मील तथा पश्चिम में उमरकोट से बलर तक ३१० मील। इन आंकड़ों से कुल परिधि ८६० मील बनती है जो ह्वेनसांग के आंकड़ों के समीप है जितना उचित रूप से उनसे आशा की जा सकती है।

सभी प्रारम्भिक अरब भूगोल शास्त्रियों ने जुज़ अथवा जुज्र नामक राज्य का उल्लेख किया है जो अपनी स्थिति ह्वेनसांग के क्यू-ची-लो के समान प्रतीत होता है। देश का नाम कुछ अंशों तक सन्देहस्पद है क्योंकि बिना नुकत्तों के अरबी शब्दों को हरज़ हजर तथा खरज़ तयर खज़र और साथ ही साथ जरज अथवा जुज्र पढ़ा जा सकता है। परन्तु भाग्यवश इसकी स्थिति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है जिसे अनेक समान परिस्थितियों के आधार पर राजपूताना निर्धारित किया गया है। इस प्रकार ८५१ ई० में व्यापारी सुलेमान ने लिखा है कि हरज़ एक ओर ताफिक अथवा ताकिन से घिरा हुआ था जिसे मैं पहले ही पञ्जाब का पुराना नाम बता चुका हूँ। यहाँ चाँदी की खानें थीं एवम् यह राज्य भारत के अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा घुड़सवारों की एक विशाल सेना एकत्रित कर सकता था। यह सभी बातें निश्चित रूप से राजपूताना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ओर संकेत करती है जो पञ्जाब के दक्षिण पूर्व में है, जहाँ भारत की एक मात्र ज्ञात चाँदी की खान है तथा जो घुड़सवारों की विशाल सेनाओं के लिये सदैव प्रसिद्ध रहा है।

इब्न खुरदादबेह के अनुसार जिसकी मृत्यु ९१२ ई० में हुई थी—हज़र में तातरिया दिरहेम प्रचलित थे तथा इब्नहौकल के अनुसार जिसने ९७७ ई० में लिखा था—यह दिरहेम गान्धार राज्य में भी प्रचलित थे जिसमें उस समय पञ्जाब सम्मिलित था। सुलेमान ने बल्हर अथवा वर्तमान गुजरात राज्य के सम्बन्ध में इसी बात का उल्लेख किया है तथा घटनावश हमें पता चलता है कि यही दिरहेम सिन्ध में भी प्रचलित थे क्योंकि १०७ हिजरी अथवा ७२५ ई० में राज्यकोष में कम से कम एक करोड़ अस्सी लाख तातारिया दिरहेम थे। इन मुद्राओं का मूल्य भिन्न-भिन्न रूप से १ १/८ से १ १/२ दिरहेम अथवा तोल के अनुसार ५४ से ७२ ग्रेन बताया गया है। इन बातों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तातारिया दिरहेम चाँदी की मुद्रा है जो सामान्यतः इण्डो ससानियन के नाम से जानी जाती थी क्योंकि इन मुद्राओं में भारतीय अक्षरों को ससानियन अक्षरों से जोड़ दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्व प्रथम इन्हें सीथियन एवम् तातार शासकों ने प्रचलित किया था—जिन्होंने काबुल एवम् उत्तर पश्चिमी भारत पर राज्य किया था—क्योंकि यह मुद्रायें काबुल की सम्पूर्ण घाटी पञ्जाब तथा साथ ही साथ सिन्ध राजपूताना एवम् गुजरात में पाई जाती है। कर्नल स्ट्रेसी के नमूने मुख्य रूप से अन्तिम दो देशों से लिये गये थे जबकि मेरे निजी नमूने उन सभी देशों से प्राप्त किये गये हैं। वज़न में ये मुद्रायें ५० से ६८ ग्रेन हैं तथा समय के अनुसार यह पाँचवीं अथवा छठीं शताब्दी से महमूद गजनी के समय तक की मुद्रायें हैं। ये मुद्रायें प्रायः काबुल के ब्राह्मण शासकों के सिक्कों के साथ-साथ मिलती है। यह बात मसूदी के कथन से मिलती है कि तातारिया दिरहेम अन्य मुद्राओं के साथ साथ प्रचलित थे जिन्हें गान्धार में मुद्रित किया जाता था। अन्तिम मुद्रा को मैं काबुल के ब्राह्मण राजाओं की चाँदी की मुद्रा समझता हूँ जिन्होंने ८५० ई० के लगभग अथवा मसूदी के कुछ समय पूर्व राज्यारम्भ किया था तथा जो ९१५ ई० से ९५६ ई० तक अपनी चरमावस्था में थे। मैंने अरावली पर्वतों से पूर्व मध्य भारत में एवं ऊपरी दोआब में इण्डो ससानियन मुद्रायें अथवा तातार दिरहेम प्राप्त किये थे परन्तु इन प्रान्तों में इन मुद्राओं का अत्यधिक अभाव है क्योंकि मध्य युग में उत्तरी भारत की सामान्य मुद्रा वराह थी जिस पर विष्णु के अवतार की मूर्ति अङ्कित थी एवं जिसका वज़न ५५ से ६५ ग्रेन था। मुद्राओं के निरीक्षण में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जहाँ तक सम्भव है पश्चिमी राजपूताना उस राज्य का प्रतिनिधित्व करता है जिसे प्रारम्भिक भूगोल शास्त्रियों ने हज़र अथवा जुज्र का नाम दिया था।

इब्न खुरदादबेह को उधृत करते हुए इदरिसी ने लिखा है कि जुज्र अथवा हुज्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा की वंशानुगत उपाधि थी और साथ ही साथ देश का नाम था। इस कथन से जुज्र को गुज्र अथवा गुजर के अनुरूप स्वीकार करने के मेरे अनुमान की पुष्टि होती है। गुजर अधिक संख्या वाली जाति है जिसका नाम उत्तर पश्चिमी भारत एवं पंजाब के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों से सम्बन्धित किया गया है और गुजरात के विशाल पठार से इसे विशेष रूप से सम्बन्धित किया गया है। यह ज्ञात नहीं है कि इस विशाल पठार को यह नाम सर्व प्रथम कब दिया गया था। प्रारम्भिक समय में इसे सौराष्ट्र कहा जाता था जिसे टालमी ने सुराष्ट्रेन कहा है और ८१२ ई० तक इस प्रदेश का यही नाम रहा है जैसा कि बड़ोदा में प्राप्त ताम्र पत्रालेख से हमें ज्ञात होता है। सौराष्ट्र के राजाओं के इस लेख में गुज्जर का दो बार स्वतन्त्र राज्य के रूप में उल्लेख किया गया है। ७७० ई० के लगभग सौराष्ट्र के राजा इन्द्र ने गुज्जर राजा पर विजय प्राप्त की थी परन्तु पुनः वह सिंहासनारूढ़ हो गया एवं लगभग ८०० ई० में इन्द्र के पुत्र कर्क ने गुज्जर राजा के विरुद्ध मालवा के शासक की सहायता की थी। इन कथनों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि ६४० ई० में ह्वेनसांग की यात्रा से लगभग दो शताब्दियों के बाद भी गुज्जर, सौराष्ट्र से पूर्णतयः भिन्न स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली राज्य था। इनसे इस बात का पता भी चलता है कि गुज्जर राज्य मालवा एवं सौराष्ट्र के समीप था और इस स्थिति के कारण राजपूताना से इसकी अनुरूपता स्पष्ट हो जाती है जैसा कि मैं ह्वेनसांग द्वारा दिये गये विवरण के आधार पर पहले निश्चित कर चुका हूँ।

कहा जाता है कि सातवीं शताब्दी में यहाँ का राजा एक त्सा-ती-ली, अथवा क्षत्रिय था परन्तु दो शताब्दी पूर्व निश्चित ही गुरजर अथवा गुज्जर राज परिवार महाराष्ट्र के उत्तर में शासन कर रहा था क्योंकि हमें पैठन के चालुक्य राजा तथा बिन नाम के किसी प्रदेश के एक गुरजर राजा के लेख प्राप्त हैं जिनमें एक ही व्यक्ति को भूमि प्रदान किये जाने का वर्णन किया गया है। प्रोफेसर डाउसन ने इन लेखों का अनुवाद किया है तथा उन्होंने इसको तिथि को विक्रमादित्य के समय से सम्बन्धित किया है परन्तु छठीं शताब्दी से पूर्व इस काल के प्रयोग के किसी विश्वासनीय उदाहरण के अभाव में मुझे इन प्रारम्भिक लेखों में उपर्युक्त विचार को नहीं अपनाना चाहिये। इसके विपरीत शक सम्बत् का उल्लेख चालुक्य राजा पुलकेसी के लेखों में तथा ज्योतिषाचार्य आर्य भट्ट एवं वराह मिहिर की पुस्तकों में मिलता है। पुलकेसी का लेख शक सम्बत् ४११ अथवा ४८६ ई० में लिखा गया है जिससे मेरा निष्कर्ष है कि पूर्ववर्ती चालुक्य राजकुमार विजय का विवरण जिसे ३९४ में लिखा गया है—इसी काल से सम्बन्धित था। अतः गुर्जर राजकुमार का समकालीन वर्णन जिसे शक सम्बत् ३८० तथा ३८५ में लिखा गया था—ईसवी काल की पाँचवी शताब्दी के मध्य से सम्बन्धित रहा होगा उपर्युक्त सभी ताम्र पत्रालेख अहमदाबाद के समीप खैड़ा में प्राप्त हुए थे। गुर्जर राजा के प्रथम लेख में किन्हीं ब्राह्मणों को भूमि दिये जाने का उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है "जो जम्बुसार नगर छोड़ने के पश्चात् अक्रूरेश्वर जिले में सम्मिलित शिरशापद्रक नामक ग्राम में बस गये थे।" पाँच वर्ष पश्चात् इन्हीं ब्राह्मण का उल्लेख इस प्रकार किया गया है "जिन्हें जम्बुसार नगर में निवास करना है।" तदनुसार चालुक्य लेख में जिसे उपर्युक्त लेख से ६ वर्ष पश्चात लिखा गया था इन्हें वस्तुत: जम्बुसार नगर का निवासी बताया गया है। निश्चित ही यह नगर खम्बेय तथा बड़ौच के मध्य अवस्थित जम्बोसिर नगर है और चूंकि यह महाराष्ट्र के चालुक्य राजाओं के अधीन था अत: गुर्जर राज्य खम्बेय के उत्तर में अर्थात राजपूताना में रहा होगा जहाँ इसे मैं ह्वेनसांग एव अन्य स्वतन्त्र प्रमाणों के आधार पर दिखा चुका हूँ।

बलभद्र अथवा बलभी

बल्लभियों के प्रसिद्ध नगर के खण्डहरों को मि० टाड ने गुजरात के पठार की पूर्वी दिशा में भाव नगर के समीप ढूंढा था। पाँचवी शताब्दी के एक लेख में इस देश को "बलभद्र का सुन्दर राज्य" कहा गया है परन्तु स्थानीय इतिहास एवं जन साधारण की प्रथाओं में यह प्रदेश सामान्यत: बलभी के नाम से ज्ञात है। यही नाम ह्वेनसांग के समय में प्रचलित था जिसने इसे फा-ला-पी अथवा बलभी राज्य कहा है। परन्तु प्राचीन काल में गुजरात का पठार केवल सौराष्ट्र नाम से ज्ञात था और महाभारत एवं पुराणों में इसी नाम के अन्तर्गत इस प्रदेश का उल्लेख किया गया है। टालमी तथा पेरीप्लस के लेखक ने इसे सूराष्ट्रेनी कहा है तथा प्लिनी ने सुआरटराटोय के भ्रष्ट नाम अथवा वरेटटोय नाम के अन्तर्गत इन्हीं लोगों की ओर संकेत किया है। इसे मैं सुरटोय पढ़ने का प्रस्ताव करूंगा। देश के नाम में परिवर्तन का संकेत राजा कर्क के एक शिलालेख में मिलता है जिसमें शक सम्बत् ७३४ अथवा ८१२ ई० की तिथि दी गई है। राजा कर्क के दूरवर्ती पूर्वज गोविन्द को स्वराष्ट्र राज्य का संस्थापक कहा जाता है। जिसने जर्जर अवस्था के कारण सौ-राज्य की विशिष्ट उपाधि खो दी थी।" कर्क के पिता को लाटेश्वर का राजा कहा जाता है जिससे उसका राज्य बलभी राज्य के अनुरूप होने का पता चलता है क्योंकि ह्वेनसांग ने लिखा है कि बलभी को पी-लो-लो अथवा उत्तरी लार भी कहा जाता था जो संस्कृत लाट का सामान्य उच्चारण है। चूंकि कर्क, गोविन्द के वंशजों में केवल पाँचवी पीढ़ी से था अत: पुराने राज घराने के यह प्रतिनिधियों द्वारा सौराज्य अथवा सोराष्ट्र नाम को सातवीं शताब्दी के मध्य से पूर्व पुनर्जीवित नहीं कर सकते थे। उपर्युक्त प्राप्त आंकड़ों की तुलना करने से मेरा निष्कर्ष है कि सौराष्ट्र का प्राचीन नाम ३१६ ई० में लुप्त हो गया था जब बलभियों ने साह राज्य के उत्तराधिकारियों का स्थान ले लिया था तथा जूनागढ़ के स्थान पर वलभी ने राजधानी का स्थान ले लिया था। अब्रुरेहान के अनुसार ३१६ ई० में बलभी काल का प्रारम्भ गुप्त जाति के ह्रास का संकेत करता है। जिनकी मुद्रायें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक संख्या में गुजरात में पाई जाती हैं। अतः उपर्युक्त तिथि को कुछ निश्चित रूप से बलभी परिवार की स्थापना की तिथि स्वीकार किया जा सकता है और सम्भवतः इसे उनके बलभी नगर की स्थापना की तिथि भी स्वीकार किया जा सकता है।

स्थानीय इतिहास एवं प्रथाओं के अनुसार सम्वत ५८० में बलभी पर आक्रमण हुआ था एवं इसका विनाश हो गया था। इस तिथि को यदि विक्रम सम्बत स्वीकार किया जाये तो यह ५२३ ई० के समान है और यदि इसे शक सम्वत स्वीकार किया जाये तो ६५८ ई० के समान है। कर्नल टाड ने इसे विक्रम सम्बत स्वीकार किया है परन्तु चूंकि ह्वेनसांग ने ६४० ई० में बलभी की यात्रा की थी अतः उपर्युक्त तिथि को शक सम्वत से सम्बन्धित स्वीकार किया जाना चाहिये। यदि यह तिथि सही है तो बलभी पर आक्रमण एवं अधिकार को बड़ोदा में प्राप्त ताम्रपत्रालेख के राजा गोविन्द से सम्बन्धित किया जा सकता है जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने पुराने परिवार के राज्य को पुनर्जीवित किया था एवं सौराष्ट्र के पूर्ववर्ती राज्य के प्राचीन नाम को भी पुनर्जीवित किया था। चूंकि वह राजा कर्क के पितामह का पितामह था और चूंकि राजा कर्क ने ८१२ ई० में शासन कर रहा था अतः उसका निजी सिंहासनारोहरण सातवीं शताब्दी के तीसरे पक्ष अर्थात ६५० एवं ६७५ ई० के मध्य हुआ होगा जो स्थानीय इतिहासकारों द्वारा बलभी के विनाश एवं गुजरात के पठार मे बलभियों की प्रभुसत्ता के लुप्त होने की दी गई तिथि से मिलती है।

बलभी से निस्कासित होने के एक शताब्दी पश्चात, बलभियों के बप्पा अथवा बप्पक नामक प्रतिनिधि ने चित्तौड़ के स्थान पर नवीन राज्य की स्थापना की, एवं उसके पुत्र गुहिल अथवा गुहादित्य ने अपनी जाति को गृहिलावत अथवा गुहिलोट नाम दिया था जिन नामों से वह अब भी जाने जाते हैं। लगभग उसी समय चोरा जाति के बन राजा नामक नेता ने आबू पर्वत से लगभग ७० मील दक्षिण पश्चिम में सरस्वती के तट पर एक नगर की स्थापना की जिसे अनलवार पट्टन कहा जाता था एवं जो शीघ्र ही पश्चिमी भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थान बन गया। कुछ समय पूर्व, अथवा लगभग ७२० ई० में पठार के पहचवा राजकुमार कृष्ण ने इलापुर के दुर्ग का निर्माण करवाया था और ताम्रलेख के अनुसार इसके सौन्दर्य से देवता भी चकित रह गये थे। इस दुर्ग मे उसने अर्द्ध-चन्द से सुसज्जित शिव की मूर्ति की स्थापना की थी। इस सूचना के आधार पर मैं इलापुर को सोमनाथ के प्रसिद्ध नगर के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ जिसे पठार की राजधानी के रूप में प्रायः "पट्टन का प्राचीन नगर मुख्य भूमि के" उभड़े भाग पर अवस्थित है "जा वेरावल की छोटी बन्दरगाह एवं खाड़ी का दक्षिणी छोर बनाता है।" इस नाम को मैं इलापुर अथवा इलावर के समान समझता हूँ जो भारत में प्रचलित सामान्य उलट फेर के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इरावल बन गया होगा। इस प्रकार नर-सिंह से रां-सी बन गया है एवं रनोड को रनोट के साथ-साथ लिखा जाता है परन्तु प्राचीन वारूल से आधुनिक इलूर अथवा अलोरा के परिवर्तन में हमें अधिक उल्लेखनीय उदाहारण प्राप्त है। अब, पट्टन सोम-नाथ शिव मन्दिर के लिये प्रसिद्ध था जिसमें सोमनाथ अथवा "चन्द्रमा के देवता" के रूप में अर्द्धचद्रा सहित देवता की मूर्ति मुसज्जित थी। अतः यह विशिष्ट नाम नगर के स्थान पर मन्दिर का नाम रहा होगा और मेरा निष्कर्ष है कि यह नगर आधुनिक वेरावल के स्थान पर इलापुर अथवा एरावल रहा होगा।

सोमनाथ का प्राप्त सर्व प्रथम वर्णन हमें महमूद गजनी के सफल आक्रमणों के संक्षिप्त विवरण में मिलता है। फरिश्ता के अनुसार सोमनाथ का दुर्ग बन्द नगर "एक संकीण पठार पर अवस्थित था जिसके तीन ओर सागर था।" यह राजा का निवास स्थान था तथा नहरवाल (अनलवार का परिवर्तित नाम) उस समय "गुजरात का केवल सीमान्त नगर था।' यह स्थानीय इतिहास में मिलता है जिनमें अनलवार के चौरा राज परिवार की अन्तिम तिथि शक सम्बत ६६८ अथवा ६४१ ई० बताई गई है जब चालुक्य राजा मूना ने प्रभु सत्ता सम्भाल ली थी और वह सोमनाथ एवं अनलवार का सर्वोच्च शासक बन गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद के समय के पश्चात सोमनाथ को इसके शासकों ने अनलवार के पक्ष में त्याग दिया था जिसे मुहम्मद गौरी एवं उसके उत्तराधिकारी ऐबेग के समय में गुजरात की राजधानी कहा गया है। ६६७ हिजरी से १२६७ ई० तक यह देश की राजधानी थी जब अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी की सेना ने देश पर आक्रमण किया था और नहरवाल अथवा अनलवार पर अधिकार कर लेने के पश्चात इस प्रान्त को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया था।

इन सभी आक्रमणों के समय फरिश्ता ने पठार एवं इसके उत्तरी प्रदेश को गुजरात के आधुनिक नाम की संज्ञा दी है। अबुरिहान ने इस नाम का उल्लेख नहीं किया है यद्यपि उसने अनलवार तथा सोमनाथ दोनों का उल्लेख किया है। यह नाम सर्व प्रथम रशीदुद्दीन की मोजमल-उत्त-तवारीख में मिलता है जिसने १३१० ई० में अर्थात दिल्ली के मुस्लिम सुल्तान द्वारा इस प्रदेश पर अधिकार किये जाने के १३ वर्षो-परान्त लिखा था। मैं दिखला चुका हूँ कि ह्वेनसांग के समय में गुरजर नाम पश्चिमी राजपूताना तक सीमित था तथा ८१२ ई० में भी यह सौराष्ट्र से भिन्न प्रदेश था जब कर्क राजा ने भूमि दान का विवरण लिखवाया था। इस तिथि एवं १३१० ईसवी में पांच शताब्दियों का अन्तर है जिस काल में हमें किसी भी समकालीन पुस्तक अथवा लेख में गुजरात का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु मेरा सन्देह है कि पठार की दिशा में गुज्जर जाति की गतिविधि, दिल्ली, कन्नौज एवं अजमेर पर मुसलमानों की स्थायी विजय से सम्बन्धित रही होगी जिन्होंने चौहान एवं राठौर राजपूतों को उत्तरी राज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूताना एवं ऊपरी दोआब से निकालकर दक्षिण की ओर खदेड़ दिया था। हम जानते हैं कि राठौर राजपूतों ने सम्बत १२८३ अथवा १२२६ ई० में बालमेर के पूर्व पाली पर अधिकार कर लिया था। राठौर राजपूतों के आगमन से गुज्जरों की अधिकांश संख्या दक्षिण में अनलवार पट्टन एवं इडर की ओर जाने पर बाध्य हुई होगी। वस्तुतः गोहिलों के सम्बन्ध में यही स्थिति थी जो राठौर जाति द्वारा मारवाड़ से निकाले जाने के पश्चात पठार के पूर्वी छोर पर बस गये थे एवं इसे गोहिलवाड़ का नाम प्रदान किया था। अकबर के समय में गुज्जर निश्चित रूप से पठार में प्रवेश नहीं किये थे क्योंकि अबुल फजल ने सूरात सिरकार में बसी तत्कालीन जातियों में इनका उल्लेख नहीं किया। परन्तु वर्तमान समय में भी पठार में गुज्जर जाति अधिक संख्या में नहीं है अतः इतने बड़े प्रान्त को उनका नाम दिये जाने के अन्य कारण ढूंढने चाहिये जिसे उन्होंने पूर्णतयः अधिकृत नहीं किया था।

गुर्जर प्रान्त के अपने विवरण में मैं गुर्जर जाति के राजाओं के प्राचीन लेख का उल्लेख कर चुका हूँ। इस लेख से हमें ज्ञात होता है कि शक सम्बत ३८० अथवा ४५८ ई० में गुज्जरों ने अपनी विजय पताका दक्षिण में नर्बदा तट तक फहराई थी। उस वर्ष एवं तदोपरान्त ४६३ ई० में उनके राजा श्री दत्त कुसाली ने किन्हीं ब्राह्मणों को जम्बुसार के समीप अक्रूरेश्वर जिले में भूमि प्रदान की थी। इस जिले को मैं भड़ौच के विपरीत नर्बदा के दक्षिणी तट पर अवस्थित अकलेश्वर समझता हूँ। परन्तु सम्बत ३९४ अथवा ४७२ ई० से पूर्व ही गुज्जर उत्तर में कम से कम खम्बाय की दूरी तक पीछे खदेड़ दिये गये थे क्योंकि चालुक्य राजाओं ने इन्हीं ब्राह्मणों को जम्बुसार नगर में भूमि प्रदान की थी जो भड़ौच एवं खम्बाय के मध्य में अवस्थित है। अतः यह निश्चत है कि गुज्जरों ने ईसा काल की पाँचवीं शताब्दी के समय से पठार से उत्तरी प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु दो शताब्दियों के पश्चात वह अपना अधिकार खो चुके थे क्योंकि ह्वेनसांग ने गुर्जर सिंहासन पर एक क्षत्रिय राजा का उल्लेख किया है फिर भी गुजर जाति आबू पर्वत के पश्चिमी एवं दक्षिणी प्रदेश की जनसंख्या का अधिकांश भाग बनी रही होगी और चूंकि अलाउद्दीन के अधीन प्रथम मुस्लिम विजेता अलफ खाँ ने गुर्जर प्रदेश के मध्य नहरवार अथवा अनहलवार में अपना मुख्यालय स्थापित किया था अतः मैं मेरे विचार में यह सम्भव है कि दिल्ली सल्तनत के इस नये प्रान्त के लिये सर्व प्रथम गुजरात नाम का प्रयोग किया गया था और चूंकि सौराष्ट्र का पठार प्रान्त का एक भाग था अतः इसे भी उसी सामान्य नाम के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया गया। अतः मैं पठार तक गुजरात नाम के विस्तार को जातिगत नाम के स्थान पर राजनैतिक सुविधा समझता हूँ। हेमिल्टन ने लिखा है कि मालवा एवं खानदेश के अधिकांश भाग को पहले गुजरात कहा जाता था और मार्को पोलो ने इस कथन की पुष्टि की है। उसने पठार—जिसे उसने सोमेनाट (सोमनाथ) कहा है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं गुजरात के राज्य को भिन्न-भिन्न बतलाया है। उसने उपर्युक्त राज्य को थाना के उत्तर में अर्थात भड़ौच तथा सूरत के समीप तट पर अवस्थित बताया है। पठार के आदि वासियों को वर्तमान समय में भी गुजरात का नाम ज्ञात नहीं है वह अपने प्रदेश को सूरत तथा काठियावाड़ कहते हैं अन्तिम नाम कुछ समय पूर्व मराठों से मिला था।

ह्वेनसांग ने बलभी की राजधानी की परिधि को ३० ली अथवा ५ मील कहा है। इसके खण्डहरों की सर्वप्रथम खोज मि० टाड ने की थी। यद्यपि वह वहाँ नहीं गये थे। अब डाक्टर निकलसन वहाँ जा चुके हैं एवं उनके अनुसार यह खण्डहर भाव नगर के १८ मील पश्चिम-उत्तर-पश्चिम में ताले ग्राम के समीप अवस्थित हैं। यह खण्डहर आज भी वमिलपुर के नाम से ज्ञात है, जो बलभी अथवा बलभीपुर का तनिक परिवर्तित स्वरूप है। यह खण्डहर काफी दूर-दूर तक फैले हुए हैं परन्तु ईंटों के असमान्य विशाल आकार को छोड़ इनके सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। लगता है कि अकबर के समय में ये खण्डहर अधिक महत्वपूर्ण थे क्योंकि अबुलफजल को सूचना मिली थी कि "सिरोज पर्वतों के अधोभाग पर एक विशाल नगर है जो यद्यपि अनुकूल स्थिति में अवस्थित है परन्तु इसका जीर्णोधार नहीं किया जा रहा है। माबिदचिन तथा घोगा की बन्दरगाह इस पर आश्रित है।" घोगा की समीपता इस ध्वस्त नगर को बलभी के वर्तमान खण्डहरों के अनुरूप सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। बलभी के खण्डहर घोगा से केवल २० मील की दूरी पर हैं।

सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने बलभी राज्य की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील कहा है और यदि हम इस राज्य में समीपस्त तट पर अवस्थित भड़ौच तथा सूरत के जिले, और साथ ही साथ सौराष्ट्र के सम्पूर्ण पठार को सम्मिलित करें तो उपर्युक्त आंकड़े वास्तिविक आंकड़ों के समीप हैं। परन्तु तीर्थ-यात्री की यात्राओं के विवरण का यह भाग प्रायः अशुद्ध तथा त्रुटि पूर्ण है। अतः उसकी त्रुटिओं को शुद्ध करने एवं उसकी भूल को सुधारने के लिए अपनी सूक्ष्म बुद्धि पर विश्वास कर-ना चाहिए। इस प्रकार भड़ौच के अपने विवरण में ह्वेनसांग ने हमें यह बताने में यह भूल की है कि क्या यह भिन्न एवं स्वतन्त्र राज्य था अथवा बलभी मालवा अथवा महाराष्ट्र आदि अपने शक्तिशाली पड़ोसियों में किसी का आश्रित था परन्तु सामान्य रूप से यह प्रदेश पठार से सम्बन्धित रहा है। अतः मेरा अनुमान है कि यह प्रदेश सातवीं शताब्दी में बलभियों के विशाल राज्य के अधीन था। टालमी के अनुसार बरीगाजा लारीके राज्य का भाग था जो ह्वेनसांग के समय में बलभी राज्य का दूसरा नाम था। इब्नहौकल के अनुसार दसवीं शताब्दी में यह प्रदेश बलभी राज्य के अधीन था जिनकी राजधानी अनलवारा थी। परन्तु चूंकि यह नगर ह्वेनसांग की यात्रा के एक सौ वर्ष पश्चात तक स्थापित नहीं हुआ था अतः मेरा निष्कर्ष है कि सातवीं शताब्दी में भड़ौच बलभियों के प्रसिद्ध राज्य का भाग रहा होगा। इसकी सीमाओं में उपर्युक्त क्षेत्रों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोड़ दिए जाने से बलभी राज्य की सीमान्त परिधि, जहाँ तक सम्भव है लगभग १००० मील रही होगी।

सौराष्ट्र

ह्वेनसांग के अनुसार सु-ला-चा अथवा सूरत प्रान्त बलभी राज्य का आश्रित था। इसकी राजधानी वलभी के पश्चिम में ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर यू-चेन-त, अथवा उज्जन्ता पर्वत के अधोभाग पर अवस्थित थो। यह संस्कृत उज्जयन्त का पाली स्वरूप है जो गिरिनार पहाड़ियों का केवल दूसरा नाम है। यह पहाड़ियाँ जूनागढ़ के पुराने नगर से ऊपर उठती हैं। उज्जन्त का नाम गिरिनार में प्राप्त रुद्र दाम तथा सिकन्दरगुप्त के लेखों में दिया गया है। यद्यपि अनुवादकों ने इस महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख करने में भूल की थी। इस प्रसिद्ध पहाड़ी के उल्लेख से सौराष्ट्र की राजधानी की स्थिति जूनागढ़ अथवा यवनगढ़ में निश्चित होती है जो बलभी से ८७ मील पश्चिम में अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित स्थान के अत्यधिक समीप है। यह विवरण पोस्टन्स के विवरण से मिलता है। जिन्होंने १८३३ ई० में पहाड़ी को "सेव के वृक्षों के घने जङ्गल से" ढका हुआ देखा था। उन्होंने अधोभाग पर अनेक खण्डहर देखे थे जिनमें समतल छतों वाले छोटे कमरे थे जिनकी छतों को वर्गाकार स्तम्भों का सहारा दिया गया था।"

सूरत का नाम पठार के इस भाग में आज भी ज्ञात है। परन्तु यह एक तुलनात्मक छोटे प्रदेश तक सीमित है जो गुजरात के दस खण्डों में एक है। परन्तु अकबर के समय में यह नाम पठार के दक्षिणी अथवा बड़े अर्धभाग को दिया गया था जो अबुलफजल के अनुसार घोगा बन्दरगाह से अमरराय बन्दरगाह तक तथा सिरधर से दियू बन्दरगाह तक विस्तृत था। जिले के नाम को टैरी ने भी सुरक्षित रखा है जिन्हें उपर्युक्त सूचनायें जहाँगीर के दरबार में प्राप्त हुई थीं। उनके विवरण के अनुसार सोरेट के मुख्य नगर को जनगर अर्थात जवनगढ़ अथवा जोनागढ़ कहा जाता था। यह प्रान्त छोटा, परन्तु अधिक समृद्धशाली था तथा इसके दक्षिण में समुद्र था। उस समय भी यह प्रान्त गुजरात के सम्मिलित प्रतीत नहीं होता क्योंकि टैरी ने इसे गुजरात के ऊपर की ओर वताया है।

सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने लिखा है कि सूरत अथवा सौराष्ट्र की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी तथा पश्चिम में इसकी सोमा मो-ही नदी थी। इस नदी को सदा मालवा की माही नदी के अनुरूप स्वीकार किया गया है जो खम्बात की खाड़ी में गिरती है (१) इस अनुरूपता को शुद्ध स्वीकार करने से ह्वेनसांग के समय में

(१) चूंकि मही नदी गुजरात के उत्तर पूर्व है अतः हमें या तो पूर्व पढ़ना चाहिए अथवा यह स्वीकार करना चाहिए कि तीर्थ यात्री ने नदी के पश्चिमी तट का उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूरत प्रान्त में बलभी नगर सहित सम्पूर्ण पठार सम्मिलित था। तीर्थ यात्री द्वारा सीमान्त सम्बन्धी आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है। यह आंकड़े कच्छ के छोटे रन से खम्बात तक खींची रेखा के दक्षिण पश्चिम में सम्पूर्ण पठार की सीमान्त दूरी से पूर्णयतः सहमत हैं। बलभी की प्रसिद्धि के होते हुए भी ६४० ई० तक सम्पूर्ण पठार को सूरत के प्राचीन नाम से पुकारा जाता था।

भड़ौच अथवा बरीगाजा

सातवीं शताब्दी में पो-लू-की-चो-पो अथवा बरुकचवा के जिले की परिधि २४०० से २५०० ली अथवा ४०० से ४१७ मील थी तथा इसका मुख्य नगर नाई-ओ-थो अथवा नर्बदा नदी के तट पर एवं समुद्र के समीप था। इन आंकड़ों से राजधानी को ब्राह्मणों द्वारा लिखित संस्कृत नाम भृगु, कच्छ अथवा प्राचीन लेखों के भावु कच्छ के अन्तर्गत भड़ौच के सर्व ज्ञात तटीय नगर के अनुरूप सरलता पूर्वक स्वीकार किया जा सकता है। भारु-कच्छ नाम प्रायः अधिक प्रचलित था क्योंकि टालमी तथा पैरीप्लस के लेखक ने इसे अक्षरशः सुरक्षित रखा है। ह्वेनसांग के आंकड़ों से जिले की सीमाओं को प्रायः उत्तर में माही नदी से दक्षिण में दामान तक तथा पश्चिम कैम्बे की खाड़ी से पूर्व में साइयादी पर्वतों तक विस्तृत बताया जा सकता है।

ह्वेनसांग की पुस्तक के अनुसार भड़ौच अथवा बलभी दक्षिणी भारत में थे तथा सौराष्ट्र पश्चिमी भारत मे, एवं उज्जैन मध्य भारत में था। मैं इस कथन को ह्वेनसांग की उन अनेक त्रुटियों में सम्मिलित करता हूँ जिनके कारण पश्चिमी भारत में सम्बन्ध में उसका विवरण भ्रम पूर्ण बन गया है अतः मैं बलभी एवं भड़ौच दोनों को पश्चिमी भारत का अङ्ग बताऊँगा क्योंकि वह दोनों सौराष्ट्र के विशाल प्रान्त के भाग हैं। पैरीप्लस के लेखक से इस कथन की पुष्टि होतो है जिसने लिखा है कि बरि-गाजा से नीचे तट दक्षिण की ओर मुड़ जाता है जहाँ इस प्रदेश को दखिनाबादेज़ कहा गया है क्योंकि स्थानीय जनता दक्षिण को दखनाओस कहा करते हैं।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य भारत

चीनी तीर्थ यात्री के अनुसार मध्य भारत का विशाल खण्ड सतलज से गङ्गा के मुहाने के सिरे तक तथा हिमालय से नर्बदा एवं महानदियों तक विस्तृत था। इसमें गङ्गा के मुहाने अथवा बङ्गाल को छोड़ भारत के अन्य सभी समृद्ध एवं सर्वाधिक जन-पूर्ण जिले सम्मिलित थे। सातवीं शताब्दी में भारत के सत्तर विभिन्न राज्यों में कम से कम ३७ अथवा आधे से कुछ अधिक राज्य मध्य भारत में थे। ह्वेनसांग ने इन सभी जिलों की यात्रा की थी तथा इन विभिन्न राज्यों का पश्चिम से पूर्व निम्न क्रम में वर्णन करने में मैं उसके पद चिह्नों का अनुसरण करूंगा :—

(१) थानेश्वर
(२) बैराट
(३) स्रुघना
(४) मडावर
(५) ब्रह्मपुर
(६) गोबिसाना
(७) अहिछत्र
(८) पिलोसना
(९) सङ्किसा
(१०) मथुरा
(११) कन्नौज
(१२) अयूतो
(१३) ह्यामुख
(१४) प्रयाग
(१५) कोशाम्बी
(१६) कुसपुरा
(१७) वैसाख
(१८) स्रावस्ती (श्रावस्ती)
(१९) कपिला
(२०) कुशीनगर
(२१) वराणसी
(२२) यौद्धापतीपुरा
(२३) वैशाल
(२४) व्रिजी
(२५) नेपाल
(२६) मगध
(२७) हिरण्य पर्वत
(२८) चम्पा
(२९) कान्कजोल
(३०) पौण्ड्र वर्धन
(३१) जझोती
(३२) महेश्वरपुर
(३३) उज्जैन
(३४) मालवा
(३५) खेड़ा अथवा खेड़ा
(३६) अनन्दपुर
(३७) वडारी अथवा इडर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थानेश्वर

सातवीं शताब्दी में सा-ता-नी-शी-फा-लो अथवा थानेश्वर एक भिन्न राज्य की राजधानी थी। यह राज्य परिधि में ७००० ली अथवा ११६७ मील था। इस राज्य के किसी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु यह कन्नौज के हर्ष-वर्धन का आश्रित राज्य था जो उस समय मध्य भारत का सर्वोच्च शासक था। ह्वेनसांग द्वारा दिये गये अधिक आंकड़ों से मेरा अनुमान है कि यह जिला सतलज से गङ्गा तक विस्तृत रहा होगा। इसकी उत्तरी सीमा को सतलज नदी पर हरी की पट्टन से गङ्गा नदी के समीप मुजफर नगर तक खींची गई सीधी रेखा कहा जा सकता है तथा इसकी दक्षिणी सीमा सतलज पर पाक पट्टन के समीप से भटनेर एवं नारनोल के मार्ग से गङ्गा नदी पर अनूपशहर तक अनियमित रेखा बताई जा सकती है। इन सीमाओं के भीतर इसकी सीमान्त रेखा लगभग ६०० मील हो जाती है जो तीर्थ-यात्री द्वारा बताई सीमा से एक चौथाई कम है। परन्तु यह निश्चित है कि अधिकांश सीमा सम्बन्धी आंकड़े अतिश्योक्ति पूर्ण हैं क्योंकि इनकी दूरियों का केवल अनुमान लगाया जा सकता था और अधिकांश व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्ति अपने देश के आकार को बढ़ा-चढ़ा कर बताने की होती है। त्रुटि का अन्य कारण ह्वेनसांग के निजी उल्लेख में अपर्याप्त सूचनायें हैं। इस विवरण में प्रत्येक ३७ जिलों को एक विशिष्ट एवं भिन्न राज्य कहा गया है जबकि यह प्रायः निश्चित है कि इनमें अनेक छोटे राज्यों को बड़े राज्यों की सीमओं में सम्मिलित समझा जाना चाहिये। इस प्रकार मेरा विश्वास है कि गोविस्ना एवं अहिछत्र के छोटे जिले मदावर राज्य के भाग रहे होंगे, गङ्गा दोआब में अयूतो, हयामुख, कोशाम्बी एवं प्रयाग के जिले कन्नौज में, कुशीनगर, कपिला में तथा वडरी तथा खेड़ा के जिले मालवा में सम्मिलित रहे होगे। मेरा विश्वास है कि कुछ उदाहरणों में सैकड़ा के स्थान पर हजार लिखा गया है। मैं गङ्गा दोआब के निचले एवं छोटे जिलों का विशेष उल्लेख करता हूँ। प्रयाग अथवा इलाहाबाद को परिधि में ५००० ली अथवा ८३३ मील कहा गया है एवं कोशाम्बी को-जो इलाहाबाद से केवल ३० मील की दूरी पर है परिधि में ६००० ली अथवा १००० मील कहा गया है। इन दोनों उदाहरणों में मैं ५०० ली अथवा ८३ मील तथा ६०० ली० अथवा १०० मील पढ़ूंगा जो इन छोटे खण्डों के वास्तविक आकार से मिल जायेगा। यह पूर्णतः निश्चित है कि के जिले अधिक बड़े नहीं हो सकते थे क्योंकि यह अन्य सर्व-ज्ञात जिलों से पूर्णतः घिरे हुए हैं। त्रुटि के उपर्युक्त कारणों में किसी भी कारण को सुधारने से मेरा विचार है कि ह्वेनसांग के आंकड़े शुद्ध आंकड़ों से अधिक भिन्न नहीं हैं।

थानेश्वर नगर में प्राचीन ध्वस्त दुर्ग सम्मिलित है जो शिर पर १२००० फुट वर्गाकार है। पूर्व के एक टीले पर आधुनिक नगर है एवं पश्चिम में एक अन्य टीले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर बबरी नाम का उपनगर है। कुल मिला कर तीनों टीले पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई में एक मील तक एवं चौड़ाई में औसतन २००० फुट में फैले हुए हैं। इन आंकड़ों से इसकी परिधि १४००० फुट अथवा २$\frac{3}{4}$ मील से कुछ कम बनती है जो ह्वेनसांग द्वारा २० ली अथवा ३$\frac{1}{3}$ मील के आंकड़ों से कुछ कम है। परन्तु ईंटों के वर्तमान अवशेषों से और साथ ही साथ स्वयं जन साधारण के कथनों से इतना निश्चित है कि मुसलमानों के आगमन से पूर्व वर्तमान नगर एवं झील-जिसे अब दर्रा कहा जाता है—के मध्य का सम्पूर्ण भाग प्राचीन नगर का भाग रहा होगा। इस क्षेत्र के भीतर जहां तक सम्भव है मूल नगर चारों ओर एक मील का वर्ग रहा होगा जिससे इसकी परिधि चार मील अथवा चीनी-तीर्थ यात्री के आंकड़ों से कुछ अधिक हो जाती है। प्रथाओं के अनुसार पांडवों से पांच शताब्दी पूर्व के वंशज राजा दलीप ने इस दुर्ग का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि इसके ५२ बुर्ज थे जिनमें कुछ एक के अवशेष वर्तमान काल में मिलते है। पश्चिम की ओर मिट्टी की प्राचीरें सड़क से ६० फुट ऊँची उठ जाती है परन्तु भीतर का अधिकांश भाग ४० फुट से अधिक नहीं है। सम्पूर्ण टीला विशाल ईंटों के टुकड़ों से ढंका हुआ है परन्तु तीन कुओं को छोड़ अधिक प्राचीन अवशेष नहीं हैं।

कहा जाता है कि थानेसर अथवा स्थानेश्वर का नाम या तो ईश्वर अथवा महादेव के स्थान से लिया गया है अथवा स्थानों तथा ईश्वर के नामों के सङ्गम से अथवा स्थानों एवं सर अर्थात् झील, से लिया गया है। यह नगर भारत के प्राचीनतम एवम् सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानों में गिना जाता है परन्तु इस नाम के अन्तर्गत इसका सर्व प्रथम निश्चित उल्लेख ६३४ ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने किया है। यद्यपि यह अधिक सम्भव है कि टालमी ने बतन-केसर के नाम से इसका उल्लेख किया है जिसे हमें संस्कृत के स्थानेश्वर के स्थान पर सम्भवतः स्तानेसर पढ़ना चाहिए। परन्तु यह स्थान महादेव के मन्दिर की अपेक्षा पांडवों के इतिहास से सम्बन्धित होने के कारण अधिक प्रसिद्ध था। क्योंकि भारत में महादेव की पूजा महाभारत के वीरों के समय की अपेक्षा नवीन है। थानेसर के आस-पास सरस्वती तथा द्रिशदवती नदियों के बीच सम्पूर्ण प्रदेश कुरुक्षेत्र अर्थात् "कुरु की भूमि" के नाम से ज्ञात है। कहा जाता है कि कुरु ने नगर के दक्षिण में विशाल पवित्र झील के तट पर सन्यास लिया था। इस झील को ब्रह्मासर, रामाहरद, वायु अथवा वायु-सर तथा पवन-सर आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। प्रथम नाम ब्रह्मा से सम्बन्धित है क्योंकि उन्होंने इसके तट पर बलि चढ़ाई थी। दूसरा नाम परशुराम से लिया गया है जिन्होंने इस स्थान पर क्षत्रियों का रक्त बहाया था। अन्तिम दोनों नाम कुरु के सन्यासी जीवन काल में इस स्थान पर आनन्दकारी वायु के कारण वायु देव से लिये गये हैं। अधिकांश तीर्थ यात्रियों के लिये यह झील आकर्षण का केन्द्र है परन्तु इसके चारों ओर कई मीलों तक सम्पूर्ण प्रदेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पवित्र माना जाता है तथा कौरवों, पांडवों एवं अन्य प्राचीन वीरों से सम्बन्धित अनेक पवित्र स्थान निश्चित ही अधिक हैं। सर्व साधारण के विश्वासानुसार इनकी संख्या ३६० है परन्तु कुरुक्षेत्र महातम्य की सूची १८० तक सीमित है जिनमें आधे अथवा ९१ स्थान पवित्र सरस्वती नदी के उत्तर की ओर हैं। परन्तु पुण्ड्र के स्थान पर नागहृद, बस्थली में वैशस्थल, बालू में पराशर तीर्थ तथा नरान के समीप सग्गा के स्थान पर विष्णु तीर्थ आदि महत्वपूर्ण स्थानों को उपर्युक्त सूची में स्थान नहीं दिया गया है। अतः मैं यह विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि जन साधारण की संख्या ३६० अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं हो सकती।

कुरुक्षेत्र के चक्र अथवा जिले को धर्म क्षेत्र भी कहा जाता है जो प्रत्यक्ष रूप से ह्वेनसांग का सौभाग्य स्थान है। उसके समय में तीर्थ की परिक्रमा २०० ली तक सीमित थी जो ४० ली बराबर ४ कोस के भारतीय योजन की उसकी निजी दर से २० कोस के समान है। परन्तु अकबर के समय में यह परिक्रमा बढ़ कर ४० कोस हो गई थी और मेरी यात्रा के समय इसका विस्तार ४० कोस था। यह परिक्रमा सर्व ज्ञात थी एवं श्री बोरिङ्ग ने भी इसका उल्लेख किया है। ७ अथवा ८ मील बराबर एक योजन की दर से ह्वेनसांग द्वारा बताई गई परिधि ३५ अथवा ४० मील से अधिक नहीं हो सकती परन्तु १$\frac{1}{3}$ मील बराबर पादशाही कोस की सामान्य दर से अबुलफजल द्वारा कथित परिधि ५३ मील से कम नहीं हो सकती और सर एच० इलियट द्वारा अकबरी कोस को २$\frac{1}{2}$ मील के समान स्वीकार करने से उपर्युक्त परिधि १०० मील से अधिक हो जायेगी। फिर भी तीर्थ यात्री की संख्याओं को बदलकर ४०० ली अथवा १० योजन पढ़ने से—जो ४० कोस अथवा ८० मील के बराबर है—अथवा अबुल-फजल के ४० कोस को २ मील की सामान्य भारतीय दर के अनुसार इन विभिन्न कथनों को समान बनाया जा सकता है। मैं स्वयं तीर्थ यात्री की संख्याओं में उपर्युक्त संशोधन करने की आवश्यकता समझता हूँ क्योंकि उसकी सीमित परिधि से न केवल सरस्वती पर अवस्थित पृथुदक अथवा पिहोआ, तथा कौशिकी सङ्गम अर्थात कौशिकी एवं द्रिशदावती नदियों के सङ्गम स्थान पर अवस्थित समान रूप से महत्वपूर्ण स्थल बाहर रह जायें वरन् द्रिशदावती नदी भी वस्तुतः इस परिधि में सम्मिलित नहीं होगी जबकि वामन पुराण में इसे विशेष रूप से पवित्र भूमि की सीमाओं में दिखाया गया है—

दीर्घ-क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे दीर्घ सत्रन्तयेरे,
नुदयास्तीरे दृश्दवत्ताह पुन्यय: सुचिरोधशः।

"वह अपने गुणों के कारण पवित्र मानी जाने वाली दृश्दवती के तट पर कुरु क्षेत्र के विशाल क्षेत्र में सत्रन्त की महान बली दे रहे हैं।" महाभारत के वायु पुराण में भी पवित्र भूमि की दक्षिणी सीमा के रूप में इसका विशेष उल्लेख किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिनेना सरस्वतया द्दशदवत्युत्तरेन चः,
ये वसन्ती कुरुक्षेत्रे ते वसन्ती तृवृशतपे ।

"सरस्वती से दक्षिण में एवं द्दशदवती के उत्तर कुरु क्षेत्र के निवासी स्वर्ग में निवास कर रहे हैं।" इस कथनों से यह निश्चित है कि कुरु क्षेत्र की पवित्र भूमि ह्वन-सांग के समय में द्दशदवती तक विस्तृत रही हो अतः इस क्षेत्र की परिधि को २०० ली अथवा २० कोस बताने में त्रुटि हुई है।

महाभारत में एक अन्य स्थान पर पवित्र भूमि की सीमाओं को अधिक स्पष्ट रूप से लिखा गया है तथा भचकनुका के मध्य प्रदेश को कुरु क्षेत्र, समन्तपञ्चक तथा पित्तामह (ब्रह्मा) की उत्तरी वेदी कहा जाता है। चूंकि ब्रह्मावेदी का नाम ब्रह्मावर्त्त के समान है अतः पवित्र भूमि को द्दशदवती के तट तक विस्तृत स्वीकार करने के लिए हम मनु की निम्न साक्षी का उल्लेख कर सकते हैं।

सरस्वती द्दशदवत्त्योरदेवः नुदयोर यदन्तरम,
तत देवःनिर्मितम-देशन ब्रह्मावर्त्तन प्रचकशते।

"अर्थात देवताओं द्वारा निर्मित प्रदेश-जो सरस्वती एवं द्दश्दवती नदियों के मध्य है—ब्रह्मवर्त्त कहलाता है।"

कुरु क्षेत्र का महान सरोवर पूर्व से पश्चिम ३५४६ फुट लम्बा एवं १६०० फुट चौड़ा है। अबु-रिहान जिसने वराह मिहिर की साक्षी के आधार है पर लिखा है—का कथन है कि चन्द्र ग्रहण के समय अन्य सभी सरोवरों का जल थानेसर के सरोवर में आ जाता है जिससे चन्द्र ग्रहण के समय तीर्थ यात्री एक ही समय में अन्य सभी सरोवरों में स्नान का पुण्य प्राप्त कर सके।

वराह मिहिर का उपर्युक्त विवरण हमें ५०० ई० तक पीछे ले जाता है जब थानेसर का पवित्र सरोवर पूर्णतः भरा हुआ था। परन्तु पौराणिक कथाओं में सरोवर को पाण्डवों के समय से भी प्राचीन कहा गया है। इसी के तट पर कौरवों एवं पाण्डवों के संयुक्त पूर्वज कुरु ने तपस्या की थी। इसी स्थान पर परशुराम ने क्षत्रियों का वध किया था और इसी स्थान पर ही अपसरा उर्वशी को खो देने के पश्चात कुरु ने "कमल के फूलों से सुसज्जित सरोवर में स्वर्ग की अपसराओं के संग क्रीड़ा करते समय" कुरु क्षेत्र के स्थान पर अपनी दिव्य पत्नी को प्राप्त किया था। परन्तु अश्व के सिर वाले बन्धन अथवा दधीच की कथा पाण्डवों की कथा से अधिक प्राचीन है क्योंकि यह कथा ऋग्वेद से सम्बन्धित है। "इन्द्र ने अपनी अस्थियों द्वारा नौ वृत्रों का ६० बार बध किया था" टी.काकारों ने इसे इस कथन द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि इन्द्र का बज्र अश्व-शिर से बना था जिसे अश्विनियों ने शिर विहीन दधयन्च को दिया था जिससे वह उन्हें अपनी विद्या सिखा सकें। कथा के अनुसार दधयन्च अपने जीवन काल में असुरों के लिए भय का कारण बना हुआ था। जो उसकी मृत्यु के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् वृद्धि करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गये। तत् पश्चात, "इन्द्र ने उसकी खोज करते हुए पता लगाया कि उसके अवशेष शेष हैं अथवा नहीं। उसे सूचना दी गई कि अश्व का सिर जीवित है परन्तु उसका स्थान अज्ञात है। इसकी खोज की गई और इसे कुरुक्षेत्र के बाह्य भाग में सरिनावत सरोवर में प्राप्त किया गया।" मेरा अनुमान है कि यह कुरुक्षेत्र के विशाल सरोवर का केवल अन्य नाम है और परिणाम स्वरूप यह भी विश्वास है कि यह पवित्र सरोवर ऋगवेद के समान प्राचीन है। मैं इसे सम्भावित समझता हूँ कि चक्र तीर्थ अथवा वह स्थान जहाँ विष्णु ने भीष्म को मारने के लिए अपना चक्र उठाया था। वह स्थान रहा होगा जहाँ इन्द्र ने वृत्रों का वध किया था और वह अस्थियाँ जिन्हें बाद में पांडवों से सम्बन्धित किया है सम्भवतः प्राचीन कथा के वृत्रों की अस्थियाँ थीं। इस प्रस्ताव के पक्ष में मैं यह उल्लेख करूंगा कि चक्र-तीर्थ अस्थि पुर अथवा "अस्थियों के स्थान" के समीप है। ६३४ ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग को यह अ थियाँ दिखाई गई थी। जिसने लिखा है कि वे अत्याधिक बड़े आकार की थीं। इन अस्थियों के सम्बन्ध में मेरे सभी प्रयत्न असफल रहे परन्तु अस्थि-पुर स्थान को अब भी अऊजस घाट के समीप नगर के पश्चिम में समतल भूमि में दिखाया जाता है।

पिट्टोआ अथवा पृथु दक

पिट्टोआ का प्राचीन नगर थानेसर के १४ मील पश्चिम में सरस्वती के दक्षिणी तट पर स्थित है। इस स्थान का नाम प्रसिद्ध प्रथु चक्रवर्ती से मिला था जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह प्रथम व्यक्ति था जिसे राजा की उपाधि प्राप्त हुई थी। विष्णु पुराण के अनुसार उसके जन्म के समय "सभी जीव प्रसन्न हुए थे।" क्योंकि उसका जन्म सम्पूर्ण पृथ्वी पर पहलो तत्कालीन अराजकता को समाप्त करने के लिए हुआ था। इसी पुराण में सरस्वती में स्नान करने से राजा वेन के कोढ़ समाप्त होने की कथा का उल्लेख भी किया गया है। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र पृथु ने सामान्य श्राद्ध किया तथा मृत्यु के १२ दिन तक उन्होंने सरस्वती के तट पर आगन्तुकों को जल पिलाया अतः इस स्थान को पृथुदक अथवा पृथु का सरोवर, नाम दिया गया और उसी स्थान पर पृथु द्वारा बनवाए गए नगर को उसी नाम से पुकारा गया। पृथुदक के स्मारक को कुरु क्षेत्र महातमय में स्थान प्राप्त है और आज भी तीर्थ यात्री इस स्थान पर जाते हैं।

अमीन

थानेसर के पाँच मील दक्षिण-दक्षिण पूर्व में अमीन नाम एक विशाल एवम् उन्नत टीला है जिसे ब्राह्मणों अभिमन्यु खेड़ा अथवा अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के टीले का संक्षिप्त स्वरूप समझते हैं। इस स्थान को चक्रव्यूह का नाम भी दिया गया है क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाण्डवों ने कौरवों से अपने अन्तिम युद्ध से पूर्व अपनी सेनाओं को इसी स्थान पर एकत्रित किया था। इस स्थान पर अभिमन्यु जयद्रथ द्वारा मारा गया था जो स्वयं दूसरे दिन अर्जुन द्वारा मारा गया था। कहा जाता है कि इसी स्थान पर अदिति न पुत्र प्राप्ति हेतु सन्यासी रूप में तपस्या की थी और तदनुसार इसी स्थान पर उसने सूर्य को जन्म दिया था। यह टीला उत्तर से पश्चिम लम्बाई में २००० फुट तथा चौड़ाई में ८०० फुट है और इसकी ऊँचाई २५ से ३० फुट है। शिखर पर अमीन नामक एक छोटा गांव है जिसमें गौठ ब्राह्मणों का निवास है। यहाँ पर अदिति का एक मन्दिर है तथा पूर्व में सूर्य कुण्ड एवं पश्चिम में सूर्य का मन्दिर है। कहा जाता है कि सूर्य कुंड वही स्थान है जहाँ सूर्य का जन्म हुआ था और तदानुसार पुत्र की इच्छुक समस्त स्त्रियाँ रविवार के दिन अदिति के मन्दिर में पूजा करती है और तत्पश्चात सूर्य कुंड में स्नान करती हैं।

बैराट

ह्वेनसांग के अनुसार पो-लो-ये-तो-लो राज्य-जिसे एम० रेनाड नें पारयात्र अथवा बैराट के अनुसार स्वीकार किया है, की राजधानी मथुरा के पश्चिम में ५०० ली अथवा ८३$\frac{2}{3}$ मील की दूरी पर एवं शी-तो-तू लो अर्थात सतद्रु अथवा सतलज राज्य के दक्षिण पश्चिम में ८०० ली अथवा १३३$\frac{2}{3}$ मील की दूरी पर अवस्थित था। मथुरा से दिक्‌कांश एवं दूरी ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित नगर के रूप में मत्स्य की राजधानी बैराट की ओर असन्दिग्ध रूप से संकेत करते हैं। यद्यपि तीर्थ-यात्री द्वारा दूरी की अपेक्षा यह स्थान कुलू के दक्षिण में १०० मील से अधिक दूरी पर है। परन्तु उत्तरी भारत में सतद्रु की मध्यवर्ती स्थिति के अपने विवरण में उपर्युक्त त्रुटि का उल्लेख कर चुका हूँ।

महमूद के समकालीन अबुरिहान ने करजात की राजाधानी नरान को मथुरा के पश्चिम में २८ परसांग की दूरी पर दिखाया है। (१) जिससे परसांग को ३$\frac{1}{2}$ मील के समान स्वीकार करने पर ६८ मील अथवा ह्वेनसांग के आकड़ों से १४ मील अधिक हो जाएगी। परन्तु चूंकि विभिन्न मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों में करजात की राजधानी नरान एवं बैराट की राजधानी नरायन के अनुरूप होने में कोई सन्देह नहीं रहा अतः मथुरा से कथित दूरियों में भिन्नता का कोई महत्व नहीं रह जाता। अबुरिहान के अनुसार मुसलमान नरान अथवा बजान को नारायन कहा करते थे और यह नाम इस समय भी स्वयं बैराट के १० मील उत्तर पूर्व में अवस्थित नगर नारायन पुर में सुरक्षित है। अबुरिहान ने मथुरा से नरान तक दो विभिन्न मार्गों का उल्लेख किया है। प्रथम सीधा मार्ग मथुरा से होते हुए ५६ परसांग अथवा १६६ मील है जबकि

(१) रिनाड की पुस्तक के अनुवादक ने इसे बजान लिखा है परन्तु सर एच० एम० इलियट ने इसके शुद्ध स्वरूप नरान का उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जमुना के दक्षिण में दूसरा मार्ग ८८ परसांग अथवा ३०८ मील है। अन्तिम मार्ग के मध्यवर्ती पड़ाव इस प्रकार है। प्रथम ८०, १८ परसांग अथवा ६३ मील, द्वितीय, सकीना, परसांग, अथवा ५६$\frac{1}{2}$ मील, तृतीय, जन्दर, १८ परसांग, अथवा ६३ मील, चतुर्थ, रजौरी, १५ अथवा १७ परसांग, ५४ अथवा ५६$\frac{1}{2}$ मील, तथा पञ्चम बजान अथवा नरान, २० परसांग अथवा ७० मील। चूंकि प्रथम पड़ाव की दिशा विशेष रूप से कन्नौज के दक्षिण पश्चिम में दिखाई गई है इसे इटावा के ६ मील दक्षिण में तथा कन्नौज से लगभग ६३ मील दक्षिण पश्चिम में यमुना के तट पर असाई घाट के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। द्वितीय पड़ाव का नाम सहिना लिखा गया है जिसे साधारण अदला बदली से मैं सुहनिया पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ जो ग्वालियर के २५ मील उत्तर में अवस्थित एक अत्यधिक विशाल एवं प्रसिद्ध ध्वस्त नगर का नाम है। असाई घाट से इसकी दूरी लगभग ५६ मील है। तृतीय पड़ाव जिसे एम० रेनाड ने जन्दर कहा है एवं सर हैनरी इलियट ने चन्द्र कहा है—को मैं हिंडन समझता हूँ। चम्बल नदी पर खेत्री घाट के मार्ग से सोहानियां से इसकी दूरी लगभग ७० मील है। रजौरी नामक चतुर्थ पड़ाव इसी नाम के अन्तर्गत मछेरी के १२ मील दक्षिण पश्चिम में अथवा हिंडन से लगभग ५० मील उत्तर पश्चिम में है। तत्पश्चात् नारायनपुर तथा बैराट तक यह मार्ग अलवर अथवा मछेरी की पहाड़ियों से गुजरता है। जिसके कारण इसकी दूरी का ठीक निश्चय करना कठिन हो जाता है। पत्थर पर छपे मानचित्र की प्रतिलिपि में ८ मील बराबर एक इञ्च की दर से आंकने पर मैं इसकी दूरी को ६० मील समझता हूँ जो अबुरिहान के विवरण के २० परसांग अथवा ७० मील से पर्याप्त रूप से समीप है।

अबुरिहान की अन्य यात्राओं के विवरण के अनुसार नरान मेवाड़ में चितौड़ से २५ मीम उत्तर में था, मुल्तान के पूर्व में ५० परसांग एवं अनहलवार के उत्तर पूर्व में ६० परसांग की दूरी पर था। बैराट से इन स्थानों के दिकांश पर्याप्त रूप से शुद्ध है परन्तु इनकी दूरी $\frac{1}{2}$ भाग से कुछ अधिक कम है। चित्तौड़ तक २५ परसांग की प्रथम दूरी के लिए मैं ६५ परसांग अथवा २२७ मील पढ़ने का प्रस्ताव करूंगा जबकि सैनिक अधिकारियों द्वारा अङ्कित वास्तविक मार्ग दूरी २१७$\frac{3}{4}$ मील है। चूंकि रशीदुद्दीन द्वारा दिए गए अबुरहान के विवरण में चित्तौड़ की दूरी नहीं दी गई है। अतः यह सम्भव है कि तारीख ए हिन्द की मूल प्रतिलिपि में कोई त्रुटि अथवा भूल रही होगी। मुल्तान तक ५० परसांग की त्रुटि पूर्ण दूरी को इस आधार पर क्षमा किया जा सकता है कि एक सेना के लिए मरुस्थल के सीधे मार्ग से जाना प्रायः असम्भव था अतः इस दूरी का केवल अनुमान लगाया गया था। मेरा विचार है कि अनहलवार की कथित ६० परसांग की दूरी चित्तौड़ से सम्बन्धित होनी चाहिए। जो बैराट तथा अनहलवार के मध्य में है। इन सभी विभिन्न यात्राओं की सूचियों की तुलना करने पर मुझे कर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जात अथवा गुजरात की राजधानी बजान अथवा अरान को वैराट अथवा वैराट की राजधानी नारायनपुर के अनुरूप स्वीकार करने में संकोच नहीं है। फरिश्ता ने वैराट को, डौ के अनुसार किबरात अथवा ब्रिग्स के अनुसार कैरात लिखा है यह दोनों नाम बैराट अथवा विराट के अशुद्ध स्वरूप हैं। मुसलमानों ने बैराट अथवा विराट को इसी प्रकार लिखा होगा।

मत्स्य की राजधानी विराट दिल्ली अथवा इन्द्रप्रस्त से १२ वर्ष के वनवास के समय पञ्च पांडवों के निवास स्थान के रूप में हिन्दू प्रथाओं में प्रसिद्ध है। यह प्रदेश जनता के शौर्य के लिए भी प्रसिद्ध था क्योंकि मनु का निर्देश है कि सेना का अग्रिम भाग "इन्द्रप्रस्त के समीप कुरू क्षेत्र, मत्स्य अथवा विराट, पांचाल अथवा कान्य कुब्ज तथा मथुरा जिले सूरसेन नामक स्थान पर जन्म लेने वाले व्यक्तियों" से बना होना चाहिए। नगर के उत्तर में लगभग एक मील की दूरी पर एक लम्बी निचली पहाड़ी के शिखर पर भीम के निवास को दिखाया जाता है। यह पहाड़ी निचली श्रेणी के कंकरीले बिलौरी पत्थरों के विशाल समूहों से बनी हूई हैं जो समय एवं ऋतु के कारण घिस गये हैं एवं वाह्य ओर से गोलाकार बन गये हैं। इनमें कुछेक पत्थर अन्दर की ओर कट गये हैं और मिट्टी से पुती छोटी पत्थर की दीवारों के मध्य से इन कटे पत्थरों को निवास स्थान के रूप में बदल दिया गया है। भीम गुफा इसी प्रकार एक लटकती बड़ी चट्टान के साथ पत्थरों की दीवार जोड़ कर बनाई गई है। इस चट्टान का व्यास ६० फुट है इसी की ऊँचाई ५ फुट है। कहा जाता है कि इसी प्रकार के परन्तु, छोटे कमरे भीम के भ्राताओं के निवास स्थान थे। कुछ ब्राह्मणों ने इस स्थान पर अधिकार कर रखा है जो तीर्थ यात्रियों द्वारा दी गई दानपुण्य की आमदनी से बसर करने का दावा करते हैं परन्तु उनकी समृद्ध स्थिति को देखते हुए उनका उपर्युक्त कथन असत्य प्रतीत होता है। भीम गुफा से कुछ नीचे गड्ढे में वर्षा ऋतु का जल एकत्रित करने के लिये एक कुआँ बनाया गया है और एक दरार से पत्थर निकाल कर १५ फुट लम्बा, ५ फुट चौड़ा एवं १० फुट गहरा सरोवर बनाया गया है परन्तु १० नवम्बर को मेरी यात्रा के दिन यह तालाब पूर्णतय: सूखा हुआ था।

बैराट नगर निचली नङ्गी लाल पहाड़ियों से घिरी एक गोलाकार घाटी में बसा हुआ है। ये पहाड़ियाँ काफी समय से ताँबे की अपनी खानों के लिए प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त नगर दिल्ली से १०५ मील दक्षिण पश्चिम में एवं जयपुर से ४१ मील उत्तर में है। घाटी का मुख्य प्रवेश मार्ग उत्तर पश्चिम में एक छोटी नदी के साथ-साथ है जो वान गङ्गा की मुख्य सहायक नदियों में गिनी जाती है। इस घाटी का व्यास २½ मील है एवं इसकी परिधि ७½ मील से ८ मील है। यहाँ की मिट्टी प्रायः अच्छी है तथा वृक्ष और विशेषतयः झाड़ियाँ उत्तम एवं प्रचुर है। बैराट खण्डहरों के टीले पर अवस्थिति है जो एक मील लम्बा एवं आधा मील चौड़ा है। इसकी परिधि १½ मील से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ अधिक है परन्तु वर्तमान नगर इस टीले के केवल ⅙ भाग पर बसा हुआ है। आस-पास के खेत बर्तनों के टुकड़ों एवं प्राचीन ताम्र मलवे से ढँका हुआ है और घाटी का सामान्य रङ्ग ताँबे के समान लाल है। कहा जाता है कि ३०० वर्ष पूर्व अकबर के दीर्घ कालीन एवं समृद्धशाली शासन काल में बसने से पूर्व बैराट नगर नाम का प्राचीन नगर अनेक शताब्दियों तक जनविहीन था। अकबर के समय यह नगर निश्चित रूप से बसा हुआ था क्योंकि अबुल फजल ने आईन-ए-अकबरी में ताँबे की लाभकारी खानों से युक्त नगर के रूप में इसका उल्लेख किया है। कहा जाता है कि नगर से पूर्व में आधे मील की दूरी पर एवम् पहाड़ी से ठीक नीचे विशाल टीले प्राचीन नगर के भाग थे। परन्तु उसकी स्थिति एवम् आकृति से मैं इसे किसी विशाल धार्मिक संस्था के अवशेष समझने का इच्छुक हूँ। वर्तमान खण्डहरों में केवल पत्थरों की बनी नीवें दिखाई देती हैं क्योंकि सभी चकोर पत्थर आधुनिक नगर के भवनों के निर्माण में लगा दिए गये हैं।

बैराट के भवनों की संख्या १४०० बताई जाती है जिनमें ६०० गृह गौड़ ब्राह्मणों के हैं, ४०० अग्रवाल बनियों के, २०० मीनों के, एवं शेष २०० अन्य विभिन्न जातियों से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक मकान में ५ व्यक्तियों की सामान्य दर से बैराट की जन संख्या ७००० रही होगी।

बैराट का ऐतिहासिक उल्लेख ६३४ ई० में चीनी तीर्थ यात्री ह्वेनसांग ने किया है। उसके अनुसार राजधानी की परिधि १४, १५ ली अथवा प्रायः २½ मील थी जो प्राचीन टीले के आकार से ठीक-ठीक मिलती है जिस पर वर्तमान नगर बसा हुआ है। यहाँ की जनता वीर एवम् निडर थी और उनका राजा जो फी-शी, वैश्य अथवा बैस राजपूत था—युद्ध में साहस एवम् कौशल के लिए प्रसिद्ध था। इस स्थान पर इस समय भी आठ बौद्ध मठ थे परन्तु वह सभी जर्जर अवस्था में थे एवं भिक्षुओं की संख्या कम थी। विभिन्न जातियों के ब्राह्मण जिनकी संख्या १००० थी—१२ मन्दिरों के स्वामी थे परन्तु उनके शिष्य की संख्या अधिक थी क्योंकि अधिकांश जन संख्या धर्म विरोधी थी। ह्वेनसांग द्वारा नगर के बताये गये विस्तार को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि नगर की जनसंख्या वर्तमान जनसंख्या से कम से कम चार गुणा अधिक अथवा ३०,००० रही होगी जिसका एक चौथाई भाग बुद्ध का अनुयायी रहा होगा। मैंने उपर्युक्त संख्या को इस तथ्य से प्राप्त किया है कि बौद्ध मठों में प्रायः १०० भिक्षु रहा करते थे जबकि बैराट के मठ जर्जर बताये जाते थे अतः प्रत्येक मठ में भिक्षुओं की संख्या ५० से ४०० अथवा कुल अधिक नहीं हो सकती थी। परन्तु प्रत्येक बौद्ध भिक्षु भिक्षा से अपना निर्वाह करता था अतः प्रत्येक भिक्षु की सहायतार्थ तीन परिवारों की दर से बौद्ध परिवारों की संख्या १२०० से कम नहीं रही होगी। इस प्रकार ४०० भिक्षुओं के अतिरिक्त बौद्ध धर्मावलम्बियों की संख्या ६००० रही होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बैराट का दूसरा ऐतिहासिक उल्लेख महमूद गजनी के समय में मिलता है जिसने ४०८ हिजरी अथवा १००९ ईसवी में देश पर आक्रमण किया था जब राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु उसके अधीनता स्वीकार कर लेने का कोई महत्व नहीं रहा क्योंकि हिजरी ४०४ अथवा १०१४ ईसवी की बसन्त ऋतु में उसके देश पर पुनः आक्रमण हुआ एवं एक भयानक युद्ध के पश्चात हिन्दू पराजित हुए थे। अबु-रिहान के अनुसार नगर को ध्वस्त कर दिया गया एवं जनसाधारण देश के भीतरी भागों में चले गये। फरिश्ता के अनुसार यह आक्रमण ४१३ हिजरी अथवा १०२२ ईसवी में हुआ था। जब राजा ने यह सूचना मिलने पर कि वैराट तथा नारायन के दो पर्वतीय प्रदेशों के निवासी मूर्ति पूजक का अनुसरण कर रहे हैं उन्हें मुस्लिम धर्म स्वीकार करने पर बाध्य करने का निश्चय किया। अमीर अली ने इस स्थान पर अधिकार कर खूब लूटा था और कहा जाता है कि नारायन के स्थान पर उसे एक शिलालेख प्राप्त हुआ था जिसमें लिखा था कि नारायण का मन्दिर ४०,००० वर्ष पूर्व बनवाया गया था। चूंकि समकालीन इतिहासकार उतबी ने भी इस शिला लेख का उल्लेख किया है अतः हम शिला लेख की खोज के तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं जिसे तत्कालीन ब्राह्मण पढ़ने में असमर्थ थे। मेरे विचार में यह अत्यधिक सम्भव है कि उपर्युक्त शिला लेख अशोक का प्रसिद्ध शिला-लेख था जिसे बाद में मेजर बर्ट ने बैराट की एक पहाड़ी के शिखर पर प्राप्त किया था और जो अब कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी के अजायब घर की शोभा बढ़ा रहा है।

सातवीं शताब्दी में बैराट राज्य की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी। यह राज्य भेड़ों एवं बैलों के लिए प्रख्यात था परन्तु फलों एवं फूलों की उपज कम थी। आज भी बैराट के दक्षिण जयपुर की यही स्थिति है जो दिल्ली एवं आगरा के महान मुस्लिम नगरों एवं उनकी अङ्गरेजी सेनाओं के लिए अधिकांश भेड़े प्रदान करता है। अतः जयपुर राज्य की वर्तमान सीमायें बैराट राज्य की सीमा में सम्मिलित रही होगी। इसकी सीमाओं को ठीक-ठीक निर्धारित नहीं किया जा सकता। परन्तु उन्हें उचित रूप से उत्तर में झुन्झुनू से कोट कासिम तक ७० मील पश्चिम में झुन्झुनू से अजमेर तक, १२० मील, दक्षिण में अजमेर से बनास तथा चम्बल के सङ्गम तक, १५० मील, तथा पूर्व में सङ्गम स्थान कोट कासिम तक १५० मील, अथवा कुल मिला कर ४९० मील निश्चित किया जा सकता है।

स्रुघना

थानेसर छोड़ने के पश्चात ह्वेनसांग सर्व प्रथम १०० ली अथवा १६⅔ मील दक्षिण क्यू-हाईन-चा अथवा गोकन्तन मठ तक गया था। अभी तक इस मठ की पहचान नहीं की जा सकी परन्तु सम्भवतः यह बैयस्थली एवं निसङ्ग के मध्य अवस्थित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुनान मठ है जो थानेसर से १७ मील दक्षिण-दक्षिण पश्चिम में है। मैं इस मठ का उल्लेख करने के लिये बाध्य हूँ क्योंकि यह है ह्वेनसांग ने सू लूकिन-ना अथवा स्रुघना तक ४०० ली अथवा ६६ ⅔ मील की दूसरी यात्रा इसी स्थान से प्रारम्भ की थी। इस प्रकार थानेसर तथा स्रुघना के मध्य की दूरी ५० मील बनती है। अब सुघ, वह स्थान जिसे मैं स्रुघना को राजधानी के अनुरूप स्वीकार करने का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। थानेसर से केवल ३८ अथवा ४० मील की दूरी पर है परन्तु चूंकि यह नाम में पूर्णतयः एवं अन्य बातों में समान्यतः मिलता है अतः मुझे विश्वास है कि ह्वेनसांग के आंकड़े अशुद्ध हैं यद्यपि उन आंकड़ों के लिये सम्भावित शुद्धि प्रस्तुत करने में असमर्थ हूँ। गोकन्थ मठ से वास्तविक दूरी लगभग ५० मील है।

देश का संस्कृत नाम सुघ्न है जो बोलचाल की भाषा में सुघन तथा सुघ बन जाता है। वर्तमान समय में इसे इसी नाम से पुकारा जाता है। मेरी खोज के सभी स्थानों में सुघ गाँव सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ऊँची भूमि के उभड़े त्रिभुजाकार भाग पर बसा हुआ है और तीन ओर से यमुना के पुराने पार से घिरा हुआ है। इस पार को अब पश्चिमी यमुना नहर कहा जाता है। उत्तर एवं पश्चिमी की ओर से यह दो गहरी खाइयों के कारण सुरक्षित है जिससे सम्पूर्ण स्थान सुदृढ़ रक्षा पंक्ति का काम दे सके जो पश्चिम को छोड़ अन्य सभी ओर से प्राकृतिक रूप से सुरक्षित है। आकार में यह प्रायः त्रिभुजाकार है जिसके प्रत्येक कोण पर एक सुदृढ़ दुर्ग बना हुआ है। उत्तरी दुर्ग के स्थान पर अब दयालगढ़ नामक गाँव एवं दुर्ग बना हुआ है। दक्षिण पूर्वी दुर्ग के स्थान पर मण्डलपुर गाँव बसा हुआ है और दक्षिणी-पश्चिमा कोण निर्जन है। प्रत्येक दुर्ग १५०० फुट लम्बा एवं १००० फुट चौड़ा है और इन्हें एक साथ मिलाने वाला कोण का प्रत्येक किनारा आधे मील से कुछ अधिक लम्बा है। पूर्वी किनारा ४००० फुट एवं दक्षिण पश्चिमी किनारे ३०० फुट लम्बा है। इस स्थान की सम्पूर्ण परिधि २२००० फुट अथवा ४ मील से कुछ अधिक है और इस प्रकार यह परिधि ह्वेनसांग द्वारा दी गई ३½ की परिधि से काफी बड़ी है। परन्तु चूंकि उत्तरी दुर्ग रोहर नाला नामक एक गहरी रेतीली खाई के कारण मुख्य स्थान से अलग है यह सम्भव है कि तीर्थ यात्री की यात्रा के समय यह दुर्ग निर्जन रहा हो। इस प्रकार इस स्थान की परिधि कम हो कर १६००० फुट अथवा ३½ मील से अधिक रह जायेगी और तीर्थयात्री के आंकड़ों के समीप आ जयेगी। इसकी पश्चिमी किनारे पर सुघ का छोटा गाँव है तथा दयाल गढ़ के ठीक उत्तर में बूरिया का छोटा नगर बसा हुआ है। मेरी यात्रा के समय बसे हुए घर इस प्रकार थे—पाण्डलपुर १००, सुघ १२५, दयाल गढ़ १५०, तथा बूरिया ३५०० अथवा कुल मिलाकर ३८७५ घर लगभग २०,००० प्राणी रहा करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुघ के सम्बन्ध में जन-साधारण में कोई विशेष प्रथा प्रचलित नहीं है परन्तु मांडर अथवा माडलपुर के सम्बन्ध में उनका कथन है कि पूर्ववर्ती समय में यह नगर १२ कोस में फैला हुआ था तथा पश्चिम में जगाधरी एवं चनेटी तथा उत्तर में बूरिया अथवा दयालगढ़ इसमें सम्मिलित थे। चूंकि जगाधरी पश्चिम की ओर तीन मील की दूरी पर अवस्थित है, यह सम्भव नहीं है कि नगर इतनी दूरी तक विस्तृत रहा हो परन्तु हम उचित रूप से स्वीकार कर सकते हैं कि समृद्ध निवासियों के उद्यान एवं ग्रीष्म कालीन निवास स्थान किसी समय सम्भवतः उस दूरी तक विस्तृत रहे हों। उत्तर-पश्चिम में दो मील की दूरी पर अवस्थित चनेटी में प्राचीन मुद्रायें अधिक संख्या में मिलती हैं। परन्तु अब यह मध्यवर्ती लम्बे खुले प्रदेश के कारण बूरिया तथा दयालगढ़ से पूर्णतः अलग है। सुघ मांडलपुर तथा बूरिया में एक ही प्रकार की मुद्रायें प्राप्त हैं। यह मुद्रायें चौहानों की छोटी दिलियात से लेकर दिल्ली के तोमर राजाओं की चाँदी एवं ताँबे की वर्गाकार मुद्राओं तक सभी युगों की मुद्रायें सम्मिलित हैं। अन्तिम मुद्रा निश्चित रूप से ५०० ईसवी पूर्व में बौद्ध धर्म के उत्थान के समय जितनी प्राचीन हैं और सम्भवतः यह मुद्रा १००० ईसवी पूर्व में उत्तरी भारत की सामान्य मुद्रा थी। इस स्थान की प्राचीनता के पक्ष में उपर्युक्त असंदिग्ध प्रमाण के कारण मुझे सुघ को प्राचीन स्रुघन के अनुरूप स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है। स्थान का महत्व इस तथ्य से दिखाया जा सकता है कि यह स्थान गङ्गा के दुआब से मिराट, सहारनपुर तथा अम्बाला से होते हुए अपर पञ्जाब की ओर जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग पर अवस्थित है एवं यमुना के मार्ग पर नियन्त्रण रखता है। महमूद गजनी कन्नौज के आक्रमण के पश्चात् इसी मार्ग से वापिस गया था। तैमूर हरिद्वार में लूट-पाट के अपने अभियान के पश्चात् इसी मार्ग से वापिस गया था तथा बाबर ने दिल्ली विजय के समय इसी मार्ग का अनुसरण किया था।

ह्वेनसांग के अनुसार स्रुघना राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। पूर्व में गङ्गा तक तथा उत्तर में उन्नत पर्वत श्रेणियों तक इसका विस्तार था जब कि यमुना इस राज्य के मध्य से प्रवाहित थी। इन तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्रुघना राज्य में गिरि एवं गङ्गा नदियों के मध्य सिमोर तथा गढ़वाल के पर्वतीय राज्य तथा मैदानों में अम्बाला एवं सहारनपुर के जिलों के कुछ भाग सम्मिलित थे। परन्तु इस प्रदेश को परिधि ५०० मील से अधिक नहीं बनती जो ह्वेनसांग के आंकड़ों से केवल आधी है। इस त्रुटि को मैं मानचित्र पर सीधे माप एवम् पर्वतीय प्रदेश के वास्तविक मार्ग दूरी में भिन्नता के कारण समझता हूँ। इससे सीमान्त रेखा लगभग $\frac{1}{2}$ भाग बढ़ जायेगी तथा सम्पूर्ण परिधि ७५० मील हो जायेगी जो तीर्थ यात्री के अनुमान से अभी भी काफी कम है। परन्तु यमुना तथा गङ्गा के मध्य की दूरी में उसका कथन निश्चित रूप से त्रुटि पूर्ण है। तीर्थ यात्री के अनुसार यह दूरी पहाड़ियों के अधोभाग से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकर दिल्ली तक दोनों नदियों के बीच समान्तर वास्ततिक दूरी अर्थात् ३०० ली अथवा ५० मील के स्थान पर ८०० ली अथवा १३३ मील थी। चूंकि यह सम्भव है कि यही त्रुटि उत्तरी सीमा की दूरियों में भी समान अतिश्योक्ति के कारण दुगुनी हो गई थी। अतः इसकी शुद्धि महत्वपूर्ण है क्योंकि दुगुनी त्रुटि १६७ मील हो जाती है। इस त्रुटि को शुद्ध करने पर स्रुघन की परिधि ह्वेनसांग के अनुमान के अनुसार केवल ८३३ मील होगी जो सम्भावित आंकड़ों से ८३ मील भिन्न है।

मडावर

स्रुघन से तीर्थ यात्री मो-ती-पू लो अथवा मदीपुर गया था जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने पश्चिमी सेहेल खण्ड में बिजनौर के समीप मण्डावर नामक एक विशाल नगर के अनुरूप स्वीकार किया है। मैं पहले समान अनुरूपता का वर्णन कर चुका हूँ और अब मैं इस स्थान के व्यक्तिगत निरीक्षण के पश्चात उपर्युक्त अनुरूपता की पुष्टि करने में समर्थ हूँ। नगर का नाम मानचित्र के मुण्डोर के स्थान पर मडावर लिखा गया है। इस स्थान के चौधरी एवं कानूनगो जौहरीलाल के अनुसार मडावर सम्बत् ११७१ अथवा १११४ ई० में निर्जन स्थान था। जब उसके पूर्वज द्वारकादास जो अग्रवाल बनिया थे करतारमल के साथ मेरठ जिले के मोरारो स्थान से वहाँ आए थे एवम् प्राचीन टीले पर बस गये थे। मडावर के आधुनिक नगर में ७००० निवासी हैं तथा यह नगर ¾ मील से अधिक लम्बा एवम् आधा मील चौड़ा है। परन्तु प्राचीन टीला जो प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है, आधे मील के वर्ग से अधिक नहीं है। इसकी सामान्य ऊंचाई शेष नगर के स्तर से १० फुट ऊंची है और विशाल ईंटें यहाँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं जो प्राचीनता का निश्चित चिह्न है। टीले के मध्य में ३०० फुट वर्गाकार एक ध्वस्त दुर्ग था, जिसकी ऊँचाई शेष नगर के स्तर से ६ से ७ फुट थी। उत्तर पूर्व में दुर्ग से लगभग एक मील की दूरी तक एक अन्य टीले पर मडिया नामक गाँव है तथा दोनों के बीच कूण्डताल नामक एक विशाल सरोवर है जो छोटे-छोटे अनेक टीलों से घिरा हुआ है। इन टीलों को भवनों के अवशेष कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल रूप से यह दोनों स्थान लगभग १¼ मील लम्बे, १ मील चौड़े अथवा परिधि में ३½ मील बड़े एक विशाल नगर के भाग थे। यह आंकड़े ह्वेनसांग द्वारा दिए गये २० ली अथवा ३⅓ मील के माप से मिलते हैं।

यह सम्भव प्रतीत होता है कि मडावर की जनता-जैसा कि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने बताया है मैगस्थनीज़ के मथाए लोग हो सकते हैं जो इरीनीसिस के तट पर निवास करते थे। यदि ऐसा है तो वह नदी मालनी रही होगी। यह सत्य है कि यह केवल एक छोटी नदी है परन्तु मालनी के तट पर ही एक पवित्र गुफा में शकुन्तला का पालन-पोषण हुआ था और इसी नदी के साथ-साथ वह हस्तिनापुर को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुष्म (दुष्यन्त) के दरबार में गई थी। जब तक जल में कमल के फूल उतरेंगे तथा जब-जब चकवा नदी के तट पर अपनी प्रियत्तमा को पुकारेगा, छोटी मालनी कालीदास के काव्य में जीवित रहेंगी।

ह्वेनसांग के अनुसार मडीपुर राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। परन्तु जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ इस अनुमान में पड़ोस के गोविस्ना तथा अहिछत्र राज्य सम्मिलित रहे होंगे क्योंकि यह दोनों भी रोहेल खण्ड में हैं तथा इतनी कम दूरी पर हैं कि गङ्गा तथा रामगङ्गा के मध्यवर्ती क्षेत्र तक सीमित रहने से अकेला मडीपुर एक अति छोटा जिला रहा होगा क्योंकि इस क्षेत्र की परिधि २५० मील से अधिक नहीं थी। परन्तु अभी प्रस्तावित विस्तृत सीमाओं जिनमें हरिद्वार से कन्नोज तक गङ्गा के पूर्व एवं खैरीगढ़ के समीप घाघरा के तट तक सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित है—के अनुसार भी इस स्थान की परिधि ६५० से ७०० मील से अधिक नहीं हो सकती। अब भी यह परिधि अधिक छोटो है परन्तु उत्तर में पर्वतीय सीमा में मानचित्र के सीधे माप एवं वास्तविक मार्ग दूरी में भिन्नता को ध्यान में रखते हुए मेरा विचार है कि वास्तविक परिधि ८५० मील से कम नहीं हो सकती। मडावर का राजा एक स्यू-तो-लो अथवा शूद्र था जो देवों की पूजा करता था तथा बौद्ध धर्म के प्रति उसकी रुचि नहीं थी चूंकि गोविस्ना तथा अहिछत्र शासक विहीन थे। अतः मेरा अनुमान है कि वह मडावर के आश्रित थे तथा ह्वेनसांग द्वारा लिखित सीमाओं की परिधि सम्पूर्ण राज्य की राजनैतिक सीमायें थी न कि जिला विशेष की।

मायापुर तथा हरिद्वार

ह्वेनसांग ने मो-यू-लो अथवा मयूर नगर को मडावर की उत्तर पश्चिमी सीमा पर एवं गङ्गा के पूर्वी तट पर अवस्थित बताया है। नगर से कुछ दूरी पर 'गङ्गा द्वार' नामक एक महान मन्दिर था जिसके भीतर एक सरोवर था जिसकी जलपूर्ति पवित्र नदी से एक नहर द्वारा होती थी। गङ्गा द्वार जो हरिद्वार का प्राचीन नाम था—की समीपता से प्रतीत है कि मयूर, गङ्गा नहर के सिरे पर मायापुर का तत्कालीन ध्वस्त स्थान रहा होगा। परन्तु अब यह दोनों स्थान ह्वेनसांग द्वारा कथित पूर्वी तट के स्थान पर पश्चिमी तट पर अवस्थित हैं। उसका यह उल्लेख है कि यह स्थान मडावर की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अवस्थित थे, उपर्युक्त स्थिति की ओर संकेत करता प्रतीत होता है क्योंकि यदि वह गङ्गा के पश्चिमी तट पर रहे होते तो उचित रूप से उन्हें स्रुघन की उत्तर-पूर्वी सीमा पर दिखाया जाता है। मैंने सावधानी के साथ इस क्षेत्र का निरीक्षण किया था और मैं समझता हूँ कि किसी पूर्ववर्ती समय में गङ्गा मायापुर तथा कखल से ज्वालापुर तक पश्चिम दिशा में प्रवाहित रही होगी। फिर भी गङ्गा द्वार मन्दिर एवं पहाड़ियों के मध्यवर्ती क्षेत में नदी के पुराने मार्ग का कोई चिह्न नहीं मिलता परन्तु चूंकि इस स्थान पर अब हरिद्वार नगर के भवन बन गये हैं अतः यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रायः सम्भव है कि किसी समय यहाँ नदी रही हो जिसे धीरे-धीरे भर दिया गया हो एवम् जहाँ भवन बना दिये गये हों। अतः कोई ऐसी भौतिक बाधा नहीं थी जो नदी को पश्चिमी दिशा में प्रवाहित होने से रोक सकती थी अतः हमें या तो ह्वेनसांग के कथन को स्वीकार कर लेना चाहिये अथवा इस विकल्प को स्वीकार कर लेना चाहिये कि ह्वेनसांग ने मयूर तथा गङ्गाद्वार को गङ्गा के पूर्व दिखाने में त्रुटि की थी।

शिव एवम् विष्णु के पुजारियों में इस बात पर मत भेद है कि कौन से देवता से गङ्गा की उत्पत्ति हुई थी। विष्णु पुरान में कहा गया है कि गङ्गा की उत्पत्ति "विष्णु के वाम पद की ऐड़ी के बड़े नाखुन से हुई थी" तथा वैष्णव अपने विश्वास की सत्यता के असंदिग्ध साक्षी के रूप में गर्व-पूर्वक हरि-की-चरण अथवा हीरा की पैरी वर्तमान हरि की पैड़ी की ओर संकेत करते हैं। दूसरी ओर शिव के अनुयाइयों का कथन है कि इस स्थान का वास्तविक नाम हर द्वार है हरि द्वार नही। विष्णु पुराण में यह स्वीकार किया गया है कि अलक नन्दा (अथवा गङ्गा की पूर्वी शाखा) "शिव के जटा से निकली थी।" परन्तु उपर्युक्त विचार धारा के होते हुए भी मैं विश्वास करने का उच्छुक हूँ कि हरि द्वार अथवा हर द्वार आधुनिक नाम है तथा गङ्गा द्वार मन्दिर के समीप पुराने नगर का नाम मायापुर था। ह्वेनसांग ने इसे वस्तुतः मो-यू-लो अथवा मयूर कहा है परन्तु हरिद्वार तथा कनखल के मध्य प्राचीन ध्वस्त नगर को अब भी मायापुर कहा जाता है तथा जन साधारण नाम की मूलोत्पत्ति के कारण स्वरूप माया देवी के पुराने मन्दिर की ओर संकेत करते हैं। फिर भी यह प्रायः सम्भव है कि नगर को मयूरपुर भी कहा जाता हो क्योंकि आस-पास के वनों में सहस्त्रों मयूर हैं जिनकी कर्कश शब्द ध्वनि मैं प्रातः एवम् सायङ्काल दोनों समय सुना करता हूँ।

ह्वेनसांग ने नगर को परिधि में २० ली अथवा ३⅓ मील एवम् अधिक जन-पूर्ण कहा है। यह विवरण कुछ लोगों द्वारा मुझे दिखाए गए मायापुर के प्राचीन नगर के विस्तार से प्रायः समीपता रखता है। प्राचीन नगर के चिह्न एक छोटी नदी से लेकर—जो सर्वनाथ के आधुनिक मन्दिर के समीप गङ्गा से मिलती है—नहर के किनारे राजा वेन के प्राचीन दुर्ग तक ७५०० फुट की दूरी में विस्तृत है। इसकी चौड़ाई अस-मान है परन्तु दक्षिणी छोर पर इसकी चौड़ाई ३००० फुट से अधिक नहीं हो सकती तथा उत्तरी छोर पर जहाँ शिवालिका पहाड़ियाँ नदी के समीप आ जाती हैं यह चौड़ाई संकुचित होकर १००० फुट रह जाती है। इन आंकड़ों से इसकी परिधि १६०० फुट अथवा ३⅓ मील से अधिक हो जाती है। इन सीमाओं के भीतर राजा दुर्ग से सम्बन्धित ७५० फुट वर्गाकार एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहर एवम् टूटी हुई ईंटों से ढंके हुए अनेक उन्नत टीले हैं जिनमें सबसे बड़ा एवम् सर्वाधिक उत्कृष्ट टीला नहर पर बने पुल के समीप है। यहाँ नारायण शिला, माया देवी एवम् भैरव के तीन प्राचीन मन्दिर भी हैं। सर्वनाथ मन्दिर से २००० फुट उत्तर-पूर्व में होने के कारण पैरी (पौड़ी) नामक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध घाट उपर्युक्त सीमाओं से बाहर है। इस स्थान की प्राचीनता विशाल ईंटों की विस्तृत नींव जो प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है एवम् मन्दिर के समीप प्राचीन वास्तु-कला के टुकड़ों के कारण असंदिग्ध है वरन् सुघ्र के समान प्राचीन मुद्राओं की विभिन्नता के कारण भी इस स्थान की प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता। यह मुद्रायें यहाँ प्रति वर्ष प्राप्त होती हैं।

हरि द्वार अथवा "विष्णु द्वार" का नाम प्रायः आधुनिक प्रतीत होता है क्योंकि अबु-रिहान एवम् रशीदुउद्दीन दोनों ने केवल गङ्गा द्वार का उल्लेख किया है। कालीदास ने मेघदूत में हरिद्वार का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उसने कनखल का उल्लेख किया है परन्तु चूंकि उसके समकालीन लेखक अमरसिंह ने गङ्गा के पर्यायवाची नाम के रूप में विष्णु पदी का उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित है कि विष्णु के पांव से निकलने की कथा पांचवी शताब्दी पुरानी है। फिर भी मेरा अनुमान है कि अबु-रिहान के समय तक विष्णुपद के किसी मन्दिर का निर्माण नहीं हुआ था। इसका प्रथम उल्लेख जिसका मुझे ज्ञान है—तैमूर के इतिहासकार शरीफ उद्दीन ने किया था जिसका कथन है कि गङ्गा नदी चो-पीली दर्रे से होकर पहाड़ियों से निकलती है। मेरा विचार है कि यह कोह-पैरी अथवा विष्णु के पांव की पहाड़ी है क्योंकि गङ्गा द्वार मन्दिर के स्थान पर स्नान करने के घाट को पैरी घाट कहा जाता है एवं समीपस्थ पहाड़ी को पैरी पहाड़ कहा जाता है। अकबर के समय में हरिद्वार का नाम सर्व ज्ञात था क्योंकि अबुल फज़ल ने "गङ्गा नदी पर माया हरिद्वार" का १८ कोस की लम्बाई तक पवित्र स्थान के रूप में है, उल्लेख किया है। अगले शासन काल में टाम कोरियट ने इस स्थान की यात्रा की थी जिसने चेपलेन टेरी को सूचित किया था कि "सिब की राजधानी हरिद्वार में गङ्गा नदी विशाल चट्टानों से होकर बहती है एवं इसकी धारा तीव्र है।" १७९६ ई० में हाई विकी इस स्थान पर गया था जिसने इसे पहाड़ियों के अधोभाग पर अवस्थित एक छोटा स्थान कहा है। १८०८ ई० में रैपर ने एक अत्याधिक अमहत्वपूर्ण स्थान के रूप में इसका उल्लेख किया है जिसमें लगभग १५ फुट चौड़ी एवं १½ फर्लाङ्ग लम्बी केवल एक गली है। अब यह काफी बड़ी है और लम्बाई में ¾ मील है परन्तु अभी भी केवल एक गली है।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि नदी को प-शूई भी कहा जाता था। जिसे एम० जुलीन ने महा-भद्रा के अनुरूप स्वीकार किया है जो गङ्गा के अनेक सर्व ज्ञात नामों में एक है। उसने इस बात का उल्लेख भी किया है कि इसके जल में स्नान करने से सभी पाप धुल जाते हैं एवम् यदि मृतकों को नदी में प्रवाह किया जाए तो मृतात्मा अपने पाप कर्मों के कारण निम्न योनि में पुनर्जन्म के दण्ड से बच जाती है। मैं इसे सुभद्रा पढ़ना चाहूँगा जिसका अर्थ महा भद्रा के समान है क्योंकि टेसियस ने महान भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदी का इसी रूप में उल्लेख किया है। प्लिनी ने टेसियस को उदधृत करते हुए नदी को हाईपोबारस कहा है। दमिश्क के निकोलस ने लगभग इसी प्रकार के शब्द का उल्लेख किया है। अतः मेरा अनुमान है कि टेसियस द्वारा प्राप्त मूल नाम सम्भवतः सुभद्रा था।

ब्रह्मपुर

मडावर छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रोपरान्त पो-लो-कि-मो-पू लो गया था जिसे एम० जुलीन ने उचित रूप से ब्रह्मपुर कहा है। अन्य स्थान पर पो-लो ही मो लो लिखा गया है जिस में सम्भवतः भूल के कारण 'पू' छूट गया है। उत्तरी दिकांश निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि इस दिकांश से तीर्थ यात्री गङ्गा पार जाकर पुनः स्रुघन में वापस पहुँच जाता। अतः हमें इसके स्थान पर उत्तर-पूर्व पढ़ना चाहिये क्योंकि गड़वाल एवं कुमायूं के जिले इसी दिशा में हैं जो किसी समय कटयूरी राज घराने के प्रसिद्ध राज्य के भाग थे। तीर्थ यात्री इसी प्रदेश का उल्लेख करना चाहता था। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि यहाँ तांबा पाया जाता था जिससे गढ़वाल जिले की धनपुर एवम् पोखरो की सर्व प्रसिद्ध तावें के खानों का सङ्केत मिलता है जहाँ प्राचीन समय से तांबा निकाला जाता है। अब, कटयूरी राजाओं की राजधानी, मडावर से लगभग ८० मील सीधे राम गङ्गा नदी पर लखनपुर वैराट पट्टन में थी। यदि उपरोक्त माप को मडावर की उत्तर-पूर्वी सीमा पर पहाड़ियों के अधोभाग में अवस्थित कोट द्वार से लिया जाये तो यह दूरी ह्वेनसांग द्वारा कथित ५० मील की दूरी से मिल जायेगी। फिर भी कथित दिकांश एवं दूरी में त्रुटि का सम्भावित उत्तर के रूप में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दूरी गोविसना से सम्बन्धित थी जहाँ ह्वेनसांग ब्रह्मपुर की यात्रा के पश्चात् गया था एवम् जो वेराट के उत्तर में ठीक ५० मील की दूरी पर अवस्थित है।

देश के इतिहासानुसार प्राचीन राजधानी थी वैराट पट्टन अथवा लखनपुर थी। क्योंकि कुमायूं का सोमवंशी परिवार एवम् गढ़वाल का सूर्य-वंशी परिवार का राज्य सम्वत् ७४२ तथा ७४९ में आरम्भ हुआ था और विक्रम सम्वत् स्वीकार कर लिये जाने की दशा में भी उपरोक्त तिथियाँ ह्वेनसांग के पश्चात्वती समय से सम्बन्ध रखती हैं। अतः मेरा अनुमान है कि ब्रह्मपुर, केवल वैराट का दूसरा नाम रहा होगा क्योंकि इस प्रान्त की अन्य सभी राजधानियां अपेक्षाकृत नवीन हैं। अलकानन्दा नदी पर श्री नगर की स्थापना १४१५ सम्वत्, अथवा १३५८ ई० में गढ़वाल के राजा अजयपाल ने करवाई थी। साथ ही साथ यह नगर मडावर एवम् वैराट पट्टन से लगभग समान दूरी पर है जब कि गढ़वाल की अधिक पुरानी राजधानी अधिक दूर है एवम् १२१६ सम्वत् अथवा ११५९ ई० में इसे राजधानी बनाया गया था। यहाँ की जलवायु कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठण्डी बताई जाती है और यह बैराट की स्थिति से मिलती है जो समुद्र स्तर से केवल ३३३९ फुट ऊँची है।

ह्वेनसांग ने ब्रह्मपुर राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील बताई है। अतः इसमें अलकनन्दा एवम् करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वती प्रदेश जो अब ब्रिटिश गढ़वाल एवम् कुमायूं के नाम से प्रसिद्ध है—सम्मिलित रहा होगा क्योंकि गोरखों की विजय से पूर्व अन्तिम जिला करनाली नदी तक विस्तृत था। मानचित्र पर इस क्षेत्र की सीमा ५०० से ६०० मोल अथवा चीनी तीर्थ-यात्री के अनुमान के अधिक समीप है।

गोविस्ना, अथवा काशीपुर

ह्वेनसांग ने मडावर के दक्षिण-पूर्व में, ४०० ली अथवा ६७ मील की दूरी पर क्यू-पी शवांगना राज्य का उल्लेख किया है जिसे एम० जुलीन ने गोविस्ना कहा है। राजधानी की परिधि १५ ली अथवा २½ मील थी। यह उन्नत स्थान दुर्गम चढ़ाई पर था और तालाबों एवम् सरोवरों से घिरा हुआ था। मडावर से कथित दिकांश एवम् दूरी के अनुसार हमें गोविस्ना को मुरादाबाद के उत्तर में किसी स्थान पर देखना चाहिए। इस दिशा में प्राचीनकाल से सम्बन्धित एक मात्र स्थान उज्जैन गाँव के समीप एक पुराना दुर्ग है जो काशीपुर के पूर्व में केवल एक मील की दूरी पर है। मैंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था उसके अनुसार कुल दूरी ४४ कोस अथवा ६० मोल है। कोस एवम् मील की अपेक्षाकृत दर मैंने बरेली एवम् मुरादाबाद के डाकघरों के मध्य ५९ मील ी कथित दूरी से प्राप्त की है जिसे स्थानीय जनता सदा ४० कोस कहा करती है। काशीपुर का वास्तविक दिकांश दक्षिण पूर्व के स्थान पर पूर्व दक्षिण पूर्व है परन्तु भिन्नता अधिक नहीं है और चूंकि अहिछत्र के अगामी मार्ग से काशीपुर की स्थिति का स्पष्ट संकेत मिलता है अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि उज्जैन गाँव के समीप प्राचीन दुर्ग गोविस्ना के प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ ह्वेनसांग गया था।

विशप हेबर ने काशीपुर को "हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान कहा है जिसकी स्थापना ५००० वर्ष पूर्व काशी नामक देवता ने करवाई थी।" परन्तु विशप को सूचना देने वालों ने पूर्ण भ्रम में रखा था क्योंकि यह सर्व ज्ञात है कि यह नगर आधुनिक है। जिसकी स्थापना १७१८ ईसवी में कुमायूं में चम्पावत के राजा देवी चन्द के एक अनुयायी काशीनाथ ने करवाई थी। प्राचीन दुर्ग को अब उज्जैन कहा जाता है। परन्तु चूंकि यह समीपस्थ गाँव का नाम है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि वास्तविक नाम लुप्त हो चुका है। यह स्थान काशीपुर के बसने से पूर्व अनेक शताब्दियों तक निर्जन रहा है। परन्तु चूंकि तीर्थ यात्री निरन्तर द्रोण सागर के पवित्र सरोवर पर जाते रहे हैं अतः मेरा अनुमान है कि सरोवर के नाम ने धीरे-धीरे दुर्ग के नाम का स्थान ले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया था। आधुनिक समय नें भी द्रोण सागर का नाम उतना ही प्रचलित है जितना कि काशीपुर का।

उज्जैन का प्राचीन दुर्ग अपने आकार में विशेष विशेषता रखता है जिसकी तुलना गेटार से की जा सकती है। पूर्व से पश्चिम इसकी लम्बाई ३००० फुट एवम् इसकी चौड़ाई १५०० फुट है। इसकी कुछ परिधि ६००० फुट अथवा २ मील से कुछ कम है। ह्वेनसांग ने गोविस्ना की परिधि को १२००० फुट अथवा लगभग २½ मील बताया है। परन्तु अपने आंकड़ों में उसने दक्षिण दिशा में खण्डहरों के लम्बे टीले को सम्मिलित कर लिया होगा जो प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन उपनगर के अवशेष हैं। इस टीले को प्राचीन नगर का असंदिग्ध भाग स्वीकार कर लेने से खण्डहरों की परिधि ११००० फुट अथवा ह्वेनसांग द्वारा बताई गई परिधि के समीप हो जाती है। अनेक कुञ्ज सरोवर एवम् मछलियों के तालाब इस स्थान को घेरे हुए है। यहाँ के वृक्ष जल के ऊँचे स्तर के कारण विशेष रूप से अच्छे हैं क्योंकि यहाँ जल केवल पांच अथवा छः फुट की गहराई पर निकल आता है। इसी कारण से यहाँ अनेक सरोवर हैं जो सदा जल पूर्ण रहते हैं। इसमें सबसे बड़ा सरोवर द्रोण सागर है। कहा जाता है कि दुर्ग एवम् सरोवर की स्थापना पाँच पाण्डवों ने अपने गुरु द्रोण के लिए करवाई थी। यह सरोवर केवल ६०० फुट चौड़ा है परन्तु इसे अत्यधिक पवित्र समझा जाता है और गङ्गा के उद्गम स्थान की ओर जाते हुए तीर्थयात्री प्राय: इस स्थान पर आते हैं। इसके ऊँचे तट अपेक्षाकृत आधुनिक समय के सती स्मारकों से ढँके हुए हैं। दुर्ग की दीवारें बड़ी-बड़ी ईंटों से बनाई गई हैं जो १५ × २½ इञ्च है। एवम् जो प्राचीनता का निश्चित चिह्न है। खेतों से ऊपर दीवारों की सामान्य ऊँचाई ३० फुट है परन्तु सम्पूर्ण स्थान पूर्णतः जर्जर अवस्था में है एवम् घने जङ्गलों से ढंका हुआ है। पूर्व को छोड़ अन्य सभी ओर छिछली खाईयाँ हैं। इसका भीतरी भाग असमान हैं परन्तु अधिकांश स्थान आस पास के प्रदेश से २० फुट ऊँचे हैं। मिट्टी की प्राचीरों में दो निचले मार्ग हैं, एक उत्तर पश्चिम की ओर, दूसरा पश्चिम की ओर। जो अब जङ्गल के प्रवेश द्वार का काम करते हैं। जन साधारण के अनुसार यह दुर्ग के पुराने प्रवेश द्वार थे।

गोविस्ना के जिले की परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी। किसी राजा का उल्लेख नहीं किया है और जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ कि यह प्रदेश सम्भवत: मडावर के राजा के अधीन था। यह स्थान उत्तर में ब्रह्मपुर, पश्चिम में मडावर तथा दक्षिण एवम् पूर्व में अहिछत्र की सीमाओं से घिरा हुआ था। अतः यह काशीपुर, रामपुर एवम् पीलीभीत के आधुनिक जिलों के समान रहा होगा जो पश्चिम में राम गङ्गा से लेकर, पूर्व में शारदा अथवा घाघरा तक एवम् दक्षिण में बरेली की दिशा में फैले हुए हैं। इन सीमाओं के भीतर जिले की परिधि सीधे माप के अनुसार लगभग २०० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ३०० मील से अधिक रही होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहिछत्र

गोविस्ना से ह्वेनसांग ४०० लो अथवा ६६ मील दक्षिण पूर्व में अहि-ची-ता-लो अथवा अहिछत्र तक गया था। किसी समय का यह प्रसिद्ध स्थान आज भी अपने प्राचीन नाम को अहिछत्र के रूप में सुरक्षित रखे हुए है। यद्यपि यह अनेक शताब्दियों से निर्जन रहा है। इसका इतिहास १४३० ई० पू० वर्ष पुराना है जिस समय यह उत्तरी पांचाल की राजधानी थी। इसका नाम आहीक्षेत्र एवम् अहिनेत्र लिखा गया है परन्तु सोते समय अदी राजा के सिर पर नाग द्वारा छत्र बनाये जाने की स्थानीय कथा स पता चलता है कि अन्तिम नाम शुद्ध है। कहा जाता है कि इस प्राचीन दुर्ग की स्थापना एक अहीर राजा अदी-ने करवाई थी। द्रोण ने नाग द्वारा अपना फन फैला कर सोये हुए अदी की रक्षा करते देख, उसके राजा होने की भविष्य वाणी की थी। टालमी ने लगभग इसी नाम के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है जिससे सिद्ध होता है कि अदी के नाम से सम्बन्धित कथा कम से कम ईसा काल के प्रारम्भ से सम्बन्ध रखती है। दुर्ग को अदीकोट भी कहा जाता है परन्तु अधिक प्रचलित नाम अहिछत्र है।

महाभारत के अनुसार पांचाल का विशाल राज्य हिमालय पर्वतों से चम्बल नदी तक विस्तृत था। उत्तरी पांचाल अथवा रोहेलखण्ड की राजधानी अही छत्र थी तथा दक्षिण पांचाल अथवा मध्य गङ्गा दोआब की राजधानी, बदायूं एवम् फर्रूखाबाद के मध्य पुरानी गङ्गा पर अवस्थित काम्पिल्या, अब कम्पिल, थी। महाभारत के युद्ध से कुछ समय पूर्व अथवा लगभग १४३० ई० पू० में पांचाल के द्रुपद नामक राजा पर पाण्डवों के गुरू द्रोण ने विजय प्राप्त की थी। द्रोण ने उत्तरी पांचाल पर स्वयं अधिकार कर लिया परन्तु राज्य का दक्षिणी भाग द्रुपद को वापस कर दिया। उपर्युक्त कथानुसार अहिछत्र का नाम एवम् अदि राजा एवम् सर्प की कथा बौद्ध धर्म के उत्थान से कई शताब्दी पुरानी है।

फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि अपने महान् नेता के सम्मान हेतु बौद्ध धर्मावलम्बियों ने उपर्युक्त कथा को ग्रहण कर लिया एवम् उसमें परिवर्तन किया क्योंकि ह्वेनसांग ने लिखा है कि नगर के बाहर 'नाग हृद' अथवा "सर्प सरोवर" था जिसके समीप बुद्ध ने सात दिवस तक नाग राज के पक्ष में प्रचार किया था एवम् इस स्थान पर सम्राट अशोक ने स्तूप बनवाया था। मेरा अनुमान है कि बौद्ध कथा में नाग राज को फन फैला कर बुद्ध पर साया करते दिखाया गया है। मेरा यह विचार भी है कि उपर्युक्त घटना के स्थान पर बनाये गये स्तूप का नाम अहिछत्र "सर्प छत्र" रखा गया होगा। बौद्ध गया में नाग राजा मुचालिन्द के सम्बन्ध में इसी प्रकार की कथा का उल्लेख किया जाता है। जिसने अपने फैले हुए फन से मार नाम के कुटिल राक्षस से बुद्ध की रक्षा की थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्वेनसांग द्वारा अहिछत्र का विवरण दुर्भाग्यवश अपर्याप्त है अन्यथा अनेक वर्तमान खण्डहरों को प्रारम्भिक बौद्ध स्थानों के अनुरूप बताया जा सकता था। राजधानी की परिधि १७ अथवा १८ ली अथवा ३ मील से कुछ अधिक थी एवम् प्राकृतिक बाधाओं के कारण सुरक्षित थी। यहाँ १००० भिक्षुओं सहित १२ मठ थे एवम् ब्राह्मणों के ६ मन्दिर थे जहाँ ईश्वर देव (शिव) के उपासकों की संख्या ३०० थी। सभी उपासक शरीर पर भभूत लगाये रहते थे। नगर के बाहर सर्प सरोवर के समीप स्तूप का उल्लेख किया जा चुका है। इसके समीप ही उन स्थानों पर चार अन्य स्तूप हैं जहाँ पिछले चार बुद्ध बैठे थे अथवा चले थे। अहिछत्र के ध्वस्त दुर्ग आकार एवम् स्थिति दोनों में ह्वेनसांग द्वारा प्राचीन अहिछत्र के वर्णन से इतनी समानता रखता है कि दोनों की अनुरूपता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता। वर्तमान खड़ी दीवारों की परिधि १६.४०० फुट अथवा ३$\frac{1}{2}$ मील से अधिक है। इसके आकार को असमान त्रिभुज कहा जा सकता है जिसका पश्चिमी किनारा ५६०० लम्बा, उत्तरी किनारा ६४०० लम्बा एवम् सबसे बड़ा दक्षिण पूर्वी किनारा ७४०० फुट लम्बा है। यह दुर्ग राम गङ्गा एवम् गांनघन नदियों के मध्य बना हुआ है जिन्हें पार करना कठिन है। प्रथम नदी चौड़े रेतीले पार के कारण एवम् अन्तिम नदी विस्तृत खाइयों के कारण दुर्गम है। यह स्थान उत्तर एवम् पूर्व दोनों ओर से पीरिया नाला के कारण दुर्ग है। टूटे-फूटे अति ढलवा तटों एवम् अनेक गहरे गड्ढों के कारण गाड़ियों के लिए नदी पार करना प्रायः असंभव है। इसी कारण बरेली तक बैल गाड़ियों का मार्ग २३ मील से कम नहीं है। जबकि पूर्व दिशा में सीधी रेखा से यह दूरी केवल १८ मील है। वस्तुतः नदी पार करने का एक मात्र मार्ग उत्तर-पश्चिम में, कटेहरिया राजपूतों की प्राचीन राजधानी लखनोर की ओर से है। अतः "प्राकृतिक बाधाओं" द्वारा सुरक्षित स्थान के रूप में ह्वेनसांग का वर्णन यथार्थ है। अहिछत्र, एओनला के उत्तर में केवल सात मील की दूरी पर है परन्तु मार्ग का अन्तिम अर्द्ध भाग गानघन नदी की खाइयों के कारण कठिन बन गया है। एओनला के उत्तर जङ्गलों में इस स्थान पर कटेहरिया राजपूतों ने फिरोज तुगलक के नेतृत्व में मुसलमानों का सामना किया था।

अहिछत्र का सर्वप्रथम यात्री सर्वेक्षक कैप्टन होडसन था जिसने "अनेक मीलों के घेरे में एक प्राचीन दुर्ग के खण्डहरों" के रूप में इस स्थान का उल्लेख किया है। "जिसमें सम्भवतः ३४ प्राचीरें थी एवम् आस-पास के क्षेत्र में "पांडव दुर्ग" "के नाम से ज्ञात है।" मेरे सर्वेक्षणानुसार इस दुर्ग की केवल ३२ प्राचीरें हैं। परन्तु यह प्रायः सम्भव है कि एक अथवा दो प्राचीरों की ओर मेरा ध्यान न गया हो क्योंकि मैंने ऐसे अनेक स्थान देखे थे जिनमें कांटेदार जङ्गलों के कारण प्रवेश करना असम्भव था। यह प्राचीरें प्रायः २८ से ३० फुट ऊँची है। केवल पश्चिमी प्राचीरें ३५ फुट ऊँची हैं। दक्षिण पश्चिमी कोण के समीप एक प्राचीर वाह्य मार्ग से ४७ फुट ऊँची है। भीतरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समूह की सामान्य ऊँचाई १५ से २० फुट है। वर्तमान प्राचीरों में अधिकांश प्राचीन नहीं है क्योंकि लगभग २०० वर्ष पूर्व अली मुहम्मद खाँ ने दिल्ली के सुल्तान द्वारा पीछे ढकेले जाने की सम्भावना से अपनी सुरक्षा हेतु इस दुर्ग को जीवित करने का प्रयत्न किया था। कहा जाता है कि नवीन दीवारें १$\frac{1}{6}$ गज मोटी थीं जो दक्षिण पूर्वी दीवार के मेरे माप से मिलती है क्योंकि यह दीवारें ऊपर की ओर २ फुट ६ इञ्च से लेकर ३ फुट, ३ इञ्च मोटी है। जन साधारण के अनुसार अली मुहम्मद ने अपने प्रयत्न में १ करोड़ रुपये व्यय किया था परन्तु अधिक व्यय के कारण अन्त में उसे अपना प्रयत्न त्याग देने पर बाध्य होना पड़ा। मेरा अनुमान है कि उसने मिट्टी की दीवारों एवम् वाह्य दीवारों की मरम्मत एवम् पुर्ननिर्माण पर लगभग १ लाख रुपये व्यय किया होगा। दक्षिण पूर्व में एक मेहराबदार द्वार है जो मुसलमानों द्वारा बनवाया गया था परन्तु चूंकि उन्होंने नई ईंटों का निर्माण नहीं कराया था अतः निर्माण कार्य पर व्यय केवल श्रमिक के वेतन तक सीमित रहा होगा। मिट्टी की दीवारें कुछ स्थानों पर १८ फुट मोटी हैं जबकि अन्य स्थानों पर १४ से १५ फुट मोटी हैं।

अहिछत्र जिले की परिधि लगभग २००० ली अथवा ५०० मील थी। इन विस्तृत आंकड़ों के कारण मेरा विश्वस है कि इसमें रोहेलखण्ड का उत्तरी अर्द्ध भाग अर्थात् पश्चिम में पीलीभीत से लेकर पूर्व में घाघर के समीप खैराबाद तक, उत्तरी पहाड़ियों एवम् गङ्गा का मध्यवर्ती क्षेत्र सम्मिलित था। सीधे माप से इस क्षेत्र की सीमा ४५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ५० मील है।

पिलोशना

अहिछत्र से ह्वेनसांग दक्षिण दिशा में २६० से २७० ली अथवा २३ से २५ मील दूर गङ्गा तक गया था। उसने नदी को पार किया एवम् दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़कर पीलो-शान-ना राज्य में पहुँच गया। दक्षिण दिशा की यात्रा उसे एओनला एवम् बुदायूं से होकर बूढ़ी गङ्गा तक ले जाती है जो सहावर के समीप एवम् सोरों से कुछ मील नीचे है। दोनों स्थान ४०० वर्ष पूर्व तक गङ्गा नदी पर अवस्थित थे। चूंकि उसका पश्चातवर्ती मार्ग दक्षिण पश्चिम की ओर बताया जाता है अतः मेरा विश्वास है कि उसने सहावर के समीप गङ्गा नदी को पार किया होगा जो सीधी रेखा पर अहिछत्र से ४२ मील दूर है। अपनी प्रारम्भिक खोज के आधार पर मैं विश्वास करने लगा था कि इस क्षेत्र में सोरों ही एक मात्र प्राचीन स्थान था और चूंकि ह्वेनसांग ने दक्षिण-पश्चिम की दूरी का उल्लेख नहीं किया है अतः मेरा निष्कर्ष था कि सोरों ही वह स्थान था जिसे ह्वेनसांग ने पी-लो-शान-ना का नाम दिया था। तदनुसार मैं सोरों गया जो निश्चित रूप से अति प्राचीन स्थान है परन्तु मेरा विचार है कि यह तीर्थ यात्री की यात्रा का स्थान नहीं हो सकता। फिर भी अन्त्रजी खेड़ा के विशाल ध्वस्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टीले को चीनी तीर्थ यात्री के पी-लो-शान-ना के अनुरूप स्वीकार किये जाने के उचित दावे पर विचार करने से पूर्व मैं सोरों का उल्लेख करूंगा।

सोरों बरेली तथा मथुरा के मध्य मुख्य मार्ग पर गङ्गा नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर अवस्थित है। मूल रूप में इस स्थान को उकल क्षेत्र कहा जाता था परन्तु विष्णु के वराह अवतार द्वारा हिरण्यकश्यप राक्षस के बध के पश्चात इस नाम को बदल कर सुकर क्षेत्र अर्थात् "अच्छे कार्य का क्षेत्र" कर दिया गया। किला अथवा दुर्ग नामक एक ध्वस्त टीला प्राचीन नगर का प्रतिनिधित्व करता है जो उत्तर से दक्षिण एक चौथाई मील लम्बा एवम् इससे कुछ कम चौड़ा है। यह टीला पुरानी गङ्गा के ऊंचे तट पर अवस्थित है जो २०० वर्ष पूर्व तक इसके ठीक नीचे प्रवाहित थी। आधुनिक नगर टीले के दक्षिणी एवम् अधोभाग पर अवस्थित है और सम्भवतः यहाँ लगभग ५००० निवासी हैं। प्राचीन टीले पर कोई निवास स्थान नहीं हैं। यहाँ केवल सीता राम जी का मन्दिर एवम् शेख ज़माल का मकबरा है। परन्तु यह टीला विशाल आकार की ईंटों के टुकड़ों से ढँका हुआ है एवम् सभी ओर दीवारों की नींवों के चिह्न देखे जा सकते हैं। कहा जाता है कि यह खण्डहर कई शताब्दियों पूर्व सोरों के राजा सोम दत्त द्वारा निर्मित दुर्ग के खण्डहर हैं। परन्तु इस स्थान पर लोग काफी समय पूर्व बस गये थे और इस स्थान को काल्पनिक राजा वीना चक्रवर्ती से सम्बन्धित बताया जाता है जिसे उत्तरी बिहार, अवध एवम् रोहेलखण्ड की सभी कथाओं में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हैं।

अन्त्रजीखेड़ा का विशाल ध्वस्त टीला करसाना के चार मील दक्षिण में एवं जरनैली सड़क पर एटा के आठ मील उत्तर में काली नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर अवस्थित है। यह सोरों के १५ मील दक्षिण में एवम् सनकिसा के उत्तर-पश्चिम में सीधी रेखा पर ४३ मोल है परन्तु मार्ग दूरी ४८ अथवा ५० मील से कम नहीं है। आईन-ए-अकबरी में अन्त्रजी का उल्लेख, सिकन्दरपुर अत्रेजी नाम के अन्तर्गत कन्नौज के एक परगने के रूप में किया गया है। सिकन्दरपुर—जिसे अब सिकन्द्राबाद कहा जाता है—अन्त्रजी के विपरीत काली नदी के बायें तट पर बसा हुआ है। इससे पता चलता है कि अन्त्रजी, अकबर के समय में बसा हुआ था। परगना को बाद में करसाना कहा जाने लगा था परन्तु वर्तमान समय में यह सहावर करसाना अथवा केवल सहावर के नाम से ज्ञात है। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिया गया नाम पी-लो शान-ना है जिसे एम० जुलीन ने विरसना पढ़ने का प्रस्ताव किया है। १८४८ में मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि पील एवं कार दोनों हाथी के संस्कृत नाम हैं अतः यह सम्भव था कि पिलोसना एवं करसाना समरूप हों। यह एक विशाल गांव है जिसे मैं अन्त्रजीखेड़ा के ४ मील उत्तर में दिखा चुका हूँ। इस अनुरूपता को स्वीकार करने में मुख्य आपत्ति यह है कि करसाना प्रत्यक्ष रूप से अधिक प्राचीन स्थान नहीं है यद्यपि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसे यदा कदा दयोरा करसादा कहा जाता है जहाँ किसी पूर्ववर्ती समय में महत्वपूर्ण मन्दिर था। फिर भी यह सम्भव है कि करसाना का नाम अन्त्रजी से उसी प्रकार मिला होगा जैसे हम आईन-ए-अकबरी में सिकन्दरपुर अत्रेजी का नाम देखते हैं। चूंकि करसाना एवं पिलोसना की अनुरूपता केवल अनुमानित है अतः इस विषय पर अधिक अनुमान कर विपत्ति में फँसना व्यर्थ है। ह्वेनसांग द्वारा सनकिसा से दिये गये दिकांश एवं दूरी सिरपुर के आस-पास के क्षेत्र की ओर संकेत करते हैं जिसके समीप पिलकनी अथवा पिलोकूनी नामक गाँव है जो हमारे मानचित्रों का पिलोखूनी है। परन्तु यह अति छोटा स्थान है और यद्यपि यहाँ खेड़ा अथवा खण्डहरों का टीला है परन्तु मेरे विचार में किसी भी समय इसकी परिधि ह्वेनसांग द्वारा पिलोसना की बताई गई २ मील की परिधि से एक चौथाई से अधिक नहीं थी। परन्तु इसके पक्ष में दो ठोस तथ्य है— प्रथम इसकी स्थिति जो दिकांश एवं दूरी दोनों में ह्वेनसांग के विवरण से मिलती है तथा द्वितीय इसका नाम जो प्राचीन नाम के प्रायः समरूप है क्योंकि श को सामान्यतः ख पढ़ा जाता है अतः ह्वेनसांग के पिलोसना को पिलोखना पढ़ा जा सकता है।

अन्त्रजी खेड़ा को प्राचीन पिलोसना के स्थान के रूप में प्रस्तावित करने में मैं इस तथ्य से प्रभावित हुआ हूँ कि देश के इस भाग में सोरों को छोड़ यही एक मात्र विशाल प्राचीन स्थान है। सत्य है कि सनकिसा से इसकी दूरी ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी से कुछ अधिक है अथार्थ ३३ मील के स्थान पर ४५ मील है परन्तु दिकांश ठीक-ठीक है और यह प्रायः मेरा विचार है कि प्राचीन पीलोसना के अनुरूप स्वीकार किये जाने के लिये अन्य सभी स्थानों की अपेक्षा अन्त्रजीखेड़ा का दावा अधिक ठोस है।

अन्त्रजी को पीलोसना के अनुरूप स्वीकार किये जाने में केवल एक आपत्ति है अर्थात ह्वेनसांग द्वारा कथित २०० ली अथवा ३३ मील की दूरी एवं सीधी रेखा से ४३ मील अथवा सड़क से ४८ अथवा ५० मील की दूरियों में भिन्नता है। मैं ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरियों में किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना का उल्लेख कर चुका हूँ परन्तु समान रूप से सम्भावित उत्तर योजन की लम्बाई मे भिन्नता में ली देखा जा सकता है। ह्वेनसांग का कथन है कि उसने ४० चीनी ली को एक योजन के समान स्वीकार किया है परन्तु यदि रोहेल खण्ड का प्राचीन योजन मध्यवर्ती दोआब के योजन से उसी प्रकार भिन्न रहा हो जैसे इनके वर्तमान कोस में भिन्नता हैं तो उस दशा में उसकी दूरी प्रत्येक कोस के पीछे आधा मील एवं प्रत्येक योजन के पीछे २ मील कम होगी क्योंकि रोहेल खण्ड का कोस १½ मील के समान है जबकि मध्यवर्ती दोआब का कोस २ मील के समान है और इस प्रकार अन्तिम कोस लगभग एक तिहाई बड़ा है। अब, यदि हम ह्वेनसांग की २०० ली अथवा ३३ मील की दूरी में उपर्युक्त भिन्नता जोड़ दें तो उसकी दूरी ४४ मील हो जायेगी जा मानचित्र पर सीधे माप से मिलती है। फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरियों में त्रुटि की सम्भावना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर अधिक विश्वास करने का इच्छुक हूँ क्योंकि मैं देखता हूँ कि सनकिसा एवं कन्नौज के बीच की दूरी भी समान रूप से २०० ली बताई गई है। अब, दोनों दूरियाँ पूर्णतयः समान है—अर्थात सनकिसा अन्त्रजी एवम् कन्नौज के मध्य में है और चूंकि सड़क के साथ मेरे माप द्वारा अन्तिम दूरी ५० मील है अतः पूर्ववर्ती दूरी भी समान होनी चाहिए। अतः मैं इस सम्भावना का प्रस्ताव करूँगा कि इन दोनों दूरियों को २०० ली की कथित दूरी के स्थान पर ३०० ली अथवा ५० मील पढ़ना चाहिए। इस शुद्धि के पक्ष में मैं पूर्ववर्ती चीनी तीर्थ यात्री फाह्यान की साक्षी को उदधृत करूँगा जिसने सनकिसा से कन्नौज की दूरी को ७ योजन अथवा ४६ मील बताया है। स्वयं ह्वेनसांग ने ४० ली को एक योजन के अनुरूप स्वीकार किया है और इस प्रकार यह दूरी २८० मील होनी चाहिए थी और चूंकि फाह्यान ने आधे योजन को अपने आंकड़ों में सम्मिलित नहीं किया था अतः हम उपर्युक्त दूरी को आधा योजन अथवा २० ली बढ़ा सकते हैं जिससे कुल दूरी ३०० ली अथवा ५० मील हो जायेगी।

परन्तु वास्तविक दूरी एवम् ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी में भिन्नता का कुछ भी वास्तविक कारण रहा हो इतना निश्चित है कि सनकिसा कन्नौज एवम् पीलोशना के ठीक मध्य में था। यदि हम स्थिति की पूर्ण अनुरूपता को इस तथ्य से जोड़ दें कि ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित प्रदेश में अन्त्रजी ही एक मात्र प्राचीन स्थान है तो हम केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचेगें कि अन्त्रजी का विशाल ध्वस्त टीला प्राचीन पीलोशना का स्थान है। उपर्युक्त निष्कर्ष की इस तथ्य से पुष्टि होती है कि अन्त्रजी का टीला आकार में ह्वेनसांग द्वारा पोलोसना के दिये गये आंकड़ों अर्थात १२ ली अथवा २ मील से मिलता है। यह टीला अधोभाग में ३२५० फुट चौड़ा है अथवा परिधि में २ मील से अधिक है। इसका उच्चतम विन्दु प्रदेश के स्तर से ४४¾ फुट ऊंचा है परन्तु दीवारों की नीवों एवम् टूटी हुई ईटों के ढेर को छोड़ अन्य अवशेष प्राप्त नहीं हैं।

कहा जाता है कि पीलोशना की परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी परन्तु यह निश्चय ही बहुत अधिक है। पड़ोसी जिलों को देखते हुए इसकी सीमाओं को अनुमानतः बुलन्दशहर से यमुना तट पर फिरोजाबाद तक एवम् गङ्गा तट पर कादिर गंज तक विस्तृत बताया जा सकता है जिससे २५० मील से अधिक परिधि प्राप्त नहीं हो सकती है।

संकिसा

पीलोशना एवं कन्नौज के मध्य अवस्थित संकिशा स्थिति पर विचार किया जा चुका है। चीनी तीर्थ यात्री ने इस स्थान का नाम सेंग-किया-शी लिखा है और वर्तमान संकिसा नाम में चीनी नाम को सुरक्षित रखा गया है और जो अधिक विश्वस्तना से संस्कृत के संग्कस्या का प्रतिनिधित्व करता है। ह्वेनसांग ने इसे किया-पी-था अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कपिथा नाम से भी पुकारा है परन्तु इस सम्बन्ध में मैं कोई चिह्न प्राप्त करने में असमर्थ रहा। संकिसा बौद्ध धर्म के सर्वाधिक प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों में गिना जाता था क्योंकि यह वही स्थान है जहाँ बुद्ध इन्द्र एवं ब्रह्मा सहित स्वर्ण अथवा रत्न की सीढ़ियों से त्रयस्तृन्सा स्वर्ग से पृथ्वी पर आये थे। इस विचित्र कथा के अनुसार बुद्ध जन्म के सात दिवासोपरान्त उनकी माता माया की मृत्यु हो गयी थी और वह तुरन्त त्रयस्तृन्सा स्वर्ग अथवा ३३ देवताओं के निवास्थान पर चली गई थीं जिनका राजा इन्द्र था। परन्तु चूँकि उसे देवताओं के स्थान पर बुद्ध के नियमों का प्रचार करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ अतः उसका पवित्र पुत्र त्रयस्तृन्सा स्वर्ग में आया एवं उसने अपनी माता की ओर से तीन मास तक धर्मोपदेश दिया। तत्पश्चात् वह ब्रह्मा एवं इन्द्र सहित तीन सीढ़ियों के माध्यम से पृथ्वी पर उतर गये। इन सीढ़ियों में एक सीढ़ी स्फटिक पदार्थ अथवा बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई थी दूसरी सोने एवं तीसरी रजत की। फाह्यान के अनुसार बुद्ध सात बहुमूल्य वस्तुओं अर्थात् बहुमूल्य धातु एवं रत्नों से बनी सीढ़ी से उतरे थे जबकि ब्रह्मा उनकी दाहिनी ओर चाँदी की सीढ़ी से एवं इन्द्र वाम पक्ष में स्वर्ण की सीढ़ी से उतरे थे। परन्तु ह्वेनसांग ने स्वर्ण सीढ़ी स्वयं बुद्ध की दी है रजत सीढ़ी ब्रह्मा को एवं स्फटिक धातु की सीढ़ी इन्द्र को जो बुद्ध के दाहिनी एवं बाईं ओर से नीचे आ रहे थे। उस समय अनेक देवता उनके साथ थे और बुद्ध का गुणगान करते हुए चारों ओर पुष्प वर्षा कर रहे थे। यह है उस विचित्र कथा के कुछ अंश जिसमें वर्तमान बर्मी जनता उतना ही दृढ़ विश्वास रखती है जितना २१०० वर्ष पूर्व सम्राट अशोक को था अथवा हमारे समय की पांचवी, छठीं एवं सातवीं शताब्दियों में चीनी तीर्थ यात्रियों को था।

संकिसा नाम को सुरक्षित रखने वाला छोटा गाँव खण्डहरों के एक उन्नत टीले पर अवस्थित जो आस-पास के खेतों से ४१ फुट ऊँचा है। यह टीला जिसे किला कहा जाता है, पूर्व से पश्चिम १५०० फुट लम्बा एवं १०७० फुट चौड़ा है। उत्तर एवं पश्चिम किनारे अति ढलवा है। परन्तु अन्य सभी ओर से इस टीले पर सरलता पूर्वक चढ़ा जा सकता है। दुर्ग के मध्य से ठीक दक्षिण में १६०० फुट की दूरी पर ईंटों की इमारतों वाला एक टीला है जिसके शिखर पर विसारी देवी का एक आधुनिक मन्दिर है। यह दुर्ग एवम् मन्दिर के आस-पास विभिन्न टीले मिल कर खण्डहरों का एक विशाल समूह बताते हैं जो ३००० फुट लम्बा एवम् २००० फुट चौड़ा है जिसकी परिधि २ मील है। परन्तु यह संकिसा के प्राचीन नगर का केवल मध्यवर्ती भाग है। यह इस नगर के अन्तर्गत दुर्ग एवम् धार्मिक भवन थे जो पवित्र सीढ़ियों के चारों ओर बने हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगर मध्यवर्ती टीले के चारों ओर फैला हुआ था एवम् चारों ओर से १८६०० फुट अथवा परिधि में ३½ मील से अधिक लम्बी मिट्टी की दीवारों से घिरा हुआ था। इस दीवार का अधिकांश भाग खड़ा हुआ है एवम्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसका आकार नियमित है। पूर्व, उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व को तीन दिशाओं में दोवारों में कटाव-अथवा द्वारा है जिन्हें प्रथानुसार नगर के तीन द्वारों का स्थान बताया जाता है। इस प्रथा के परिणाम स्वरूप जन साधारण पौरखेड़िया गाँव की ओर संकेत करते हैं जो दीवार के दक्षिण-पूर्वी कटाव के ठीक बाहर है। परन्तु उपर्युक्त नाम को पोर के स्थन पर पौर कहा जाता है अतः यह नाम द्वार के स्थान पर सीढ़ियों (पौड़ी) का संकेत करता है। काली अथवा कालिन्द्ररी नदी दीवार के दक्षिण पश्चिमी कोण से राजघाट से लेकर कंकरघाट तक बहती है। राजघाट दीवार से आधा मील दूर है जबकि कंकरघाट दीवार की रेखा के दक्षिण में एक मील से अधिक दूरी पर है।

उत्तर-पूर्व में तीन चौथाई मील की दूरी पर अगहट नामक एक विशाल टोला है जो ४० फुट ऊँचा एवम् अधोभाग के व्यास में आधे मील से अधिक है। प्राचीन नगर का नाम अगहट बताया जाता है परन्तु अब एक आधुनिक सराय के नाम पर इसे अगहट सराय कहा जाता है। यह सराय १०८० हिजरी अथवा १६७० ई० में वर्तमान पठान जमींदार के पूर्वज द्वारा टीले के उत्तर पूर्वी कोण पर बनवाई गई थी। जनसाधारण का कथन है कि इससे पूर्व यह स्थान अनेक शताब्दियों तक निर्जन था परन्तु चूंकि मैं दिल्ली एवं जौनपुर के मुसलमान शासकों के ताम्र मुद्राओं की लगभग निरन्तर शृङ्खला प्राप्त करने में सफल हुआ था अतः मेरा अनुमान है कि यह स्थान अधिक समय तक निर्जन नहीं था। यह टीला बड़े आकार की टूटी हुई ईंटों से ढका हुआ है जो अकेले इसकी प्राचीनता का प्रमाण दे सकते हैं और चूंकि इसकी ऊँचाई एवं सङ्किसा की ऊँचाई समान है अतः जनसाधारण का यह कथन सम्भवतः सत्य है कि दोनों स्थान एक ही काल में बनवाये गये थे। दोनो टीलों पर समान ताम्र मुद्रायें प्राप्त होती हैं जिन पर किसी प्रकार का लेख अङ्कित नहीं है। इनमें अधिक पुरानी मुद्रायें वर्गाकार रजत मुद्रायें हैं जिन पर विभिन्न चिह्न अङ्कित किये गये हैं तथा अन्य मुद्रायें तांबे की वर्गाकार मुद्रायें है चिन्हें साँचे में ढाला गया है और मेरे विचार में यह सभी मुद्रायें सिकन्दर महान के आक्रमण से पूर्ववर्ती समय की है।

सङ्किसा को रामायण के सगस्या एवम् चीनियों के सेन्ग, किया-शी के अनुरूप स्वीकार करने में हमें न केवल नामों की पूर्ण समरूपता से समर्थ प्राप्त होता वरन् इसी प्रकार मथुरा, कन्नौज तथा अहिच्छत्र के तीन सर्व प्रसिद्ध स्थानों से इसकी अपेक्ष कृत स्थिति से भी समर्थन प्राप्त होता है। आकार में भी यह ह्वेनसांग द्वारा दिए गये आंकड़ों से अधिक समीपता रखता है। चीनी तीर्थ यात्री द्वारा इसकी बताई गई २० ली अथवा ३½ मील की परिधि मेरे आंकड़ों के १८६०० फुट अथवा ३½ मील से कुछ कम है अतः इस बात में सन्देह नहीं हो सकता कि दोनों स्थान वस्तुतः समान हैं। सङ्किसा के अपने विवरण में ह्वेनसांग ने एक विचित्र तथ्य का उल्लेख किया है कि विशाल मठ के समीप निवास करने वाले ब्राह्मणों की संख्या कई हजार थी। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथन के उदाहरण स्वरूप मैं यह उल्लेख कर सकता हूँ कि जनसाधारण की एक प्रथा है जिसके अनुसार सङ्किसा १८०० से १६०० वर्ष पूर्व निर्जन हो गया था तथा १३०० वर्ष पूर्व अथवा लगभग ५६० ई० में इस स्थान के स्वामी कायथ ने यह स्थान ब्राह्मणों को दे दिया था। उनका यह भी कथन है कि अपेक्षाकृत आधुनिक समय तक पोर खेड़िया गाँव की अधिकांश जनसंख्या पूर्णतः ब्राह्मण थी।

कहा जाता है कि सङ्किसा की परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी परन्तु आस-पास के अन्य जिलों को देखते हुए यह परिधि बहुत अधिक है। उत्तर एवं दक्षिण में गङ्गा तथा यमुना द्वारा वास्तविक एवं पश्चिम तथा पूर्व में अन्त्रजी एवं कन्नौज के जिलों द्वारा निर्धारित इसकी वास्तविक सीमायें २२० मील से अधिक नहीं हो सकती।

मथुरा

सातवीं शताब्दी में मथुरा की प्रसिद्ध नगरी एक विशाल राज्य की राजधानी थी जिसकी परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील बताई गई है। यदि यह अनुमान सही है तो इस प्रान्त में न केवल वैराट तथा अन्त्रेजी जिलों का सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा वरन् दक्षिण में आगरा से आगे नरवा तथा शिवपुरी तक एवं पूर्व में सिन्ध नदी तक बहुत बड़ा क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा। इन सीमाओं के भीतर प्रान्त की परिधि सीधे माप के अनुसार ६५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार ७५० मील से अधिक होगी। इसमें भरतपुर खिरौली तथा धौलपुर के छोटे राज्यों एवं ग्वालियर राज्य के उत्तरी अर्धभाग सहित मथुरा का वर्तमान जिला सम्मिलित था। पूर्व में यह राज्य पूर्व में जिझौटी राज्य से एवं दक्षिण में मालवा से घिरा हुआ था। ह्वेनसांग ने इन दोनों को भिन्न-भिन्न राज्य बताया है।

सातवीं शताब्दी में नगर की परिधि २० ली अथवा ३⅓ मील थी जो इसके वर्तमान आकार से मिलती है। परन्तु दोनों की स्थिति एक समान नहीं है क्योंकि पूर्व में यमुना के कटाव के कारण नगर का बढाव उत्तर तथा पश्चिम की ओर हुआ है। कहा जाता है कि प्राचीन नगर उत्तर में नबी मस्जिद तथा राजा कंस के दुर्ग से लेकर दक्षिण में कंस टीला तथा टीला सत सिख तक विस्तृत था परन्तु इसका दक्षिणी अर्धभाग अब निर्जन है और नबी मस्जिद के उत्तर एवं पश्चिम में प्राचीन नगर के बाहर लगभग समान क्षेत्र बस गया है। यह नगर अनेक ऊंचे-ऊंचे टीलों से घिरा हुआ है जिनमें अधिकांश टीलें ईंटों के पुराने भट्ठे हैं। परन्तु उनमें अनेक टीले विशाल भवनों के खण्डहर हैं। इन टीलों को खोद-खोद कर ईटें निकाली गई हैं और अब केवल ईंटों की मिट्टी एवं टुकड़ों के ढेर शेष हैं। मैं विशेष रूप से नगर के तीन मील दक्षिण में जेल के समीप बड़े टीले का उल्लेख करूँगा जो बाह्य रूप से ईंटों एवं खपरेलों के भट्ठे का खण्डहर प्रतीत होता था। परन्तु वाह्य रूप से साधारण दिखाई देने वाले टीले से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब अनेक मूर्तियाँ एवं शिलालेख प्राप्त किए जा चुके हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि यह टीला कम से कम दो बौद्ध मठों का खण्डहर है जो ईसवी काल के प्रारम्भ से सम्बन्धित है।

मथुरा की पवित्र नगरी भारत के प्रचीनतम स्थानों में गिनी जाती है। यह कृष्ण के इतिहास में उसके शत्रु राजा कंस के गढ़ के रूप में प्रसिद्ध है तथा मैगस्थनीज के आधार पर एरियन ने सूरसेनी की राजधानी के रूप में इसका उल्लेख किया है। सूरसेम कृष्ण के पितामह थे तथा कृष्ण एवं उनके वंशज जिन्होंने कंस को मृत्यु के पश्चात् मथुरा पर अधिकार कर लिया था। अपने पितामह के नाम से सूरसेन कहलाते थे। एरियन के अनुसार सूरसेनियों के दो महान् नगर थे, मैथोरस तथा क्लिसो-बोरस, तथा नौकाओं के योग्य जोबारेज नदी इन सीमाओं से होकर बहती थी। प्लिनी ने नदी को जोमनीज़ अर्थात जमुना कहा है तथा उसका कथन है कि यह नदी मेथोरा तथा क्लिसोंबोरा के नगरों के बीच बहती थी। टालमी ने मोदुरा नाम के अर्न्तगत एवं "देवताओं के नगर" अथवा पवित्र नगर के रूप में केवल मथुरा का उल्लेख किया है।

वृन्दावन

क्लिसोबोरस नगर की पहचान नहीं हो सकी है परन्तु मेरा विश्वास है कि यह मथुरा के छः मील उत्तर में वृन्दावन रहा होगा। वृन्दावन का अर्थ है "तुलसी के वृक्षों का कुंज" जो सम्पूर्ण भारत में कृष्ण एवं गोपियों की गोपलीला के स्थान के रूप में प्रसिद्ध है परन्तु इस स्थान का पूर्ववर्ती नाम कालोवर्त था क्योंकि कथा में बताया गया है कि काली नाग ने यमुना पर लटकते हुए कदम्ब वृक्ष पर अपना स्थान बनाया था। इसी स्थान पर कृष्ण ने उस पर आक्रमण करके मार डाला। क्लिसोबोरा के लेटिन नाम को भिन्न-भिन्न पुस्तकों में करिसोबोरा तथा कैरिसो-बोरका भी लिखा गया है। अतः मेरा अनु-ान है कि इसका मूल नाम काली सो-बोरका अथवा दो अक्षरों के साधारण परिवर्तन से कालीकोवोर्ता अथवा कालिकावर्त था। प्रेम सागर में लिखा है कि कृष्ण जब यमुना में तैर रहे थे तो काली नाग ने उनके विरुद्ध अपना विष उगल दिया था और यमुना में उपर्युक्त भंवर उसी विष के कारण बना था। अनुमान लगाया जाता है कि दूध पिलाने से साँप का विष बढ़ जाता है और यह पूर्ववर्ती समय में सर्प पूजा की ओर संकेत करता है। आज भी यदा-कदा सर्प को दूध पिलाया जाता है परन्तु अब यह कार्य केवल सर्प की दैवी शक्ति की परीक्षा लेने के लिये कि-ा जाता है। कहा जाता है कि सर्प दूध पोने की आश्चर्य जनक शक्ति रखता है। बताया जाता है कि अन्तिम शताब्दी में बनारस के राजा चेतसिंह ने मथुरा एवं वृन्द्राबन के दोनों नगरों का सम्पूर्ण दूध कदम्ब वृक्ष में डाल दिया था और चूंकि जमुना के जल में परिवर्तन नहीं हुआ अतः कालो सर्प की दूध पीने की चमत्कारी शक्ति की पुष्टि हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्नौज

सङ्किसा से ह्वेनसांग २०० ली अथवा ३३ मील उत्तर पश्चिम में कन्नौज तक गया था। चूंकि दोनों स्थानों की स्थिति सर्व ज्ञात है अतः उपर्युक्त दिकांश एवं दूरी के स्थान पर हमें दक्षिण पूर्व एवं ३०० ली अथवा ५० मील पढ़ना चाहिये। दूरी में परिवर्तन के लिए हमें फाह्यान का समर्थन प्राप्त है जिसने इसे ७ योजन अथवा ४९ मील बताया है। कहा जाता है कि सातवीं शताब्दी में राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी। जैसा कि मैं बता चुका हूँ इस अनुमानित परिधि में गङ्गा नदी के उत्तर में छोटे-छोटे जिले एवं निचला गङ्गा दोआब सम्मिलित रहा होगा अन्यथा कन्नौज की सीमायें २०० मील से अधिक नहीं हो सकती थीं। ६६७ मील के ह्वेनसांग के आंकड़ों को सही कर लेने पर कन्नौज की सम्भावित सीमाओं में घाघरा नदी पर खैराबाद एवं टांडा तथा यमुना नदी पर इटावा एवं इलाहाबाद का सम्पूर्ण मध्यवर्ती प्रदेश सम्मिलित रहा होगा। जिससे इससे परिधि लगभग ६०० मील हो जाएगी।

कन्नौज की महान नगरी जो अनेक सहस्त्र वर्षों तक उत्तरी भारत की हिन्दू राजधानी थी, के वर्तमान खण्डहर कम एवम् अमहत्वपूर्ण है। १०१६ ईसवी में जब महमूद गजनी कन्नौज पहुँचा उसके इतिहासकारों ने लिखा है कि "वहाँ पर उसने एक नगर को देखा जो आसमान तक सिर उठा रहा था तथा शक्ति एवम् आकार में उचित रूप से अद्वितीय होने का दावा कर सकता था।" एक शताब्दी पूर्व अथवा ९१५ ईसवी में मसोदी ने भारत के एक राजा की राजधानी के रूप में कन्नौज का उल्लेख किया था तथा लगभग ९०० ईसवी में इब्न वहाब के साक्षी के आधार पर "कदूजे को गोज़र राज्य का एक विशाल नगर" बताया है। इससे अधिक पूर्व काल में अथवा ६३४ ई० में हमें चीनी तीर्थ यात्री का विवरण प्राप्त होता है जिसने कन्नौज को २० ली अथवा ३½ मील लम्बा एवं ४ अथवा ५ ली अथवा ¾ मील चौड़ा बताया है। यह नगर सुदृढ़ दीवारों एवं गहरी खाईयों से घिरा हुआ था तथा इसके पूर्वी किनारे पर गङ्गा नदी बहती थी। अन्तिम तथ्य को फाह्यिान का समर्थन प्राप्त है जिसका कथन है कि नगर हेंग अथवा गङ्गा नदी को छू रहा था जब ४०० ईसवी में उसने इस स्थान की यात्रा की थी। टालमी ने १४० ईसवी में कन्नौज का उल्लेख किया है परन्तु इस स्थान का प्राचीनतम उल्लेख असंदिग्ध रूप से पुराणों की प्राचीन प्रचलित कथाओं में मिलता है जिसमें कान्य कुब्ज के संस्कृत नाम को कुसनाभ की एक सहस्त्र पुत्रियों को वायु मुनि द्वारा श्राप दिए जाने की कथा से सम्बन्धित किया गया है।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय कन्नौज उत्तरी भारत के सर्वाधिक शक्तिमान शासक राजा हर्ष वर्धन की राजधानी थी। चीनी तीर्थ यात्री ने उसे फी-शी अथवा वैश्य कहा है। परन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि उसने वैस अथवा वैस राजपूतों के स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर वैश्य अथवा बैस लिखने की त्रुटि की है जो हिन्दुओं का व्यापारिक वर्ग है अन्यथा मालवा एवं बलभी के राजघरानों से हर्ष वर्धन के विवाहिक सम्बन्ध पूर्णतः असम्भव हो जाते। बैस राजतूतों का देश बैसवाड़ लखनऊ के समीप से लेकर कड़ा माणकपुर तक विस्तृत है और इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिणी अवध उनके प्रदेश में सम्भिलित था। बैस राजपूत प्रसिद्ध सालिवाहन के वंशज होने का दावा करते हैं। जिसकी राजधानी गङ्गा नदी के उत्तरी तट पर दौंडियाखेड़ा बताई जाती है। कन्नौज से समीपता के कारण देहली से इलाहाबाद तक गङ्गा के सम्पूर्ण दोआब तक उनके पूर्वजों के अधिकार का दावा स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु उनकी वंशानुक्रम सूचियाँ अधिक त्रुटि-पूर्ण हैं तथा सम्भवतः अधिक अशुद्ध हैं जिनके कारण उनके पूर्वजों को हर्ष-वर्धन के परिवार के राजकुमारों के अनुरूप स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं।

हर्ष वर्धन के शासन काल को ६०७ तथा ६५० ई० के मध्य निश्चित करने में मुझे निम्न साक्षियों से निर्देशन प्राप्त हुआ है। प्रथम, ह्वेनसांग के स्पष्ट कथन से उस की मृत्यु ६५० ई० में निश्चित होती है। (१) द्वितीय, हर्ष के जीवन के सम्बन्ध में लिखते समय तीर्थ यात्री ने लिखा है कि अपने सिंहासनारोहण के समय से निरन्तर साढ़े पाँच वर्षो तक हर्ष युद्धरत रहा था तथा तत्पश्चात् लगभग ३० वर्षो तक उस ने शान्ति पूर्वक शासन किया। ह्वेनसांग ने चीन वापिस जाने पर सम्राट की साक्षी के आधार पर उपर्युक्त कथन को दोहराया है। सम्राट ने उसे सूचित किया था कि उस समय तक वह तीस वर्षों से अधिक शासन कर चुका था तथा तत्कालीन पञ्चवर्षीय सभा ऐसी छटी सभा थी जिसे वह अपने शासन काल में आयोजित कर चुका था। इन विभिन्न कथनों से यह निश्चित है कि ६४० ई० में ह्वेनसांग की चीन वापिसी के समय हर्षवर्धन ३० वर्षो से अधिक तथा ३५ वर्षों से कुछ कम समय तक शासन कर चुका था। अतः उसके सिंहासनारोहण की तिथि को ६०५ तथा ६१० ई० के मध्यवर्ती काल में बताया जा सकता है। तृतीय, अब, इसी काल के मध्य ६०७ ई० में, जैसा कि हमें अबुरहान से सूचना मिलती हैं, श्री हर्ष काल का प्रारम्भ हुआ था जो ग्यारवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मथुरा एवं कन्नौज में सुरक्षित था। नाम एवं तिथियों की पूर्ण समानता पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि ६०७ ई० में कन्नौज में एक सम्राज्य का संस्थापक हर्ष वर्धन था जिसने सातवीं शताब्दी के प्रथम अर्धभाग में कन्नौज पर शासन किया था।

---

(१) ह्वेनसांग की ऐतिहासिक क्रमानुसार सूची के अन्त के परिशिष्ट में मैंने इस बात में विश्वास करने के अनेक ठोस प्रमाण प्रस्तुत किए है कि हर्षवर्धन की मृत्यु की वास्तविक तिथि ६४८ ई० थी यह तिथि मा त्वान्-बिन ने चीनी दूत के आधार पर दी थी जो सम्राट की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् भारत में आया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन कन्नौज के सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दिए गये उल्लेख की नगर के वर्तमान अवशेषों से तुलना करने से मुझे दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैं किसी भी स्थान को निश्चित रूप से पहचानने में असमर्थ रहा हूँ क्योंकि मुसलमानों ने हिन्दू अधिकार के प्रत्येक चिह्न को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया है। जन-साधारण की प्रथाओं के अनुसार प्राचीन नगर उत्तर में राजघाट के समीप हाजी हरमायन की समाधि से लेकर दक्षिण में तीन मील की दूरी पर मीरन का सराय तक विस्तृत था। कहा जाता है कि पश्चिम में यह नगर हाजी हरमायन से लगभग तीन मील की दूरी पर अवस्थित कपत्या तथा मकरन्द नगर के दो ग्रामों तक विस्तृत था। पूर्व की ओर इसकी सीमा पुरानी गङ्गा नदी तक थी जिसे जन साधारण छोटी गङ्गा कहा करते है। यद्यपि हमारे मानचित्रों में इसे काली नदी लिखा गया है। उनका कथन है कि काली अथवा कालिन्दी नदी पूर्व काल में संगारामपुर अथवा संग्रामपुर के समीप गङ्गा नदी में मिलती थी परन्तु अनेक सहस्त्र वर्षों पूर्व यह विशाल नदी इस बिन्दु से उत्तर की ओर मुड़ गई जबकि काली नदी इसी मार्ग से निरन्तर बहती रही। चूंकि संग्रामपुर तथा काली नदी के मध्य एक खुला मार्ग बना हुआ है। अतः मुझे विश्वास है कि प्रचलित विवरण शुद्ध है तथा कन्नौज से नीचे संग्रामपुर से मंहदोघाट तक नदी मार्ग यद्यपि मुख्य रूप से अब काली नदी के जल से भरा रहता है, परन्तु मूल रूप से यहाँ गङ्गा की मुख्य धारा थी। अतः फाह्यान तथा ह्वेनसांग जिन्होंने कन्नौज को गङ्गा नदी के तट पर बताया है, के विवरण की न केवल जन साधारण की प्रथाओं द्वारा पुष्टि होती है वरन् इस तथ्य से भी इसकी पुष्टि होती है कि प्राचीन मार्ग छोटी गङ्गा के नाम से बना हुआ है। कन्नौज का आधुनिक नगर सम्पूर्ण कला अथवा दुर्ग सहित प्राचीन नगर के स्थान के केवल उत्तरी छोर पर बसा हुआ है। इसकी सीमाएँ उत्तर में हाजी हरमयान की समाधि से, दक्षिण पश्चिम में ताज-बाज के मकबरे से तथा दक्षिण पूर्व में मखदूम जहानियाँ के मकबरे से सुनिचित हैं। नगर में, विशेषतयः दुर्ग के भीतरी भवन अधिक फैले हुए हैं और इस प्रकार यद्यपि नगर एक वर्ग मील में फैला हुआ हैं तथापि इसकी जनसंख्या १६,००० से अधिक नहीं है। दुर्ग जो ऊँचे टीले पर पूर्णतयः फैला हुआ है आकार में त्रिभुजाकार है। इसका उत्तरी बिन्दु हाजी हरमयान की समाधि है, दक्षिण पश्चिमी कोण अजयपाल का मन्दिर एवं दक्षिण पूर्वी कोण क्षेम काली बुर्ज नाम विशाल बुर्ज है। प्रत्येक किनारा ४००० फुट लम्बा है। उत्तर पश्चिमी किनारा बिना नाम के सूखे नाले से सुरक्षित है, उत्तर पूर्वी किनारा छोटी गङ्गा से, जबकि दक्षिणी किनारा खाईं से घिरा होगा जो अब नगर की एक मुख्य सड़क है। यह सड़क टीले के अधोभाग के साथ साथ, अजयपाल के मन्दिर से नीचे पुल से लेकर क्षेम काली बुर्ज तक जाती है। उत्तर पूर्वी किनारे पर यह टीला नदी तट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के निचले भू-भाग से ६० तथा ७० फुट ऊँचा उठ जाता है जबकि उत्तर पश्चिम में नाले की ओर इसकी ऊँचाई ४० से ५० फुट तक है। दक्षिणी किनारे पर यह अजय पाल के मन्दिर के ठीक नीचे ३० फुट से अधिक नहीं है परन्तु बाला पीर के मकबरे के नीचे ४० फुट ऊँचा उठ जाता है । इसकी स्थिति सुदृढ़ है और तोप के प्रयोग से पूर्व अपनी ऊँचाई के कारण ही कन्नौज एक सुदृढ़ एवं महत्वपूर्ण स्थान बन गया होगा। जन साधारण नगर के दो द्वारों की ओर संकेत करते है, एक उत्तर की ओर हाजी हरमयान की समाधि से समीप, दूसरा दक्षिण पूर्व में क्षेम काली बुर्ज के समीप। चूंकि यह दोनों द्वार नदी की ओर खुलते हैं अतः तीसरा द्वार दक्षिण पश्चिम में स्थल मार्ग की ओर रहा होगा और इसका सर्वाधिक सम्भावित स्थान रङ्ग महल की दीवारों के नीचे एवं अजय पाल के मन्दिर के समीप प्रतीत होता है।

प्रथाओं के अनुसार प्राचीन नगर में ८४ महल थे जिनमें २५ महल वर्तमान नगर की सीमाओं में अब भी खड़े हैं। यदि हम २५ महलों के स्थान को एक वर्ग मील का तीन चौथाई भाग स्वीकार कर लें तो प्राचीन नगर के ८४ महल २½ वर्ग मील में विस्तृत रहे होंगे। यह आकार ह्वेनसांग द्वारा नगर के बताये गये आकार से मिलता है जिसके अनुसार इसकी लम्बाई २० ली अथवा ३½ मील तथा चौड़ाई ४ अथवा ५ ली अथवा एक वर्ग मील की तीन चौथाई भाग थी। दोनों को मिला कर नगर का क्षेत्र २½ वर्ग मील था। वर्तमान खण्डहरों के स्थान से लगभग यही सीमायें निर्धारित होती हैं। यह खण्डहर कन्नौज में प्रचुर मात्रा में प्राप्त प्राचीन मुद्राओं को प्राप्त करने के मुख्य स्थान हैं। व्यापारियों के अनुसार प्राचीन मुद्रायें दुर्ग के भीतर बालापीर तथा रङ्ग महल में, दुर्ग के दक्षिण पूर्व में मखदूम जहानियाँ अथवा मुख्य मार्ग पर मकरन्द नगर में तथा सिंह भवानी एवं कूटलूपुर के छोटे ग्रामों में प्राप्त होती हैं। अन्य एक मात्र उत्पादक स्थान कन्नौज के तीन मील दक्षिण पूर्व में छोटी गङ्गा के तट पर ईंटों से ढका एक प्राचीन टीला बताया जाता है जिसे राजगीर कहा जाता है। इन सभी प्रमाणों पर विचार करने से मुझे यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग के समय का प्राचीन नगर गङ्गा (अब छोटी गङ्गा) नदी के तट पर क्षेत्र, काली बुर्ज तथा हाजी हरमयान से लेकर दक्षिण पश्चिम दिशा में जरनैली सड़क पर तीन मील दूर मकरन्द नगर तक विस्तृत था जिसकी सामान्य चौड़ाई लगभग एक मील अथवा कुछ कम थी। इन सीमाओं के भीतर वह सभी खण्डहर मिलते है जो किसी समय के प्रसिद्ध नगर कन्नौज के स्थान की ओर संकेत करते हैं।

अयूतों

कन्नौज से आगे दोनों तीर्थ यात्रिओं ने भिन्न मार्गों का अनुसरन किया था। फाहियान सीधे शा-ची (घाघरा के तट पर फैजाबाद के समीप आधुनिक अयोध्या) गया था जबकि ह्वेनसांग गङ्गा के मार्ग का अनुसरन करता हुआ प्रयाग अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलाहाबाद तक चला गया था। फिर भी दोनों तीर्थ-यात्रियों का प्रथम पड़ाव एक समान प्रतोत होता है। फाहियान का कथन है कि गङ्गा नदी को पार करने के पश्चात् वह तीन योजन अथवा २१ मील दक्षिण की ओर होलीवन तक गया था जहाँ उन स्थानों पर अनेक स्तूप बनवाए गये थे जिन स्थानों से बुद्ध "गये थे, चले थे अथवा बैठे थे।" ह्वेनसांग ने लिखा है कि उसने नबदेव-कुल के नगर तक-जो गङ्गा नदी के पूर्वी तट पर था—१०० ली अथवा लगभग १७ मील की यात्रा की थी तथा ५ ली अथवा लगभग १ मील की दूरी तक नगर के दक्षिण पूर्व में अशोक का एक स्तूप था जो १०० फुट ऊँचा था। इसके अतिरिक्त यहाँ पिछले चार बुद्धों की स्मृति में बनवाए गये कुछ अन्य स्मारक थे। मेरे विचार में यह दोनों स्थान सम्भवतः एक समान है तथा यह स्थान इसान नदी के संगम स्थान से ठीक ऊपर तथा नानामऊ घाट के विपरीत नौबतगंज के समीप किसी स्थान पर था। परन्तु चूंकि वर्तमान समय में इस क्षेत्र के आस-पास खण्डहर नहीं हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह खण्डहर नदी की बाढ़ में बह गये हैं। इसान के संगम से नीचे गङ्गा नदी के निरीक्षण से उपर्युक्त अनुमान प्रायः निश्चित हो जाता है। प्रारम्भ में नदी नानामऊ से अनेक मीलों तक ठीक दक्षिण की ओर बहती थी। परन्तु कुछ शताब्दी पूर्व इसने अपना मार्ग बदल दिया। प्रथम ४ अथवा ५ मील तक दक्षिण पूर्व की ओर और तत्पश्चात् समान दूरी तक दक्षिण पश्चिम की ओर, जहाँ यह पुराने मार्ग में मिल जाती थी। इस प्रकार दोनों धाराओं के मध्य लगभग ६ मील लम्बा एवं चार मील लम्बा द्वीप बन गया था। चूंकि ह्वेनसांग के विवरण में नवदेव कुल को इस द्वीप के इसी स्थान पर दिखाया गया है। अतः मेरा अनुमान है कि नगर एव बौद्ध-मठ, सभी नदी मार्ग के परिवर्तन के कारण बह गये थे।

सभी छोटी दूरियों में त्रुटि का सम्भावित कारण कोस के स्थान पर योजन में लिखा जाता था। जिससे यह दूरियां चार गुणा अधिक हो गई। यदि नवदेवकुल के सम्बन्ध में यही त्रुटि की गई थी तो वास्तविक दूरी १७ मील के स्थान पर २५ ली अथवा ४ मील से कुछ अधिक होती। अब, कन्नौज के चार मील दक्षिण पूर्व में इसी स्थिति में छोटी गङ्गा के तट पर दयोकली नामक प्रसिद्ध स्थान है जो प्रथम दो अक्षरों नव के छोड़ देने से तीर्थ-यात्री द्वारा दिये गये नाम के समान है।

नव-देव-कुल छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग ६०० ली अथवा १०० मील दक्षिण-पूर्व की ओर गया तथा गङ्गा नदी को पुनः पार करने से आ-यू-तो नामक राजधानी में पहुँचा था जिसकी परिधि २० ली अथवा ३ मील से अधिक थी।। एम० जुलीन तथा ए० बी० सेन मार्टेन, दोनों ने इस स्थान को राम की प्रसिद्ध राजधानी अयोध्या के अनुरूप प्रसिद्ध स्वीकार किया है। मैं अयूदा के रूप में नाम के सम्भावित पाठ को स्वीकार करता हूँ। परन्तु मैं घाघरा नदी के साथ-साथ राजधानी को ढूंढ़ने में उनसे पूर्णतयः असहमत हूँ क्योंकि यह कन्नौज के ठीक पर्व में है जबकि ह्वेनसांग ने लिखा है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि उसका मार्ग दक्षिण पूर्व की ओर था। फिर भी यह प्रायः सम्भव है कि तीर्थ यात्री किसी भी बड़ी नदी, उदाहरणार्थ, घाघरा के लिए गङ्गा के व्यापक नाम को उपाधि के रूप में प्रयोग किया होगा। परन्तु प्रस्तुत स्थिति में जहाँ दक्षिण पूर्व का कथित दिकांश गङ्गा नदी के मार्ग से मिलता है, मेरे विचार में यह प्रायः निश्चित है कि गङ्गा नदी ही तीर्थ यात्री द्वारा इङ्गित नदी थी। परन्तु गङ्गा के मार्ग को अपनाने से हमें कन्नौज तथा प्रयाग के दो प्रसिद्ध स्थानों के बीच की दूरी में अधिकता के रूप में एक भिन्न प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ह्वेनसांग के मार्ग के अनुसार वह सर्व प्रथम १०० ली की दूरी पर नव-देव-कुल गया था। तत्पश्चात् ६०० ली की दूरी पर आयूतों, ३०० ली जल मार्ग से हयामुख तथा अन्त में ७०० मील की दूरी पर प्रयाग तक गया था। इन सभी दूरियों को मिला कर कुल दूरी १७०० ली अथवा २८३ मील हो जाती है जो वास्तविक दूरी से प्रायः १०० मोल अथवा ६०० ली अधिक है। परन्तु चूंकि यात्रा का एक भाग अर्थात ३०० मील अथवा ५० मील जल मार्ग द्वारा पूरा किया गया था। अतः वास्तविक भिन्नता सम्भवतः ८५ मील अथवा ९० मील से अधिक नहीं रही होगी। यद्यपि यह संदेह-पूर्ण है कि ३०० ली की दूरी नदी मार्ग न होकर स्थल मार्ग की दूरी न रही हो। हमारे उद्देश्य के लिए इतनी जानकारी पर्याप्त है कि ह्वेनसांग के कथित आंकड़े वास्तविक आंकड़ों से लगभग १०० मील अधिक है। इस त्रुटि का एक मात्र उत्तर यह हो सकता है कि किसी एक संख्या में परिवर्तन हो गया हो जैसे ६०० ली के स्थान पर ६० ली अथवा ७० मील के स्थान पर ७०० ली। प्रथम संख्या की त्रुटि को स्वीकार करने से कुछ दूरी ५४० ली अथवा ९० मील घट जायेगी जबकि दूसरी संख्या की त्रुटि को स्वीकार करने से इस दूरी में ६३० ली अथवा १०५ मील की कमी हो जायेगी। इस ढ़ङ्ग की त्रुटि से तीर्थ यात्री द्वारा दी गई दूरी कन्नौज तथा प्रयाग के बीच १८० मील की वास्तविक दूरी से मिल जायेगी।

प्रथम अनुमान को स्वीकार करने से नव-देव-कुल से आयूतों की राजधानी तक ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरो केवल ६० ली अथवा १० मील हागी जो उसे स्योराज-पुर के प्रायः एक मील उत्तर में तथा कानपुर के २० मील उत्तर पश्चिम में काकूपुर नामक प्राचीन नगर के स्थान पर ले जायेगी। पश्चात्वर्ती मार्ग काकूपुर से नाव द्वारा दौण्डिया खेडा तक ठीक ५० मील अथवा ३०० ली रहा होगा। तथा वहाँ से प्रयाग तक १०० मील से अधिक दूरी रही होगी जो तीर्थ-यात्री की ७०० लो अथवा १०० मील की दूरी से मिलती है। द्वितीय अनुमान से पश्चात्वर्ती मार्ग कड़ा से पापामऊ (फाफामऊ) तक जल मार्ग द्वारा लगभग ५० मील रहा होगा तथा वहाँ से प्रयाग तक स्थल दूरी लगभग ८ मील रही होगी जो प्रस्तावित शुद्धि की ७० ली से मिलती है। अन्तिम अनुमान के पक्ष में यह तथ्य प्रस्तुत किया जा सकता है कि कड़ा से फाफामऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक दक्षिण पूर्वी दिकांश काकूपुर से दौण्डियोंखेड़ा के दक्षिण पूर्वी दिकांश की अपेक्षा ह्वेनसांग की कथित पूर्वी दिशा से अधिक मिलता है। फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं प्रथम शुद्धि को अपनाने का अधिक इच्छुक हूँ जिससे अयूतों का मुख्य नगर काकूपुर के स्थान दौण्डियाखेड़ा पर तथा हयामुख का नगर दौण्यिाखेड़ा के स्थान पर निश्चित होता है क्योंकि हम जानते है कि अन्तिम नगरी अधिक समय तक बैस राजपूतों की राजधानी थी। मैं आंशिक रूप से इस विचार को एक संदेह के कारण स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि काकूपुर का नाम तिब्वती ग्रन्थों के बागूद अथवा वागूद नागूद नाम से सम्बन्धित हो सकता है। इनके अनुसार शामक नामक एक शाक्य कपिला से निर्वासित होने पर बागूद चला गया था तथा अपने साथ बुद्ध के कुल केश तथा कटे हुए नाखून ले गया था जिन पर उसने एक चैत्य का निर्माण करवाया था। उसे बागूद का राजा बना दिया गया तथा इस स्मारक को उसका नाम दिया गया (शम्पक स्तूप)। बागूद की स्थिति का संकेत नहीं दिया गया है परन्तु चूँकि मुझे इससे मिलते-जुलते अन्य किसी नाम की जानकारी नहीं है अतः मैं यह अनुमान लगाने का इच्छुक हूँ कि यह स्थान सम्भवतः ह्वेनसांग के अयूतो अथवा अयूदा के समान है। दोनों नामों में उल्लेखनीय समानता है और चूंकि दोनो स्थानों पर बुद्ध के केश एवम् नाखून के अंशों सहित एक-एक स्तूप है अतः मेरा विचार है कि दोनों की अनुरूपता को स्वीकार करने के कुछ ठोस प्रमाण प्राप्त हैं।

काकूपुर, कन्नौज की जनता में प्रसिद्ध है जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह नगर किसी समय निजो राजा के अधीन विशाल नगर था। यह बिठूर के ठीक १० मील अथवा ५ कोस उत्तर पश्चिम में है और दोनों स्थानों के मध्यवर्ती क्षेत्र को 'पञ्च कोसी भीतर उत्पालारण्य कहा जाता है। कहा जाता है कि काकूपुर का ध्वस्त टीला छत्रपुर नामक दुर्ग का अवशेष है जिसे ६०० वर्ष पूर्व राजा छत्र पाल चन्देल ने बनवाया था। काकूपुर में कशीरेश्वर महादेव तथा द्रोण के पुत्र अश्वस्थामा के मन्दिर हैं जिनके समीप प्रति वर्ष समारोह होता है। इन बातों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि यह स्थान पूर्ववर्ती समय में महत्वपूर्ण रहा होगा जबकि अश्वस्थामा का नाम इसे महाभारत काल से सम्बन्धित करता है।

ह्वेनसांग के अनुसार आयूतो की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी जो सभी सम्भावनाओं से अधिक है और मैं निस्संकोच इसे अस्वीकार करता हूँ। सम्भवतः हमें ५०० ली अथवा ८३ मील पढ़ना चाहिये जिससे इसकी सीमायें काकूपुर तथा कानपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र तक सीमित हो जायेगी तथा हयामुख के आगामी जिले के लिये स्थान बन जायेगा।

हयामुख

आयूतो से तीर्थ यात्री गङ्गा नदी के मार्ग से नाव द्वारा ३०० ली अथवा ५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मील दूर ओ-यी-यू-खी तक गया था जो नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित था। एम० जुलीन ने इस नाम को हयामुख पढ़ा है परन्तु इसे सम्भवतः अयोमुख अथवा "लौह मुख" पढ़ा जा सकता है जो प्राचीन दानवों का एक नाम था। इनमें कोई भी नाम पुराने नगर के स्थान की ओर संकेत नहीं करता है परन्तु यदि अयूतो को दौण्डिया-खेड़ा के अनुरूप स्वीकार करने का मेरा प्रस्ताव उचित है तो यह निश्चित है कि हया-मुख गङ्गा नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित दौण्डिया खेड़ा था। ह्वेनसांग के अनुसार नगर की परिधि २० ली अथवा ३ मील थी परन्तु आकार से ऐसा प्रतीत नहीं होता कि दौण्डियाखेड़ा किसी भी समय इतना विस्तृत रहा हो। अब भी यहाँ ३८५ फुट वर्गाकार ध्वस्त दुर्ग एवम् दो भवनों की दीवारों को देखा जा सकता है जिन्हें राजा एवं रानी का महल बताया जाता है। परन्तु चूंकि यह स्वीकार किया जाता है कि दौण्डियाखेड़ा बैस राजपूतों की राजधानी थी जिन्होंने अवध में बैसवाड़ जिले को अपना नाम दिया था, यह निश्चित है कि यह स्थान किसी समय अधिक विस्तृत रहा हो। दोण्डिया अथवा दौण्डिया का अर्थ है "ढोल बजाने वाला" और संभवतः किसी संयासी के लिये प्रयोग में लाया गया होगा जिसने खेड़ा अथवा 'टीला' पर अपना निवास स्थान बनाया था और चूंकि टोले के ध्वस्त हो जाने तक यह नाम नहीं दिया गया था अतः नामों की भिन्नता से दौण्डियाखेड़ा को हयामुख के अनुरूप स्वीकार करने में कोई बाधा खड़ी नहीं होती।

ह्वेनसांग के अनुसार हयमुख को परिधि २५०० ली अथवा ४१७ मील थी जो सम्भवतः बहुत अधिक है। परन्तु चूंकि दौण्डिया खेड़ा बैस राजपूतों की राजधानी थी अतः मेरा निष्कर्ष है कि जिले में वर्तमान बैसवाड़ का सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित रहा होगा जो कानपुर से सलोन तक सई तथा गङ्गा नदियों का मध्यवर्ती क्षेत्र है। परन्तु चूंकि इन सीमाओं के भीतर इसको परिधि केवल २०० मील है यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग के समय में यह जिला गङ्गा नदी के दक्षिण की ओर विस्तृत था। अतः इसकी सम्भावित सीमायें उत्तर में गङ्गा एवं दक्षिण में यमुना थीं और इस सम्भावना को टाड का समर्थन प्राप्त है। जिन्होंने बै।वाड़ को गङ्गा एवं यमुना के मध्यवर्ती दोआब का एक विस्तृत जिला कहा है।

प्रयाग

हयामुख से तीर्थ यात्री ६०० ली अथवा ११६ मील दक्षिण पूर्व में प्रयाग तक गया था जो गङ्गा एवं यमुना के सङ्गम पर एक तीर्थ स्थान था, एवं जहाँ कुछ शताब्दियों के बाद अकबर ने इलाहाबाद का दुर्ग बनवाया था जिसे शाहजहाँ ने अलाहाबाद का नाम दिया था। ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी एवं दिकांश दौण्डिया खेड़ा से प्रयाग की दूरी एवं दिकांश से ठीक-ठीक मिलता है। गङ्गा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण में निकटतम मार्ग से इसकी दूरी १०४ मील है। परन्तु चूँकि तीर्थ यात्री ने उत्तरी मार्ग का अनुसरण किया था, इसकी दूरी बढ़ कर ११५ अथवा १२० मील रही होगी। उसके अनुसार नगर दो नदियों के सङ्गम स्थान पर एवं एक विशाल रेतीले समतल के पश्चिम में अवस्थित था। नगर के मध्य में ब्राह्मणों का एक मन्दिर था। जहाँ एक मुद्रा के दान से उतना ही पुण्य प्राप्त होता था जितना अन्य स्थानों पर १००० मुद्राओं के दान से हो सकता है। मन्दिर के मुख्य कक्ष के सम्मुख दूर-दूर तक फैली हुई शाखाओं सहित एक विशाल वृक्ष था जिसे एक नर भक्षी राक्षस का निवासास्थान बताया जाता था। यह वृक्ष उन तीर्थ यात्रियों के अवशेष स्वरूप हड्डियों से घिरा हुआ था जो मन्दिर के सम्मुख अपना जीवन बलिदान करते थे। यह प्रथा आदि काल से चली आ रही थी।

मेरे विचार से इसमें सन्देह नहीं कि तीर्थ यात्री द्वारा बताया गया प्रसिद्ध वृक्ष सर्व ज्ञात अक्षय वट है जो आज भी इलाहाबाद के स्थान पर पूजा की वस्तु है। यह वृक्ष अब भूमि के नीचे एक छाये हुए आँगन में है जो पूर्ववर्ती समय में खुला था एवं जो मेरे विश्वासानुसार ह्वेनसांग द्वारा बताए गये मन्दिर का अवशेष है। यह मन्दिर इलाहाबाद दुर्ग के अन्दर एलनबरों बैरकों के पूर्व में तथा अशोक एवं समुद्र गुप्त के स्तूप के ठीक उत्तर में अवस्थित है। अतः सातवीं शताब्दी का नगर इसी स्थान पर रहा होगा और यह वृक्ष की वर्तमान स्थिति के अनुरूप है क्योंकि मूल रूप से वृक्ष एवम् मन्दिर दोनों ही प्राकृतिक भूमि स्तर पर रहे होंगे परन्तु मलवे के निरन्तर एकत्रित होने के कारण यह दोनों मिट्टी के नीचे दब गये और अन्त में मन्दिर का संपूर्ण निचला भाग भूमिगत हो गया। ऊपरी भाग काफी समय पूर्व से हटा दिया गया है तथा अब अक्षय वट देखने के लिये सीढ़ियों से होकर जाना पड़ता है जो छाये हुए एक चकोर आँगन की ओर जाती है। यह आंगन प्रत्यक्ष रूप से पूर्व काल में खुला हुआ था परन्तु पवित्र गूलर वृक्ष के अँधेरे में रखने एवं रहस्य पूर्ण बनाने के लिये पूरी तरह ढंक दिया गया है।

तत्पश्चात् अक्षय वट का उल्लेख रशीदुद्दीन ने जमाओत-तवारीख में किया है, जिसमें उसने लिखा है कि "पराग का वृक्ष' यमुना एवं गङ्गा के सङ्गम पर अवस्थित है। चूंकि उसने अधिकांश सूचनायें अब्बुरहान से ली थीं। अतः इस उल्लेख की तिथि को सम्भवतः महमूद गजनी के समय से सम्बन्धित किया जा सकता है। सातवीं शताब्दी में नगर एवं नदियों के सङ्गम स्थान के मध्य एक रेतीला मैदान था जिसकी परिधि दो मील थी और चूंकि अक्षय वट नगर के मध्य में था, अतः यह सङ्गम स्थान से कम से कम एक मील दूर रहा होगा। परन्तु नौ शताब्दियों पश्चात् अकबर के शासन काल के प्रारम्भ में अब्दुल कादिर ने लिखा है कि "जनसाधारण वृक्ष से नदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में छलाङ्ग लगाया करते थे।" इस कथन से मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग एवम् अकबर के मध्यवर्ती दीर्घ काल में दोनों नदियों ने धीरे-धीरे सम्पूर्ण विशाल रेतीले मैदान को काट दिया तथा नगर की सीमा तक आ गई जिसमें पवित्र वृक्ष जल के किनारे आ गया। इसमें सन्देह नहीं कि इससे काफी समय पूर्व यह नगर निर्जन हो चुका था क्योंकि हम जानते हैं कि अकबर के शासन काल के २१ वें वर्ष अर्थात् ९८२ हिजरी अथवा १५७२ ईसवी में इलाहाबाद का दुर्ग इसी स्थान पर बनवाया गया था। वस्तुतः प्रयाग नगर के स्थान पर वृक्ष के सम्बन्ध में अबुरेहान के कथन से मुझे ऐसा यह विश्वास होता है कि नगर उसके समय से काफी समय पूर्व निर्जन हो चुका था। जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि अकबर द्वारा पुनर्निर्माण के समय तक किसी भी मुस्लिम इतिहास में इसका एक बार भी नहीं उल्लेख किया गया।

जन साधारण की सामान्य प्रथा के अनुसार प्रयाग का नाम एक ब्राह्मण से लिया गया था जो अकबर के शासन काल में वहाँ रहता था। यह कथा इस प्रकार है कि जब सम्राट दुर्ग का निर्माण करवा रहे थे तो कलाकारों द्वारा सावधानी बरतने के बावजूद नदी की ओर की दीवारें बारम्बार गिर जाती थीं। बुद्धिमान व्यक्तियों से विचार निमर्श करने पर अकबर को सूचना दी गई कि दीवारों की नींव को केवल मानव रक्त से सुरक्षित किया जा सकता है। तदोनुपरान्त घोषणा किये जाने पर प्रयाग नामक एक ब्राह्मण ने स्वेच्छा पूर्वक अपना जीवन इस शर्त पर अर्पित किया था कि दुर्ग को उसका नाम दिया जाए। इस निरर्थक कथा से, जिसे अक्षय वट को देखने के लिए आए तीर्थ यात्रियों को बड़े परिश्रम से बताया जाता है कम से कम एक उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करता है कि इन स्थानीय प्रथाओं में अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने प्रयाग के नाम का उल्लेख किया है और सम्भवतः यह नाम अशोक के शासन काल का जितना पुराना है जिसने लगभग २३५ ई० पूर्व में शिला स्तम्भ का निर्माण करवाया था जबकि सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक दुर्ग का निर्माण नहीं हुआ था। ह्वेनसांग के अनुसार प्रयाग जिले की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। परन्तु चूंकि यह जिला चारों ओर से अन्य जिलों से घिरा हुआ था। अतः मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि हमें इसके स्थान पर ५०० ली अथवा ८३ मील पढ़ना चाहिए एवम् जिले को गङ्गा तथा यमुना के संगम स्थान से ऊपर दोआब के छोटे प्रदेश तक सीमित समझना चाहिए।

कोशाम्बी

कोशाम्बी नगर प्राचीन भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थानों में गिना जाता था एवम् इसका नाम ब्राह्मणों एवम् बौद्ध धर्मावलम्बियों में प्रसिद्ध था। कहा जाता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि इसकी स्थापना पुरूरवों के दसवें वन्शज कुसम्भ ने करवाई थी। परन्तु इसकी ख्याति अर्जुन पांडु के आठवें वन्शज चक्र के शासन काल में प्रारम्भ हुई थी जिसने गङ्गा द्वारा हस्तिनापुर को ध्वस्त किए जाने के पश्चात् कोशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था।

हिन्दुओं के प्राचीनतम महाकाव्य रामायण में कोशाम्बी का उल्लेख किया गया है जिसके सम्बन्ध में सामान्य धारणा के अनुसार इस काव्य की रचना ईसवी काल से पूर्व की गई थी। कवि कालिदास ने मेघदूत में कोशाम्बी के राजा उदयन की कथा का उल्लेख किया है जहाँ उसने लिखा है कि—

कालिदास ५०० ईसवी के कुछ समय पश्चात् हुआ था। सोमदेव की वृहत् कथा में उदयन की कथा को पूर्ण विस्तार में दिया गया है परन्तु लेखक ने दो सतानिकों के मध्य वन्शानुक्रम में त्रुटि की है। अन्त में कोशाम्बी राज्य अथवा कोसाम्ब मण्डल का उल्लेख कड़ा के दुर्ग के प्रवेश द्वार में एक शिलालेख में किया गया है जिसकी तिथि १०९२ सम्वत् अथवा १०३५ ईसवी है, और ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय यह राज्य कन्नोज से स्वतन्त्र था। वत्स-राज की राजधानी कोशाम्बी रत्नावली नामक एक रुचिपूर्ण नाटक का स्थान है जो राजा हर्षदेव के शासनकाल में लिखा गया था जो सम्भवतः कन्नौज का हर्षवर्धन है क्योंकि भूमिका में एकत्रित व्यक्तियों में "उसके चरणों में झुके अनेक राजाओं का उल्लेख किया गया है।" ह्वेनसांग के आधार पर हमें यह ज्ञात है कि उपर्युक्त बात कन्नोज के शासन के सम्बन्ध में सत्य थी परन्तु जिसे काश्मीर के हर्षदेव के सम्बन्ध में कोई एक ब्राह्मण भी सत्य नहीं कह सकता है। अतः इस उल्लेख की तिथि ६०७ तथा ६५० ईसवी के मध्य रही होगी।

परन्तु कोशाम्बी के राजा उदयन का नाम सम्भवतः बौद्ध धर्मावलम्बियों में बहुत प्रसिद्ध था। महावन्शों में जिसकी रचना पाँचवीं शताब्दी में की गयी थी बताया गया है कि बौद्ध धर्मावलम्बियों की द्वितीय धार्मिक सभा में कुछ समय पूर्व पवित्र यश वैशाली से भाग कर कोशाम्बी में चले गये थे। ललित विस्तार में जिसका चीनी अनुवाद ७० तथा ७६ ईसवी के मध्य किया गया था अतः जिसकी रचना ईसा काल के प्रारम्भिक समय में की गई थी। कोशाम्बी के राजा सतानिक के पुत्र उदयन वत्स को बुद्ध के जन्म दिवस पर उत्पन्न हुआ बताया गया है। लङ्का की अन्य पुस्तकों में कोशाम्बी को प्राचीन भारत की उन्नीस राजधानियों में एक राजधानी के रूप में दिखाया गया है। तिब्बतियों में उदयन वत्स कोशाम्बी के राजा के रूप में ज्ञात है। रत्नावली में उसे वत्स राज कहा गया है तथा उसकी राजधानी को वत्स पट्टन कहा गया है। अतः यह कोशाम्बी का केवल अन्य नाम है। कहा जाता है कि बुद्ध ने अपने बौद्ध धर्म का छठाँ एवम् नवाँ वर्ष इस प्रसिद्ध नगर में व्यतीत किया था। अन्त में, ह्वेनसांग ने लिखा है कि बुद्ध की लाल चन्दन की काष्ठ प्रतिमा जिसे राजा उदयन ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध के जीवन काल में बनवाया था, राजाओं के प्राचीन महल में एक गुम्बद के नीचे खड़ी थी ।

इस महान नगर, पश्चातवर्ती पाण्डु राजकुमारों की राजधानी एवम् बुद्ध की सर्वाधिक पवित्र प्रतिमा के स्थान की स्थिति की असफल खोज की गई है । ब्राह्मणों का सामान्य दावा है कि यह स्थान गङ्गा नदी अथवा इसके समीप था और कड़ा दुर्ग के प्रवेश द्वार पर कोशम्बो मण्डल अथवा कोशम्बी राज्य के नाम की खोज से इस सामान्य विश्वास की पुष्टि होती है यद्यपि प्रयाग अथवा इलाहाबाद से ह्वेनसांग द्वारा कथित दिकांश के अनुसार यमुना पर इस की स्थिति का संकेत मिलता है । जनवरी १८६१ में श्री बेले ने मुझे सूचित किया था कि उसे विश्वास है कि प्राचीन कोशम्बी को इलाहाबाद से लगभग ३० मील ऊपर यमुना नदी पर कोसम नाम के पुराने गाँव में ढूंढा जा सकता है । अगले माह मैं शिक्षा विभाग के बाबू शिव प्रसाद से मिला था जो पुरातत्व विषय में अधिक रुचि रखते थे और उनसे मुझे यह सूचना प्राप्त हुई कि कोसम्ब अब भी कोशाम्बो नगर के रूप में ज्ञात है एवम् इस समय भी जैनियों का एक महान तीर्थ स्थान है । तथा केवल एक शताब्दी पूर्व एक विशाल एवम् समृद्ध नगर था । इस सूचना के आधार पर मुझे पूर्ण सन्तोष है कि कोसम्ब ही किसी समय की प्रसिद्ध नगरी कोशाम्बी का स्थान था । फिर भी ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं थे जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता था कि यह नगर यमुना नदी पर अवस्थित था परन्तु प्रमाणों की शृङ्खला में इस त्रुटि को मैं कुछ ही समय पश्चात् बकुला की विचित्र कथा में प्राप्त कर सका जिसका हार्डी ने विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है । शिशु बकुला ने कोशाम्बी में जन्म लिया था और जिस समय उसकी माता यमुना में स्नान कर रही थी, वह, दुर्घटना वश नदी में गिर गया एवम् एक मछली ने उसे निगल लिया और उसे बनारस ले गई । वहाँ पर यह मछली पकड़ कर एक स्त्री को बेच दी गई । मछलो को काटते समय उसके पेट से जीवित शिशु निकला और स्त्री ने इस शिशु को पुत्र रूप में ग्रहण कर लिया । अपने शिशु की इस विचित्र रक्षा को सुन कर उसकी वास्तविक माता बनारस गई और शिशु को लौटा दिए जाने की माँग की । यह माँग ठुकरा दी गई तत्पश्चात् इस विषय की राजा को सूचना दी गई जिसने यह निर्णय किया कि दोनों स्त्रियाँ बच्चे की माताएँ हैं । एक जन्म देने के कारण, दूसरी उसकी रक्षा और लालन-पालन करने के कारण । तद्नुसार शिशु का नाम बकुला अर्थात् "दो कुलों" का रखा गया । वह बिना अस्वस्थ्य हुए ९० वर्ष की आयु तक पहुँच गया, जब बुद्ध की शिक्षाओं से उसने धर्म परिवर्तन स्वीकार किया । बुद्ध ने उसे "अपने शिष्यों के उस वर्ग का नेता नियुक्त किया जो रोग मुक्त था । कहा जाता है कि तत्पश्चात अरहट अथवा बोद्ध भिक्षु बनने के बाद ९० वर्षों तक जीवित रहा ।

चूंकि बकुला की यह कथा इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोशाम्बी यमुना तट पर अवस्थित थी, अब केवल यह देखना है कि इलाहाबाद से कोसम की दूरी ह्वेनसांग द्वारा प्रयाग एवं कोशम्बी की बताई गई दूरी से मिलती है। दुर्भाग्यवश चीनी तीर्थ यात्री की यात्राओं के वर्णन एवं जीवनी में यह दूरी भिन्न-भिन्न दी गई है। जीवनी में दी गई दूरी ५० ली है जबकि यात्राओं के विवरण में इसे ५०० ली लिखा गया है। चीन वापसी के समय तीर्थ यात्री ने लिखा है कि प्रयाग एवं कोशाम्बी के मध्य उसने विशाल वनों एवं नंगे मैदानों से होकर सात दिवसीय यात्रा की थी। अब, चूंकि कोसम ग्राम इलाहाबाद के दुर्ग से केवल ३१ मील की दूरी पर है अतः अन्तिम कथन से कोसम एवं कोशाम्बी को अनुरूपता की सभी सम्भावनायें लुप्त हो जायेगी। परन्तु आश्चर्य है कि इसी कथन से इनकी अनुरूपता का सर्वाधिक सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त होता है क्योंकि बताया जाता है कि सङ्किसा तक तीर्थ यात्री का पश्चातवर्ती मार्ग एक माह में पूरा किया जा सका था और चूंकि प्रयाग में सङ्किसा की कुल दूरी केवल २०० मील है अतः तीर्थ यात्री की प्रतिदिन की औसत यात्रा ५१ मील से अधिक नहीं थी। इस धीमी प्रगति का सर्वाधिक सन्तोषजनक उत्तर इस तथ्य से प्राप्त किया जा सकता है कि प्रयाग से सङ्किसा की यात्रा धार्मिक यात्रा थी जिसका नेतृत्व स्वयं कनौज के सम्राट हर्ष वर्धन कर रहे थे और उनके साथ भारतीयों के अपार समूह एवं सहस्रों बौद्ध भिक्षुओं के अतिरिक्त कम से कम १८ आश्रित राजा थे। इस गणना के अनुसार प्रयाग से कोशाम्बी की दूरी ३८ मील रही होगी जो वास्तविक मार्ग दूरी से ठीक-ठीक मिलती है। मैंने कोसम जाते हुए इसकी दूरी ३७ मील आंकी थी जबकि अन्य मार्ग से वापसी पर यह दूरी ३५ मील आंकी गई थी। ह्वेनसांग की ५० ली एवं ५०० ली को भिन्न-भिन्न दूरियों का एक-मात्र सम्भावित उत्तर मेरे विचारानुसार इस तथ्य में ढूंढा जा सकता है कि चूंकि उसने भारतीय योजन को ४० ली प्रति योजन अथवा १० ली प्रति कोस की दर से चीनी ली में परिवर्तन किया था अतः उसने १५ कोस के स्थान पर १५० ली लिखा होगा जो कोसम की जनता के सामान्य विश्वासानुसार इलाहाबाद एवं कोसम के मध्य वास्तविक दूरी है परन्तु चाहे यह उत्तर शुद्ध है अथवा नहीं यह पूर्णतयः निश्चित है कि कोसम प्राचीन कोशाम्बी के वास्तविक स्थान पर अवस्थित है क्योंकि न केवल जनसाधारण स्वयं यह दावा करते है वरन् अकबर के समय के एक शिलालेख में इसका विशेष उल्लेख किया गया है। खण्डहरों के मध्य खड़े विशाल स्तूप पर लिखा हुआ है कि यह कोशाम्बीपुर है।

कोशाम्बी के वर्तमान खण्डहरों में मिट्टी की दीवारें एवं दुर्ग की रक्षा हेतु बनाये बुर्ज सम्मिलित हैं जिनकी परिधि २३,१०० फुट अथवा ठीक चार मील तीन फर्लाङ्ग है। दीवारों की सामान्य ऊँचाई सामान्य स्तर से ३० से ३५ फुट है परन्तु बुर्ज अधिक ऊंचे हैं। उत्तरी बुर्ज ५० फुट ऊँचे हैं जबकि दक्षिणी पश्चिमी एवं दक्षिणी पूर्वी कोणों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बुर्ज ६० फुट से अधिक ऊँचे हैं। मूल रूप से दुर्ग के चारों ओर खाईयाँ थीं परन्तु वर्तमान समय में मिट्टी की दीवार के नीचे कुछ खोखली खाईयाँ हैं। उत्तरी दीवार की लम्बाई ४,५०० फुट है, दक्षिणी दीवार ६,००० फुट, पूर्वी दीवार ७५०० फुट तथा पश्चिमी दीवार ५,१०० फुट लम्बी है अथवा कुल मिलाकर इनकी लम्बाई २६,१०० फुट है। उत्तरी एवं दक्षिणी दीवारों की लम्बाई में भिन्नता इस कारण थी कि मूल रूप से दुर्ग का विस्तार नदी की ओर था परन्तु मेरा विश्वास है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दीवारों की लम्बाई में भिन्नता पूर्णतयः यमुना के कटाव के कारण है जिससे दीवारों का दक्षिण-पश्चिमी कोण नदी के कटाव के कारण लुप्त हो गया था। अब दक्षिण दिशा में पश्चिमी दीवार के अर्द्ध भाग का कोई चिह्न शेष नहीं है और गढ़वा ग्राम के गृह नदी के ऊपर लटकती चट्टान के किनारे पर बने हुए हैं। दुर्ग के दक्षिण पश्चिमी कोण पर बने पक्का बुर्ज से प्रभासा तक ठीक चार मील की दूरी तक नदी की पहुँच २०° उत्तर पूर्व है जबकि ह्वेनसांग के समय में कोशम्बी के दक्षिण पश्चिम में १½ मील की दूरी पर एक गुफा एवं दो स्तूप थे। इन सभी समान परिस्थियों के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि दुर्ग की पश्चिम दीवार मूल रूप से सम्भवतः उतनी ही लम्बी थी जितनी पूर्वी दीवार। इस प्रकार पश्चिमी दीवार की लम्बाई में २४०० फुट अथवा लगभग आधे मील की वृद्धि हो जायेगी तथा दीवारों की सम्पूर्ण परिधि बढ़ कर ४ मील ७ फर्लाङ्ग हो जायेगी जो ह्वेनसांग द्वारा बताई गई दूरी अर्थात ३० ली अथवा ५ मील के माप से केवल एक फर्लाङ्ग कम है। अतः नाम, आकार एवं स्थिति, इन तीनों बातों में वर्तमान कोसम, सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग द्वारा वर्णित प्राचीन कोशम्बी से ठीक-ठीक मिलता है।

ह्वेनसांग के अनुसार कोशाम्बी की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी जो पूर्णतयः असम्भव है क्योंकि यह नगर चारों ओर समीप के अन्य जिलों से घिरा हुआ था। अतः मैं सहस्र के स्थान पर सौ पढ़ूँगा एवं इस जिले की परिधि को ६०० ली अथवा १०० मील निर्धारित करूंगा।

कुशपुरा

कोशाम्बी से चीनी तीर्थ यात्री ने उत्तर पूर्व दिशा में एक विस्तृत वन से होकर गङ्गा नदी तक यात्रा की और नदी को पार करने के पश्चात् वह उत्तर की ओर मुड़ गया और ७०० ली अथवा ११७ मील की दूरी पर किया-शी पू-लो नगर में पहुँचा जिसे एम० जुलीन ने उचित रूप से कसपुरा पढ़ा है। (१) इस नगर की स्थिति को

(१) एम० जुलीन की 'ह्वेनसांग' नामक पुस्तक के अनुसार तीर्थ यात्री की 'जीवनी' में कुशपुरा का कोई उल्लेख नहीं किया गया है एवं कोशाम्बी से विशाखा की दूरी ५०० ली पूर्व बताई गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्धारित करने में तीर्थ यात्री का विसाखा तक १७० ली से १८० ली अथवा २८ से ३० मील का पश्चात्‌वर्ती मार्ग कोशाम्बी से दिकांश एवम् दूरी के समान महत्वपूर्ण है क्योंकि ह्वेनसांग का विसाखा, जैसा कि मैं अभी बताऊँगा, फाह्यान के साची तथा हिन्दुओं के साकेत अथवा अयोध्या के समान है और इस प्रकार अपनी खोज में हमें अपने निर्देशन हेतु कोशाम्बी एवम् अयोध्या के दो सुनिश्चित बिन्दु प्राप्त हो जाते हैं। मानचित्र पर देखने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोमती (अथवा गुमती) नदी पर अवस्थित सुल्तानपुर का पुराना नगर इङ्गित स्थान पर अवस्थित है। अब इस नगर का हिन्दु नाम कुशभवनपुर अथवा साधारण कुशपुरा था जो ह्वेनसांग द्वारा दिये गये नाम के प्रायः समान है। श्री वेले द्वारा राजा मानसिंह से उधृत सूचना को ध्यान में रखते हुए कि 'सुल्तानपुर के समीप एक स्तूप था।' मैंने तत्कालिक निर्जन नगर के एक ओर अपना पड़ाव डाला एवम् सम्पूर्ण स्थान की सावधानी पूर्वक खोज की परन्तु मेरी खोज व्यर्थ गई। न तो मैं किसी स्तूप के चिह्न प्राप्त कर सका न ही मैं किसी प्रकार के प्राचीन खण्डहरों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त कर सका। परन्तु सुल्तानपुर से प्रस्थान के दूसरे दिन मुझे सूचना मिली कि ५ मील उत्तर पश्चिम में महमूदपुर नामक गाँव एक प्राचीन टीले पर अवस्थित है जो सुल्तानपुर के टीले की अपेक्षा अधिक बड़ा है और फैजाबाद पहुँचने पर मुझे रायल इञ्जीनियर्स के लेफ्टीनेन्ट स्टेटेन्हम से सूचना मिली कि सुल्तानपुर के उत्तर पश्चिम में एक स्तूप विद्यमान है जो इस गाँव से अधिक दूर नहीं है। अतः मेरा निष्कर्ष है कि सुल्तानपुर अर्थात् प्राचीन कुशपुरा ही ह्वेनसांग के कसपुर का स्थान है और उल्लिखित दूरियों पर ध्यान देने से यह अनुरूपता अधिक निश्चित हो जायेगी।

कोशाम्बी छोड़ने पर तीर्थ यात्री सर्व प्रथम गङ्गा नदी तक उत्तर-पूर्व दिशा में गया और नदी को पार करने के पश्चात् कुसपुरा तक उत्तर दिशा में गया। उसकी यात्रा की कुल दूरी ११७ मील थी। अब कोसम, के उत्तर पूर्व में गङ्गा नदी के दो विशाल घाट माऊ सराय एवम् फाफामऊ में थे। प्रथम घाट ४० मील दूर था जबकि दूसरा घाट ४३ मील की दूरी पर था। परन्तु चूंकि यह दोनों घाट एक दूसरे के समीप है एवम् इलाहाबाद के ठीक उत्तर में है अतः किसी भी घाट से गङ्गा नदी को पार करने से कुसपुरा तक कुल दूरी समान रहेगी। फाफामऊ से सुल्तानपुर उत्तर दिशा में एवम् ६६ मील की दूरी पर है और कोसम से सुल्तानपुर की कुल दूरी १०६ मील है जो ह्वेनसांग द्वारा कथित ७०० ली अथवा ११६$\frac{2}{3}$ मील से कुल आठ मील कम है। जबकि दोनों दिकांश उसके कथन से ठीक समानता रखती है। कुसपुरा से विशाखा तक तीर्थ यात्री ने उत्तर दिशा का अनुसरण किया था और कुल दूरी १७० ली से १८० ली अथवा २८ मील से ३० मील थी। अब, वर्तमान अयोध्या प्राचीन अयोध्या अथवा साकेत सुल्तानपुर के ठीक उत्तर में है और निकटतम बिन्दु तक इसकी दूरी ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी से केवल ६ मील अधिक है। चूंकि प्रथम दूरी ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी से कम है और अन्तिम दूरी इससे अधिक है अतः मैं एक सम्भावित के रूप में इस बात का प्रस्ताव करूंगा कि हमारे आंकड़े महमूदपुर ग्राम से लिये जाने चाहिए जिससे कोसम से कुसपुरा के बौद्ध मठ की दूरी ११४ मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी ० से तीन मील के भीतर आ जायेगी और अयोध्या का पश्चातवर्ती मार्ग को ३६ मील से घट कर ३१ मील रह जायेगा जो चीनी तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी से एक मील कम है। चूंकि सभी दिकांश ठीक-ठीक मिलते हैं और चूंकि दोनों स्थानों के नाम प्रायः समान हैं अतः मेरा विचार है कि सुल्तानपुर अथवा कुशपुरा को ह्वेनसांग के कसपुरा के अनुरूप स्वीकार करने में सङ्कोच नहीं होना चाहिये।

बताया जाता है कि कुशपुर अथवा कुश भवन पुर का नाम राम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया था। मुस्लिम आक्रमण के कुछ ही समय पश्चात् यह नगर भार राजा नन्द कुंवर के अधीन था जिसे सुल्तान अलाउद्दीन गोरी (खिल्जी) ने पदच्युत कर दिया था। विजेता ने नगर की सुरक्षा पंक्ति को सुदृढ़ बनाया, यहाँ एक मस्जिद का निर्माण करवाया एवं इस स्थान के नाम को परिवर्तित कर सुल्तानपुर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि कुशपुर के संस्थापक ने तीन ओर से गोमती अथवा गुमती नदी से घिरे होने के परिणाम स्वरूप सैनिक दृष्टिकोण से अनुकूल स्थान होने के कारण इस स्थान का निर्वाचन किया था। वर्तमान समय में यह स्थान पूर्णतयः निर्जन है। यहाँ के सभी निवासी नदी के दूसरे अथवा दक्षिणी तट पर नवीन नगर में चले गये हैं। सुल्तानपुर के ध्वस्त दुर्ग के स्थान पर अब ७५० फुट वर्गाकार टीला है जिसके चारों किनारों पर ईंटों के बने बुर्ज हैं। चारों ओर से यह टीला ध्वस्त नगर के टूटे हुए भवनों से घिरा हुआ है। कुल मिलाकर दोनों का क्षेत्र आधा वर्ग मील है अथवा इसकी परिधि २ मील है। सुल्तानपुर के आकार का यह अनुमान कुशपुर के सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दिये गये अनुमान से समीपता रखता है। ह्वेनसांग के अनुसार इसकी परिधि १० ली अथवा १$\frac{२}{३}$ मील थी।

सुल्तानपुर के अथवा कुशपुर के १८ मील दक्षिण पूर्व में हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध स्थान है जिसे धोपापापुर कहा जाता है। यह गोमती नदी के दाहिने अथवा पश्चिमी तट पर तथा गढ़ा अथवा शेर की गढ़ी की दीवारों के नीचे बसा हुआ है। धोपाप का स्थान अधिक प्राचीन है क्योंकि चारों ओर आधे मील तक सभी खेत ईंटों एवं बर्तनों के टुकड़ों से ढके हुए हैं।

विसाखा, साकेत, अथवा अयुध्या

फाहियान के "शाची के विशाल राज्य" अथवा ह्वेनसांग के विसाखा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थिति के सम्बन्ध में अधिक कठिनाई का अनुभव किया गया है परन्तु मैं सन्तोषजनक ढङ्ग से यह दिखाने की आशा करता हूँ कि दोनों स्थान ब्राह्मणों के साकेत अथवा अजुध्या के समान हैं। यह कठिनाई का मुख्य कारण यह है कि फाहियान ने शी-वी अथवा सरावस्ती को शाची के दक्षिण में दिखाया है जबकि ह्वेनसांग ने इसे उत्तर-पूर्व में दिखाया है। इसी प्रकार इस कठिनाई का आंशिक कारण संकिसा के सर्व-प्रसिद्ध नगर से ३० योजन की दूरी के स्थान पर ७+३+१० = २० योजन की कथित दूरी है। लंका की बौद्ध पुस्तकों में वर्णित एक हिन्दू तीर्थ-यात्री की गोदावरी तट से सेवेत अथवा सरावस्ती की यात्रा के मार्ग से दिकांश में त्रुटि का ज्ञान होता है। यह तीर्थ यात्री महिस्सती तथा उज्जैनी अथवा महेशमती तथा उज्जैन के पार करने के बाद कोशाम्बी पहुँचा था और तत्पश्चात साकेत से होकर सेवेत तक उसी मार्ग से गया था जिसका ह्वेनसांग ने अनुसरण किया था। अतः सेवेत को साकेत के उत्तर में स्वीकार करने के पक्ष में हमारे पास दो प्रमाण है। जहाँ तक दूरी का सम्बन्ध है मैं पुनः लंका की बौद्ध पुस्तकों का उल्लेख करूँगा जिनमें लिखा गया है कि सक्कपुर (अथवा संगकस्यपुर, वर्तमान संकिसा) से सेवेत की दूरी ३० योजन थी। अब फाहियान ने संकिसा से कन्नौज की दूरी ७ योजन, तत्पश्चात गङ्गा नदी पर होली तक ३ योजन एवं वहाँ से शाची तक १० योजन अथवा कुल मिला कर २० योजन अथवा लंका की पुस्तकों से १० योजन कम बताई है। फाह्यान के कथन का त्रुटि पूर्ण होना इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी दूरी शाची को लखनऊ के आस-पास दिखायेगी जबकि अन्य दूरी इसे अयोध्या अथवा फैजाबाद के समीप, अथवा ह्वेनसांग की मार्ग सूचक पुस्तक में इङ्गित स्थान पर दिखायेगी। यहाँ भी "लम्बी दूरी के समर्थन में" हमें दो विद्वानों का समर्थन प्राप्त है। अतः इस बात की घोषणा करने में मुझे कोई सङ्कोच नहीं है कि फाहियान द्वारा शी वी से शाची का कथित दिकांश त्रुटिपूर्ण है तथा "दक्षिण" के स्थान पर 'उत्तर' पढ़ा जाना चाहिये।

अब मुझे यह दिखाना है कि फाहियान की शाची ही ह्वेनसांग की विशाखा नगरी थी तथा दोनों ही साकेत अथवा अयोध्या के अनुरूप थीं। शाची के सम्बन्ध में फाहियान ने लिखा है कि "नगर को दक्षिणी द्वार से छोड़ने पर आपको सड़क के पूर्व में वह स्थान दिखाई देगा जहाँ बुद्ध ने बिच्छु के वृक्ष की एक शाखा काट कर भूमि में लगा दी थी जहाँ सात फुट ऊँचा होने के पश्चात् इसके आकार में न वृद्धि हुई न कमी।" अब विशाखा के सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने ठीक इसी कथा का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि "राजधानी के दक्षिण में, तथा सड़क की बाईं ओर (अर्थात् पूर्व की ओर, जैसा कि फाहियान ने लिखा है) अन्य धार्मिक वस्तुओं के ६ अथवा ७ फुट ऊंचा एक विचित्र वृक्ष था जो सदैव एक समान रहता था, न इनमें वृद्धि होती थी न कमी।" यह महात्मा बुद्ध का प्रख्यात दातुन वृक्ष है जिसके सम्बन्ध में मैं आगे चल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर लिखूंगा परन्तु यह मुझे उत्पत्ति, ऊँचाई एवम् स्थिति के सम्बन्ध में इस वृक्ष के दोनों विवरणों में अत्यधिक समानता का उल्लेख करने की आवश्यकता है। मेरे विचार में उपर्युक्त विवरणों की समानता के कारण इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि फ़ाहियान की शाची ह्वेनसांग की विसाखा नगरी थी।

जहाँ तक विसाखा एवं हिन्दुओं के साकेत नगर की अनुरूपता का प्रश्न है मैं अपने प्रमाणों को मुख्य रूप से निम्न बातों पर आधारित करता हूँ। प्रथम यह कि विसाखा जो बौद्ध इतिहास की सभी स्त्रियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध थी—वह श्रावस्ती के धनाढ्य व्यापारी मृगर के पुत्र पूर्धन से अपने विवाह से पूर्व साकेत की निवसिनी थी, द्वितीय—ह्वेनसांग के अनुसार बुद्ध ने विसूखा में ६ वर्ष व्यतीत किये थे जबकि टर्नर के पाली इतिहास में कहा गया है कि बुद्ध ने १६ वर्ष साकेत में व्यतीत किये थे। (१)

लंका की पुस्तकों में कुलीन कुमारी विसाखा की कथा को विस्तारपूर्वक दिया गया है। हार्डी के अनुसार (२) उसने श्रावस्ती में पूर्ववाराम का निर्माण करवाया था जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है। अब, साकेत में भी एक पूर्व वाराम है और इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इस मठ का निर्माण भी उसने करवाया था। वह एक धनाढ्य व्यापारी धनजा की पुत्री थी जो राजगृह से आकर साकेत में बस गया था। अब, प्राचीनतम अङ्कित मुद्राओं में जो केवल अयोध्या में प्राप्त की गई हैं। हमें धनदेव एवं विशाखा दत्ता के नाम की कुछ मुद्रायें मिलती हैं। इस बात का उल्लेख मैंने इस कारण किया है कि मेरे विचार में इससे इस बात की सम्भावना का पता चलता है कि अयोध्या अथवा साकेत में धनन तथा विशाखा का परिवार अत्यधिक प्रसिद्ध था। अतः उनके नाम की पुनर्वृत्ति से एवं स्त्री की महान प्रसिद्धि से मेरा अनुमान है कि नगर को सम्भवतः उसके नाम पर विसाखा कहा गया था।

अन्य प्रमाण जिसे मैंने बुद्ध निवास के वर्षों से प्राप्त किया है प्रत्यक्ष एवं ठोस है। लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार निर्वाण के समय बुद्ध ३५ वर्ष की आयु के थे। तत्पश्चात उन्होंने २० वर्षों तक उत्तरी भारत के विभिन्न स्थानों पर धर्म प्रचार किया और २५ वर्ष की अपनी शेष आयु में उन्होंने श्रावस्ती के जेतवन मठ में एवं १६ वर्ष साकेतपुर के पुभारामो मठ में व्यतीत किये थे। बर्मा की ऐतिहासिक पुस्तकों में इन संख्याओं को १६ एवं ६ वर्ष बताया गया है और अन्तिम संख्या ह्वेनसांग द्वारा दी गई संख्या से ठीक-ठीक मिलती है। इससे अधिक ठोस प्रमाण और

---

(१) मैं तीर्थ यात्री के ६ वर्षों को १६ वर्षों के स्थान पर त्रुटि समझता हूँ क्योंकि बुद्ध के सम्पूर्ण प्रचार काल का लङ्का की पुस्तकों में सावधानी पूर्वक वर्णन किया गया है।

(२) लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों में भी पुब्बारामो का उल्लेख मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्या हो सकता है । केवल दो ही ऐसे स्थान थे जहाँ बुद्ध कुछ समय तक ठहरे थे । अर्थात् श्रावस्ती एवं साकेत । विसाखा एवं साकेत एक ही स्थान के नाम थे ।

मेरा विश्वास है कि साकेत एवं विसाखा की अनुरूपता को सदा स्वीकार किया गया है परन्तु इस बात का मुझे ज्ञान नहीं है कि इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया हो । डी० कोरोस ने इस स्थान का उल्लेख करते हुए केवल इतना कहा है "साकेतना अथवा अयोध्या" तथा एच० एच० विलसन ने अपने संस्कृत शब्द कोष में साकेत को "अयोध्या नगरी" कहा है । परन्तु इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर रामायण एवं रघुवंश के अनेक विवरणों से प्राप्त किया जा सकता है जिनमें साकेत नगर को सामान्यतः राजा दशरथ एवं उनके पुत्रों की राजधानी कहा गया है । परन्तु रामायण की निम्न पंक्ति जिसे लखनऊ के एक ब्राह्मण में मुझे बताया था उपर्युक्त अनुरूपता को सिद्ध करने हेतु पर्याप्त हैं ।

साकेताम नगरम राजा नामना दशरथोबली
तास्मयी देया मया कन्या कैकेयी नाम तो जना ।

कैकेयी के पिता अश्वजीत ने साकेत नगर के राजा दशरथ को अपनी पुत्री देने का प्रस्ताव किया ।

रामायण में अयोध्या अथवा साकेत के प्राचीन नगर को सरयू अथवा सरजू नदी के तट पर अवस्थित बताया गया है । कहा जाता है कि इसका व्यास १२ योजन अथवा १०० मील था परन्तु हमें इसके स्थान पर १२ कोस अथवा २४ मील पढ़ना चाहिये क्योंकि अपने सभी उद्यानों सहित यह नगर इतने क्षेत्र तक विस्तृत रहा होगा । पश्चिम में गुप्तार घाट से पूर्व में रामघाट तक सीधी रेखा से कुल दूरी प्रायः ६ मील है और यदि हम यह अनुमान लगायें कि उपनगरों एवं उद्यानों सहित यह नगर दो मील की गहराई तक सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र में विस्तृत रहा होगा तो इसका व्यास १२ कोस के छोटे आंकड़ों से ठीक-ठीक मिल जायेगा । वर्तमान समय में जनसाधारण राम घाट एवं गुप्तार घाट की ओर प्राचीन नगर की पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओं के रूप में संकेत करते हैं और इनके अनुसार दक्षिणी सीमा ६ मील की दूरी पर भदरसा के समीप भरत कुण्ड तक विस्तृत थी । परन्तु चूंकि इन सीमाओं में तीर्थ-यात्रा के सभी स्थान आ जाते हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जन साधारण इन्हें भी प्राचीन नगर की सीमाओं में सम्मिलित समझते हैं परन्तु निश्चय ही ऐसा नहीं था । आईन-ए-अकबरी में प्राचीन नगर को लम्बाई में १४८ मील एवं चौड़ाई में ३६ कोस बताया गया है । अन्य शब्दों में इसमें घाघरा नदी के दक्षिण अवध का सम्पूर्ण प्रान्त सम्मिलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था । बड़ी संख्याओं की उत्पत्ति स्पष्ट है । रामायण के १२ योजन जो ४८ कोस के समान हैं राम की नगरी के लिये अत्यधिक कम समझे गये अतः ब्राह्मणों ने अपने अतिशयोक्ति पूर्ण विचारों के अनुकूल बनाने के लिये इसमें १०० कोस की वृद्धि कर दी । अयोध्या का वर्तमान नगर जो प्राचीन नगर के स्थान के उत्तर पूर्वी कोण तक सीमित है—केवल २ मील लम्बा एवं तीन चौथाई मील चौड़ा है परन्तु इसका आधा क्षेत्र भी बसा हुआ नहीं है और सम्पूर्ण क्षेत्र जर्जर अवस्था का संकेत करता है । यहाँ अन्य प्राचीन नगरों के स्थानों के प्रतिकूल खण्डित मूर्तियों एवं कला पूर्ण स्तम्भों से ढँके उन्नत टीले नहीं हैं परन्तु यहाँ केवल कूड़े के निचले-असमान ढेर दिखाई देते हैं जिनसे सभी ईंटें पड़ोसी फैजाबाद नगर के भवनों के लिये ले जाई गई हैं । यह मुस्लिम नगर जो २१/२ मील लम्बा एवं एक मील चौड़ा है मुख्य रूप से अयोध्या के खण्डहरों से निकाली गई सामग्री से बना हुआ है । दोनों नगर कुल मिलाकर प्रायः ६ वर्ग मील अथवा राम की प्राचीन राजधानी के सम्भावित आकार के लगभग आधे भाग में विस्तृत हैं । फैजाबाद में किसी महत्व का एकमात्र भवन वृद्ध भाओं बेगम का मकबरा है जिसकी कथा को वारेन हेस्टिंग्स के प्रसिद्ध मुकदमें के समय प्रचलित किया गया था । फैजाबाद, अवध के प्रथम नवाब की राजधानी थी परन्तु १७७५ ई० में आसफुद्दौला ने इसे त्याग दिया था ।

सातवीं शताब्दी में विसाखा नगरी का घेरा केवल १६ ली अथवा २२/३ मील अथवा इसके वर्तमान आकार के आधे से अधिक नहीं था परन्तु सम्भवतः इसकी जन-संख्या अधिक थी क्योंकि आधुनिक नगर का एक तिहाई भाग भी बसा हुआ नहीं है । ह्वेनसांग ने जिले की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील बताया है जो अत्यधिक अतिशयोक्ति पूर्ण है । परन्तु जैसा कि मैं उल्लेख कर चुका हूँ—इस प्रदेश में तीर्थ-यात्री के मार्ग में आने वाले कुछ जिलों के अनुमानित आंकड़े इतने अतिशयोक्तिपूर्ण है कि यह प्रायः असम्भव है कि सभी आंकड़े शुद्ध हो । अतः मैं वर्तमान उदाहरण में ४०० ली अथवा ६७ ली पढ़ूंगा एवं विसाखा की सीमाओं को अयोध्या के आस-पास, घाघरा एवं गोमती नदियों के मध्यवर्ती छोटे क्षेत्र तक सीमित करूंगा ।

श्रावस्ती

अयोध्या अथवा अवध की प्राचीन सीमा सरजू अथवा घाघरा नदी द्वारा दो विशाल प्रान्तों में विभाजित थी । उत्तरी प्रदेश उत्तर कोशल कहलाता था तथा नदी का दक्षिणी प्रदेश बनौधा कहाता था । प्रत्येक भाग दो जिलों में विभाजित था । बनौधा प्रान्त में इन जिलों को पच्छिम रात तथा पूरब रात अथवा पश्चिमी एवं पूर्वी जिले कहा जाता था जबकि उत्तर कोशल में राप्ती के दक्षिण में गौडा (आधुनिक गोण्डा) तथा राप्ति अथवा रावती—जैसा कि अवध में इसे सामान्य रूप से पुकारा जाता है—के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर में कोशल जिला था। इनमें कुछ एक नाम पुराणों में मिलते हैं। इस प्रकार वायु पुराण में कहा गया है कि राम के पुत्र लव ने उत्तर कोशल में शासन किया था, परन्तु मत्स्य लिङ्ग एवं कर्म पुराण में श्रावस्ती को गौंडा की राजधानी कहा गया है। जब हमें इस बात का पता चलता है कि गौंडा उत्तर कोशल का एक उप खण्ड मात्र था एवं श्रावस्ती के खण्डहर वस्तुत: गौडा—जिले (मान चित्र के गोण्डा) में प्राप्त हुए हैं तो उपर्युक्त प्रत्यक्ष त्रुटि को सन्तोष जनक ढङ्ग से सुलझाया जा सकता है। गोंडा का विस्तार राप्ती नदी पर बलरामपुर के प्राचीन नाम से सिद्ध होता है जो पूर्व-वर्ती समय में राम गढ़-गोंडा था। अतः मेरा अनुमान है कि गौड़ ब्राह्मण एवम् गौड़ मूल रूप से इस जिले के निवासी रहे होंगे न कि बङ्गाल में मध्य कालीन गौडा नगर के। घाघरा नदी के दाहिने तट पर अयोध्या एवम् जहाँगीराबाद में, गोंडा, पखपुर तथा वाम तट पर गोंडा अथवा गोडा जिले के जैसनो में एवम् गोरखपुर के पड़ोसी जिले के अनेक भागों में इस (गौड़) नाम के ब्राह्मण अधिक संख्या में मिलते हैं। अतः घाघरा के दक्षिण में अवध अथवा बनौधा की राजधानी अयोध्या थी जबकि श्रावस्ती घाघरा के उत्तर में अवध अथवा उत्तर कोशल की राजधानी थी।

बौद्ध-धर्म के इतिहास में सर्वधिक महत्वपूर्ण स्थानों में एक स्थान के रूप में श्रावस्ती के प्रसिद्ध नगर की स्थिति ने अधिक समय तक हमारे विद्वानों को भ्रम में रखा है। इसका आंशिक कारण स्वयं चीनी तीर्थ यात्रियों के परस्पर विरोधी कथन थे तथा आंशिक रूप से अवध प्रान्त के अच्छे मानचित्र का अभाव भी इस भ्रम का कारण था। विशाखा अथवा अयोध्या के अपने विवरण में मैंने फाहियान एवम् ह्वेनसांग द्वारा कथित दिकांश एवं दूरियों की लंका की बौद्ध पुस्तकों में दी गई दूरियों एवं दिकांश से तुलना की है और मैंने निश्चय पूर्वक सिद्ध किया है कि सङ्किसा से दूरी एवं शाची अथवा साकेत से दिकांश में उसने त्रुटि की है। ह्वेनसांग एवं लंका की बौद्ध पुस्तकों से हम जानते हैं कि श्रावस्ती साकेत अथवा अयोध्या के उत्तर में था अथवा अन्य शब्दों में यह गोडा जिले अथवा उत्तर कोशल में था। ब्राह्मणों के कम से कम चार पुराणों में इस कथन की पुष्टि होती है और चूंकि फहियान ने भी लिखा है कि शी वी अथवा सेवेत कोशल में था अतः इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता कि श्रावस्ती को साकेत अथवा अयोध्या के उत्तर में कुछ दिनों की यात्रा पर ढूंढा जा सकता है। फाहियान के अनुसार इसकी दूरी ८ योजन अथवा ५६ मील थी जिसे ह्वेनसांग ने बढ़ा कर ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है। परन्तु चूंकि अन्तिम तीर्थ-यात्री ने भारतीय योजन को ४० ली प्रति योजन की दर से चीनी माप में लिखा है अतः दूसरे माप के अनुकूल करने के लिये हम इसे शुद्ध कर ३५० ली अथवा ५८ मील लिख सकते हैं। अब, चूंकि अयोध्या से राप्ति नदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के दक्षिणी तट पर अवस्थित सहेट मेहर तक की वास्तविक दूरी यही है अतः ह्वेनसांग की दूरी को ५०० ली से घटा कर ३५० ली करने में मुझे संकोच नहीं है । यहाँ यह लिखना पर्याप्त होगा कि साहेत माहेत में मैंने बुद्ध की एक विशालकाय मूर्ति प्राप्त की थी जिस पर श्रावस्ती के नाम सहित एक लेख खुदा हुआ था ।

साहेत माहेत का ध्वस्त नगर अकौना एवं बलरामपुर के मध्य क्रमशः ५ मील एवं १२ मील की दूरी पर एवं बहराईच तथा गोंण्डा से लगभग समान दूरी पर अवस्थित है । आकार में यह प्रायः अर्द्ध चन्द्राका के समान है जिसका १$\frac{7}{8}$ मील लम्बा व्यास भीतर की ओर झुका हुआ है एवं राप्ति नदी के पुराने तट के साथ-साथ उत्तर पूर्वोन्मुख है । पश्चिमी भाग जो तीन चौथाई मील तक उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है इस घेरे का एक मात्र सीधा भाग है । प्राचीरों की ऊँचाई भिन्न-भिन्न है । पश्चिम की ओर प्राचीरें ३५ से ४० फुट ऊँची हैं जबकि दक्षिण एवं पूर्व में इनकी ऊँचाई २५ अथवा ३० फुट से अधिक नहीं है । इसका उच्चतम बिन्दु उत्तर पश्चिमी विशाल प्राचीर है जो खेतों से ५० फुट ऊँची है । उत्तर पूर्वी भाग अथवा अर्धचन्द्र का छोटा भाग राप्ति से सुरक्षित था जो आज भी वार्षिक बाढ़ के समय अपने पुराने मार्ग से प्रवाहित होती है । अर्द्धचन्द्र के लम्बे घुमाव की प्राचीरें किसी समय एक खाईं से सुरक्षित रही होगी जिसके अवशेष दक्षिण पश्चिमी कोण में लगभग आधा मील लम्बी दल-दल के रूप में दिखाई देते हैं । प्रत्येक स्थान पर यह प्राचीरें प्राचीन नगरों से विशेष रूप से सम्बन्धित बड़े आकार की ईंटों के टुकड़ों से ढँकी हुई हैं और यद्यपि मैं एक स्थान को छोड़ अन्य किसी भी स्थान पर दीवारों के चिह्न ढूंढने में असफल रहा था तथपि ईंटों की उपस्थिति ही यह दर्शाने के लिये पर्याप्त है कि मिट्टी की प्राचीरों पर किसी समय ईंटों की मोर्चा बन्दी रही होगी । नदी की ओर मध्य भाग में खड़ी दीवार का एक भाग १० फुट मोटा था । मेरे सर्वेक्षण के अनुसार मिट्टी की पुरानी दीवारों का कुल घेरा १७,३०० फुट अथवा ३$\frac{1}{4}$ मील से अधिक था । अब, यह २० ली अथवा ३$\frac{1}{4}$ मील का ठीक वही विस्तार है जिसे ह्वेनसांग ने केवल राजभवन के लिये निश्चित किया । परन्तु चूंकि यह नगर उस समय निर्जन एवं ध्वस्त अवस्था में था अतः उसने राजभवन को ही नगर समझने की त्रुटि की होगी । कम से कम इतना निश्चित है कि दीवारों के बाहर उप नगर अति-सीमित रहे होंगे क्योंकि यह स्थान प्रायः पूर्ण रूप से विशाल धार्मिक भवनों के खण्डहरों से घिरा हुआ है जिनके कारण व्यक्तिगत भवनों के लिये स्थान नहीं रहा होगा । अतः मुझे पूर्ण सन्तोष है कि राज-भवन को ही नगर समझने की त्रुटि की गई है और यह त्रुटि इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग की यात्रा के समय भी यह नगर अत्यधिक जर्जर एवं निर्जन अवस्था में था । चूंकि ४०० ई० में फाहियान ने यहाँ की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन संख्या को नगन्य बताया है जबकि लंका की पुस्तकों में २७५ तथा ३०३ ई० के मध्य सवाठीपुर के राजा खीरा धार का उल्लेख मिलता है अतः श्रावस्ती का पतन चौथी शताब्दी में हुआ होगा और ३१९ ई० में गुप्ता वंश के पतन से सम्बन्धित करने में हम सम्भवतः त्रुटि करेंगे।

कहा जाता है कि श्रावस्ती की स्थापना सूर्य वंशी युवनास्व के पुत्र एवम् सूर्य के दसवें वन्शज राजा श्रावस्त ने करवाई थी। अतः इसकी स्थापना राम से अधिक समय पूर्व भारतीय इतिहास के काल्पनिक समय में हुई थी। इस प्राचीन समय में सम्भवतः यह अयोध्या राज्य का भाग था क्योंकि वायु पुराण में इसे राम के पुत्र लव से सम्बन्धित बताया गया है। बुद्ध के समय में जब श्रावस्ती का इतिहास में पुनः उल्लेख आता है तो उस समय यह महा कोशल के पुत्र राजा प्रसेनाजित की राजधानी थी। राजा ने नवीन धर्म को ग्रहण कर लिया और अपने शेष जीवन काल में वह बुद्ध का परम हितैषी एवम् रक्षक था। परन्तु उसका पुत्र विरुधक शाक्य जाति से घृणा करता था एवम् उनके देश पर उनके आक्रमण एवम् तत्पश्चात ५०० शक्य कुमारियों—जिन्हें उसके रनिवास के चुना गया था—की हत्या के कारण बुद्ध की सर्व प्रसिद्ध भविष्यवाणी हुई कि सात दिनों के भीतर राजा अग्नि में भस्म हो जायेगा। जैसा कि बौद्ध धर्मावलम्बियों ने कथा को सुरक्षित रखा है बुद्ध की भविष्य वाणी सत्य हुई एवम् ग्यारह शताब्दी पश्चात भी ह्वेनसांग को वह सरोवर दिखाया गया था जहाँ अग्नि से बचने के लिये राजा ने शरण ली थी।

श्रावस्ती के सम्बन्ध में हमें कनिष्क के एक शताब्दी पश्चात् अथवा बुद्ध के पाँच शताब्दी पश्चात् तक कोई सूचना नहीं मिलती। जब ह्वेनसागं के अनुसार श्रावस्ती का राजा विक्रमादित्य बौद्ध धर्मावलम्वियों का कट्टर शत्रु था एवं विभाषा शास्त्र के प्रसिद्ध लेखक मनोरहित ने शास्त्रार्थ में ब्राह्मणों से पराजित हो जाने पर आतम हत्या कर ली थी। विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी—जिसका नाम नहीं दिया गया है—के समय मनोरहित के प्रख्यात शिष्य वासुबन्धु ने ब्राह्मणों पर विजय प्राप्त की थी। इन दो राजाओं की सम्भावित तिथियों को ७० ई० से १२० ई० तक निश्चित किया जा सकता है। अगली दो शताब्दिमों तक श्रावस्ती स्वतन्त्र राजा के अधीन रही प्रतीत होता है क्योंकि २७५ ई० से ३१९ तक हमें यहाँ के राजा के रूप में खीराधार एवं उसके भतीजे के नाम मिलते हैं परन्तु उसमें सन्देह नहीं कि इस सम्पूर्ण काल में श्रावस्ती मगध के गुप्त वंश की आश्रित थी क्योंकि कहा जाता है कि साकेत का शक्तिशाली पड़ोसी नगर उनके अधीन था। वायु पुराण में लिखा है कि "गुप्त जाति के राजकुमार गङ्गा तट से प्रयाग, साकेत तथा मगध तक सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार करेंगे।" इस समय से श्रावस्ती का शनैः-शनैः ह्रास हुआ। ४०० ई० में यहाँ केवल २०० परिवार थे, ६३२ ई० में यह पूर्णतयः निर्जन था एवं वर्तमान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय में द्वार के समीप कुछ क्षेत्र को छोड़ शेष नगर प्रायः अभेद्य वन का समूह है।

नगर के नाम के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। फाह्यान ने इसे शी-वी कहा है जबकि ह्वेनसांग ने चीनी भाषा में यथा सम्भव शुद्ध रूप में इसे शी-लो-फा शी ती अथवा श्रावस्ती कहा है। परन्तु यह भिन्नता वास्तविक से अधिक दिखावटी है क्योंकि इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि शी-वी लंका की अधिकांश पुस्तकों में दिये गये नाम सावड्ढी के स्थान पर सेवेत के संक्षिप्त पाली स्वरूप का केवल परिवर्तत स्वरूप है। इसी प्रकार साहेत का आधुनिक नाम प्रत्यक्ष रूप से पाली के सावेत का केवल भिन्न स्वरूप है। अन्य नाम माहेत की समीक्षा करने में मैं असमर्थ हूँ परन्तु यह केवल सुरबद्ध शब्द है जिसमें हिन्दुओं की विशेष रुचि है जैसा कि उल्टा पुलटा; और अनेक व्यक्तियों का कथन है कि सम्पूर्ण स्थान की जर्जर अवस्था के अनुकूल साहेत माहेत का यही वास्तविक अर्थ है। परन्तु कुछ व्यक्तियों का कथन है कि इसका मूल नाम सेट-मेट था और चूंकि यह सेवेत का भ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है अतः यह सम्भव है कि सहेत महेत सेठ-मेत का दीर्घ उच्चारण पात्र है। केवल एक मुसलमान ने जो ध्वस्त नगर के समीप पीर बरान के मकबरे की देख भाल करता था इस बात पर जोर दिया है कि इसका वास्तविक नाम सावित्री था जो पाली के शुद्ध सावाठी स्वरूप के अत्यधिक समीप है और इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि इस नाम में इस स्थान का वास्तविक नाम सुरक्षित है।

ह्वेनसांग के अनुसार श्रावस्ती राज्य का कुछ क्षेत्र ४००० ली अथवा ६६७ मील था जो घाघरा एवं पर्वतों के अधोभाग के मध्यवर्ती क्षेत्र के वास्तविक विस्तार से दुगना है। परन्तु चूंकि उसने नेपाल की सीमाओं के सम्बन्ध में भी इन्हीं आंकड़ों को दोहराया है अतः यह सम्भव है कि उसके समय में उत्तर की पहाड़ियों में मलभूम एवं खाची के दो पश्चिमी जिले श्रावस्ती के अधीन रहे हों। इस प्रकार श्रावस्ती की सीमओं में हिमालय पर्वतों से घाघरा नदी तक, पश्चिम में करनाली नदी से लेकर पूर्व में धोलगिरि पर्वतों एवं फैजाबाद तक सम्पूर्ण प्रदेश सम्मिलित था। इस क्षेत्र का घेरा ६०० मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा अनुमानित आंकड़ों के अति समीप है।

कपिला

श्रावस्ती से दोनों चीनी तीर्थ यात्री सीधे कपिला की ओर गये जो सम्पूर्ण भारत में बुद्ध के जन्म स्थान के रूप में प्रसिद्ध था। ह्वेनसांग ने इसे दक्षिण पूर्व में ५०० ली अथवा ८३ मील बताया है परन्तु पूर्व वर्ती तीर्थ यात्री फाहियान के अनुसार इसकी दूरी इसी दिशा में १३ योजन अथवा ९१ मील थी। ऐसा प्रतीत होता है कि एक योजन अथवा ७ मील का अन्तर कपिला एवं क्राकूचन्दा के जन्म स्थान की अपेक्षाकृत स्थिति के कारण हुआ है जो एक दूसरे से एक योजन की दूरी पर थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फाहियान कपिला जाने से पूर्व क्रकुचन्दा के जन्म स्थान पर गया था जबकि ह्वेनसांग सर्व प्रथम कपिला गया था तत्पश्चात क्राकूचन्दा के जन्म स्थान पर। चूंकि इस स्थान को सम्भावित रूप से नगर के पश्चिम में ८ मील को दूरी पर अवस्थित ककुआ नामक स्थान के अनुरूप समझा जा सकता है और मैं नगर को कपिला नगर के अनुरूप समझने का प्रस्ताव करना चाहता हूँ अतः मैं फाहियान के विवरण को ग्रहण करने का इच्छुक हूँ। अब साहेत तथा नगर की मध्यवर्ती दूरी ८१½ मील से अधिक है क्योंकि मैंने साहेत से अशोकपुर तक सड़क की दूरी को ४२½ आंका था एवं भारतीय एटलस के विशाल मानचित्र पर सीधे माप से अशोकपुर से नगर की दूरी ३६ मील है। अतः देश के इस भाग की घुमाओं दार सड़कों से इनकी वास्तविक दूरी ८५ मील से कम नहीं हो सकती और जैसा कि फाहियान ने लिखा है। सम्भवतः यह प्रायः ६० मील है।

ह्वेनसांग ने जिले के घेरे को ४००० ली अथवा ६६७ मील आँका है जो फैजाबाद से घाघरा एवम् गण्डक के सङ्गम तक दोनों नदियों के वास्तविक क्षेत्र के समान है। सीधे माप के अनुसार यह क्षेत्र ५५० मील है जो मार्ग दूरी के अनुसार ६०० मील से अधिक हो जायेगा।

कपिला के नाम के सम्बन्ध में अभी तक कोई संकेत प्राप्त नहीं किया जा सका परन्तु मेरा विश्वास है कि अनेक समान तथ्यों के आधार पर संकुचित सीमाओं के भीतर नगर की स्थिति को निश्चित किया जा सकता है। तिब्बत की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार सूर्य वंशी वीर गौतम के किसी वंशज ने कोशल में रोहिणी नदी के समीप एक झील के तट पर कपिलवस्तु अथवा कपिला नगर की स्थापना की थी। अब नगर अथवा नगर खास राप्ती की कोहान नामक एक सहायक नदी के समीप चन्दो ताल के पूर्वी तट पर एवम् घाघरा नदी के पार अवध के उत्तरी खण्ड में अर्थात कोशल में अवस्थित है। इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि श्रावस्ती से इसकी दूरी एवं दिकांश चीनी तीर्थ यात्री द्वारा दिये गये आंकड़ों से मिलते हैं। पश्चिम की ओर सिद्ध नामक एक छोटी नदी झील में गिरती है। यह नाम जिसका अर्थ "पवित्र व्यक्ति" है—सदैव प्राचीन मुनियों के लिए प्रयोग में लाया गया है और वर्तमान उदाहरण में मेरा विचार है कि मैं इसे कपिल मुनि के लिये प्रयोग कर सकता हूँ जिसका आश्रम नगर के विपरीत झील के तट पर था। गौतम वंशो सर्व प्रथम कपिल मुनि के आश्रम के पास बस गये थे परन्तु चूंकि उनकी गायों के रम्भाने से मुनि की समाधि में विघ्न पड़ता था उन्होंने कुछ दूरी पर अर्थात झील के दूसरे अथवा पूर्वी छोर पर नवीन कपिला नगर की स्थापना कर ली।

चीनी तीर्थ यात्रियों एवम् लङ्का की ऐतिहासिक पुस्तकों में रोहिणी नदी की स्थिति को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। फाहियान के अनुसार लुनमिङ्ग अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लुम्बिनी नामक राजकीय उद्यान-जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था—कपिला के पूर्व में ५० ली अथवा १$\frac{1}{3}$ मील की दूरी पर अवस्थित था। ह्वेनसांग ने इसे ला-फा-नी कहा है एवम् इसे दक्षिण पूर्व दिशा में प्रवाहित एक छोटी नदी के तट पर अवस्थित बताया है जिसे जन साधारण "तेल की नदी" कहा करते थे। लङ्का की पुस्तकों के अनुसार रोहिणी नदी कपिला एवम् कोली नगरों के मध्य में प्रवाहित थी। कोली नगर बुद्ध की माता माया देवी का जन्म स्थान था। इसे व्याधपुर भी कहा जाता था। जब माया देवी पसूतावस्था में थी तो वह कोली में अपने माता-पिता से मिलने हेतु गई। "दोनों नगरों के मध्य साल वृक्षों का लुम्बिनी नामक एक उद्यान था जहाँ दोनों नगरों के निवासी मनोरञ्जनार्थ आया करते थे।" वहाँ उसने विश्राम किया एवम् शिशु बुद्ध को जन्म दिया। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि सूखा काल में कपिला एवं कोली के निवासियों में रोहिणी के जल को अपने धान के खेतों हेतु प्राप्त करने के प्रश्न पर झगड़ा हुआ था। इन सभी बातों के आधार पर मेरा अनुमान है कि रोहिणी सम्भवतः वर्तमान समय की कोहान नदी थी जो नगर के पूर्व में लगभग ६ मील पर दक्षिण पूर्वी दिशा में बहती है। यह मानचित्रों की कुआना अथवा कुआना नदी है एवं बुचनान की कोयाने नदी है जिसने इसे "एक सुन्दर छोटी नदी कहा है जो अपनी अनेक शाखाओं द्वारा जिले के सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी क्षेत्र को सींचती है।" इस प्रकार सभी आवश्यक बातों में यह बौद्ध ऐतिहासिक पुस्तकों की रोहिणी नदी से मिलती है।

कोली की स्थिति सन्देहपूर्ण है परन्तु इसे सम्भवतः अम-कोहिल ग्राम से सम्बन्धित किया जा सकता है जो नगर के ११ मील पूर्व में और कोहाना नदी के निकटतम बिन्दु से ३ मील से कम दूरी पर है। नगर से कोहिल जाने वाली सड़क मोकसोन नाम के एक छोटे कस्बे के विपरीत कोहाना नदी को पार करती है जो सम्भवतः किसी समय के प्रसिद्ध लुम्बिनी उद्यान का स्थान रहा हो क्योंकि इसे परादिमोक्षा अथवा "मोक्षस्थान" भी कहा जाता था। तत्पश्चात यह विशिष्ट नाम छोटा होते-होते माक्षा अथवा मोक्षान हो गया होगा जिससे मैं ह्वेनसांग की 'तेल का नदी' को सम्बन्धित करूंगा क्योंकि संस्कृत में माक्षान तेल का एक नाम है। अबुल फजल ने बुद्ध के जन्म स्थान को मोक्ता कहा है जो सम्भवतः मोक्ष का त्रुटि पूर्ण उच्चारण है।

नगर को प्राचीन कपिला के अनुरूप स्वीकार करने में एक अन्य ठोस बिन्दु इस तथ्य से प्राप्त होता है कि नगर का वर्तमान मुखिया गौतम राजपूत है और नगर एवं अमोरहा के जिले गौतम राजपूतों एवं गौतमिया राजपूतों के मुख्य स्थान हैं। गौतमिया राजपूत गौतमों की एक निम्न श्रेणी है। अब कपिला वस्तु के शाक्य भी गौतम राजपूत थे एवं स्वयं शाक्य मुनि को बर्मा निवासियों में गौतम बुद्ध अथवा गौतम माना जाता है। वंशलता में गौतमों को अरका बन्धु का वंशज बताया गया है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो (अरकाबन्ध) प्रसिद्ध अमर सिन्हा के अमर कोष में दिये गये बुद्ध के अनेक नामों में एक नाम है । अमर सिन्हा स्वयं बौद्ध धर्मावलम्बी थे ।

मैंने स्वयं नगर की यात्रा नहीं की है परन्तु मुझे सूचित किया गया है कि यहाँ एक खेड़ा अर्थात ईंटों के खण्डहरों का एक टीला है एवं इसके आस-पास ईंटों के बने भवनों के अनेक खण्डहर हैं । चूंकि फाहियान ने पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ में कपिला को "अक्षरशः विशाल निर्जन स्थान बताया है जहाँ न तो राजा है न जनता, परन्तु केवल कुछ एक भिक्षु एवं दस बीस गृह हैं अतः इस बात की सम्भावना नहीं है कि नगर के स्पष्ट चिह्न प्राप्त किये जा सके जो १२ शताब्दियों से अधिक समय से निर्जन पड़ा हुआ है । सातवीं शताब्दी के मध्य में ह्वेनसांग ने इस स्थान को इतना ध्वस्त देखा था कि उसके लिये यहाँ विस्तार जानना असम्भव था अतः मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि वर्तमान समय में विस्तृत खण्डहरों का अभाव नगर के उस ठोस दावे को ठुकरा नहीं सकता जो इसे कपिला के अनुरूप स्वीकार किये जाने के लिये प्राप्त है । इस क्षेत्र के अनेक स्थानों के नामों से इस अनुरूपता की पुष्टि होती है । यह नाम अधिक पवित्र स्थानों का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं जो बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक इतिहास में प्रसिद्ध थे । मैं पिछले दो बुद्धों, क्राकुचन्दा एवं कनक मुनि के जन्म स्थानों एवं सर कूप का विशेष उल्लेख करता हूँ जो बुद्ध के तीर की चोट से बहने लगा था ।

फाहियान ने क्रकूचन्दा के जन्म स्थान को ना-पी किया नाम दिया है परन्तु बौद्ध पुस्तकों में इसे क्षेमावती अथवा खेमावती कहा गया है । परन्तु लंका की बौद्ध पुस्तकों में क्रकूचन्दा को मेखल के राजा क्षेत्र का पुरोहित कहा गया है फाहियान के अनुसार यह नगर कपिला से एक योजन अथवा ७ मील पश्चिम में था परन्तु ह्वेनसांग के अनुसार यह कपिला से ५० ली अथवा ८⅓ मील दक्षिण में था । अन्य आंकड़ों के अभाव में यह कहना कठिन होगा कि कौन-सा कथन शुद्ध है परन्तु चूंकि मुझे नगर के ठीक आठ मील पश्चिम में ककुआ नामक कस्बा मिलता है अतः मैं फाहियान के विवरण का अनुसरण करने का इच्छुक हूँ । क्योंकि ककुआ, क्राकू का पाली स्वरूप है । ह्वेनसांग द्वारा दिये गये दिकांश के अनुसार इस नगर को कलवारी खास के आस-पास देखना चाहिये जो नगर के ७ मील दक्षिण में है ।

कनक मुनि के जन्म स्थान की स्थिति के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की त्रुटि मिलती है । फाहियान के अनुसार यह स्थान क्रकूचन्दा के जन्म स्थान के दक्षिण में था जबकि ह्वेनसांग के अनुसार उत्तर में था । दूरी के सम्बन्धों में दो ही एक मत है । पूर्ववर्ती यात्री ने इसे एक योजन से कम अथवा ५ अथवा ६ मील बताया है और अन्तिम यात्री ने ३० ली अथवा ५ मील कहा है । लङ्का की बौद्ध पुस्तकों में नगर को शोभावती नगर कहा गया है जिसे सम्भवतः ककुआ के ६⅓ मील दक्षिण पश्चिम में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवम् नगर के दक्षिण पश्चिम में इतनी ही दूरी पर शुभय पुरसा गांव समझा जा सकता है।

सर कूप की स्थिति के सम्बन्ध में भी दिकांश की समान भिन्नता का पता चलता है। फाहियान ने इसे कपिला के ३० ली अथवा ५ मील दक्षिण पश्चिम में बताया है जबकि ह्वेनसांग ने इसे समान दूरी पर दक्षिण पूर्व में दिखाया है। वर्तमान उदाहरण में भी मेरा अनुमान है कि फाहियान का कथन सही है क्योंकि ह्वेनसांग ने सार कूप से लुम्बिनी उद्यान को ८० से ९० ली अथवा १३ से १५ मील बताया है जो—जैसा कि मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ—कपिला के पूर्व में रोहिणी अथवा कोहान नदी के तट पर था। अब, यदि सर कूप यदि राजधानी के दक्षिण पूर्व में था तो लुम्बिनी उद्यान से इसकी दूरी ६ अथवा ७ मील से अधिक नहीं हो सकती थी और यदि यह दक्षिण पश्चिम में था—जैसा कि फाहियान ने लिखा है—तो इसकी दूरी १२ अथवा १३ मील रही होगी। अतः सर कूप की सम्भावित स्थिति को सखनपुर ग्राम के समीप निश्चित किया जा सकता है जो नगर के दक्षिण पश्चिम में ठीक ५½ मील की दूरी पर है।

इन स्थानों की अनुरूपता का प्रस्ताव करते समय मैंने यह अनुमान कर लिया है कि नगर की प्राचीन कपिला का स्थान था परन्तु चूंकि मैंने देश के इस भाग का स्वयं निरीक्षण नहीं किया है और वह सभी सूचना जो मैं प्राप्त कर सका हूँ आवश्यक रूप से स्पष्ट है अतः मेरा विचार है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का अन्तिम निर्णय नगर एवम् आस-पास के स्थानों के वास्तविक निरीक्षण के पश्चात हो सकेगा। इस बीच में मैं अपनी वर्तमान खोज के परिणामों को उस समय तक लाभदायक समझता हूँ जब तक वास्तविक निरीक्षण से वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलता।

रामाग्राम

कपिला से दोनों तीर्थ यात्री लनमो की ओर गये जिसे भारत के बौद्ध ग्रन्थों के रामाग्राम के अनुरूप स्वीकार किया गया है। फाहियान के अनुसार यह स्थान ५ योजन अथवा ३५ मील पूर्व में था तथा ह्वेनसांग के अनुसार यह इसी दिशा में २०० ली अथवा ३३⅓ मील की दूरी पर था। परन्तु उनके एक मत होने पर भी मेरा विश्वास है कि यह दूरी अधिक है। अनोमा नदी तक उनकी पश्चातवर्ती यात्रा को फाहियान ने ३ योजन अथवा २१ मील बताया है जबकि ह्वेनसांग ने इसे १०० ली १६⅔ मील कहा है और इस प्रकार कपिला से अनोमा नदी तक प्रथम यात्री के अनुसार कुल दूरी ८ योजन अथवा ५६ मील थी जबकि अन्तिम यात्री के अनुसार यह २०० ली अथवा ५० मील थी। परन्तु भारतीय बौद्ध ग्रन्थों में इस दूरी को केवल ६ योजन अथवा ४२ मील बताया गया है जिसे मैं सही शुद्ध समझता हूँ क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्तमान ओमी नदी जो सम्भवतः बौद्ध पुस्तकों की अनोमा नदी है—नगर से पूर्व दिशा में प्रायः ४० मील दूर है। अनोमा की अनुरूपता पर अभी विचार किया जायेगा।

तीर्थ यात्री के कथनानुसार रामाग्राम की स्थिति को नगर एवम् अनोमा नदी के बीच लगभग दो तिहाई दूरी अर्थात ४ योजन अथवा २८ मील पर देखा जाना चाहिये। इस स्थान पर मुझे खण्डहरों के एक टीले सहित दियोकली नामक गाँव देखा था जिसे त्रिकोणमिति सम्बन्धी सर्वेक्षण हेतु चुना गया था। महावन्शों में लिखा हुआ है कि रामागामों का स्तूप-जो गङ्गा नदी पर खड़ा था—नदी की बाढ़ से नष्ट हो गया था। श्री लैडले ने इस बात पर जोर दिया है कि यह नदी गङ्गा नदी नहीं हो सकती परन्तु घाघरा अथवा उत्तर की अन्य कोई नदी हो सकती है। परन्तु मैं इस बात में विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि लंका की पुस्तको में गङ्गा की कल्पना मात्र की गई है। सभी बौद्ध ग्रन्थ इस बात में सहमत हैं कि बुद्ध के अवशेषों को आठ भागों में विभाजित किया गया था जिसमें एक भाग रामाग्राम के कोशलों को प्राप्त हुआ था और उन्होंने इस भाग पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था। कुछ वर्ष पश्चात अवशेषों के सात भागों को मगध के अजात शत्रु ने एकत्रित किया था और उसने इन्हें राज गृही के एक ही स्तूप में रखा था परन्तु आठवाँ भाग उस समय भी रामाग्राम में रहा। लङ्का की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार रामाग्राम का स्तूप नदी की बाढ़ में बह गया था एवं अवशेष पात्र नदी मार्ग से सागर तक चला गया था जहाँ नागाओं ने इसे प्राप्त कर लिया या ओर उन्होंने इसे अपने राजा को भेंट में दे दिया था। जिसने इसके स्वागतार्थ एक स्तूप का निर्माण करवाया था। १६१ से १३७ ई० पूर्व लङ्का के दुथागमिनी के शासन काल में पवित्र भिक्षु सोनुत्तारों ने आश्चर्यजनक रूप से इस पात्र को नाग राजा से प्राप्त कर लिया और लङ्का के महा थूपो अथवा "महा-स्तूप" में सुशोभित किया।

अब, यह कथा चीनी तीर्थ यात्रियों के कथनों से पूर्णतयः भिन्न है। जिन्होंने दुथागामिनी से कई शताब्दियों पश्चात रामाग्राम की यात्रा की थी एवम् उन्होंने स्तूप को अच्छी अवस्था में देखा था परन्तु नदी को नहीं देखा था। पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फाहियान ने स्तूप के समीप एक सरोवर देखा था जहाँ एक नाग रहा करता था जो निरन्तर स्तूप पर दृष्टि रखता था। सातवीं शताब्दी के मध्य में ह्वेनसांग ने इसी स्तूप एवम् नागों से भरे सरोवर को देखा था जो प्रतिदिन मानव शरीर धारण कर स्तूप पर पूजा किया करते थे। दोनों तीर्थ यात्रियों ने सम्राट अशोक द्वारा इस पात्र को हटाकर अपनी राजधानी में ले जाने के प्रयत्नों का उल्लेख किया है परन्तु नाग राज के प्रतिवाद के कारण उसे सफलता नहीं मिली। "नाग राज ने कहा, यदि आप अपनी बली द्वारा इस स्तूप की शोभा नहीं बढ़ा सकते तो आप इसे नष्ट कर सकते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मैं आपके मार्ग में बाधा नहीं डालूंगा।" अब, लङ्का की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार नाग राज ने भिक्षु सोनुत्तारों को अवशेष पात्र लङ्का ले जाने के प्रयत्न से विरक्त करने के लिये इसी तर्क का आश्रय लिया था। अतः मेरा अनुमान है कि लङ्का के लेखकों ने रामाग्राम के सरोवर को चतुराई से नदी में परिवर्तित कर दिया गया था जिससे अवशेष जो सरोवर के नागों के पास थे सागर में नाग राजा के पास ले जाये जा सके एवम् वहाँ से उन्हें लङ्का अथवा अन्य किसी भी स्थान पर सरलता पूर्वक ले जाया जा सके। इस प्रकार लङ्का की कथा में नदी की आवश्यकता थी जिससे अवशेषों को सागर तक ले जाया जा सके। परन्तु दो तीर्थ यात्रियों जिन्होंने कई शताब्दियों पश्चात स्तूप को सुरक्षित देखा था परन्तु नदी को नहीं देखा था—की संयुक्त साक्षी के सम्मुख कथा की साक्षी कोई महत्व नहीं रखती। अतः मैं गङ्गा को लङ्का के लेखकों की कल्पना समझ कर छोड़ देता हूँ और इसके स्थान पर चीनी तीर्थ यात्रियों के नाग सरोवर को सत्य स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार नदी से छुटकारा प्राप्त करने के पश्चात मैं दयोखली को बौद्ध इतिहास के रामाग्राम के अनुरूप स्वीकार किये जाने में कोई आपत्ति का कारण नहीं देख सकता। पांचवीं शताब्दी में फाहियान की यात्रा के समय यह नगर पूर्णतयः निर्जन था। फाहियान ने यहाँ केवल एक छोटी धार्मिक संस्था के होने का वर्णन किया है। सातवीं शताब्दी के मध्य में भी यह संस्था थी परन्तु यह अति जर्जर अवस्था में रही होगी क्योंकि यहाँ मठ की देख-भाल करने के लिए केवल एक स्रामनेरा अथवा भिक्षु था।

अनोमा नद।

बौद्ध धर्म के इतिहास में अनोमा नदी राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा सन्यासी के वस्त्र ग्रहण करने के स्थान के रूप में प्रसिद्ध थी जहाँ उन्होंने अपने केश काटे थे एवम् अपने दास एवम् घोड़े को त्याग दिया था। बर्मा एवम् लंका की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार कपिला से इस स्थान की दूरी ३० योजन अथवा २१० मील थी। यह कथन त्रुटिपूर्ण विचार था कि यह स्थान कपिला एवम् राजगृही के मध्य था जबकि दोनों स्थानों की मध्य वर्ती दूरी ६० योजन बताई जाती है। ललित विस्तार के तिब्बती अनुवाद में इस दूरी को ६ योजन अथवा ४२ मील बताया गया हैं। यह दूरी फाहियान तथा ह्वेनसांग के आंकड़ों से कुछ कम है परन्तु चूंकि प्रथम तीर्थ-यात्री दो दूरियों को पूर्ण योजन में बताया है और अन्तिम यात्री ने दोनों दूरियों को सौ सौ की संख्या में ली में बताया है अतः उन्हें केकव अनुमानित स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार फाहियान का ५ योजना जमा ३ योजन केवल ४½ तथा २½ योजन हो सकता है तथा ह्वेनसांग के २०० ली जमा १०० ली वस्तुतः केवल १८० ली जमा ८० ली हो सकते हैं। इस प्रकार प्रथम दूरी को घटा कर ७ योजन अथवा ४६ मील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया जा सकता है एवन् अन्तिम दूरी को घटा कर २६० ली अथवा ४३ मील बताया जा सकता है। अतः मैं ललित विस्तार को ६ योजन अथवा ४२ मील की दूरी को वास्तविक दूरी की समीपस्थ दूरी स्वीकार करता हूँ जिसे पूर्ण योजन में बताया जा सकता है।

सन्यासी जीवन को ग्रहण करने के लिये जब राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिला छोड़ा तो उन्होंने वैशाली से होते हुए राजगृही का मार्ग अपनाया। अतः इस मार्ग की सामान्य दिशा दियोकली के आगे संग्रामपुर से नीचे ओमी नदी के तट तक एवम् उस स्थान तक जहाँ यह नदी औमियार भील में गिरती है पूर्व दक्षिण पूर्व थी। (१) चूंकि औमी नदी उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर बहती है अतः नगर से इसकी दूरी ४० से ४५ मील तक है। यह मार्ग संग्रामपुर के ऊपर नदी को पार नहीं कर सकता था क्योंकि इससे इसकी दूरी ४० मील से कम हो जाती है। न ही यह बिन्द औमियार झील से नीचे है जो एक संकीर्ण मार्ग से राप्ति में मिलती है। यदि स्वीकृत तथ्य सही हैं तो नदी पार करने का बिन्दु औमियार झील के सिर से थोड़ा ऊपर रहा होगा।

अब, औमी अथवा संस्कृत अवमी का अर्थ है "हीन" और नदी के नाम के रूप में यह पड़ोस की अन्य नदियों की तुलना में इस नदी के छोटे आकार का प्रतिनिधित्व करता होगा। मानचित्र पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि औमी राप्ती नदी का पुराना मार्ग है जिसने वर्तमान मार्ग को दुमरिया गञ्ज के समीप त्याग दिया था। बूढ़ी नाला नामक औमी की मुख्य शाखा को बांसी के समीप निकलती है अब भी वार्षिक बाढ़ के समय दलदल नामक एक शाखा द्वारा राप्ती नदी से जल प्राप्त करती है। अकेला यह तथ्य ही इस बात का निर्णायक प्रमाण है कि बनेहर के समीप बूढ़ी नाला से सङ्गम के नीचे औमी का निचला मार्ग राप्ती का पुराना मार्ग है। अतः पुराने मार्ग को राप्ती के विशाल अथवा मुख्य मार्ग से भिन्न दिखाने के लिये औमी अथवा अवमी नदी अर्थात् "हीण अथवा छोटी नदी" की उपाधि उचित रूप से दी गई थी।

ललित विस्तार के अनुसार वह स्थान जहाँ बुद्ध ने नदी को पार किया था। अनुवैन्या जिले में मनेया नामक नगर के समीप था। नगर का नाम अज्ञात है परन्तु जिले का नाम अनोला प्रतीत होता है जो औमी नदी के निचले मार्ग के पश्चिमी तट के खण्ड का नाम है एवम् जिसमें संग्रामपुर एवम् औमियार झील दोनों ही सम्मिलित

---

(१) पूर्वी भारत ३१४ में बुचनान ने इसे नगर झील कहा है परन्तु भारतीय एटलस में एवम् राजकीय मानचित्रों में इसे अमियार ताल तथा नदी को अमी नदी कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं। अनुवैन्या का अर्थ है वैन्य नदी अथवा वैन्य नदी की निचली शाखा का तटीय प्रदेश। यह नाम सम्भवत: वेणु अथवा बांस शब्द से लिया गया है और यदि ऐसा है तो इसका अर्थ 'बांस की नदी' होगा और इस प्रकार यह बंशी के समान नाम होगा जो तट पर बांस के होने के कारण अथवा बांसी नगर से होकर बहने के कारण इस नदी को दिया जा सकता है।

बर्मा एवम् लङ्का की बौद्ध कथायें इस कथन में सहमत हैं कि नदी तट पर पहुँचने पर—जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ ने अपने दास एवम् घोड़े को त्याग दिया था—नदी का नाम पूछा और यह बताये जाने पर कि इसका नाम अनोमा है नदी के नाम से सम्बन्धित टिप्पणी की जिसे अनुवादकों ने भिन्न-भिन्न रूप से लिखा है। बर्मी कथा के अनुसार नदी का नाम अनौया था जिसे सुनने पर राजकुमार ने टिप्पणी की "मैं स्वयं को उस सम्मान के अयोग्य सिद्ध नहीं करूँगा जिसकी मैं कामना करता हूँ।" "तत्पश्चात घोड़े को एड़ लगाते ही वह भयानक पशु तुरन्त नदी के दूसरे तट पर कूद गया।" श्री हार्डी ने इस घटना को अधिक संक्षिप्त रूप में लिखा है।" नदी तट पर पहुँच कर उन्होंने सामन्त से इसका नाम पूछा और जब उन्हें बताया गया कि इसका नाम अनौमा, 'प्रख्यात अथवा सम्मानीय' है तो उन्होंने इसे अपने पक्ष में एक अन्य शुभ शगुन के रूप में ग्रहण कर लिया। टरनौर ने लङ्का की बुद्धावंशों की अट्टकथा के आधार पर इस कथा को विस्तार में बताया है। राजकुमार सिद्धार्थ ने छन्दों में पूछा, "इस नदी का क्या नाम है ?" 'स्वामी इसका नाम अनोमा है।' उत्तर में उन्होंने कहा, 'मेरे विधान में किसी प्रकार का अनाम (हीणता) नहीं होगी। यह कहते हुए उन्होंने एड़ी दबाई और अपने अश्व को छलाङ्ग लगाने का संकेत दिया।" टरनौर का कथन है कि "इस टिप्पणी में श्लेष है" परन्तु श्लेष "बौद्ध साहित्य में लघुता की वस्तु नहीं हैं।" टरनौर ने किसी त्रुटि के कारण अनोमा को "हीणता" से सम्बन्धित कर लिया है जबकि इसका अर्थ ठीक इसके विपरीत है एवम् श्री हार्डी एवं पादरी बिगां-डेट ने इसे शुद्ध रूप में लिखा है। बर्मी एवं लङ्का की बौद्ध पुस्तकों के अनुसार ऐसा प्रतीत होगा कि नदी का नाम अनोमा "हीण नदी वरन् श्रेष्ठ" था और राजकुमार की टिप्पणी भी इसी प्रकार रही होगी कि उसका विधान भी अनोमा (श्रेष्ठ) होगा। परन्तु चूंकि वर्तमान समय में नदी का नाम औमो अथवा 'हीण' है और चूंकि टरनौर के अनुवाद से पता चलता है कि उसकी प्रतिलिपि में इसका नाम ओमा अथवा औमा था मैं इस सन्देह का निवारण नहीं कर सकता कि इसका वास्तविक पाठ यही है एवं जब राजकुमार को यह सूचना दी गई थी कि नदी का नाम ओमा अथवा 'हीण' है तो उन्होंने टिप्पणी की कि "मेरा विधान अनौमा अथवा 'श्रेष्ठ' होगा।" यदि नदी का मूल नाम अनोमा था तो यह बात समझ में नहीं आती कि यह नाम किस प्रकार औमी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन गया। जिसका अर्थ मूल नाम के अर्थ के विपरीत है। परन्तु यदि यह औमी अर्थात् राप्ती की छोटी शाखा की थी और बौद्ध धर्मावलम्बियों ने इसे अपनी इच्छानुसार बदल कर अनोमा कर दिया था तो मूल नाम का पुनः प्रयोग बौद्ध धर्म के ह्रास का स्वाभाविक परिणाम प्रतीत होगा।

परन्तु नदी के पूर्वी तट पर उस बिन्दु से थोड़ी दूरी पर जिसे मैंने बुद्ध के नदी पार करने का स्थान स्वीकार किया है, तीन महत्व पूर्ण नामों की उपस्थिति से बौद्ध अनोमा एवं आधुनिक औमा की अनुरूपता की पुष्टि होती है। दूसरे तट पर पहुँचने पर राजकुमार घोड़े से नीचे उतर गया और उन्होंने अपने दास चन्दक को कपिला वापस लौट जाने का आदेश दिया। इस स्थान पर चन्दक निवर्तन अथवा 'चन्दक की वापसी' नामक एक स्तूप खड़ा है जिसे बोल चाल की भाषा में सम्भवतः चन्दबर्त बना दिया गया होगा। मेरे विचार में इस स्थान को औमी नदी के पूर्वी तट पर, औमियार झील के सिरे के समीप अवस्थित चन्दौली ग्राम के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो गोरखपुर के १० मील दक्षिण में है। तत्पश्चात राजकुमार ने अपनी खड्ग के साथ अपने केशों का जूड़ा काट डाला जिसे ऊपर की ओर फैंके जाने पर देवताओं ने ग्रहण कर लिया "जिन्होंने उस स्थान पर चूडा पट्टी गढ़ नामक स्तूप का निर्माण कराया। बोलचाल की भाषा में इस नाम को छोटा कर चूडा गृह बना दिया गया होगा जिसे मेरे विचार में चन्दौली के तीन मील उत्तर में चौंरेया नामक गाँव के अनुरूप माना जा सकता है। तत्पश्चात राजकुमार ने काशाय नामक अपने वस्त्र उतार दिये क्योंकि यह काशी अथवा बनारस में महीन सूत के बने हुए थे। इन वस्त्रों के स्थान पर उन्होंने सन्यासियों के योग्य सादे वस्त्र पहन लिये। इस घटना के स्थान पर जन साधारण ने काशाय गृह नामक स्तूप का निर्माण करवाया। इस स्थान को मैं चन्दौली के ३½ मील दक्षिण पूर्व में अवस्थित कसेयार नामक गांव के अनुरूप स्वीकार करूंगा। इन अनुरूपताओं के पक्ष में मैं इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि ह्वेनसांग ने त्यागे गये वस्त्रों के स्तूप को चन्दक वापसी' के स्तूप के पूर्व में दिखाया है परन्तु त्यागे गये वस्त्रों के स्तूप के समीप ही चूडा पट्टी गढ़ स्तूप को दिखाने में उसने उस स्थान के विपरीत दिशा में संकेत किया हैं जिसे मैं कसेयर के उत्तर में ६ मील की दूरी पर चौरेया में दिखा चुका हूँ। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि मेरी प्रस्तावित अनुरूपताओं में एक अनुरूपता त्रुटि पूर्ण होगी परन्तु चूंकि अन्य दोनों ह्वेनसांग द्वारा बताई गई स्थितियों से सहमत हैं प्रतीत होती हैं अतः मेरा अनुमान है कि वह सभी सम्भवतः सही हैं।

पीपलवन

अनोमा से दोनों चीनी यात्री बुद्ध की चिता की राख पर निर्मित स्तूप की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यात्रा पर गये जो पिप्पलवनों के स्थान पर बना हुआ था। इस नगर के मौर्यों ने जिन्हें विलम्ब के कारण बुद्ध के अवशेष नही मिल सके थे राख से ही सन्तोष कर लिया। फाहियान ने स्तूप को अनोमा के पूर्व में ४ योजन अथवा २८ मील की दूरी पर बताया है परन्तु ह्वेनसांग के अनुसार इस की दूरी १८० से १९० ली अथवा ३० से ३२ मील थी जब कि इसकी दिशा दक्षिण पूर्व थी। फाहियान ने नगर के नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु बर्मी एवं लंका की बौद्ध पुस्तकों में इसे पिप्पला बनो अथवा 'पीपल वन'' कहा गया है तथा तिब्बती दुलवा में इसे न्याग्रोद्ध अथवा वट वृक्ष कहा गया है। ह्वेनसांग ने भी "न्साग्रोधा वृक्षों के वन'' को कोयले के स्तूप 'का स्थान कहा है और चूंकि उसने वस्तुतः उस स्थान को यात्रा की थी अतः हमें लका के ग्रन्थों की साक्षी के स्थान पर उसकी शाक्षी को स्वीकार करना चाहिये। अब इस नाम का कोई स्थान नहीं है परन्तु ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित दक्षिण पूर्वी दिशा में एक विशाल वन है जिसने सहनकट नामक प्राचीन नगर के खण्डहरों को पूरी तरह घेर रखा है। बुचनान ने इस स्थान का विस्तृत विवरण दिया है जिसने खण्हरों से बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त की थीं। अतः बौद्ध धर्म के समृद्ध काल में निश्चित ही इस नाम का स्थान था। मानचित्र पर सीधे माप के यह ओमी नदी पर चन्दौली घाट से २० मील की दूरी पर है परन्तु सड़क की दूरी से यार्ग में अनेक छोटी नदियों के आ जाने के कारण यह दूरी २५ मील से कम नहीं है। अतः यह स्थिति ह्वेनसांग के कोयले के स्तूप की स्थिति से यथा सम्भव मिलती है परन्तु मैं इसकी पुष्टि के प्रमाण प्रस्तुत, नहीं कर सकता जब तक कि श्री नगर कोलुआ नामक गाँव को 'कोयल' अर्थात कोयला से सम्बन्धित न किया जाये। परन्तु इसकी सम्भावना अधिक नहीं है। फिर भी मैं यह जोड़ देना चाहता हूँ कि सहनकट से कसिया का दिकांश ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित कोयले के स्तूप से कुशी नगर का उत्तर पूर्वी दिकांश से मिलता है।

कुशीनगर

फाहियान ने कुशी नगर को कोयले के स्तूप से १२ योजन अथवा ८४ मील पूर्व बताया है परन्तु वैशाली एवं बनारस से इसकी कथित दूरियों से तुलना करने पर यह दूरी पूर्णतयः असम्भव प्रतीत होती है। दुर्भाग्यवश ह्वेनसांग ने अपनी सामान्य आदत के विपरीत दूरी का उल्लेख नहीं किया है और उसने केवल इतना लिखा है कि उसने जङ्गली वैलों जङ्गली हाथियों एवं लुटेरों से पूर्ण एक विस्तृत वन से होकर लम्बे समय तक उत्तर पूर्व दिशा में यात्रा की थी। सहनकट के उत्तर एवं पूर्व में इस वन का एक भाग अब भी विद्यमान है और गोरखपुर के उत्तर में तराई के वनों में जङ्गली हाथी अभी भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं। सर्व प्रथम मि० विलसन ने कसिया का कुशी नगर के स्थान के रूप में प्रस्ताव किया था और यह प्रस्ताव सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है। यह गाँव गोरखपुर के पूर्व ठीक ३५ मील की दूरी पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दो मुख्य मार्गों के चौराहे पर अवस्थित है। मानचित्र पर सीधे माप से यह गांव सहनकट से २८ मील उत्तर पूर्व में है। अथवा सड़क की दूरी से ३५ मील दूर है। अतः इसकी दूरी फाहियान द्वारा कथित १२ योजन की दूरी के स्थान पर केवल ५ योजन है। बनारस से इसकी दूरी में वृद्धि किये बिना तथा वैशाली से इसकी दूरी को घटाये बिना इसे अधिक दूर उत्तर पूर्व में नहीं दिखाया जा सकता। अब, प्रथम दूरी को ह्वेनसांग ने ७०० ली अथवा ११७ मील सीमित किया है तथा अन्तिम दूरी को फाहियान ने स्वयं २५ योजन अथवा १७५ मील निश्चित किया है और चूंकि दोनों अनुमान कसिया की वास्तविक स्थिति के अधिक समीप हैं अतः मुझे विश्वास है कि फाहियान द्वारा इसे १२ योजन बताया जाना एक त्रुटि थी। कसिया के समीप अनुरुद्धवा मानचित्र पर सीधे माप से बनारस से ठीक १११ मील उत्तर-उत्तर पूर्व में हैं और सड़क की दूरी के अनुसार यह दूरी १२० से कम नहीं होगी। मैंने जिस मार्ग का अनुसरण किया था उसके अनुसार कसिया एवं वैशाली की मध्यवर्ती दूरी १४० मील है परन्तु यह मार्ग उन नवीन सीधी रेखाओं के साथ-साथ था जिन्हें अङ्गरेजी सरकार ने निश्चित किया था। स्थानीय घुमावदार पुराने मार्गों से यह दूरी कहीं अधिक अथवा १६० मील से कम नहीं रही होगी।

ह्वेनसांग की यात्रा के समय कुशीनगर की दीवारें जर्जर अवस्था में थी एवं यह स्थान प्रायः निर्जन था परन्तु प्राचीन राजधानी की ईंटों की नींव १२ ली अथवा २ मील के घेरे में विस्तृत थी। अन्रूद्धवा तथा कशिया के मध्य वर्तमान खण्डहर अधिक बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं परन्तु इनमें कुछ एक निश्चित ही नगर से बाहर थे और अब इसकी वास्तविक सीमाओं का निश्चय करना प्रायः असम्भव है। सम्भवतः यह नगर अन्रूद्धवा गाँव के उत्तर पूर्व में खण्डहरों के टीले के स्थान पर बसा हुआ था। अतः बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति का स्थान स्तूप की स्थिति से, एव माथा कुआर का कोट अथवा 'मृतक राजकुमार का दुर्ग' नामक खण्डहर एवं वह स्थान जहाँ बुद्ध के शव को जलाया गया था, वर्तमान देविस्थान नामक विशाल स्तूप के स्थान के अनुरूप होंगे। प्रथम स्थान अन्रूद्धवा के उत्तर पश्चिम में तथा छोटा गण्डक अथवा हिरण्यवती नदी के पुराने मार्ग—जो यदा कदा वर्षा ऋतु में जल से भर जाता है—के पश्चिम में है। अन्तिम स्थान अन्रूद्धवा के उत्तर पूर्व में तथा हिरन्यवती अथवा छोटा गंडक के पुराने मार्ग के पूर्व में अवस्थित है।

कशिया के समीप खण्डहरों से वर्तमान समय में सम्बन्धित एक मात्र नाम माथा कुआर अथवा 'मृतक राजकुमार' का नाम है। श्री लिस्टन ने इसे मादा कहा है परन्तु पड़ोसी भिशनपुर गाँव के एक ब्राह्मण ने मेरे लिये उपर्युक्त नाम को ठीक उसी प्रकार लिखा था जैसा मैंने ऊपर लिखा है। मेरे विचार में यह शब्द मथा अथवा माथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से लिया गया है अतः माथा कुआ को मैंने "मृतक राजकुमार" स्वीकार किया है जिसे मैं बुद्ध की मृत्यु अथवा जनसाधारण की भाषा में निर्वाण के पश्चात स्वयं बुद्ध से सम्बन्धित करता हूँ। शाक्य द्वारा सन्यासी के वस्त्र गृहण करने की घटना का वर्णन करते हुए ह्वेनसांग ने उसे कुमार राजा अथवा 'राजकीय राजकुमार' कहा है परन्तु मेरा विश्वास है कि यद्यपि विद्वानों ने सन्यासी बुद्ध के लिये इस उपाधि का प्रयोग नहीं किया था फिर भी यह असम्भव नहीं है कि जनसाधारण में यह नाम प्रचलित रहा हो। ह्वेनसांग से हमें पता चलता है कि जहाँ बुद्ध की मृत्यु हुई थी उस स्थान पर ईंटों का विहार अथवा मन्दिर मठ बनवाया गया था जिसमें मृत्यु शैया पर लेटे हुए बुद्ध की प्रतिमा थी जिसका सिर उत्तर की ओर था। स्वाभाविक है कि वह प्रतिमा कुशीनगर के स्थान पर पूजा की विशेष वस्तु रही होगी और यद्यपि विद्वानों में यह "निर्वाण प्रतिमा" के नाम से प्रचलित रही हो फिर भी मैं यह विश्वास कर सकता हूँ कि जन-साधारण के सभी वर्गों में "मृतक राजकुमार की प्रतिमा" का नाम अधिक प्रचलित रहा हो। अतः मेरा विचार है कि माथा कुआर का नाम जिसे आज भी कशिया के खण्डहरों से सम्बन्धित किया जाता है बुद्ध की मृत्यु से सीधा सम्पर्क रखता है। उनके अनुयायियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु ५४३ ई० पूर्व में वैशाख पूर्णिमा के अवसर पर कुशीनगर में हुई। वर्तमान समय तक इस नाम का जीवित रहना कशिया को बुद्ध की मृत्यु के स्थान के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में एक ठोस प्रमाण है।

खुखुन्दो-कहौन

कुशी नगर के बाद ह्वेनसांग बनारस की ओर गया और २०० ली अथवा ३३ मील दक्षिण-पश्चिम की यात्रोपरान्त वह एक विशाल नगर में पहुँचा जहाँ एक ब्राह्मण रहा करता था जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था। यदि हम कठोरता पूर्वक दक्षिण पश्चिम दिशा का अनुसरण करें तो हमें इस विशाल नगर को रूद्रपुर के समीप सहनकट के अनुरूप स्वीकार करना चाहिये। परन्तु इस स्थान को हम इसके पूर्व पिप्पलवन के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं और यह स्थान बनारस की ओर जाने वाले मुख्य मार्ग पर नहीं है। चूँकि ह्वेनसांग ने ब्राह्मण द्वारा आने जाने वाले सभी यात्रियों की सेवा का विशेष उल्लेख किया है अतः यह निश्चित है कि यह विशाल कस्बा कुशी नगर तथा बनारस के मध्य मुख्य मार्ग पर रहा होगा। अब, यह मुख्य मार्ग रूद्धपुर से होकर नहीं जा सकता था क्योंकि ऐसा करने से इसे घाघरा नदी के अतिरिक्त राप्ती नदी को भी पार करना पड़ता जबकि स्वयं रूद्रपुर बनारस के सीधे मार्ग में नहीं पड़ता। यह प्रायः स्पष्ट है कि यह मुख्य मार्ग घाघरा एवं राप्ती के संगम स्थान से नीचे किसी स्थान पर घाघरा को पार करता होगा। जनसाधारण के अनुसार घाघरा को पार करने का घाट कहौन के ४ मील दक्षिण में तथा दोनों नदियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के संगम स्थान से ७ मील नीचे महिली में था। कशिया से महिली घाट तक यह मार्ग खुखुन्दो एवं कहौन के दो प्राचीन नगरों से होकर गया होगा। आज भी इन दोनों स्थानों पर प्राचीनता के चिह्न पाये जाते हैं परन्तु प्रथम नगर कशिया से केवल २८ मील दूर है जबकि द्वितीय नगर की दूरी ३५ मील है। दोनों ही असंदिग्ध रूप से ब्राह्मण-वादी थे परन्तु खुखुन्दो में प्राप्त सभी खण्डहर मध्य युग से सम्बन्धित है जबकि कहौन में प्राप्त अवशेष स्कन्द गुप्त के समय के है जिसने ह्वेनसांग के समय से कई शताब्दी पूर्व शासन किया था। अतः मैं ह्वेनसांग के प्राचीन नगर के प्रतिनिधि के रूप में कहौन के दावे को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। आंशिक रूप से इसकी असंदिग्ध प्राचीनता के कारण एवं आंशिक रूप से इस कारण कि कशिया से खुखुन्दो के अपेक्षाकृत बड़े नगर की दूरी की उपेक्षा इस स्थान की दूरी तीर्थ यात्री के अनुमान से अच्छी तरह मिलती है।

पावा, अथवा पदरौना

लंका की पुस्तकों में कुशी नगर पहुँचने से पूर्व बुद्ध के अन्तिम विश्राम स्थान के रूप में पावा का उल्लेख किया गया है। कुशी नगर में उनकी मृत्यु के पश्चात बुद्ध के शव के दाह संस्कार में भाग लेने के लिये कुशी नगर तक काश्यप की यात्रा में इसका पुनः उल्लेख मिलता है। पावा, बुद्ध के अवशेष प्राप्त करने वाले आठ नगरों में एक नगर के रूप में भी प्रसिद्ध था। लंका की पुस्तकों में इसी कुशीनगर से गंडक नदी की ओर केवल १२ मील की दूरी पर दिखाया गया है। अब कशिया से १२ मील उत्तर उत्तर पूर्व में पदरौना अथवा पदर वन नाम एक बड़ा गाँव है जहाँ टूटी हुई ईन्टों से ढका एक विशाल टीला है जिसमें बुद्ध की अनेक प्रतिमायें प्राप्त की गई हैं। पदरवन अथवा पदरवन के नाम को सरलता पूर्वक छोटा कर परबन, पबन अथवा पावा बनाया जा सकता है। तिब्बती कहग्यूर में इसे दिग पचन कहा गया है परन्तु चूंकि इसका अर्थ नहीं दिया गया है अतः यह कहना असम्भव है कि यह मूल भारतीय नाम है अथवा तिब्बती अनुवाद। पावा एवम् कुशीनगर के मध्य कुकुत्था अथवा कुकुथा नामक एक नदी थी जहाँ बुद्ध ने स्नान किया था एवम् जल ग्रहण किया था। यह नदी वर्तमान समय की बाघी, बरही अथवा बान्घी नाला रही होगी जो ३६ मील बहने के बाद कशिया से ८ मील नीचे छोटा गंडक अथवा हिरन्य नदी के बाये तट पर मिलती है।

वाराणसी, अथवा बनारस

सातवीं शताब्दी में पो-लो-नो-सी अथवा वाराणसी राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी तथा राजधानी जो गङ्गा नदी के पश्चिमी तट पर थी १८ ली अथवा ३ मील लम्बी एवम् ५ से ६ ली अथवा १ मील चौड़ी थी। पड़ोसी से १६ ली अथवा ३ मील लम्बी एवम् ५ से ६ ली अथवा १ मील चौड़ी थी। पड़ोसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यों की सीमाओं को देखते हुए इसकी सम्भावित सीमायें उत्तर में गोमती नदी, से इलाहाबाद तक एवम् टोन्स नदी से बिल्हारी तक सीधी रेखा, दक्षिण में बिलहारी से सोनहाट तक सीधी रेखा एवम् पूर्व में रेहन्द कर्मनासा तथा गङ्गा नदियाँ थीं। इन सीमाओं के भीतर इसकी परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ५६५ मील एवम् वास्तविक मार्ग दूरी से ६५० मील है।

बनारस नगर उत्तर पूर्व में बरना नदी एवम् दक्षिण पश्चिम में असी नाला के मध्य गङ्गा नदी के बायें तट पर अवस्थित है। बरना अथवा वरणा एक महत्वपूर्ण छोटी नदी है जो इलाहाबाद के उत्तर में निकलती है तथा लगभग १०० मील तक बहती है। असी बहुत ही छोटी नदी है और अपने गौण आकार के कारण यह हमारे सर्वाधिक विस्तृत मानचित्रों में भी दिखाई नहीं देती। भारतीय एटलस प्रति नवम्बर ८८ में जो एक इंच बराबर चार मील की दर से बनाई गई है अथवा बनारस जिले के पत्थर के छाप के बड़े मानचित्र में जिसे एक इंच बराबर २ मील की दर से बनाया गया है इस नदी को स्थान नहीं दिया गया है। इस भूल के कारण फ्राँसीसी विद्वान एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन को गङ्गा की सहायक नदी के रूप में असी नदी के अस्तित्व में सन्देह है एवम् उनका अनुमान है कि यह केवल बरना नदी की एक शाखा हो सकती है एवम् दोनों की संयुक्त धारा जिसे वाराणसी कहा जाता था—से नगर का नाम वाराणसी पड़ गया था। जैसा कि मैंने बताया है असी नाला को हलमन्डेल द्वारा प्रकाशित जेम्स प्रिन्सिप के बनारस के मानचित्र में एवम् उस छोटे मानचित्र में देखा जा सकता है जिसे मैंने बनारस के खण्डहरों की व्याख्या करने के लिये बनाया है। श्री एच० एच० विलसन ने अपने संस्कृत शब्द कोष में वाराणसी के अन्तंगत असी की स्थिति को ठीक-ठीक समझाया है। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि बनारस से रायनगर की ओर जाने वाली सड़क नगर के ठीक बाहर एवम् नदी में संगम स्थान से कुछ नीचे असी नाला को पार करती है। दोनों छोटी नदियों एवम् गङ्गा के संगम स्थान को विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और तदनुसार नगर से नीचे बरना संगम एवम् नगर से ऊपर असी संगम पर मन्दिरों का निर्माण करवाया गया है। नगर को उत्तर एवम् दक्षिण से घेरने वाली दोनों नादियों के सयुक्त नाम से ब्राह्मणों ने वाराणसी अथवा वाराणसो नाम प्राप्त किया जिसे बनारस नाम का संस्कृत स्वरूप समझा जाता है। परन्तु जनसाधारण में प्रचलित रूप से इस राजा बनारस के नाम से सम्बन्धित किया जाता है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने लगभग ८०० वर्ष पूर्व इस नगर की स्थापना की थी।

अबुल फज़ल ने इन दोनों छोटी नदियों का उल्लेख किया है। उसका कथन है कि, "वाराणसी जिसे सामान्यतः बनारस कहा जाता है बरना एवम् असी नदियों के मध्य अवस्थित एक विशाल नगर है।" पादरी हेबर ने भी इस बात का उल्लेख किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि राजा बनारस ने उसे सूचित किया था कि "गङ्गा नदी में गिरने वाली वारा एवम् नासा नाम की दो नदियों के नाम पर इस नगर का प्राचीन नाम बनारस था।" विद्वान पादरी ने अनुमान लगा लिया है कि यह दोनों नादियाँ भूमिगत होकर गङ्गा में मिलती हैं क्योंकि इन्हें मानचित्र पर नहीं दिखाया गया है परन्तु दो पृष्ठों के बाद उसने लिखा है कि उसकी नौका "एक छोटी नदी के मुहाने पर पहुँची जो सेकरोल" अर्थात बनारस छावनी, "की ओर जाती थी। यहाँ यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि यह केवल उनके दास की सूचना पर लिखा गया है एवम् उन्होंने वस्तुतः नदी को नहीं देखा, परन्तु चूंकि पादरी बरना के उत्तर में श्री बोक के साथ रहते थे अतः हिन्दुओं के पवित्र नगर में अपने निवास के दिनों में वह पत्थर के विशाल पुल से कम से कम दो बार प्रति दिन आया जाया करते होंगे।

बौद्ध धर्मावलम्बियों में बनारस उस स्थान के रूप में प्रसिद्ध हैं जहाँ महान गुरु ने अपने सिद्धान्तों का सर्व प्रथम प्रचार किया था अथवा जैसा कि वह इसे लाक्षणिक रूप में व्यक्त करते हैं 'जहाँ उन्होने धर्म चक्र चलाया था।' यह बुद्ध के जीवन की चार महान घटनाओं में एक घटना थी और उस स्थान पर बनाये गये स्तूप को बौद्ध धर्म के चार महान स्तूपों में गिना जाता है। यह स्तूप-जिसे अब धमेक कहा जाता है—नगर के उत्तर में लगभग ३ मील की दूरी पर खण्डहरों के विशाल समूह में खड़ा है जो चारों ओर विशाल कृतम झीलों से घिरे हुए हैं। धमेक नाम सम्भवतः संस्कृत के धर्मोपदेशक का संक्षिप्त स्वरूप है। किसी भी धार्मिक गुरू के लिये यह एक सामान्य नाम है परन्तु इस बात को ध्यान में रखने पर कि बुद्ध ने सर्व प्रथम इसी स्थान पर धर्म चक्र चलाया था, यह नाम स्तूप के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है। सरल भाषा में इसे धर्मदेशक भी कहा जाता है जिसे बोल-चाल की भाषा में स्वभाविक रूप से छोटा कर धम्मदेक अथवा धमेक बना दिया गया होगा।

नगर का प्राचीनतम नाम काशी था जो अकेले अथवा अन्तिम नाम के साथ काशी बनारस के रूप में आज भी प्रचलित है। यह सम्भवतः टालमी का कस्सीदा अथवा कस्सीदिया था। यह नाम काशी राज से सम्बन्धित किया जाता है जो चन्द्र-वंशियों के प्रारम्भिक पुरखों में था। उसके बाद उसके २० वंशजों ने काशी में राज्य किया। प्रसिद्ध काशी राज दिवोदास इन्हीं वंशजों में थे।

गरजापटीपुर

बनारस से ह्वेनसांग पूर्व दिशा में ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रोपरान्त चेन चू राज्य में गया था जो मूल नाम का चीनी अनुवाद है जिसका अर्थ 'युद्ध क्षेत्र का स्वामी' था। श्री एम० जुलीन ने योद्धा पटी अथवा योद्धाराजपुर नाम का प्रस्ताव किया है परन्तु चूंकि केवल अनुवाद ही दिया गया है अतः हम विग्रहपटी, युद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाथ, रण स्वामी आदि अनेक नामों का प्रस्ताव कर सकते हैं। गङ्गा नदी पर अवस्थित राजधानी की परिधि १० ली अथवा १$\frac{2}{3}$ मील थी। इस प्रकार वर्णित स्थान निश्चित ही गाजीपुर है जो बनारस से प्रायः ५० मील पूर्व गङ्गा नदी पर अवस्थित है। वर्तमाम नाम मुसलमानों द्वारा रखा गया था और कहा जाता है कि यह नाम मूल हिन्दू नाम गर्जपुर का केवल परिवर्तत स्वरूप है। इस बात की अधिक सम्भावना है कि ह्वेनसांग ने गर्जन के रूप में इसी नाम का उल्लेख किया है जिसके साधारण अर्थ से 'युद्ध' का संकेत भी मिलता है और गर्जन पति 'युद्ध के देवता' की उपाधि है। गाजीपुर अब एक बड़ा नगर है जिसकी लम्बाई २ मील एवम् परिधि ५ अथवा ६ मील हैं। ह्वेनसांग ने जिले की परिधि का अनुमान २००० ली अथवा ३३३ मील लगाया था जो प्रायः उत्तर में घाघरा तथा दक्षिण में गोमती, पश्चिम में टाण्डा से गङ्गा एवम् घाघरा के संगम स्थान के मध्यवर्ती क्षेत्र के आकार के समान है।

राजधानी से २०० ली अथवा ३३ मील पूर्व में ह्वेनसांग अविधकर्ण मठ में गया था जो अति सुन्दर कला मूर्तियों से सुसज्जित था। दिकांश एवम् दूरी को देखते हुए इस स्थान को गङ्गा नदी के तट पर बलिया के आस-पास देखा जाना चाहिये। अविद्धकर्ण का अर्थ है 'छिद्रित कर्ण' और मेरे विचार में यह सम्भव है कि यह नाम बलिया के एक मील पूर्व में अवस्थित बीकापुर नाम में सुरक्षित है क्योंकि अविद्धकर्ण-पुर को सरलता पूर्वक बिद्धकर्णपुर तथा बीकनपुर बनाया जा सकता है। यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि फहियान द्वारा 'वृहद आरण्य' नाम के अन्तर्गत उल्लिखित स्थान यही हो। यह स्थान पटना एवम् बनारस के मध्य, प्रथम स्थान से १० योजन अथवा ७० मील तथा अन्तिम स्थान से १२ योजन अथवा ८४ मील की दूरी पर है। इसका भारतीय नाम नहीं दिया गया है परन्तु चूंकि इसका अक्षरशः अर्थ वृहद आरण्य अथवा बिदारन होगा इस नाम को अज्ञानता अथवा इच्छा से सरलता पूर्वक बिद्धकर्ण पढ़ा जा सकता है। पटना एवम् बनारस से दी गई दूरी बलिया की दूरी से ठीक-ठीक मिलती है जो प्रथम नगर से ७२ मील तथा अन्तिम नगर से ८६ मोल है।

मठ से ह्वेनसांग १०० ली अथवा १६ मील दक्षिण पूर्व में गङ्गा नदी तक गया। नदी को पार कर वह कुछ अकथित दूरी तक दक्षिण की ओर गया एवं यो-लो-सो-लो अथवा महासार नामक नगर में पहुँचा। इस स्थान पर ब्राह्मणों का निवास था जो बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं रखते थे। श्री एम० बिवीन डी सेन्ट मर्टिन ने इसे अरा (मानचित्र के अराह) के ६ मील पश्चिम में अवस्थित मसार गाँव के अनुरूप स्वीकार किया है जिसके समीप बुचनान को अनेक ध्वस्त भवन एवं अधिक संख्या में ब्राह्मणों की मूर्तियाँ प्राप्त हूई थीं। तत्पश्चात तीर्थ-यात्री ने तुरन्त ही ना-लो-येन अथवा नारायण मन्दिर में पहुँचने की सूचना दी है जबकि उसने अन्तिम स्थान से इसकी दूरी अथवा दिकांश का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु वैशाली तक उसके पश्चातवर्ती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्ग को देखने पर मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि उसने खेल गंज के समीप गङ्गा नदी को पार किया होगा जो मसार के ठीक उत्तर में ठीक १६ मील अथवा १०० ली की दूरी पर है। गङ्गा एवं घाघरा नदियों के समीप यह स्थान विशेष रूप से पवित्र माना जाता है और खेल गंज के थोड़ा ऊपर संयुक्त नदियों के तट पर अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया गया है। अतः मैं इसी स्थान को ह्वेनसांग द्वारा कथित नारायण अथवा विष्णु के मन्दिर का स्थान बताऊँगा जिसे उसने दो मंजला एवं पत्थर की सर्वधिक सुन्दर कला मूर्तियों से सुसज्जित बताया है।

मन्दिर से पूर्व ३० मील अथवा ५ मील की दूरी पर एक प्रसिद्ध स्तूप था जिसे अशोक ने उस स्थान पर बनवाया था जहाँ बुद्ध ने किन्हीं राक्षसों पर विजय प्राप्त की थी एवं उन्हें बुद्ध धर्म का अनुयायी बनाया था। कहा जाता है कि यह राक्षस मानव भक्षी थे। इन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया अथवा प्राचीन बौद्ध धर्मवलम्बियों के मतानुसार बौद्ध धर्म की महान त्रिमूर्ती अर्थात बुद्ध, धर्म एवं संघा की शरण ली। शरण संस्कृत शब्द है और चूंकि सारन ही उस जिले का वास्तविक नाम है जहाँ राक्षसों ने बुद्ध की शरण ली थी अतः मेरा निष्कर्ष है कि उस स्थान पर बनाये गये स्मारक को शरण स्तूप कहा गया होगा। यह स्तूप अधिक प्रसिद्ध रहा होगा क्योंकि इस बात में सन्देह नहीं कि इसी स्तूप के नाम पर जिले का वर्तमान नाम पड़ा होगा। अब, खेल गंज के पाँच मील पूर्व जाने से हम सारन जिले की वर्तमान राजधानी में पहुँचते हैं। दुर्भाग्यवश छपरा के सम्बन्ध में मैं कोई सूचना प्राप्त नहीं कर सका परन्तु इतना निश्चित है कि यह अधिक महत्व का स्थान रहा होगा अन्यथा जिले की अङ्गरेजी राजधानी के रूप में इसका निर्वाचन न किया जाता।

शरण स्तूप से तीर्थ यात्री १०० ली अथवा १६$\frac{2}{3}$ मील दक्षिण पूर्व में एक अन्य स्तूप पर गया जो द्रोण ब्राह्मण ने उस पात्र पर बनावाया गया था जिससे उसने बुद्ध के अवशेषों का माप किया था। लंका की पुस्तकों के अनुसार दोणों (अथवा द्रोण) ब्राह्मण ने कुम्भान पर स्तूप का निर्माण करवाया था और इसी कारण इसे कुम्भान स्तूप भी कहा जाता था। हार्डी ने ब्राह्मण को द्रोहा एवं पात्र को "स्वर्ण माप" कहा है। वर्मा की पुस्तकों में पात्र को यही नाम दिया गया है परन्तु ब्राह्मण को दौना कहा गया है। तिब्बती विवरण में दोण नाम को अवशेषों के 'माप' से सम्बन्धित बताया गया है जो निश्चित ही असत्य है क्योंकि ब्राह्मण को अवशेषों का कोई भाग नहीं मिला परन्तु उसे वह पात्र मिला था जिससे उसने अवशेषों का माप किया था। सम्भवतः यह पात्र माप के द्रोण के तुल्य था क्यों कहा जाता है कि अवशेषों का प्रत्येक भाग एक दोण था। अतः स्तूप को द्रोण स्तूप कहा गया होगा क्योंकि यहाँ वह पात्र रखा गया था जिससे प्रति दोण का माप किया था। परन्तु दोण स्तूप ही स्मारक का एक मात्र नाम नहीं था। लंका के बौद्ध ग्रान्थों में इसे कुम्भा स्तूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा गया है। अब कुम्भ एक बड़े आकार का जल भरने का पात्र है जिसे बड़े मुख वाले फूलों से पूर्ण पात्र के रूप में अनेक भारतीय स्तूपों पर खुदा हुआ देखा जा सकता है। मैं छपरा के दक्षिण पूर्व में १७ मील की दूरी पर ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थान पर कुम्भ अथवा द्रोण समान किसी नाम को नहीं ढूंढ सका हूँ। परन्तु इसी स्थिति में देग़वार नामक एक गाँव है जो, चूंकि देग़ कुम्भ के आकार का एक बड़ा धातु के बने पात्र का हिन्दी नाम है, सम्भवतः मूल नाम का परिवर्तत नाम हो सकता है। परन्तु देग समान आकार के पात्र का फारसी नाम भी है अतः मैं सरल स्मृति के लिये देग़वार का उल्लेख करूंगा क्योंकि इसका समान अर्थ है और इसकी स्थिति भी बौद्ध इतिहास के प्रसिद्ध कुम्भ स्तूप के समान है।

वैशाली

कुम्भ स्तूप से ह्वेनसांग उत्तर पूर्व की ओर १४० अथवा १५० ली अथवा २३ से २५ मील की दूरी पर अवस्थित वैशाली नगर में गया। उसने मार्ग में गङ्गा नदी पार करने का उल्लेख किया है परन्तु चूंकि वह इस यात्रा से पर्व ही नदी के उत्तर में था अतः उसका उल्लेख गंडक नदी से सम्बन्धित रहा होगा जो देगवारा के १२ मील के भीतर बहती है। अतः हमें वैशाली को गंडक के पूर्व में देखना चाहिये। तदनुसार यहाँ हमें एक प्राचीन ध्वस्त दुर्ग सहित बेसोढ़ नामक गाँव मिलता है जिसे आज भी राजा बिसाल का गढ़ अथवा राजा वैशाल का दुर्ग कहा जाता है जो प्राचीन वैशाली का प्रसिद्ध संस्थापक था। ह्वेनासांग का कथन है कि राजमहल की परिधि ४ से ५ ली अथवा ३५०० से ४४०० फुट थी जो प्राचीन दुर्ग के मेरे आंकड़ों से मिलती है। मेरे आंकड़ों के अनुसार ध्वस्त दीवारों की रेखाओं के साथ-साथ दुर्ग का आकार १५०० फुट गुणा ७५० फुट अथवा कुल मिलाकर ४६०० फुट था। अबुल फजल ने बेसोढ़ नाम के अन्तर्गत इस स्थान का उल्लेख किया है। वर्तमान समय में भी यह ईंटों के खण्डहरों से घिरा एक विस्तृत गांव है। यह देग़वारा से ठीक २३ मील की दूरी पर है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व के स्थान पर उत्तर-उत्तर-पूर्व है। यह स्थिति पाटली पुत्र अथवा पटना के विपरीत गङ्गा नदी के तट तक ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित दूरी एवं दिकांश से ठीक-ठीक मिलती है। यह स्थान देगवारा से १२० ली अथवा २० मील दक्षिण में है और गङ्गा के उत्तरी तट पर हाजीपुर का स्थान भी ठीक २० मील दक्षिण में है। इस प्रकार बेरूमेढ़ का ध्वस्त दुर्ग एवं वैशाली के प्राचीन नगर में नाम, स्थिति एवं आकार की इतनी अधिक समानता है कि इनकी अनुरूपता में किसी प्रकार का उचित सन्देह शेष नहीं रह जाता।

ह्वेनसांग के आंकड़ों के अनुसार वैशाली राज्य की परिधि ५०००, ली अथवा ८३३ मील थी जो निश्चय ही अतिश्योक्तिपूर्ण है क्योंकि इस परिधि को स्वीकार करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से वैशाली राज्य में ब्रिजी के पड़ोसी राज्य को सम्मिलित करना होगा जिसकी परिधि ह्वेनसांग के कथनानुसार ४००० ली अथवा ६६७ मील थी। अब, ब्रिजी की राजधानी को वैशाली के उत्तर पूर्व में ५०० ली अथवा ८३ मील को दूरी पर बताया गया है और चूंकि दोनों जिले पर्वतों एवम् गङ्गा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्र में थे अतः यह प्रायः निश्चित है कि इनमें किसी एक के अनुमानित आंकड़ों में कुछ त्रुटि है। आस-पास के अन्य राज्यों को देखते हुए, पर्वतों से दक्षिण में गङ्गा नदी तक एवं पश्चिम में गंडक नदी से पूर्व में महा नदी तक दोनों जिलों की संयुक्त सीमायें ७५० अथवा ८०० मील से अधिक नहीं हो सकतीं। अतः मेरा निष्कर्ष है कि या तो एक अथवा दोनों जिलों के अनुमानित आंकड़ों में कुछ त्रुटि अथवा अतिश्योक्ति है अथवा दोनों जिले भिन्न नामों के अन्तर्गत एक ही राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। अब मैं यह दिखाने का प्रयास करूंगा कि अन्तिम अनुमान सत्य है।

मि० बर्नाफ द्वारा उद्धृत एक बौद्ध कथा में बुद्ध आनन्द सहित चापाल स्तूप तक जाते हैं तथा एक वृक्ष के नीचे बैठ कर अपने शिष्य से इस प्रकार वार्तालाप करते हैं "आनन्द, देखो ब्रिज्जियों की भूमि वैशाली नगरी कितनी सुन्दर है।" इत्यादि। बुद्ध के समय एवं उनके पश्चात अनेक शताब्दियों तक वैशाली निवासियों को लिच्छवी कहा जाता था तथा त्रिकन्दसेहा में लिच्छवी, वैदेही एवम् तिरभुक्ति को पर्यायवाची नाम बताया गया है। रामायण के पाठक जानते हैं कि वैदेही राजा जनक के राज्य मिथिला का एक सामान्य नाम था जिसकी कन्या सीता को वैदेही भी कहा जाता है। तिरभुक्ति वर्तमान तिरहुती अथवा तिरहुत है। अब, मिथारी जिले में जनकपुर के आधुनिक नगर को देश की जनता की सर्व सम्मति से मिथिला की राजधानी, प्राचीन जनकपुरी का स्थान स्वीकार किया जाता है। यह ह्वेनसांग द्वारा कथित ब्रिजी की राजधानी चेन-शू-ना की स्थिति से मिलती है। एम० विवोन डी सेन्ट मर्टिन ने चीनी नाम को ची-थू-ना पढ़ा है परन्तु श्री एम० जुलीन ने इसे छा-सू-ना कहा है तथा उनका इस बात का संकेत किया है कि द्वितीय स्वरूप को शूक्र में ढूंढा जा सकता है और मेरे विचार में इसे शूद्र में भी देखा जा सकता है। नाम का शुद्धीकरण सन्दिग्ध है परन्तु—यदि चीनी तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी एवम् दिक्कांश हैं तो यह प्रायः निश्चित है कि सातवीं शताब्दी में ब्रिज्जियों की राजधानी जनकपुर थी।

ह्वेनसांग ने फो ली शी अथवा ब्रिजी नाम के अन्तर्गत देश के संस्कृत नाम का वर्णन किया है परन्तु यह भी कहा है कि उत्तरी प्रदेश की जनता देश को सान-फा-शी अथवा समवजी कहा करते थे जो समब्रिज्जियों अथवा संयुक्त ब्रिज्जियों का पाली स्वरूप है। इस नाम से मेरा अनुमान है कि ब्रिजी एक बहुत बड़ी जाति का नाम था जो वैशाली के लिच्छवीं मिथिला के वैदेही एवम् तिरहुत के निरभुक्ति आदि अनेक शाखाओं में विभाजित थी। अतः इनमें किसी भी खण्ड को ब्रिजी समब्रिजी अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"संयुक्त व्रिजी" कहा जा सकता है। हमारे पास सतलज के बागड़ियों अथवा सम बागड़ियों की लड़ाकू जाति का समानान्तर उदाहरण है जो तीन विभिन्न शाखाओं में बटी हुई थी। अतः मेरा निष्कर्ष है कि वैशाली संयुक्त व्रिज्जयों अथवा वज्जियों की सीमा में एक ही जिला था अतः वैशाली के विस्तार सम्बन्ध में ह्वेनसांग का अनुमान एक साधारण त्रुटि थी। सम्भवतः हमें ५००० ली अथवा ८३३ मील के स्थान पर इसे १५०० ली अथवा २५० मील पढ़ना चाहिये। इस दिशा में वैशाली जिला छोटी गण्डक नदी के पश्चिम की ओर व्रिज्जियों के देश के दक्षिण-पश्चिमी कोण तक सीमित होगा।

वैशाली के उत्तर-पश्चिम में २०० ली अथवा ३३ मील से कुछ कम दूरी पर ह्वेनसांग ने एक प्राचीन नगर के खण्डहरों का उल्लेख किया है जो अनेक वर्ष पूर्व नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि बुद्ध ने महादेव नामक एक चक्रवर्ती राजा के रूप में अपने पिच्छले जन्म में यहाँ राज्य किया था और इस तथ्य के समर्थन में यहाँ एक स्तूप है। इस स्थान का नाम नहीं दिया गया है परन्तु दिकांश एक दूरी वैशाली से प्रायः ३० मील उत्तर पश्चिम में एक प्राचीन ध्वस्त नगर केशरिया की ओर संकेत करते हैं। इस स्थान पर खण्डहरों का एक टीला है जिस पर एक उन्नत स्तूप खड़ा है। जन साधारण के अनुसार यह स्तूप राजा वेन चक्रवर्ती ने बनवाया था। पुराणों में भी राजा वेन को चक्रवर्ती राजा कहा गया है और मैंने उसके नाम को उत्तरी भारत में उतना ही प्रचलित पाया है जितना राम अथवा पाण्डवों का नाम प्रचलित है। यह स्मारक जिले के दो विशाल मार्गों अर्थात पटना से उत्तर की ओर बेतिया एवं छपरा से गण्डक पार नेपाल की ओर जाने वाले मार्गों के चौराहे पर अवस्थित है। लङ्का की बौद्ध पुस्तकों में इस तथ्य का एक विचित्र उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार स्वयं बुद्ध ने आनन्द को सूचित किया था कि "उन्होने एक चक्रवर्ती राजा के लिये चार मुख्य मार्गों के चौराहे पर एक थूपो का निर्माण करवाया था।" अतः मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि यह स्थान ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थान के अनुरूप है।

व्रिजी

वैशाली से ह्वेनसांग उत्तर पूर्व की ओर ५०० ली अथवा ८३ मील की दूरी पर अवस्थित फो-लो-शी अथवा व्रिजी गया था जिसे हम वज्जियों अथवा व्रिज्जियों की शक्तिशाली जाति की सीमा के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं। बुद्ध के समय में व्रिजी, लिच्छिवी, विदेह त्रिरभुक्ति एवं अन्य अनेक शाखाओं में विभाजित थे जिनके नाम अज्ञात हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन शाखाओं की संख्या आठ थी क्योंकि अपराधियों को अट्ट कुलक अथवा आठ वंशों के संयुक्त न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता था जिसमें प्रत्येक वंश से एक-एक सदस्य को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि उत्तरी प्रदेश के लोग उन्हें सान-फा-शो-अथवा समवज्जी अर्थात "संयुक्त वज्जी" कहा करते थे तथा मि० टर्नौर ने लङ्का की पाली पुस्तकों के आधार पर वज्जी की जनता के सम्बन्ध में अपने विस्तृत एवं रुचि पूर्ण विवरण में इसी नाम का उल्लेख किया है। मगध के महान सम्राट अजात शत्रु ने वज्जियों की विशाल एवं शक्तिशाली जाति को अपने अधीन बनाने की इच्छा से इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सर्वाधिक अनुकूल उपाय जानने के लिये अपने दूत को बुद्ध के पास भेजा था। सम्राट को सूचित किया गया था कि जब तक वज्जी की जनता संयुक्त रहेगी वह अपराजित रहेगी। सम्राट ने अपने मन्त्री की सहायता से तीन वर्षों में उनके शासकों की एकता को इतना छिन्न-भिन्न कर दिया कि वह परस्पर सन्देह के कारण एकता का मार्ग भूल गये और तदनुसार बिना प्रतिरोध उन्हें पराधीन बना लिया गया। टर्नौर के अनुसार "वज्जियान राज्यों के समूह में शासकों का गणतन्त्र था।" अतः समव्रिजी अथवा "संयुक्त व्रिजी" आठ वन्शों के सम्पूर्ण राज्य का नाम था जो—जैसा कि बुद्ध ने टिप्पणी की थी—समय-समय पर परस्पर परामर्श द्वारा संयुक्त कार्य करने एवम् प्राचीन वज्जियान संस्थानों को जीवित रखने का अपना प्रण दोहराया करते थे। किसी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु कहा जाता है कि जन साधारण वृद्ध जनों की आज्ञाओं का पालन करते थे।

ह्वेनसांग के अनुसार ब्रिज्जियों का प्रदेश पूर्व से पश्चिम लम्बा एवम् उत्तर से दक्षिण संकीर्ण था। यह विवरण गण्डक एवं महानदी के मध्यवर्ती क्षेत्र से ठीक ठीक मिलता है जो ३०० मील लम्बा एवं १०० मील चौड़ा है। इन सीमाओं के भीतर अनेक प्राचीन नगर हैं जिनमें कुछेक प्राचीन आठ व्रिजी वंशों की राजधानी रहे होंगे। वैशाली, केसरिया एवं जनकपुर को हम देख चुके हैं अन्य स्थान है नवन्दगढ़ सिमरून, दरभङ्गा पूर्णिया तथा मोतिहारी। अन्तिम तीनों नगर अब भी बसे हुए हैं एवं सर्व ज्ञात है परन्तु सिमरून पिछले ५५० वर्षों से निर्जन है जबकि नवन्दगढ़ सम्भवतः १५ शताब्दियों से निर्जन पड़ा है। श्री होदगमन ने सिमरून का उल्लेख किया है परन्तु इसकी सम्भावित प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विचार प्रगट करने से पूर्व इसके खण्डहरों का सर्वेक्षण आवश्यक है। मैं स्वयं १८६२ ई० में नवन्दगढ़ गया था और मेरे विचार में यह उत्तरी भारत का प्राचीनतम एवं सर्वाधिक रुचि पूर्ण स्थान है।

नवन्दगढ़ अथवा नौनदगढ़ एक ध्वस्त दुर्ग है जो शिखर पर २५० फुट से ३०० फुट वर्गाकार एवं ८० फुट ऊँचा है। यह बेतिया से १५ मील उत्तर उत्तर पश्चिम में एवं गण्डक नदी के निकटतम बिन्दु से १० मील दूर लौरिया के विशाल गाँव के समीप अवस्थित है। प्राचीन खण्डहरों में एक उत्कृष्ट शिला स्तम्भ है जिसके ऊपर शेर बना हुआ है एवं इस पर अशोक का लेख खुदा हुआ है। यहाँ पर मिट्टी की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीन पंक्तियाँ भी हैं जिनमें दो पंक्तियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर जाती है तथा तीसरी पंक्ति पूर्व से पश्चिम की ओर। हमें सामान्यतः जो स्तूप दिखाई देते हैं वह पत्थर अथवा ईंटों के बने होते हैं परन्तु प्राचीनतम स्तूप केवल मिट्टी के टीले हुआ करते थे और मैंने ऐसे जितने भी स्तूप देखे हैं उनमें यह स्तूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण है मेरा विश्वास है कि यह बौद्ध धर्म के उत्थान से पूर्व कालीन राजाओं के स्मारक हैं और इन्हें ६०० से १५०० ई० पू० के समय का स्वीकार किया जा सकता है। इनमें प्रत्येक को केवल भिसा अथवा 'टीला' कहा जाता है परन्तु सम्पूर्ण स्थान को राजा उत्तान पात के मन्त्रियों का कोट अथवा मोर्चाबन्द निवास स्थान माना जाता है जबकि नवन्द गढ़ का दुर्ग राजा का निजी निवासस्थान था। स्तूप शब्द का मूल अर्थ केवल "मिट्टी का टीला" है और मि० कोलब्रुक ने 'अमर कोष' के अपने अनुवाद में इस का यही अर्थ दिया है। मेरा विश्वास है कि मिट्टी के यह स्तूप अथवा नवन्द गढ़ के चैत्यास उन स्तूपों में सम्मिलित रहे होंगे जिनकी ओर व्रिजी के सम्बन्ध में आनन्द से पूछे छटे प्रश्न में बुद्ध ने संकेत किया था।" आनन्द ! तुमने सुना होगा कि वज्जियान, चाहे उनसे सम्बन्धित वज्जियान चैत्यानी की संख्या कितनी ही क्यों न हो, चाहे वह नगर के भीतर अवस्थित हो अथवा बाहर, उनका सम्मान, प्रतिष्ठा बनाये रखते हैं तथा वहाँ भेट चढ़ाते हैं और वह प्राचीन भेंट, प्राचीन प्रतिष्ठा एवम् प्राचीन त्याग को बनाये रखते हैं।" अब, यह चैत्यानी बौद्ध स्तूर नहीं हो सकते हैं क्योंकि बुद्ध ने अपने जोवन काल में यह प्रश्न किया था। तदनुसार लङ्का की अट्टकथा के लेखक ने लिखा है कि वह यखथानोनी अर्थात यक्ष अथवा राक्षस पूजा से सम्बन्धित हैं। यखस अथवा संस्कृत यक्ष तथा जक्ष कुबेर के दास तथा कोष रक्षक थे और उनके मुख्य निवास स्थान को अलकपुर कहा जाता था। अब, गण्डक के आस पास किसी स्थान पर अलकप्पो नामक नगर है जहाँ बलया अथवा बुलुका नामक जाति का निवास है जिन्हें बुद्ध के अवशेषों का अधिकांश भाग प्राप्त हुआ था। अतः यह सम्भव है कि अलकप्पो का यह नगर यक्ष पूजा से सम्बन्धित रहा हो तथा नवन्दगढ़ के पूर्व बुद्ध कालीन स्तूर व्रिज्जियों के चैत्य थे और बुद्ध ने इन्हीं की ओर संकेत किया था। यदि ऐसा है तो अलकप्पों के बलया अथवा बुलुका व्रिज्जियों के आठ वंशो में रहे होंगे और अलकप्पों के गण्डक नदी के समीप होने के कारण उपर्युक्त निष्कर्ष अधिकसम्भवित प्रतीत होता है।

नेपाल

व्रिजी से चीनी तीर्थ यात्री नी-पो-लो अथवा नेपाल गया था जिसे उसने १४०० अथवा १५०० ली यानी २३३ से २५० मील उत्तर पश्चिम में बताया है। जनकपुर से नेपाल ओर दो मार्ग जाते हैं एक कमला नदी के मार्ग से दूसरा भागमती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा भगवती नदी के मार्ग से परन्तु किसी भी मार्ग से यह दूरी १५० मील से अधिक नहीं है। देश की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील बताई गई है जो अत्याधिक कम है। इस परिधि में यदि सप्त कोसिकी अथवा कोसी नदी की सात शाखाओं पर खास नेपाल जिले को लिया जाये तो तीर्थ यात्री के आंकड़ शुद्ध हो सकते हैं परन्तु इस परिस्थिति में गण्डक नदी का तटीय पर्वतीय प्रदेश अलग राज्य रहा होगा जो अत्यधिक असम्भावित है। अतः मैं दोनों नदियों की घाटी को नेपाल में सम्मिलित एवं ह्वेनसांग के आंकड़ों को परिवर्तन कर ६००० ली अथवा १००० मील स्वीकार करूँगा जो दोनो घाटियों के वास्तविक आकार के समान है।

नेपाल का राजा लिच्छवी जाति का क्षत्रिय था जिसका नाम अन्सु वर्मा था जो सम्भवतः स्थानीय इतिहास का अंघु वर्मा था क्योंकि वह विजेताओं के नेवारित अथवा नेवार परिवार का सदस्य था। लिच्छवी होने के नाते अन्सु वर्मा एक विदेशी अर्थात वैशाली का एक व्रिजी रहा होगा। इसी प्रकार तिथियों में भी समानता है क्योंकि अंशु वर्मा राघव देव ने ८८० ई० में नेवार वंश की स्थापना की थी। प्रत्येक शासक के लिये १६ वर्षो का राज्य काल निर्धारित करने से अन्घु वर्मा के राज्यारोहण को ६२५ ई० में निश्चित किया जा सकता है और ६३७ ई० में ह्वेनसांग की यात्रा उसके शासन काल के अन्तिम वर्षों में हुई होगी।

यह बात उल्लेखनीय है कि तिब्बत एवं लद्दाख के शासक भी लिच्छवियों के वन्शज होने का दावा करते हैं परन्तु यदि उनका दावा उचित है तो वह निश्चित ही परिवार की नेपाली शाखा के सदस्य रहे होंगे। अब कहा जाता है कि नेपाल की विजय नेवारित ने की थी जो अन्घु वर्मा से ३७ वां पूर्ववर्ती शासक था और १७ वर्ष की दर से ६२६ वर्ष पूर्व अर्थात ४ ईसवी पूर्व में उसका राज्यारोहण हुआ होगा। तिब्बती इतिहास न्याखरी त्सान्पो के राज्यारोहण से प्रारम्भ होता है जिसका समय ल्हा थोथोरी (४०७ ई०) से ५०० वर्ष पूर्व अर्थात ६३ ई० पूर्व निर्धारित की गई है। परन्तु चूंकि ल्हा थोथोरी के पांचवें उत्तराधिकारी का जन्म ६२७ ईसवी में हुआ था अतः उपर्युक्त (४०७ ईसवी की) तिथि में प्रायः १५० वर्षों की त्रुटि हुई है। इस प्रकार प्रथम शासक की तिथि को निर्धारित करने से लिच्छवियों की विजय को ५० ईसवी अर्थात नेपाल विजय से दो पीढ़ी उपरान्त ही निर्धारित किया जा सकता है।

मगध

नेपाल से ह्वेनसांग वैशाली वापस गया और तदोपरान्त दक्षिण दिशा में यात्रा करते हुए गङ्गा नदी को पार कर वह मगध की राजधानी में प्रविष्ट हुआ। उसने लिखा है कि नगर का मूल नाम कुसुमपुर था, यह दीर्घ काल से निर्जन था। एवं उस समय जर्जर अवस्था में था। पाटली पुत्र पुर के नवीन नगर को छोड़ इसकी परिधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७० ली अथवा ११$\frac{२}{३}$ मील थी। इस नाम को यूनानियों ने मेगस्थनीज के आधार पर आंशिक रूप से परिवर्तन कर पालीबोथ्रा बना दिया था। मेगस्थनीज के विवरण को एरियन ने सुरक्षित रखा है।" भारत का मुख्य नगर दो महान नदियों अर्थात एरन्नोबोअस एवं गङ्गा नदी के सङ्गम स्थान के समीप प्रासी की सीमाओं में अवस्थित पालीबोथ्रा है। एरन्नोबोअस सम्पूर्ण भारत की तीसरी बड़ी नदी समझी जाती है और इसकी गणना सिन्धु एवं गङ्गा के बाद, की जाती है। अन्त में यह अन्तिम नाम की नदी में मिल जाती है। मेगस्थनीज ने हमें आश्वासन दिया है कि इस नगर की लम्बाई ८० स्टेडिया एवं चौड़ाई १५ स्टेडिया थी। यह चारों ओर एक खाईं से घिरा हुआ था जिसका कुल क्षेत्र ६ एकड़ था एवं गहराई ३० क्यूबिट फुट थी। इसकी दीवारें ५७० प्राचीरों एवं ६४ द्वारों से सुसज्जित थीं।" इस विवरण के अनुसार सिल्यूकस निकेटर के समय मगध की राजधानी की परिधि २२० स्टेडिया अथवा २५$\frac{१}{४}$ मील थी। यह पटना के आधुनिक नगर के विस्तार से प्राय: मिलता है जो बुचनन के सर्वेक्षणानुसार ६ मील लम्बा तथा २$\frac{१}{४}$ मोल चौड़ा था अथवा जिसकी परिधि २१$\frac{१}{४}$ मील थी। अत: हम सरलता पूर्वक यह स्वीकार कर सकते हैं कि सातवीं शताब्दी में कुसुमपुर का प्राचीन नगर आकार में उपर्युक्त आकार का आधा अर्थात ह्वेनसांग के कथनानुसार ११ मील रहा होगा।

दिवोडोरस ने नगर की स्थापना का श्रेय हेराक्लीज को दिया है। सम्भवत: उसका संकेत कृष्ण के भ्राता बलराम की ओर था परन्तु नगर की इस प्राचीन स्थापना को स्थानीय पुस्तकों में समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है। वायु पुराण के अनुसार कुसुमपुर अथवा पाटलीपुत्र नगर की स्थापना बुद्ध के समकालीन अजात शत्रु के पौत्र राजा उदयास्व ने करवाई थी। परन्तु महावन्शों में उदय को अजात शत्रु का पुत्र बताया गया है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार राजगृह से वैशाली तक अपनी अन्तिम यात्रा में जब बुद्ध ने गङ्गा नदी को पार किया तो मगध के राजा अजात शत्रु के दो मन्त्री वज्जियानों अथवा व्रिजी निवासियों को रोकने के उद्देश्य से पाटली गाँव के स्थान पर एक दुर्ग के निर्माण कार्य में व्यस्त थे। बुद्ध ने उस समय भविष्यवाणी की थी कि यह एक प्रसिद्ध नगर बन जायेगा। इन सभी समान विवरणों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पाटलीपुत्र नगर की स्थापना का कार्यारम्भ वस्तुत: अजातशत्रु के समय में हुआ था परन्तु यह कार्य उसके पुत्र अथवा पौत्र उदय के शासन काल तक अर्थात ४५० ई० पू० तक पूरा नहीं हुआ था।

गङ्गा एवम् एरान्नोबोअस नदियों के सङ्गम स्थान पर नगर की स्थिति को सर्व प्रथम गण्डक अथवा हिरण्यवती का सङ्गम स्थान समझा जाता था। यह नदी पटना के विपरीत गङ्गा नदी में गिरती है। परन्तु श्री रेवनशा ने स्पष्ट निर्णय दिया है कि सोन नदी पूर्व काल में पटना नगर से कुछ ऊपर गङ्गा नदी में गिरती थी। चूंकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोन 'अथवा सोना' नदी को इसकी सुनेहरी बालू के कारण हिरण्य बाह भी कहा जाता था अतः नाम एवम् स्थिति दोनों में इनकी अनुरूपता पूर्ण हो जाती है।

स्ट्रैबो एवम् प्लिनी पाली बोथरा के निवासियों को प्रासी नाम से पुकारने में एरियन से सहमत हैं। आधुनिक लेखक एकमत से प्रासी को संस्कृत प्राच्य अथवा "पूर्वी" शब्द से सम्बन्धित करते हैं। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रासी पलासिया अथवा परासिया अर्थात "पलास अथवा परास के निवासो" का केवल यूनानी स्वरूप है। पलास अथवा परास मगध का एक वास्तविक एवम् सर्व प्रसिद्ध नाम है जिसकी राजधानी पालीबोथरा थी। यह नाम पलास से लिया गया था जो इस प्रान्त में वर्तमान समय में भी उतनी ही प्रचुर मात्रा में उगता है जितना ह्वेनसांग के समय में उगता था। नाम का सामान्य स्वरूप परास है परन्तु शीघ्रता से उच्चारण करते समय प्रास बन जाता है जिसे मैं यूनानी प्रासी का मूल स्वरूप समझता हूँ। कर्टियस द्वारा दिये गये हिज्जों से उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि होती है। कर्टियस ने यहाँ के निवासियों को परसी कहा है जो भारतीय नाम परासिया का प्रायः ठीक अनुवाद है।

ह्वेनसांग के अनुमानानुसार मगध प्रान्त की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। उत्तर में यह गङ्गा नदी, पश्चिम में बनारस जिले, पूर्व में हिरण्य पर्वत अथवा मुंगेर तथा दक्षिण में किरन सुवर्ण अथवा सिंह-भूमि से घिरा हुआ था। अतः इसकी सीमायें पश्चिम में कर्म-नासा नदी एवम् दक्षिण में दामूद नदी के उद्गम स्थान तक विस्तृत रही होंगी इन सीमाओं की परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ७०० मील अथवा मार्ग दूरी से प्रायः ९०० मील होगी।

चूंकि मगध, एक धार्मिक सुधारक के रूप में बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित स्थान था अतः भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ बौद्ध धर्म से सम्बन्धित पवित्र स्थानों की संख्या अधिक है। मुख्य स्थान बुद्ध गया, कुक्कुत्तपद, राजगृह, कुसाग्रहपुर, नालन्दा, इन्द्रशिला कुहा, तथा कपोतिक मठ हैं। इन सभी स्थानों का भिन्न भिन्न उल्लेख किया जायेगा जबकि अपेक्षाकृत साधारण स्थानों का उल्लेख ह्वेनसांग के मुख्य स्थानों की मार्ग यात्रा के विवरण के साथ किया जायेगा।

बुद्ध गया

पाटलीपुत्र छोड़ने पर ह्वेनसांग ने नगर के दक्षिण पश्चिमी कोण से यात्रा प्रारम्भ की और १०० ली अथवा १६⅔ मील दक्षिण पश्चिम में ती-लो-शी किया अथवा ती-लो त्सी किया मठ तक गया जहाँ से उसने उसी दिशा में ९० ली अथवा ५ मील दूर एक उन्नत पर्वत तक अपनी यात्रा जारी रखी। इसी पर्वत के शिखर से बुद्ध ने मगध राज्य का अनुमान लगाया था। तदोपरान्त वह ३० ली अथवा ५ मील बुक उत्तर पश्चिम की ओर एक पहाड़ी के अधोभाग पर अवस्थित एक अत्याधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशाल मठ तक गया जहाँ गुणमति ने एक सन्यासी को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। तत्पश्चात दक्षिण पश्चिम दिशा में २० ली अथवा ३⅓ मील तक अपनी यात्रा जारी रखते हुए वह एक एकान्त पहाड़ी एवम् शिल भद्रा मठ पर पहुँचा और उसी दिशा में पुनः ४० अथवा ५० ली, ७ अथवा ८ मील की दूरी पर नी-लीन-शेन अथवा नैरंजन नदी को पार कर किया-यी अथवा गया नगर में प्रवेश किया।

इस मार्ग में उल्लिखित स्थानों में किसी की पहचान करने से पूर्व मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि इस मार्ग में दिकांश एवम् दूरी में अनेक त्रुटियाँ हैं जिन्हें सुधारना आवश्यक है। चूँकि गया पटना से ठीक दक्षिण में है अतः दक्षिण पश्चिम दिशा को केवल दक्षिण पढ़ना चाहिये। सभी स्थानों की कुल दूरी केवल २३० ली अथवा ३८ मील बनती है जबकि पटना एवम् गया की वास्तविक दूरी मुख्य मार्ग से ६० मील है जबकि ह्वेनसांग ने जिस मार्ग का अनुसरण किया उसके अनुसार यह दूरी प्रायः ७० मील है। अतः इसकी यात्रा की कुल दूरी उसकी वास्तविक यात्रा से २०० ली अथवा ३३ मील कम है। इस संख्या को मैं दो समान भागों में विभाजित करूँगा और उनका प्रत्येक भाग ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित प्रथम दो दूरियों में जोड़ दूँगा।

दिकांश एवम् दूरी की उपर्युक्त शुद्धि को स्वीकार करते हुए ती-लो-त्सी किया अथवा तिलदक मठ के स्थान को पटना नगर के दक्षिण-पश्चिमी कोण के दक्षिण में २०० ली अथवा ३३ मील पर अथवा फमगू नदी के पूर्वी तट पर तिल्लार नगर के स्थान पर निश्चित किया जा सकता है। तिलदक की वास्तविक स्थिति यही थी इस तथ्य को तीर्थ यात्री ने अपने पश्चातवर्ती कथन में स्वीकार किया है। चीन वापसी के समय नालन्दा मठ को छोडते समय वह सीधे तिलदक गया जिसे उसने नालन्दा के ३ योजन अथवा २१ मील पश्चिम में बताया है। अब मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि नालन्दा की स्थिति राजगीर के ६ मील उत्तर में बरागाँव के स्थान पर थी तथा बरागाँव से तिल्लार तक की दूरी सीधी रेखा से १७ मील एवं मार्ग दूरी से प्रायः २० मील है।

तत्पश्चात ह्वेनसांग उस उन्नत पर्वत पर गया था जहाँ से बुद्ध ने मगध देश का अनुमान लगाया था। मेरी प्रस्तावित शुद्धि से इस पर्वत को तिलदक अथवा तिल्लार के १९० ली अथवा ३२ मील दक्षिण में एवम् गया के ७० मील उत्तर पूर्व में देखा जाना चाहिए। उपर्युक्त दिकांश एवम् दूरी से पर्वत को वजीर गञ्ज से ३ मील उत्तर पश्चिम में किसी स्थान पर तथा अमेठी से लगभग इतनी ही दूरी पर गिरयक एवम् गया की मध्यवर्ती उन्नत पहाड़ियों में निश्चित किया जा सकता है। अच्छा हुआ कि इन पहाड़ियों का उल्लेख आ गया। इससे मार्ग के प्रथम भाग की दूरी को शुद्ध करने की आवश्यकता का पता चलता है क्योंकि पटना से निकटतम पहाड़ी ५० मील से अधिक दूरी पर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध के पर्वत से तीर्थ-यात्री ३० ली अथवा ५ मील उत्तर पश्चिम में गुणमति के विशाल मठ तक गया जो पर्वतों के एक दर्रे में एक ढलवान पर अवस्थित था। दिकांश एवम् दूरी निदावर के समीप पेवर नदी के पूर्वी तट पर पहाड़ियों की निचली श्रेणी की ओर संकेत करते हैं। गुनमति मठ से ह्वेनसांग २० ली अथवा ३½ मील दक्षिण पश्चिम में सीलभद्र मठ तक गया जो एक एकान्त पहाड़ी पर अवस्थित था। मेरे विचार में इस स्थिति को बिथावा नाम की एक एकान्त पहाड़ी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो निदावत के ३ मील दक्षिण पश्चिम में पेवर नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। बिथा नाम-जिसका अर्थ कृतिम टीला है—सम्भवतः सीलभद्र के ध्वस्त मठ की ओर संकेत करता है।

इस स्थान से तीर्थ-यात्री ४० अथवा ५० ली, ७ अथवा ८ मील दक्षिण पश्चिम की ओर गया तथा निरन्जन नदी को पार करते हुए उसने गया नगर में प्रवेश किया। इस नदी को अब फलगू कहा जाता है और लिलाजन अथवा निलन्जन नाम पश्चिमी शाखा तक सीमित है जो गया से ५ मील ऊपर मोहिनी नदी में गिरती है। नगर की जनसंख्या अधिक नहीं थी परन्तु यहाँ ब्राह्मणों के १००० परिवार थे। नगर को बुद्ध गया से भिन्न दिखाने के लिये इसे आज भी ब्रह्म गया कहा जाता है।

नगर से ५ अथवा ६ ली अथवा १ मील दक्षिण पश्चिम में गया पर्वत है जो भारतीय जनता में दैवी पर्वत के रूप में ज्ञात है। इस पहाड़ी को अब ब्रह्मजून अथवा ब्रह्मयोनि कहा जाता है और अशोक के स्तूप के स्थान पर अब एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। पहाड़ी के दक्षिण पूर्व में तीन कश्यपों के स्तूप हैं इनसे पूर्व की ओर एक विशाल नदी (फलगू) के पार पो-लो-की-पू-तो नामक एक पर्वत था जिसके शिखर पर बुद्ध एकान्त वास करने के लिये गये थे। इससे पूर्व उन्होने ६ वर्षों तक मौनव्रत रखा परन्तु तदोपरान्त मौनव्रत तोड़ने पर उन्होंने चावल एवम् दूध ग्रहण किया तथा उत्तर पूर्व की ओर जाते हुए उन्होंने इस पर्वत को देखा परन्तु पर्वत देवता के विघ्न के कारण वह दक्षिण पश्चिम की ओर से नीचे चले गये जहाँ से वह १५ ली अथवा २½ मील दक्षिण पश्चिम में बौद्ध गया के स्थान पर पीपल के प्रसिद्ध वृक्ष तक पहुँचे थे। अन्तिम दूरी एवम् दिकांश से पता चलता है कि प्राग बोधी पर्वत वर्तमान समय का मोरत पहाड़ है क्योंकि दक्षिणी पश्चिमी कोण बौद्ध गया से ठीक २½ मील की दूरी पर है। नीचे जाते हुए लगभग आधे मार्ग पर एक कन्दरा थी जहाँ बुद्ध ने विश्राम किया था एवम् वह पद्मासन में बैठे थे। फाहियान ने इस कन्दरा का उल्लेख किया है और इसे बोधी वृक्ष से आधा योजन अथवा ३½ मील उत्तर पूर्व की ओर बताया है। अतः पर्वत के दक्षिणी छोर से इसकी दूरी प्रायः एक मील थी। मुझे सूचना मिली थी कि पश्चिमी भाग में अब भी एक कन्दरा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्वेनसांग ने गया अथवा ब्रह्म जून से पूर्वी पर्वत की दूरी का उल्लेख नहीं किया है जो प्रायः ४ मील अथवा २४ ली है । पूर्ववर्ती तीर्थ-यात्री फाहियान का उल्लेख यहाँ महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उसने किया-यी अथवा गया से बोधी वृक्ष के पड़ोस तक की दूरी को केवल २० ली अथवा ३⅓ मील कहा है जबकि वास्तविक दूरी ५ मील अथवा ३० ली से अधिक है ।

बौद्ध गया पवित्र पीपल वृक्ष के कारण प्रसिद्ध था जिसके नीचे शाक्य सिन्हा पाँच वर्षों तक तपस्या करते रहे और अन्त में उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ । यह प्रसिद्ध बोधी द्रम अथवा "बोधी वृक्ष" आज भी खड़ा है यद्यपि यह अत्यधिक जर्जर अवस्था में है । वृक्ष के समीप ही पूर्व दिशा में ईंटों का बना एक मन्दिर है जिसका निचला भाग ५० वर्ग फुट है एवम् जो १६० फुट ऊँचा है । निस्सन्देह यह वही बिहार है जिसे ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्शी में देखा था क्योंकि उसने इसे बोधी वृक्ष के पूर्व में बताया था और इसका वर्णन करते हुए उसने इसे निचले भाग पर २० पद वर्गाकार एवम् १६० से १७० फुट ऊँचा बताया है ।

कुक्कुतपद

बोधी द्रम से ह्वेनसांग ने निरंजन नदी को पार किया तथा गन्ध हस्ती नामक स्तूप पर गया जिसके समीप एक सरोवर एवम् शिला स्तम्भ था । बौद्ध गया से प्रायः १ मील दक्षिण पूर्व में लिलाजत नदी के पूर्वी तट पर बकरोर नामक स्थान पर उपर्युक्त स्तूप के अवशेष एवम् स्तम्भ का निचला भाग आज भी देखे जा सकते हैं ।

पूर्व दिशा में यात्रा करते हुए तीर्थ यात्री ने मो हो अथवा मोहना नदी को पार किया एवम् एक विशाल वन में प्रवेश किया जहाँ उसने एक अन्य शिला स्तम्भ देखा था । तत्पश्चात १०० ली अथवा लगभग १७ मील उत्तर-पूर्व वह क्यू-क्यू-चा-पो-थो अथवा कुक्कुत्तपद पर्वत पर पहुँचा जो अपनी तीन चोटियों के कारण महत्वपूर्ण है । फाहियान के विवरण के अनुसार कुक्कुत्तपद पहाड़ी का अधोभाग बौद्ध गया के पवित्र वृक्ष के दक्षिण में ३ ली अथवा आधे मील की दूरी पर था । तीन ली के स्थान पर हमें ३ योजन अथवा २१ मील पढ़ना चाहिये जो ह्वेनसांग द्वारा कथित १७ मील की दूरी एवम् दोनों नदियों को पार करने की २ मील को दूरी सहित कुल मिलाकर १६ मील की दूरी से मिलती है ।

मैं इस स्थान को वर्तमान कुर्कीहार के अनुरूप स्वीकार कर चुका हूँ जो यद्यपि मानचित्र में नहीं दिखाया गया है फिर भी गया एवम् बिहार के नगरों के मध्यवर्ती क्षेत्र में सम्भवतः सबसे बड़ा स्थान है । यह वजीरगंज के ३ मील उत्तर-पूर्व में, गया से १७ मील उत्तर-उत्तर पूर्व एवम् बौद्ध गया से २० मील उत्तर पूर्व में है । कुर्कीहार का वास्तविक नाम कुर्क बिहार बताया जाता है जो मेरे विश्वासानुसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुक्कुत्तपद बिहार का केवल संक्षिप्त स्वरूप है क्योंकि संस्कृत कुक्कुत्त एवम् हिन्दी का कुक्कुर अथवा कुरक समान शब्द हैं। अतः वर्तमान कुर्कीहार नाम एवं स्थिति में बौध धर्मावलम्बियों के कुक्कुत्तपद पहाड़ी से मिलता है। परन्तु इस भू-भाग में तीन शिखरों वाली कोई पहाड़ी नहीं है परन्तु गाँव से लगभग आधा मील उत्तर की ओर तीन ऊँची नीची पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं और चूंकि परस्पर समीप होने के कारण इनके अधोभाग मिलते हुए प्रतीत होते हैं अतः इन्हें ह्वेनसांग की तीन चोटियों वाली पहाड़ी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। यह अनुरूपता उन अनेक ध्वस्त टीलों की उपस्थिति से प्रमाणित होती है जिनसे अनेकानेक बौद्ध मूर्तियाँ एवम् प्रतिज्ञित स्तूप प्राप्त हुए हैं।

कुसागरापुर

कुक्कुत्तपद पहाड़ी से तीर्थ यात्री १००० ली अथवा १७ मील दूर फो-थो-फा-ना अथवा बुद्धवन गया था। दिकांश एवम् दूरी उस उन्नत पहाड़ी की ओर संकेत करते हैं जिसे बुद्धियान कहा जाता है और जिसे इसकी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण त्रिकोण-मति सम्बन्धी सर्वेक्षण का एक केन्द्र बनाया गया था। सीधी रेखा पर इसकी दूरी १० मील से अधिक नहीं है परन्तु चूंकि सम्पूर्ण मार्ग पर्वतीय एवम् घुमावदार है अतः वास्तविक दूरी १५ अथवा १६ मील से कम नहीं हो सकती। यहाँ से ३० ली अथवा ५ मील पूर्व में उसने प्रसिद्ध यश्तीवन की यात्रा की थी। यह नाम जखतीबन के रूप में आज भी सर्व ज्ञात है जो संस्कृत शब्द का केवल हिन्दी रूपान्तर है। यह स्थान बुद्धियान पहाड़ी के पूर्व में कुसागरापुर के प्राचीन ध्वस्त नगर की ओर जाने वाले मार्ग पर अवस्थित है और आज भी ठहरने के उद्देश्य से यहाँ अनेक व्यक्ति आया करते हैं। यहाँ से तीर्थ यात्री १० ली अथवा २ मील दक्षिण पश्चिम की ओर एवम् एक उन्नत पर्वत के दक्षिण में अवस्थित दो गरम सरोवरों तक गया जहाँ जनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध ने स्नान किया था। यह सरोवर वर्तमान समय में भी जखतीबन से दो मील दक्षिण में तपोबन नामक स्थान पर हैं। यह नाम तप्प पानी अथवा 'गरम जल' का संक्षिप्त स्वरूप है। बम्बु बन के दक्षिण पूर्व में ६ अथवा ७ ली अथवा एक मील से कुछ अधिक दूरी पर एक उन्नत पर्वत था जहाँ सम्राट बिम्बसार द्वारा निर्मित पत्थरों का एक बान्ध था। यह पर्वत हन्डिया की उन्नत पहाड़ी के अनुरूप है जो १४६३ फुट ऊँची है एवम् जो महान त्रिकोणमति सर्वेक्षण का एक केन्द्र थी। यहाँ से ३ अथवा ४ ली अथवा आधा मील उत्तर की ओर एक एकान्त पहाड़ी थी। आज भी उस मकान के अवशेष देखने को मिलते हैं जहाँ पूर्ववर्ती समय में महर्षि व्यास रहा करते थे। उत्तर पूर्व में ४ अथवा ५ ली अथवा ¾ मील की दूरी पर एक छोटी पहाड़ी थी जहाँ पत्थरों को काट-काट कर गृह बनाये गये थे। साथ ही यहाँ एक पत्थर था जहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवान इन्द्र एवम् ब्रह्मा ने बुद्ध के शरीर पर लगाने के उद्देश्य से गोर्सीरस नामक चन्दन की लकड़ी एकत्रित की थी । दोनों स्थानों की पहचान नहीं की जा सकी है परन्तु सावधानी पूर्वक निरीक्षण करने से चन्दन की लकड़ी के पत्थर का पता लगाया जा सकता है क्योंकि इसके समीप ही एक अति विशाल कन्दरा थी जिसे जनसाधारण "असुरों का राजमहल" कहा करते थे। इस स्थान से ६० ली अथवा १० मील की दूरी पर तीर्थ यात्री क्यू-शी-की-लो-पू-लो अथवा कुसागार-पुर अर्थात "कुश-घास के नगर" पहुँचा था।

कुसागरापुर मगध की प्राचीन राजधानी थी जिसे राजगृह अथवा 'राजकीय निवास स्थान कहा जाता था। इसे गिरिवराज अथवा 'पहाड़ियों से घिरा हुआ" भी कहा जाता था जो 'पर्वतों से घिरे हुए स्थान' के रूप में ह्वेनसांग के वर्णन से सहमत है। रामायण एवम् महाभारत दोनों में ही गिरिव्रज नाम मगध के राजा जरासन्ध की प्राचीन राजधानी को दिया गया है जो १४२६ ई० पू० के महान युद्ध का एक मुख्य नायक था। चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने नगर को पाँच पहाड़ियों की मध्यवर्ती घाटी में राज गृह के नवीन नगर से ४ ली अथवा ¾ मील दक्षिण में अवस्थित बातया है। ह्वेनसांग ने समान दूरी एवम् समान स्थिति का उल्लेख किया है एवं दो गरम सरोवरों का उल्लेख किया है जिन्हें आज भी देखा जा सकता है। फाहियान ने आगे लिखा है कि "पाँचों पहाड़ियां नगर के चारों ओर दीवार के समान कमरबन्द बनाती थी" यह प्राचीन राज गृह अथवा जन साधारण में प्रचलित पुराना राजगीर का सही वर्णन है। टर्नौर ने लङ्का की पाली पुस्तकों से इसी वर्णन को लिया है। इन पुस्तकों में पाँच पहाड़ियों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं गिजभकूटो, इसगिली, वेभारो, वेपुलो तथा पाण्डवों। महाभारत में पाँच पहाड़ियों को वैहर वराहा, वृषभ ऋषिगिरि एवं चैत्वक कहा गया है परन्तु वर्तमान समय में उन्हें बैभर गिरि, विपुलगिरि रत्नागिरि, उदय गिरि तथा सोनगिरि कहा जाता है।

बैभार पर्वत के जैन मन्दिरों के लेखों में इस नाम को बैभार अथवा किसी स्थान पर व्यवहार लिखा गया है। निःसन्देह यह पाली ग्रन्थों का वेभार पर्वत है जिसके किनारे पर सर्व प्रसिद्ध सत्तपन्नो कन्दरा थो जिसके समीप ५४३ ई० पू० में प्रथम बौद्ध सम्मेलन हुआ था। मेरा विश्वास है कि यह कन्दरा आज भी सोन भण्डार के नाम से पर्वत के दक्षिणी भाग में देखी जा सकती है परन्तु ह्वेनसांग के विवरणानुसार इसे पर्वत के उत्तरी छोर पर देखा जाना चाहिये। तिब्बती डुल्वा में इसे 'न्याग्रोध की कन्दरा' कहा गया है।

रत्नागिरि सोन भण्डार कन्दरा से ठीक पूर्व एक मील की दूरी पर हैं। यह स्थिति फाहियान द्वारा कथित 'पीपल वृक्ष की कन्दरा' की स्थिति से मिलती है जिसमें बुद्ध भोजनोपरान्त मनन किया करते थे। यह प्रथम सम्मेलन की कन्दरा से ५ अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६ ली (लगभग एक मील) पूर्व में थी। अतः रत्नगिरि की पहाड़ी पाली ग्रन्थों के पाण्डो पर्वत के अनुरूप है जहाँ बुद्ध रहा करते थे और जिसे ललित विस्तार में सदैव "पर्वतों का राजा" कहा गया है। प्राचीन राजगृह से एक घुमावदार एवं काट-काट कर बनाया गया मार्ग रत्नागिरि के शिखर पर एक छोटे जैन मन्दिर तक जाता है जहाँ जैन धर्मावलम्बी निरन्तर आया करते हैं। मैं इसे महाभारत के ऋषिगिरि के अनुरूप समझता हूँ।

विपुल पर्वत स्पष्ट रूप से पाली ग्रन्थों के वेपुलो के अनुरूप है और चूंकि अब इसके शिखर पर उन्नत स्तूप अथवा चैत्य के खण्डहर फैले हुए है जिसका ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है अतः मैं इसे महाभारत के चैत्यक पर्वत के अनुरूप स्वीकार करता हूँ। अन्य दोनों पर्वतों के सम्बन्ध में मैं तत्काल कोई विवरण नहीं दे सकता परन्तु मैं यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि इनके शिखरों पर भी छोटे-छोटे जैन मन्दिर बने हुए हैं।

फाहियान के अनुसार पहाड़ियों का मध्यवर्ती प्राचीन नगर पूर्व से पश्चिम ५ अथवा ६ ली तथा उत्तर से दक्षिण ७ अथवा ८ ली था अर्थात इसकी परिधि २४ से २८ ली अथवा ४½ मील थी। ह्वेनसांग के अनुसार इसकी परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी जबकि इसकी अधिकांश लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर थी। मैंने प्राचीन दीवारों का सर्वेक्षण किया था जिसके अनुसार इसकी परिधि २४,५०० फुट अथवा ४⅗ मील बनती है जो दोनों तीर्थ यात्रियों के अनुमान के मध्य है। अधिकांश लम्बाई उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व है अतः जहाँ तक नगर की लम्बाई का प्रश्न है दोनों यात्रियों के कथनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सम्भवतः दोनों ने पूर्व में नेकपाई बान्ध से उत्तर पश्चिम के किसी स्थान तक लम्बाई का अनुमान लगाया होगा (मेजर किटोई ने इसका वर्णन किया है) यदि इसे दीवार के पञ्च पाण्डव कोण तक लिया जाये तो इसकी दिशा पश्चिम उत्तर पश्चिम हो जायेगी और लम्बाई ८००० फुट परन्तु यदि इसे तोरह देवी के मन्दिर तक लिया जाये तो इसकी दिशा उत्तर-उत्तर पश्चिम एवम् लम्बाई ६००० फुट से अधिक होगी।

मैं फाहियान के इस कथन को उद्धृत कर चुका हूँ कि 'पाँच पहाड़ियाँ एक नगर की दीवारों के समान कमरबन्द बनाती है।" यह कथन ह्वेनसांग द्वारा दिये गये विवरण से मिलती है जिसका कथन है कि यह चारों ओर से उन्नत पर्वतों से घिरा हुआ है जो इसकी वाह्य दीवार का काम करते हैं एवम् इस वाह्य दीवार की परिधि १५० ली अथवा २५ मील है।" इस संख्या के स्थान पर मैं इसे ५० ली ८⅓ मील पढ़ने का प्रस्ताव करता हूँ। क्योंकि अपने सर्वेक्षानुसार परिधि के समान करने के लिये यह शुद्धि आवश्यक है। पहाड़ियों के मध्य सीधी दूरी निम्न प्रकार से है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) वैभार से विपुल तक	१२,००० फुट
(२) विपुल से रत्न तक	४,५०० फुट
(३) रत्न से उदय तक	८,५०० फुट
(४) उदय से सोन तक	७,००० फुट
(५) सोन से बरिभार	९,००० फुट
कुल	४१,००० फुट

इस प्रकार कुल दूरी ८ मील से कम हैं परन्तु यदि उत्तर चढ़ाव को सम्मिलित किया जाये तो यह ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी (शुद्ध दूरी ५० ली) के प्रायः समान हो जाती है। प्राचीरों की वाह्य पंक्ति बनाने वाली प्राचीन दीवारों को अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। मैंने इन्हें विपुल गिरि से रत्नगिरि होते हुए नेकपाई बान्ध तक एवम् तत्पश्चात उदयगिरि के ऊपर एवं घाटी के दक्षिणी मुहाने से सोनगिरि तक देखा था इस मुहाने से बाहर की दीवारें जो आज भी अच्छी दशा में है १३ फुट मोटी है। ह्वेनसांग द्वारा कथित २५ मील की परिधि को प्राप्त करने के लिये इन प्राचीरों को पूर्व में गिरियेक तक ले जाना आवश्यक होगा। चूंकि गिरियेक पहाड़ी पर भी इसी प्रकार की प्राचीरें हैं अतः यह सम्भव है कि ह्वेनसांग इन्हें भी वाह्य दीवारों की परिधि में सम्मिलित करना चाहता था परन्तु यह विशाल परिधि उसके इस कथन से सहमत नहीं है कि "उन्नत पर्वत नगर को चारों ओर से घेरे हुए थे" क्योंकि शिरियेक की दूरस्थ पहाड़ी को किसी भी प्रकार से प्राचीन राजगृह का एक किनारा नहीं हो सकती थी।

राजगृह के गरम सरोवर सरस्वती नदी के दोनों तटों पर देखे जा सकते हैं। इनमें आधे सरोवर वैभार पर्वत के पूर्वी अधोभाग पर एवं अन्य अर्द्ध भाग विपुल पर्वत के पश्चिमी अधोभाग पर है। ५ प्रथम अर्द्ध भाग के सरोवरों के नाम इस प्रकार है—(१) गङ्गा यमुना, (२)अनन्त ऋषि (३) सप्त ऋषि, (४)ब्रह्मकुण्ड (५) कश्यप ऋषि, (६) व्यास कुण्ड, तथा मारकण्ड कण्ड। इनमें सर्वधिक गरम सप्त ऋषि है। विपुल पर्वत के गरम सरोवरों के नाम इस प्रकार हैं—(१) सीता कुण्ड ; (२) सूरज कुण्ड ; (३) गणेश कुण्ड ; (४) चन्द्रमा कुण्ड ; (५) रामकुण्ड ; तथा ऋङ्ग ऋषि कुण्डा अन्तिम सरोवर पर मुसलमानों ने अधिपत्य स्थापित कर लिया है जो इसे एक प्रसिद्ध फकीर लिल्ला शाह के नाम पर मखदूम कुण्ड कहा करते है। इस फकीर की समाधि सरोवर के समीप ही है। कहा जाता है कि मूल रूप में चिल्ला का चिलत्रा कहा जाता था एवं वह एक अहीर था। अतः वह अवश्य ही एक हिन्दू रहा होगा जिसने धर्म परिवर्तित कर लिया था।

ह्वेनसांग ने प्राचीन नगर से १५ ली अथवा २½ मील उत्तर-पूर्व की ओर गृद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूट की प्रसिद्ध पहाड़ी का उल्लेख किया है। फाहियान के अनुसार यह पहाड़ी नवीन नगर के दक्षिण पूर्व में १५ ली अथवा २½ मील की दूरी पर थी। अतः हमारे दोनों यात्री गिद्ध शिखर को शिला पर्वत नाम की उन्नत पहाड़ी पर निश्चित करने में सहमत हैं। परन्तु मैं इस पहाड़ी की किसी भी कन्दरा के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त नहीं कर सका। फाहियान ने इसे "गिद्ध की कन्दरा वाली पहाड़ी" कहा है तथा उसने लिखा है कि यहाँ अरहनों की अनेक सहस्र कन्दरायें थी जहाँ यह लोग तपस्या किया करते थे। मेरा अनुमान है कि यह चट्टान के साथ-साथ बनाये गये छोटे कमरे थे तथा दीवारों के गिर जाने के कारण इनके नाम भुला दिये हैं। दोनों यात्रियों की संयुक्त साक्षी इतनी ठोस है कि उसमें सन्देह नहीं किया जा सकता और भावी खोज में सम्भवतः किसी समय की इन पवित्र कन्दराओं के अवशेष प्राप्त किये जा सकें।

राजगृह

फाहियान ने राज गृह के नवीन नगर को प्राचीन नगर से ४ ली अथवा ⅔ मील उत्तर की ओर दिखाया है। यह स्थिति राजगीर नामक ध्वस्त दुर्ग की स्थिति में मिलती है।

कहा जाता है कि राजगृह के नवीन नगर का निर्माण बुद्ध के समकालीन, अजातशत्रु के पिता राजा श्रेनिक ने करवाया था जिसे विम्बसार भी कहा जाता था। अतः बौद्ध इतिहास के अनुसार इसकी स्थापना की तिथि को ५६० ई० पू० से पुराना नहीं कहा जा सकता। ह्वेनसांग के समय (६२९—६४२ ई०) में वाह्य दीवारें ध्वस्त हो चुकी थीं परन्तु भीतरी दीवारें खड़ी हुई थी एवं इनका विस्तार २० ली (३⅓ मील) था। यह कथन मेरे सर्वेक्षण के आंकड़ों से समीपता रखता है जिसके अनुसार दीवारों की परिधि ३ मील से कुछ कम थी। बुचनान ने राजगृह को असमान पंच भुजाकार कहा है जिसका व्यास १,२००० गज है। स्पष्ट है कि १२०० गज के स्थान पर त्रुटि पूर्वक १२००० गज लिखा गया है और इसे १२०० गज स्वीकार कर लेने से इसकी परिधि ११,३००० फुट अथवा २⅛ मील होगी। सम्भवतः यह भीतरी दीवारों की परिधि थी जो मेरे सर्वेक्षणानुसार १३,००० फुट थी। मेरा विचार है कि नवीन राजगृह एक असमान पञ्चकोण है जिसका एक किनारा लम्बा एवं अन्य चार किनारे प्रायः समानाकार हैं जबकि खाइयों से बाहर कुल परिधि १४,२६० फुट अथवा ३ मील से कुछ कम है।

पहाड़ी की ओर दक्षिणी भाग में २००० फुट लम्बा एवम् १५०० चौड़ा भीतरी दीवार के एक भाग को अलग कर एक दुर्ग बना लिया गया है। इस दुर्ग की कच्ची प्राचीरों को पत्थर की जिन दीवारों से रोका गया है उन्हें अनेक स्थानों पर अच्छी हालत में देखा जा सकता है। जैसा कि बुचनान ने प्रस्ताव किया है यह सम्भव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि ये दीवारें बाद में बनवाई गई हों परन्तु मेरे विचार में यह दीवारें नवीन नगर के दुर्ग की दीवारें थीं और यह दीवारें नगर की प्राचीन दीवारों की अपेक्षा अधिक सावधानी एवम् अधिक ठोस बनाये जाने के कारण एवम् सैनिक आवश्यकता के रूप में निरन्तर सुधार एवम् मरम्मत के कारण समय की ठोकरों को सहन करती रही हैं जब कि नगर की दीवारों को अनावश्यक अथवा अधिक खर्चीली समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है।

नालन्दा

राजगृह (राजगीर) से ठीक उत्तर में ७ मील की दूरी पर बरगाँव नामक एक गाँव है जो प्राचीन सरोवरों एवम् ध्वस्त टीलों से प्राय: घिरा हुआ है और मैंने जिन स्थानों की यात्रा की है उन सभी की अपेक्षा यहाँ अधिक कला पूर्ण एवं अधिक संख्या में मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। बरगाँव के अवशेषों की अधिकता को देखकर डा० बुचनान को विश्वास हो गया था कि यह किसी राजा का निवास स्थान रहा होगा और बिहार के एक जैन भिक्षु ने उसे सूचित किया था कि यह राजा श्रेनिक एवं उनके उत्तराधिकारियों का निवास स्थान था। ब्राह्मणों का विश्वास है कि यह अवशेष कुन्दिलपुर नगर के अवशेष हैं जो श्री कृष्ण की एक पत्नी रुकमणि का प्रसिद्ध जन्म स्थान था। परन्तु चूंकि रुकमणी विदर्भ अथवा बरार के राजा भीष्म की पुत्री थी अत: यह सम्भव प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों ने उसे बरार के स्थान पर बिहार समझने की त्रुटि की हो जो बरगाँव से केवल ७ मील की दूरी पर है। अत: मुझे ब्राह्मणों के कथन की सत्यता में सन्देह है, विशेष्कर जब मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि बरगाँव के अवशेष भारत में बौद्ध शिक्षा के सर्वधिक प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के अवशेष हैं।

फाहियान ने हालो की कुटिया को एकान्त चट्टान की पहाड़ी अर्थात गिरियेक से १ योजन अथवा ७ मील तथा नवीन राजगृह से भी समान दूरी पर बताया है। यह विवरण गिरियेक तथा राजगीर की स्थिति की तुलना में बरगाँव की स्थिति से मिलता है। लङ्का के पाली ग्रन्थों में भी नालन्दा को राजगृह से १ योजन की दूरी पर बताया गया है। पुन:, ह्वेनसांग ने नालन्दा को बौद्ध गया के पवित्र पीपल वृक्ष से ७ योजन अथवा ४६ मील दूर बताया है जो मार्ग दूरी के अनुसार सही है जबकि मानचित्र पर सीधो रेखा पर यह दूरी केवल ४० मील है। उसमें यह भी लिखा है कि यह नवीन राजगृह से लगभग ३० ली अथवा ५ मील उत्तर की ओर और यदि दोनों स्थानों की दूरी को प्राचीन प्राचीरों के दूरस्थ उत्तरी बिन्दु से आंका जाये तो दूरी एवं दिकांश दोनों ही बरगाँव की स्थिति की ओर संकेत करते हैं। अन्त में, इस स्थान पर मैंने दो शिलालेख प्राप्त किये थे उन दोनों में इस स्थान को नालन्दा कहा गया है।

फाहियान ने नालन्दा को सारिपुत्र का जन्म स्थान कहा है जो बुद्ध का विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुयायी था परन्तु यह कथन पूर्णतयः सत्य नहीं है क्योंकि ह्वेनसांग के विस्तृत वर्णन से हमें पता चलता है कि सारि पुत्र का जन्म नालन्दा एवं इन्द्र शिला गुहा के मध्य अथवा प्रथम स्थान से लगभय ४ मील दक्षिण पूर्व में कलपिका नामक स्थान पर हुआ था। नालन्दा को महा मोगलान का जन्म स्थान भी कहा गया है जो बुद्ध का दूसरा मुख्य शिष्य था परन्तु यह कथन पूर्णतयः सत्य नहीं है क्योंकि ह्वेनसांग के अनुसार महान मोगलान का जन्म नालन्दा से ८ अथवा ६ ली (१½ मील से कम) दक्षिण पश्चिम में कुलिका नामक स्थान पर हुआ था। इस स्थान को मैं बरगाँव के खण्डहरों के दक्षिण पश्चिम में १¼ मील की दूरी पर जगदीशपुर के समीप एक ध्वस्त टीले के अनुरूप सिद्ध करने में सफल हुआ हूँ।

बरगाँव के खण्डरों में ध्वस्त ईंटों के अनेक समूह हैं जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उन्नत नुकोले टीलों की पंक्ति है जो उत्तर तथा दक्षिण दिशा में फैली हुई है। यह उन्नत टीले नालन्दा के प्रसिद्ध मठ से सम्बन्धित विशाल मन्दिरों के अवशेष हैं। नालन्दा के विशाल मठ को १६०० फुट लम्बे एवं ४०० फुट चौड़े ईंटों के खण्डहरों के विशाल समूह में चतुर्भुजाकार खेतों से देखा जा सकता है। यह खेत छः छोटे मठों के आंगनों का संकेत देते हैं। ह्वेनसांग के अनुसार यह छ छोटे मठ विशाल मठ के भीतर बने हुए थे जिनमें आठ आंगन थे। इनमें पाँच मठ एक ही परिवार के पाँच शासकों द्वारा बनवाये गये थे एवं छठां मठ उनके उत्तराधिकारी द्वारा बनवाया गया था जिसे मध्य भारत का राजा कहा गया है।

मठ के दक्षिण में एक सरोवर था जिसमें नालन्दा नामक एक नाग रहा करता था और तद्नुसार इस स्थान को उसी के नाम पर नालन्दा कहा जाने लगा। आज भी ध्वस्त मठ के दक्षिण में करगिदया पोखर नामक एक छोटा सरोवर है जो नालन्दा सरोवर की स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है अतः यह सम्भवतः नाग सरोवर के अनुकूल है।

नालन्दा के खण्डहरों के चारों ओर के स्वच्छ सरोवरों का उल्लेख किये बिना मैं प्राचीन नालन्दा के समाप्त नहीं कर सकता। उत्तर पूर्व में गिदी पोखर तथा पनसोकर पोखर हैं जो एक-एक मील लम्बे हैं जबकि दक्षिण में इन्द्र पोखर है जो कम से कम ½ मील लम्बा है। अन्य सरोवर आकार में छोटे हैं और उनके विस्तृत उल्लेख की आवश्यकता नहीं है।

इन्द्र शिला गुहा

गया के पहाड़ियों की दो समानान्तर श्रेणियाँ उत्तर पूर्व में लगभग ३६ मील तक गिरियेक गाँव के विपरीत पंचान नदी तक चली गई हैं। दक्षिणी श्रेणी का पूर्वी छोर अधिक झुका हुआ है परन्तु उत्तर छोर निरन्तर ऊँचा उठा हुआ है और अचानक ही यह दो उन्नत शिखरों पर समाप्त हो जाता है जो पंचान नदी पर झुके हुए हैं। पूर्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ओर निचली चोटी पर ईंटों का बना एक ठोस बुर्ज है जो जरासन्ध-की-बैठक अथवा जरासन्ध के सिंहासन के नाम से प्रसिद्ध है जबकि पश्चिम की ओर उन्नत चोटी पर जिससे गिरियेक नाम को विशेष रूप से सम्बन्धित किया जाता है—अनेक भवनों के अवशेषों से ढका आयताकार चबूतरा बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य खण्डहर एक विहार अथवा मन्दिर था जो सबसे ऊँची चोटी पर बना हुआ है। यहाँ पहुँचने के लिये स्तम्भों वाले कमरों से गुजरने वाली कठिन सीढ़ियों को पार करना पड़ता है।

दोनों चोटियाँ अति ढलुआ मार्ग द्वारा सम्बन्धित हैं जो पूर्ववर्ती समय में गिरियेक गाँव के विपरीत पहाड़ी के अधोभाग तक चला गया था। इस मार्ग के सभी मुख्य स्थानों पर एवम् घुमाव पर ईंटों के बने स्तूप देखे जा सकते हैं जिनका व्यास ५ तथा ६ फुट से लेकर २५ फुट तक है। ऊपरी ढलवान के अधोभाग पर तथा जरासन्ध के बुर्ज से ५६ के भीतर १०० फुट वर्गाकार सरोवर बनाया गया है। यह सरोवर आंशिक रूप से खोद कर एवम् आंशिक रूप से निर्माण कार्य द्वारा पूरा किया गया है। उत्तर की ओर कुछ दूरी पर एक अन्य सरोवर है जो भवन निर्माण हेतु पत्थर निकाले जाने से बन गया था। यह दोनों सरोवर अब सूखे हुए हैं।

गिरियेक गाँव से २ मील दक्षिण पश्चिम में तथा जरासन्ध के बुर्ज से १ मील की दूरी पर पर्वत के दक्षिणी भाग में एक प्राकृतिक कन्दरा है जो वान गङ्गा नदी के स्तर से प्रायः २५० फुट ऊपर है। यह कन्दरा-जिसे गिद्ध द्वार कहा जाता है सामान्य विशवासानुसार जरासन्ध के बुर्ज से सम्बन्धित बताई जाती है परन्तु टार्च की रोशनी में निरीक्षण करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि यह कन्दरा बुर्ज की ओर जाती हुई एक प्राकृतिक दरार है परन्तु यह केवल ९८ फुट लम्बी है कन्दरा का प्रवेश द्वार १० फुट चौड़ा एवम् १४ फुट ऊँचा है परन्तु अन्तिम छोर तक पहुँचते इसकी ऊँचाई अत्यधिक कम हो जाती है। यह कन्दरा चमगादड़ों से भरी हुई है एवम् इसके वातावरण में अति कठोर उदण्डता एवम् दुर्गन्ध है। यह तथ्य ही इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि इस कन्दरा का निकास द्वार नहीं है अन्यथा इसके भीतर वायु का झोंका अवश्य मिलता। पीले भूरे पत्थरों की उन्नत उट्टानों के समोप असंख्य गिद्ध दिखाई देते हैं और कन्दरा के प्रवेश द्वार पर मैंने उनके पङ्ख एकत्रित किये थे।

मेरे विचार में गिरियेक के खण्डहर—जिनका उल्लेख मैंने अभी किया है—फाहियान द्वारा "एकान्त चट्टान की पहाड़ी" के कथित से मिलते हैं जहाँ इन्द्र ने बुद्ध से ४२ प्रश्न पूछे थे। यह विवरण ह्वेनसांग की इन्द्र शिला गुहा के वर्णन से भी मिलता है जिसमें समान कथा का उल्लेख किया गया है।

दिकांश एवम् दूरी दोनों में गिरियेक एवम् इन्द्र शिला गुहा की पहाड़ी में इतनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक समानता है कि मुझे उनकी अनुरूपता पर पूर्ण सन्तोष है परन्तु मुझे यह असम्भावित प्रतीत नहीं होता कि यह गिरियेक अर्थात "एक पहाड़ी" से अधिक नहीं है जिसका फाहियान ने उल्लेख किया है।

दोनों तीर्थ यात्रियों ने कन्दरा को पर्वत के दक्षिणी भाग में बताया है और यह स्थिति गिद्ध द्वार के उपर्युक्त विवरण से ठीक-ठीक मिलती है। गिद्ध द्वार अथवा संस्कृत भाषा के गृद्ध द्वार का अर्थ है गिद्ध के आने जाने का मार्ग। ह्वेनसांग ने इसे उस पत्थर के नाम पर इन्द्र शिला गुहा कहा है जिस पर इन्द्र द्वारा बुद्ध से पूछे गये ४२ प्रश्न लिखे हुए हैं। फाहियान ने लिखा है कि यह चिह्न इन्द्र ने स्वयं अपनी उँगली से बनाये थे।

फाहियान के अनुसार "एकान्त चट्टान" की पहाड़ी मगध की राजधानी पाटलीपुत्र से ८ योजन अथवा ५६ मील दक्षिण पश्चिम में तथा नालन्दा से एक योजन अथवा ७ मील पूर्व में थी। ह्वेनसांग ने नालन्दा जाते समय अनेक स्थानों की यात्रा की थी परन्तु विभिन्न दिकांश एवम् दूरियों के कारण उसने इन्द्र शिला गुहा को नालन्दा से ४७ ली अथवा ७$\frac{3}{4}$ मील पूर्व दक्षिण पूर्व में बताया है। वरगाँव एवम् गिरियेक की वास्तविक मध्यवर्ती दूरी लगभग ९ मील है एवम् इसकी दिशा दक्षिण पश्चिम दिशा के पश्चिम की ओर बताई जा सकती है। यदि हम उसकी दक्षिण पूर्व तथा पूर्व दिशाओं को दक्षिण दक्षिण पूर्व तथा पूर्व दक्षिण पूर्व पढ़ें तो सामान्य दिशा दक्षिण पूर्व हो जायेगी एवम् इसकी दूरी ८ मील बढ़ जायेगी जो सत्य के समीप है।

बिहार

गिरिएक के एकान्त पर्वत से तीर्थ यात्री उत्तर पूर्व दिशा में १५० से १६० ली अथवा २५ से २७ मील दूर कपोतिक मठ तक गया। इसके आधा मील दक्षिण में एक उन्नत एकान्त पहाड़ी थी जहाँ अनेक कला पूर्ण भवनों से घिरा हुआ अवलोकितेश्वर का बिहार था। तीर्थ यात्री के १६० ली को ६० ली अथवा १० मील पढ़ने से मैं इस स्थान को बिहार के अनुरूप समझता हूँ। (१) हमारे मानचित्रों में इस नाम को वेहार लिखा गया है परन्तु जन साधारण इसे बिहार लिखते एवम् पुकारते हैं जो इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि यह स्थान किसी समय किसी प्रसिद्ध बौद्ध बिहार का स्थान रहा होगा। इन्हीं कारणों में मैं अवलोकितेश्वर के विशाल बिहार को—जो एक पहाड़ी के शिखर पर खड़ा है—वर्तमान बिहार एवम् खण्डहरों से ढँके यहाँ के विशाल एकान्त पर्वत के अनुरूप समझता हूँ। यह पहाड़ी बिहार नगर

(१) एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने अपना सन्देह व्यक्त किया है कि १५० से १६० ली को ५० अथवा ६० ली पढ़ा जाना चाहिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के उत्तर पश्चिम में है जिसका उत्तरी छोर अत्यन्त ढलुआँ एवम् दक्षिणी भाग कम ढलुआं है। शिखर पर अब मुसलमानी इमारतें बनी हुई हैं परन्तु मुझे बौद्ध मूर्तियों एवम् सङ्कलित स्तूपों के कुछ टुकड़े प्राप्त हुए थे।

कपोतिक मठ से तीर्थ यात्री दक्षिण-पूर्व को ओर ४० ली अथवा ७ मील दूरी एक अन्य मठ तक गया जो एक एकान्त पहाड़ी पर अवस्थित था। दिकांश एवम् दूरी तितरावा के विशाल ध्वस्त टीले की ओर संकेत करते हैं जो बिहार के दक्षिण पूर्व में ठीक ७ मील की दूरी पर है। तितरवा के स्थान पर १२०० फुट लम्बा एक स्वच्छ विशाल सरोवर है जिसके उत्तर की और खण्डित ईंटों का एक विशाल टीला है जो अपने वर्गाकार स्वरूप के कारण किसी मठ का खण्डहर प्रतीत होता है।

इस स्थान से ह्वेनसांग ने उत्तर-पूर्व दिशा में अपनी यात्रा को जारी रखा तथा ७० ली अथवा १२ मील के पश्चात् गङ्गा नदी के दक्षिणी तट पर एक विशाल गाँव में पहुँचा। परन्तु चूंकि नदी का निकटतम बिन्दु २५ मील दूर है अतः हमें ७० के स्थान १७० ली अथवा २९ मील पढ़ना चाहिये। यह आंकड़े गिरिएक से कपोतिक मठ की मध्यवर्ती दूरी में १०० मील की कमी को यहाँ जोड़ देने से प्राप्त किये गये हैं।

मैंने इन दोनों शुद्धियों को आवश्यक समझा है क्योंकि ह्वेनसांग ने कपोतिक मठ के समीप पहाड़ी की अधिक ऊँचाई का विशेष उल्लेख किया है और चूंकि बिहार अथवा तितवार के उत्तर अथवा उत्तर पूर्व में मैं किसी भी पहाड़ी के अस्तित्व से भिज्ञ नहीं हूँ अतः ह्वेनसांग द्वारा अपने मार्ग के विवरण को देश की वास्तविक स्थिति के अनुकूल बनाने के लिये प्रथम मार्ग दूरी को कम करने एवम् अन्तिम मार्ग को बढ़ाने का इच्छुक हूँ। गिरिएक से २५ मील पूर्व उत्तर पूर्व में शेखपुर के स्थान पर ६६५ फुट ऊंची एक पहाड़ी है जो सम्भवतः कपोतिक मठ की वास्तविक स्थिति हो सकती है परन्तु कपोतिक मठ की स्थिति में परिवर्तन होने से तीर्थ यात्री के पश्चातवर्ती मार्ग एवम् दूरी में भी परिवर्तन करना पड़ेगा क्योंकि शेखपुर गङ्गा नदी से केवल २० मील की दूरी पर है।

तत्पश्चात् तीर्थ यात्री पूर्व दिशा में १०० ली अथवा लगभग १७ मील दूर लो-इन-नी-लो के मठ एवम् गाँव मे गया था जिसे श्री एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने गङ्गा नदी पर अवस्थित रोहिनिल अथवा रोहिनल के अनुरूप स्वीकार किया है। इसकी वास्तविक दिशा दक्षिण पूर्व है परन्तु चूंकि तीर्थ यात्री ने नदी मार्ग का अनुसरण किया था अतः उसके विवरण में त्रुटि हो सकती है।

हिरण्य पर्वत

रोहिनल से, ह्वेनसांग २०० ली अथवा ३३ मील पूर्व की ओर ई-लान ना-पो-फा-ता अथवा हिरण्य पर्वत अर्थात "स्वर्ण पर्वत" राज्य की राजधानी में पहुँचा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर के समीप ही हिरण्य पर्वत था "जिससे निकलने वाले धुएँ एवम् भाप के बादल सूर्य एवम् चन्द्रमा को ढँक दिया करते थे।" गङ्गा से इसकी समीपता एवम् रोहिनल तथा चम्पा से दिकांश एवम् दूरी के आधार पर इस पर्वत की स्थिति को मुङ्गेर के स्थान पर निश्चित किया जा सकता है। अब, इस पहाड़ी से धुआँ नहीं निकलता परन्तु आस पास की पहाड़ियों में गरम जल के सरोवरों से पता चलता है कि मुङ्गेर से कुछ ही मीलों के भीतर ज्वालामुखी तत्व उपस्थित है। ह्वेनसांग ने गरम जल के इन सरोवरों का उल्लेख किया है।

गङ्गा नदी के तट पर यह एकान्त पहाड़ी जो पहाड़ियों एवम् नदी के मध्यवर्ती स्थल मार्ग एवम् नदी के जल मार्ग पर नियन्त्रण रखती है—अपनी अनुकूल स्थिति के कारण अधिक प्रारम्भिक काल में बस गई होगी। तद्नुसार महाभारत में इसे बंग तथा ताम्रलिप्ता अथवा बङ्गाल तथा तमलूक के समीप अवस्थित मोदागिरी कहा गया है जो पूर्वी भारत के एक राज्य की राजधानी थी। ह्वेनसांग की यात्रा के समय एक पड़ोसी राज्य के राजा ने यहाँ के राजा को पदच्युत कर दिया था। यह राज्य उत्तर में गङ्गा तथा दक्षिण में घने जङ्गलों वाले पर्वतों से घिरा हुआ था और चूंकि इसकी परिधि को ३००० ली अथवा ५०० मील आंका गया है अतः दक्षिण में इसका विस्तार पारसनाथ के प्रसिद्ध पर्वतों तक रहा होगा जो ४४७८ फुट ऊंचा है। अतः मैं इसकी सीमाओं को उत्तर में लखी-सराय से गङ्गा नदी पर सुल्तान-गंज तक तथा दक्षिण में पारसनाथ पहाड़ी के पश्चिमी छोर से बराकर तथा दानूंद नदियों के संगम स्थान तक निर्धारित करूँगा। इस भू-भाग की परिधि मानचित्र पर सीधे माप से ३५० मील तथा दो नदियों के घुमावदार मार्ग के अनुसार ४२० मील से अधिक होगी।

चम्पा

मुंगेर से, ह्वेनसांग, पूर्व दिशा में ३०० ली अथवा ५० मील की यात्रोपरान्त चेन पो अथवा चम्पा पहुँचा जो भागलपुर जिले का एक प्राचीन नाम है। राजधानी एक चट्टानी पहाड़ी जो चारों ओर से नदी द्वारा घिरी हुई थी। पश्चिम में १४० से १५० ली अथवा २३ से २५ मील की दूरी पर गङ्गा नदी पर अवस्थित थी। इसके शिखर पर ब्राह्मणों का एक मन्दिर था। इस विवरण से पत्थर घाट के विपरीत दृश्यमय चट्टानी द्वीप को पहचाना सरल है जिसकी चोटी पर एक मन्दिर बना हुआ है। चूंकि पत्थर घाट भागलपुर के पूर्व में ठीक २४ मील की दूरी पर है अतः मेरा निष्कर्ष है कि चम्पा की राजधानी या तो इसी स्थान पर रही होगी अथवा इसके समीप रही होगी। समीप ही, पश्चिम की ओर चम्पा नगर नाम का एक विशाल गाँव एवं चम्पापुर नामक एक छोटा गाँव है जो सम्भवतः चम्पा की प्राचीन राजधानी की वास्तविक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थ यात्री ने चम्पा की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील आंका है और चूंकि यह राज्य उत्तर में गङ्गा नदी द्वारा तथा पश्चिम में मुंगेर पर्वत द्वारा घिरा हुआ था अतः इसकी सीमायें पूर्व में गङ्गा नदी की भागीरथी शाखा तक तथा दक्षिण में दामूद नदी तक विस्तृत रही होगी। दोनों उत्तरी बिन्दुओं को गङ्गा नदी पर जानगीर तथा तेलिया गली, तथा दक्षिणी बिन्दुओं को दामूद नदी पर प्राचीन तथा भागीरथी पर कलना स्वीकार करने से सीमान्त रेखा की लम्बाई सीधे माप के अनुसार ४२० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार लगभग ५०० मील होगी। यह ह्वेनसांग द्वारा अनुमानित आकार से इतना कम है कि मेरा विचार है कि या तो मूल पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटि रही होगी अथवा तीर्थ यात्री के समय चम्पा जिले की भूगोलिक सीमाओं के बीच किसी प्रकार का भ्रम रहा होगा। तीर्थ यात्री के विवरण से हमें पता चलता है कि चम्पा के पश्चिम में मुंगेर के राजा को एक पड़ोसी राजा ने पद-च्युत कर दिया था। चम्पा के पूर्व कन्जोल जिला एक पड़ोसी राज्य का आश्रित था। चूंकि चम्पा इन दोनों जिलों के मध्य में अवास्थित है अतः मेरा अनुमान है कि चम्पा का राजा ही सम्भवतः वह राजा था जिसने दोनों जिलों पर विजय प्राप्त की थी और इस प्रकार ह्वेनसांग के विस्तृत आंकड़ों में मूल चम्पा के पूर्व एवं पश्चिम के यह दोनों जिले सम्मिलित रहे होंगे। इस विचार धारा के अन्तर्गत राजनीतिक सीमाओं को गङ्गा नदी पर लखीतेराय से राजमहल तक तथा पारसनाथ की पहाड़ी से दामूद नदी के साथ-साथ भागीरथी नदी पर कलना तक विस्तृत बताया जा सकता है। इन सीमाओं के भीतर चम्पा की परिधि सीधे माप के अनुसार ५५० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार ६५० मील होगी।

कान्कजोल

चम्पा से तीर्थ यात्री ४०० ली अथवा ६७ मील पूर्व की यात्रोपरान्त की-चू-खी-ली अथवा की-चिङ्ग-की-लो नामक जिले में पहुँचा। दूरी एवम् दिकांश हमें राज-महल जिले में ले आते हैं जो मूल रूप से कान्कजोल नामक एक नगर के नाम पर कान्कजोल कहलाता था। यह नगर राजमहल के १८ मील दक्षिण में अब भी बसा हुआ है। कहलगाँव (कोकगोंग) तथा राजमहल से होते हुए नदी मार्ग का अनुसरण करने से भागलपुर से इसकी दूरी कुल ९० मील है परन्तु मानगाँव तथा वरहट होते हुए पहाड़ियों के सीधे मार्ग से इसकी दूरी ७० मील से कम है। चूंकि यह स्थिति ह्वेन-सांग द्वारा इङ्गित स्थान की स्थिति से मिलती है अतः मुझे सन्देह है कि चीनी नाम में दो अक्षरों की अदला-बदली हुई है और हमें इसे की-की-चू-लो पढ़ना चाहिये जो कान्कजोल का अक्षरशः अनुवाद है। ग्लेडविन द्वारा आईन-ए-अकबरी के अनुवाद में इस नाम को गङ्गजूक कहा गया है परन्तु चूंकि मूल प्रतिलिपि में सभी नामों को क्रम-वार दिया गया है अतः यह निश्चित है कि प्रथम अक्षर क है। अतः मेरा निष्कर्ष है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि वास्तविक नाम कान्कजोल है क्योंकि अन्तिम ल को सरलता पूर्वक पढ़ने की त्रुटि की जा सकती है। हेमिल्टन ने अपने गजेटीयर में इस स्थान को कौकजोली कहा है जो सम्भवत: कन्कजोली के स्थान पर गलती से लिखा गया है। उसने लिखा है कि पूर्ववर्ती समय में राजमहल जिले को "अपनी राजधानी के नाम पर अकबर नगर कहा जाता था जबकि लगान सम्बन्धी पुस्तकों में इसे मुख्य रूप से एक सैनिक खण्ड के रूप में कन्कजोली कहा गया है।"

ह्वेनसांग ने जिले की परिधि को २००० ली अथवा ३३३ मील आंका है परन्तु चूंकि यह एक पड़ोसी राज्य का आश्रित राज्य था अत: इसकी परिधि को उसी राज्य की परिधि में सम्मिलित किया गया है जिसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ। स्वतन्त्र राज्य के रूप में कन्कजोल के छोटे राज्य के अन्तर्गत सम्भवत: राजमहल के दक्षिण एवम् पश्चिम का सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र तथा पहाड़ियों एवम् भागीरथी नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र रहा होगा जो दक्षिण में मुर्शिदाबाद तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र की परिधि प्राय: ३०० मील होगी।

पौण्ड्र वर्धन

कान्कजोल से तीर्थ यात्री ने गङ्गा नदी को पार किया तथा पूर्व की ओर ६०० ली अथवा १०० मील की यात्रोपरान्त पुन-न-फा-तान-न राज्य में पहुँचा। एम० जुलीन ने इस नाम को पौण्ड्र वर्धन कहा है जबकि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने इसे बर्दवान के अनुरूप स्वीकार किया है। परन्तु बर्दवान अन्तिम स्थान के दक्षिण में तथा गङ्गा नदी के एक ही तट पर अवस्थित है। इसके अतिरिक्त इसका संस्कृत नाम वर्द्धमान है जैसा कि हम पिच्छले उदाहरणों में देखा चुके हैं दिकांश में भिन्नता एक त्रुटि के कारण हो सकती है परन्तु मेरे विचार में अन्य भिन्नताओं के कारण बर्दवान को इस स्थान के अनुरूप समझना सांघातिक होगा। मैं पबना का प्रस्ताव करूँगा जो कान्कजोल से प्राय: १०० मील दूर है एवम् गङ्गा नदी के विपरीत तट पर अवस्थित है परन्तु इसकी दिशा पूर्व के स्थान पर दक्षिण पूर्व है। चीनी अक्षर पुण्य वर्धन अथवा पौण्ड्र वर्धन का प्रतिनिधित्व करता है परन्तु अन्तिम नाम ही वास्तविक नाम होगा क्योंकि काश्मीर के स्थानीय इतिहास में इसे गोअ के राजा जयन्त की राजधानी कहा गया है जिसने ७८२ ईसवी से ८१३ ईसवी तक राज्य किया था। (१) बोलचाल की भाषा में इस नाम को संक्षिप्त कर पोन बर्धन अथवा पोबधन कर दिया गया होगा जिससे इसे पूबना अथवा पोबना बना देना सरल रहा होगा जैसा कि इसे कुछ लोग पुकारते हैं। ह्वेन-

(१) राजतरङ्गिणी भाष्य पुराण के ब्रह्माण्ड खण्ड से एच० एच० विल्सन द्वारा उद्धृत पौण्ड्र देश के वर्णन में प्रान्त के अधिकांश भाग को गङ्गा के उत्तर में दिखाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सांग के अनुसार राज्य की परिधि ४००० ली अथवा ६६७ मील थी जो पश्चिम में महानदी, पूर्व में तिस्ता तथा ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण में गङ्गा नदी द्वारा घिरे भू-भाग के वास्तविक आकार से ठीक-ठीक मिलता है।

जझोती

ह्वेनसांग ने ची-ची-तो राज्य को उज्जैन के उत्तर-पूर्व में १००० ली अथवा १६७ मील की दूरी पर बताया है। चूंकि इस नाम के प्रथम एवं द्वितीय अक्षर चीनी भाषा में भिन्न भिन्न हैं अतः यह निश्चित है कि यह भारतीय भाषा के दो विभिन्न अक्षरों के समान होंगे। ची-ची-तो-को अबुरिहान द्वारा उल्लिखित जझोटी अथवा जझौती के अनुरूप स्वीकार कर लेने से इस आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। अबु-रिहान ने इसकी राजधानी को कजूराहा कहा है तथा इसे कन्नौज से ३० परसांग अथवा ६० मील दक्षिण पूर्व में दिखाया है। परन्तु वास्तविक दिशा दक्षिण है और दूरी लगभग ३० परसांग से दुगनी अर्थात १८० मील है। इब्न बतूता ने १३३५ ई० में इस राजधानी की यात्रा की थी। जिसने इसे खजूरा कहा है तथा यहाँ एक मील लम्बी झील के होने का उल्लेख लिया है जिस के चारों ओर मूर्तिपूजकों के मन्दिर थे। इन मन्दिरों को खजुराहो के स्थान पर आज भी देखा जा सकता है और उत्तरी भारत में प्रातः मन्दिरों में यह मन्दिर सम्भावतः सर्व श्रेष्ठ हैं।

अबु-रिहान तथा इब्न बतूता के विवरणों से पता चलता है कि जझोटी प्रान्त बुन्देलखण्ड के वर्तमान जिले के अनुरूप है। चीनी तीर्थ यात्री ने ची ची तो की परिधि को ४000 ली अथवा ६६७ मील बताया है जिससे चारों ओर १६७ मील रेखाओं वाला एक चतुर्भुज बनता है कहा जाता है। कि बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गङ्गा एवम् यमुना का सम्पूर्ण दक्षिणी क्षेत्र तथा पश्चिम में बेतवा नदी से पूर्व में चन्देरी सागर के जिले सहित विद्या वासिनी देवी के मन्दिर तक एवम् दक्षिण में नर्बदा नदी के मुहाने के समीप बिल्हारी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित था। परन्तु प्राचीन जझोतिया ब्राह्मणों के प्राचीन राज्य की यही सीमायें थीं जो, बुचनान की सूचनानुसार उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्बदा तक तथा पश्चिम में बेतवा नदी पर अवस्थित उरच से लेकर पूर्व में बुन्देल नाला तक विस्तृत था। अन्तिम नाला एक छोटी नदी है जो बनारस के समीप तथा मिर्जापुर से दो (पैदल) यात्राओं की दूरी पर गङ्गा नदी में मिलती है। अन्तिम पच्चीस वर्षों में मैंने इस प्रदेश में चारों दिशाओं में भ्रमण किया है तथा मैंने जझोतिया ब्राह्मणों को सम्पूर्ण प्रान्त में फैले हुए पाया है परन्तु जमुना के उत्तर में अथवा बेतवा के पश्चिम में जझोतिया ब्राह्मणों का एक भी परिवार नहीं है। मैंने उन्हें बेतवा नदी पर उरच के समीप बरवा सागर में, जमुना नदी पर हमीरपुर के समीप मोहदा में केन नदी के समीप खजुराहों तथा राजनगर में तथा चन्देरी एवम् भिलसा के मध्य उदयपुर, पथारी तथा एरान में देखा है। चन्देरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में जझोतिया बनिया भी पाये जाते हैं जिनसे इस बात का पता चलता है कि यह नाम सामान्य परिवारिक पद न होकर सामान्य स्वीकृति का एक निर्देशक पद है। ब्राह्मणों ने जझोतिया नाम को यजुर होता से लिया है जो ऋगवेद को एक प्रथा थी परन्तु चूंकि यह नाम ब्राह्मणों एवम् बनियों अर्थात अन्य व्यापारियों के लिये समान रूप से प्रयोग में लाया जाता है अतः मेरे विचार में यह प्रायः निश्चित है कि यह नाम केवल एक भौगोलिक नाम था जो उनके देश, जझोती से लिया गया था। ब्राह्मणों की अन्य अनेक जातियों से इस विचार की पुष्टि होतो है जैसे कन्नोज से कन्नोजिया, गोड़ से गौड़ सरयूपार से सरवरिया अथवा सरयूपरिया, दक्षिण के द्राविड़, मिथिला से मैथिल आदि। इन उदाहरणों से पता चलता है कि ब्राह्मणों को जातियों में भौगोलिक नाम प्रचलित थे और चूंकि किसी एक प्रान्त में एक ही जाति के लोग अधिक संख्या में मिलते हैं अतः मैं किसी सीमा तक निश्चय पूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वह भू-भाग जहाँ जझोतिया ब्राह्मण अधिक संख्या में रहते थे वस्तुतः जझोती प्रान्त का क्षेत्र था।

खजुराहो १६२ मकानों वाला एक छोटा गांव है जहाँ १००० से कम निवासी हैं। इनमें जझोतिया ब्राह्मणों की सात विभिन्न शाखाओं के भवन एवम् चन्देल राजपूतों के सात भवन है। इन राजपूतों का मुखिया प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज के प्रतिद्वन्दी राजा परमाल देव का वंशज होने का दावा करता है। यह गाँव चारों ओर से मन्दिरों एवम् खण्डहरों से घिरा हुआ है परन्तु यह सभी पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण पूर्व के तीन विभिन्न स्थानों में सामूहिक रूप से पाये जाते हैं। पश्चिमी समूह जिसमें ब्राह्मणों के मन्दिर हैं, शिब सागर के तट पर अवस्थित है। यह सागर वस्तुतः एक संकीर्ण झील है जो वर्षा ऋतु में उत्तर से दक्षिण लम्बाई में तीन चौथाई मील लम्बी हो जाती है परन्तु ग्रीष्म ऋतु में इसकी लम्बाई ६०० फुट से अधिक नहीं रहती। गाँव से यह तीन चौथाई मील पर, खण्डहरों के उत्तरी समूह से समान दूरी पर तथा जैन मन्दिरों के दक्षिण-पूर्वी समूह से ठीक एक मील दूर है। कुल मिलाकर यह खण्डहर एक वर्ग मील में फैले हुये हैं परन्तु चूंकि पश्चिमी समूह एवम् खजूर सागर के मध्य किसी प्रकार के खण्डहर नहीं हैं अतः प्राचीन नगर की सीमा झील के पश्चिमी तट से आगे विस्तृत नहीं रही होगी। झील के अन्य तीनों ओर यह खण्डहर उत्तर से दक्षिण की ओर ४५०० फुट लम्बे एवम् पूर्व से पश्चिम की ओर २५०० फुट चौड़े अथवा १४,००० फुट अथवा २$\frac{3}{4}$ मील की परिधि वाले आयताकार क्षेत्र में निरन्तर फैले हुए हैं। यह परिधि ६४१ ईसवी में ह्वेनसांग द्वारा कथित राजधानी के आकार से ठीक-ठीक मिलती है परन्तु कुछ समय पश्चात् खजुराहो नगर को पूर्व तथा दक्षिण में कुरार नाला तक विस्तृत किया गया था और विस्तृत दशा में इसकी परिधि ३$\frac{1}{2}$ मील से कम नहीं थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चूँकि महोबा एवम् खजुराहो दोनों ही समान आकार के नगर थे अतः यह कहना कठिन है कि ह्वेनसांग के समय राजधानी कौन सी थी। परन्तु चूँकि महोबा अथवा महोत्सव नगर चन्देल परिवार के उत्थान से सम्बन्धित है अतः मैं इसे सर्वाधिक सम्भावित समझता हूँ कि जझोतिया ब्राह्मणों के प्रारम्भिक परिवारों की राजधानी खजुराहो थी और इस प्रकार ह्वेनसांग की यात्रा के समय खजुराहो ही जझोती राज्य की राजधानी थी। परन्तु चूँकि यह उज्जैन से ३०० मील से अधिक अथवा यात्री द्वारा कथित दूरी से दुगनी दूरी पर है अतः वास्तविक दूरी के समान करने के लिये तीर्थ यात्री के १००० ली को बढ़ाकर २००० ली अथवा ३३३ मील करना होगा। यह एक विचित्र तथ्य है कि अबुरिहान ने कन्नौज से दूरी के अनुमान में भी समान अनुपात में त्रुटि की है और दोनों लेखकों के समान विचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों की त्रुटि का सम्भावित कारण भी समान होगा अर्थात् उन्होंने बुन्देलखण्ड के बड़े कोस का अनुसरण किया होगा जो ४ मील अथवा उत्तरी भारत के सामान्य कोस के दुगने के समान है।

ह्वेनसांग ने जझोती राज्य की परिधि को ४००० ली अथवा ६६७ मील कहा है। इन विस्तृत आंकड़ों को प्राप्त करने के लिये इस राज्य में सिन्ध तथा टोन्स नदियों का सम्पूर्ण मध्यवर्ती प्रदेश तथा उत्तर में गङ्गा नदी से दक्षिण में नया सराय तथा बिलहारी तक के भू-भाग को सम्मिलित करना पड़ेगा। इस भू-भाग में कालिन्जर का प्रसिद्ध दुर्ग तथा चन्देरी का सुदृढ़ दुर्ग भी सम्मिलित थे जो क्रमशः महोबा पर मुसलमानों की विजयोपरान्त चन्देल राजपूतों की स्थायी राजधानी बन गया था तथा जो बूढ़ी चान्देरी के त्याग दिये जाने पर पूर्वी मालवा की मुस्लिम राजधानी बन गया था।

महोबा

महोबा का प्राचीन नगर हमीरपुर से ५४ मील पर तथा खजुराहो के उत्तर में ३४ मील दूर बेतवा एवं यमुना के संगम स्थान पर कड़े पत्थर की एक निचली पहाड़ी के अधोभाग पर अवस्थित है। यह नाम महोत्सव नगर का संक्षिप्त स्वरूप है। यह महोत्सव चन्देल परिवार के संस्थापक चन्द्र वर्मा ने कराया था। कहा जाता है कि यह नगर ६ योजन लम्बा तथा २ योजन चौड़ा था परन्तु मैं इसे एक बड़े नगर के लिये मूर्ख कथाकारों द्वारा अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन समझता हूँ। मेरे सर्वेक्षणानुसार पश्चिम में राय कोट के छोटे दुर्ग से लेकर पूर्व में कल्यान सागर तक यह नगर अपने अधिकतम विस्तृत स्वरूप में भी १½ मील से अधिक लम्बा नहीं रहा होगा। यह प्रायः एक मील चौड़ा है जिससे इसकी परिधि ५ मील बनती है परन्तु इसका वास्तविक क्षेत्र एक वर्ग मील से अधिक नहीं है क्योंकि इसका दक्षिणी पश्चिमी भाग मदन सागर झील से ढँका हुआ है। अतः सर्वाधिक समृद्धि के समय इसकी जनसंख्या, प्रति २००

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्ग फुट के पीछे एक व्यक्ति की उच्चतम औसत को स्वीकार करने पर, १००,००० व्यक्तियों से कम रही होगी। १८४३ ई० में मैं छः सप्ताह तक महोबा में रहा था। उस समय यहाँ ७५६ गृह बसे हुए थे एवं यहाँ की जनसंख्या ४००० थी। तदोपरान्त इस नगर का विस्तार हुआ है और कहा जाता है कि अब यहाँ पर ९०० घर एवम् ५००० निवासी हैं।

महोबा तीन विशिष्ट भागों में विभाजित है—प्रथम—महोबा अथवा नगर विशेष जो पहाड़ी के उत्तर में है; द्वितोय—भीतरी किला जो पहाड़ी की चोटी पर है तथा तृतीय दरीबा अथवा पहाड़ी का दक्षिणी नगर। नगर के पश्चिम में कीरत सागर है जिसका घेरा १¼ मील है। यह सागर कीर्ति वर्मा द्वारा बनवाया गया था जिसने १०६५ से १०८५ ई० तक शासन किया था। दक्षिण की ओर मदन सागर है जिसकी परिधि प्रायः ३ मील है। इसका निर्माण मदन वर्मा ने कराया था जिसने ११३० से ११६५ ईसवी तक शासन किया था। पूर्व की ओर कल्यान सागर नाम की एक छोटी झील है। उसके आगे विजय सागर नाम की एक गहरी झील है जिसका निर्माण विजय पाल ने करवाया था जिसने १०४५ ईसवी से १०६५ ईसवी तक राज्य किया था। अन्तिम झील महोबा की झीलों से सबसे बड़ी है जिसकी परिधि ४ मील से कम नहीं है परन्तु बुन्देल खण्ड जिले की सर्वाधिक सुन्दर एवम् दृश्य-मय झील मदन सागर है। यह सागर पश्चिम में गोकर की कठोर चट्टानी पहाड़ी से, उत्तर में प्राचीन दुर्ग के अधोभाग पर बने घाट एवम् मन्दिरों की श्रेणियों से तथा दक्षिण पूर्व में तीन चट्टानी अन्तरीपों से घिरा हुआ है। यह भू-नासिकायें झील के भीतर की ओर मध्य तक चली गई हैं। उत्तरी भाग में एक चट्टानी द्वोप है जो ध्वस्त भवनों से ढंका हुआ है तथा उत्तरी-पश्चिमी कोण की ओर कठोर पत्थर के बने दो मन्दिर है जिन्हें चन्देल राजाओं ने बनवाया था। इनमें एक पूर्णतयः जर्जर अवस्था में है परन्तु दूसरा मन्दिर ७०० वर्षों के पश्चात भी जल के भीतर उन्नत एवम् सीधा खड़ा है।

महोबा की स्थापना की परम्परागत कथा का मूल उल्लेख चन्द बरद (बरदाई) ने किया है। (१) अन्य स्थानीय इतिहास लेखकों ने इस कथा का अनुसरण किया है। इस कथा के अनुसार चन्देल राजपूत बनारस के राजा गहिरवार इन्द्रजीत के ब्राह्मण पुरोहित हेमराज की पुत्री हेमावती से उत्पन्न हुए थे। हेमावती अत्यन्त सुन्दरी थो और एक दिन जब वह रति तालाब में स्नान करने गई तो चन्द्रमा देवता ने उसे आलिङ्गन में ले लिया। जब चन्द्रमा आसमान की ओर जाने लगा तो हेमावती ने उसे

(१) चन्देल राजा परमाल (परमार्दी देव) के युद्धों एवम् चन्देलों की उत्पत्ति का वर्णन करने वाले—चन्द्र बरदाई की कविता के भाग को महोबा काण्ड का नाम दिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुरा-भला कहा। "मुझे क्यों कोसती हो।" चन्द्रमा ने कहा, "तुम्हारा पुत्र पृथ्वी का राजा बनेगा और उसके वंशजों की सौ शाखायें होंगी।" हेमावती ने पूछा—"जब मैं अविवाहिता हूँ तो मेरा पाप कैसे छिपेगा।" चन्द्रमा ने उत्तर दिया, "डरो मत। तुम्हारा पुत्र कर्णावर्ती नदी के तट पर जन्म लेगा। तब उसे तुम खजुराया ले जाना और वहाँ उसे दक्षिणा में दे देना एवम् त्याग करना। महोबा में वह राज्य करेगा और एक महान शासक बनेगा। उसे दैवी पत्थर प्राप्त होगा और वह लोहे को स्वर्ण बना सकेगा। कालिन्जर की पहाड़ी पर वह एक दुर्ग का निर्माण करायेगा। जब तुम्हारा पुत्र १६ वर्षों का होगा तो तुम अपने अपयश को दूर करने के लिये भण्ड यज्ञ करना और तदोपरान्त बनारस को त्याग कर कालिन्जर में निवास करना।"

इस भविष्य वाणी के अनुसार हेमावती का पुत्र, द्वितीय चन्द्रमा की भांति बैशाख के कृष्ण पक्ष के ग्याहरवें दिन सोमवार को कर्णावती, आधुनिक केन नदी के तट पर उत्पन्न हुआ। (१) तदोपरान्त समस्त देवताओं की उपस्थिति में चन्द्रमा ने महोत्सव मनाया। वृहस्पती ने उस बालक की जन्म कुण्डली बनाई तथा बालक को चन्द्र वर्मा नाम दिया गया। १६ वर्ष की आयु में उसने एक शेर का बध किया। चन्द्रमा प्रगट हुए एवम् उन्होंने उसे दैवी पत्थर भेंट किया एवम् उसे राजनीति का ज्ञान कराया। तत्पश्चात उसने कालिन्जर दुर्ग का निर्माण कराया तथा अपनी जननी को पापमुक्त कराने के उद्देश्य से यज्ञ कराया तथा ४५ मन्दिरों का निर्माण कराया। तदोपरान्त चन्द्रवती रानी एवम् अन्य सभी रानियाँ हेमावती के चरणों में बैठ गई और उसके पाप धुल गये। अन्त में वह महोत्सव अथवा महोबा गया और उसे अपनी राजधानी बनाया।"

विभिन्न लेखकों ने इस तिथि को भिन्न-भिन्न रूप से लिखा है परन्तु शिलालेखों से प्राप्त वंशावलियों के अनुसार चन्देल परिवार के उत्थान एवम् महोबा की स्थापना की सम्भावित तिथि ८०० ई० है।

महेश्वरपुर

जझोती से चीनी तीर्थ यात्री उत्तर दिशा में ६०० ली अथवा १५० मील की यात्रोपरान्त मो-ही-शी-फा-लो-पू-तो अथवा महेश्वरपुर गया जहाँ का शासक एक ब्राह्मण था। चूंकि उत्तर दिशा का अनुसरण करने से हम कन्नौज के समीप पहुँच जायेंगे अतः मेरा निष्कर्ष है कि दिकांश में सम्भवतः त्रुटि हुई है। अतः मैं ६०० ली अथवा १५० मील दक्षिण पढ़ने का प्रस्ताव करूँगा जिस स्थिति में मण्डल नाम का

---

(१) कुछ एक प्रतिलिपियों में नदी के नाम को कियान अथवा किरनवती कहा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रथम नाम से ही एरियान ने केनास नाम प्राप्त किया था जिसे सम्भवतः कियानास नाम से परिवर्तित किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन नगर खड़ा है जिसे महेशमतिपुर भी कहा जाता था। यह ऊपरी नर्बदा के तटीय प्रदेश की मूल राजधानी थी। बाद में जबलपुर से ६ मील दूर त्रिपुरी अथवा तेवर ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया था। महेशमतिपुर नाम प्राचीन है क्योंकि महावंशों में उल्लेख किया गया है कि २४० ईसवी पूर्व में सम्राट अशोक के समय थेरो महादेव को महेश मण्डल भेजा गया था। देश की उपज को उज्जैन की उपज के समान बताया गया है जो इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि महेश्वर जझोटी के उत्तर की ओर नहीं हो सकता था क्योंकि ग्वालियर तथा गङ्गा दोआब की हल्के रङ्ग की मिट्टी उज्जैन के आस पास की काली मिट्टी से भिन्न है। इन कारणों से मैं ऊपरी नर्बदा पर अवस्थित महेशमतिपुर को ह्वेनसांग के महेश्वरपुर के अनुरूप स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। इस राज्य की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी। इन आंकड़ों के अनुसार इसकी सीमाओं को अनुमानतः पश्चिम में दमोह तथा लियोनी से पूर्व में नर्बदा के मुहाने तक विस्तृत बताया जा सकता है।

उज्जैन

ह्वेनसांग ने यू-शी-येन-न अथवा उज्जैयनी का राजधानी को परिधि में ३० ली अथवा ५० मील कहा है जो वर्तमान समय में इसके आकार से कुछ कम है। राज्य की परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। पश्चिम की ओर से यह राज्य मालवा राज्य से घिरा हुआ था जिसकी राजधानी धार नगर अथवा धार उज्जैन से ५० मील के भीतर थी। अतः उज्जैन की सीमायें पश्चिम में चम्बल नदी से आगे नहीं हो सकती थीं परन्तु उत्तर में यह मालवा तथा जझोती के राज्यों से, पूर्व में महेश्वरपुर से तथा दक्षिण में नर्बदा तथा ताप्ती नदियों के मध्य सतपुड़ा पर्वतों से घिरा होगा। इन सीमाओं के भीतर अर्थात् पश्चिम में रणथम्भौर तथा बुरहानपुर से पूर्व में दमोह तथा सिउनी तक उज्जैन राज्य से सम्बन्धित भू-भाग की परिधि प्रायः ९०० माल रही होगी।

जझोती तथा महेश्वरपुर के पड़ोसी राज्यों की भाँति उज्जैन राज्य भी एक ब्राह्मण राजा के अधीन था परन्तु जझोती का राजा बौद्ध धर्मावलम्बी था जबकि अन्य दोनों राजे ब्राह्मणवादी थे। पश्चिम में मालवा का शासक कट्टर बौद्ध था। परन्तु ह्वेनसांग के समय का मो-ला-पो अथवा मालवा प्राचीन प्रान्त के पश्चिमी अर्द्ध भाग तक सीमित है जबकि पूर्वी अर्द्ध भाग में उज्जैन का ब्राह्मण राज्य है। चूंकि प्रान्त की राजनीतिक सीमायें इस प्रकार इसकी धार्मिक सीमाओं से मिलती है अतः इस बात का उचित अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सम्बन्ध विच्छेद धार्मिक मतभेद के परिणाम स्वरूप हुआ होगा। और चूंकि प्रान्त के पश्चिमी अथवा बौद्ध भाग को अब भी मालवा कहा जाता है अतः मेरा निष्कर्ष है कि ब्राह्मणों ने ही सम्बन्ध विच्छेद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया होगा तथा उज्जैन का राज्य मालवा के प्राचीन बौद्ध राज्य की ब्राह्मणवादी शाखा थी। इसी प्रकार मेरा विश्वास है कि महेश्वरपुर कोसल अथवा बराट—जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायेगा—के विशाल बौद्ध राज्य की ब्राह्मणवादी शाखा रहा होगा। उज्जैन में कई दर्जन मठ थे परन्तु ह्वेनसांग की यात्रा के समय यहाँ केवल तीन अथवा चार मठ अच्छी हालत में थे जो लगभग ३०० भिक्षुओं को शरण प्रदान करते थे। देवताओं के मन्दिरों की संख्या अधिक थी तथा यहाँ राजा ब्राह्मणों के पाखण्डवादी ग्रन्थों का ज्ञाता था।

मालवा

ह्वेनसांग ने मो-ला-पो अथवा मालवा की राजधानी को मो हो अथवा माही नदी के दक्षिण पूर्व में तथा भड़ोच के उत्तर पश्चिम में २००० ली अथवा ३३३ मील की दूरी पर अवस्थित बताया है। यहाँ दिकांश एवम् दूरी दोनों ही त्रुटिपूर्ण हैं क्योंकि मालवा भड़ोच के उत्तर पूर्व में है जहाँ से माही नदी का उद्गम स्थान केवल १५० मील की दूरी पर है। अतः मैं इसे १००० ली अथवा १६७ मील उत्तर पूर्व पढ़ूंगा जो मालवा की एक प्राचीनतम राजधानी धार नगर अथवा धार की स्थिति से प्रायः ठीक-ठीक मिलता है। वर्तमान धार नगर की लम्बाई तीन चौथाई मील तथा चौड़ाई आधा मील है अथवा इसकी परिधि २½ मील है परन्तु चूंकि दुर्ग नगर की सीमाओं से बाहर है अतः इस स्थान की कुल परिधि ३½ मील से कम नहीं हो सकती है। प्रान्त की सीमाओं को ६००० ली अथवा १००० मील बताया गया है। पश्चिम की ओर मालवा के दो आश्रित राज्य थे अर्थात् खेड़ा, जिसकी परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील थी, तथा आनन्दपुर जिसकी परिधि २००० ली अथवा ३३३ मील थी। इनके अतिरिक्त वदारी नाम का एक स्वतन्त्र राज्य था जिसकी परिधि ६००० ली अथवा १००० मील थी। इन सभी राज्यों को पश्चिम तथा पूर्व में कच्छ तथा उज्जैन, उत्तर में बैराट तथा दक्षिण में बलभी एवम् महाराष्ट्र के मध्यवर्ती क्षेत्र में रखना होगा जिसकी कुल परिधि १३५० मील से अधिक नहीं है। अतः यह सम्भावित प्रतीत होता है कि तीर्थ यात्री ने आश्रित राज्यों को शासक राज्य को सीमाओं में ले लिया होगा। अतः मैं उपर्युक्त क्षेत्र के दक्षिणी अर्द्ध भाग को मालवा एवम् उसके आश्रित राज्यों का क्षेत्र समझता हूँ जबकि उत्तरी भाग को वदारी के स्वतन्त्र राज्य का क्षेत्र समझता हूँ। इस प्रकार मालवा की सीमायें उत्तर में वदारी, पश्चिम में बलभी पूर्व में उज्जैन तथा दक्षिण में महाराष्ट्र द्वारा निर्धारित होती है। कच्छ में बनास नदी के मुहाने से लेकर मन्दसोर के समीप चम्बल तक तथा दमान तथा मालीगाँव के मध्यवर्ती सहयाद्री पर्वतों से लेकर बुरहानपुर से नीचे ताप्ती नदी तक इस क्षेत्र की परिधि मानचित्र पर सीधे माप के अनुसार ८५० मील अथवा मार्ग दूरी के अनुसार प्रायः १००० मील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। अबुरिहान के अनुसार नर्वदा से धार की दूरी ७ परसांग थी और वहाँ से महरट-दास की सीमा १८ परसांग थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि धार की सीमायें दक्षिण में ताप्ती नदी तक विस्तृत रही होंगी।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि भारत में दो ऐसे राज्य थे जिन्हें बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने का विशेष स्थान समझा जाता था अर्थात् उत्तर पूर्व में मगध तथा दक्षिण पश्चिम में मालवा। इसी तथ्य के अनुसार उसने लिखा है कि मालवा में अनेक सहस्र मठ थे जिनमें कम से कम २०,००० भिक्षु थे। उसने इस बात का भी उल्लेख किया है कि उसकी यात्रा से ६० वर्ष पूर्व शिलादित्य नामक एक शक्तिशाली राजा ने ५० वर्षों तक मालवा में राज्य किया था और वह एक कट्टर बौद्ध अनुयायी था।

खेड़ा

ह्वेनसांग ने की-चा अथवा खेड़ा जिले को मालवा से ३०० ली अथवा ५० मील उत्तर पश्चिम में बताया है। चूंकि एम० जुलीन तथा एम० विवीन ने की-चा को खाचा पढ़ा है जिसे वह कच्छ के पठार के अनुरूप स्वीकार करते हैं अतः मैं उन कारणों पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ जिनके कारण मैं भिन्न नाम का प्रस्तात्र करना चाहता हूँ। अन्य जिन नामों में चा के विशेष चिह्न का प्रयोग किया है उन्हें देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पाटलीपुत्र तथा कुक्कुत्ता के सर्व प्रसिद्ध नामों में इसी चिह्न का प्रयोग किया है जहाँ यह त अथवा ट अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार ओ-चा-ली में भी इसी अक्षर का प्रयोग किया गया है उसे एम० जुलीन ने अटाली तथा एम डी सेन्ट मार्टिन ने थल अथवा थार के मरू क्षेत्र के अनुरूप स्वीकार किया है। तदनुसार की-चा नाम को खू-टा पढ़ा जाना चाहिये। अब खेड़ा गुजरात के एक विशाल गाँव का वास्तविक संस्कृत स्वरूप है। यह नगर अहमदाबाद तथा खम्बोय के मध्य अवस्थित है। अतः मैं तीर्थ यात्री के की-चा को खेड़ा के अनुरूप स्वीकार करूँगा। यह सत्य है कि ह्वेनसांग द्वारा कथित दूरी केवल ३०० ली है परन्तु तीर्थ-यात्री की यात्राओं के इस भाग में दिकांश एवम् दूरियों की इतनी त्रुटियां है कि मुझे इस दूरी को १३०० ली अथवा २१७ मील पढ़ने का प्रस्ताव करने में संकोच नहीं होता है। यह अनुमान कैरा तथा धार की मध्यवर्ती दूरी के अधिक समीपता रखता है। जब हम इस बात का स्मरण करते हैं कि मालवा राज्य पूर्व की ओर २५ मीलों के भीतर ही उज्जैन की स्वतन्त्र सीमाओं से घिरा हुआ था तो ऐसी दशा में इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि धार से ५० मील के भीतर कोई अन्य राज्य रहा होगा अन्यथा मालवा की सीमायें उज्जैन तथा खेड़ा के मध्य लगभग ५० मील की चौड़ाई तक सीमित रहतीं। परन्तु मेरी प्रस्तावित शुद्धि को स्वीकार करने से उपर्युक्त कठिनाई दूर हो सकती है तथा खेड़ा मालवा राज्य का दूरस्थ पश्चिमी खण्ड निर्धारित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जायेगा। ह्वेनसांग ने इसकी परिधि को २००० ली अथवा ५०० मील स्वीकार किया है। यह आकार खेड़ा जिले की सम्भावित सीमाओं से ठीक-ठीक मिलता है जब कि इसकी सीमाओं को पश्चिम में साबरमती के तट से लेकर उत्तर पूर्व में महा नदी के विशाल मोड़ तक तथा दक्षिण में बड़ौदा तक विस्तृत बताया जा सकता है। आकार में यह प्रायः वर्गाकार है।

आनन्दपुर

ह्वेनसांग ने ओ-नाग-तो-पू-लो अथवा आनन्दपुर को वल्लभी के उत्तर पश्चिम में ७०० ली अथवा ११७ मील की दूरी पर बताया है। एम० विवीन जैनियों के कल्प सूत्र के आधार पर इसे बरनगर के अनुरूप बताया है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व तथा दूरी १५० मील अथवा ६०० ली है। संस्कृत के वदपुर अथवा बरपुर के रूप में बरनगर के वर्णन किया जा चुका है। जिले का विस्तार २000 ली अथवा ३३३ मील था तथा यह मालवा का आश्रित राज्य था। इसकी सीमाओं को पश्चिम में बनास नदी के मुहाने से पूर्व में साबरमती नदी मध्यवर्ती त्रिभुजाकार क्षेत्र तक सीमित करने से उपर्युक्त अनुमानित आकार को प्राप्त किया जा सकता है।

वडांरी, अथवा इडर

मालवा छोड़ने के पश्चात ह्वेनसांग ने सर्व प्रथम दक्षिण पश्चिम में "दो सागरों के संगम स्थान" तक यात्रा की। तत्पश्चात उत्तर पश्चिम की ओर मुड़ कर ओ-चा-ली अथवा वडारी पहुँचा। यात्रा की समस्त दूरी २४०० से २५०० ली अथवा ४०० से ४१७ मील थी। मेरे विचार में दो सागरों के संगम स्थान से उसका आशय खाम्बे की खाड़ी में दक्षिणी एवं पश्चिमी सागरों के संगम से है। ताप्ती नदी के मुहाने के समीप सूरत अथवा प्राचीन सुरपारक नगर को खाड़ी का प्रवेश द्वार समझा जा सकता है और चूंकि यह धार के दक्षिण पश्चिम में अवस्थित है अतः सम्भवतः यह वही स्थान है जहाँ ह्वेनसांग सर्व प्रथम गया था। इसकी दूरी केवल २०० मील है। सूरत से इडर समान दूरी पर है परन्तु इसकी दिशा उत्तर पूर्व है। अतः मैं उत्तर पश्चिम के स्थान पर उत्तर पूर्व पढूंगा और इस प्रकार इडर ह्वेनसांग, के ओ-चा-ली अथवा वडारी की स्थिति से मिल जायेगा। मैं इडर के संस्कृत नाम से अनभिज्ञ हूँ परन्तु यह अत्यधिक सम्भावित प्रतीत होता है कि बसन्त नगर के लेख में उल्लिखित नगर वडारी ही है। ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में वडारी वदपुर अथवा बर नगर के पड़ोस में एक छोटी रियासत की राजधानी थी जो इडर से ३० मील पश्चिम तथा साबरमती नदी के विपरीत तट पर था। राजपरिवार राजा भव गुप्ता के पूर्वज होने का दावा करता है "जो एक महान योद्धा एवम् अपने वंश का रत्न था।" मेरा विश्वास है कि यह भव अथवा मव उदयपुर के शिशोदिया के भव बप्पा के समान है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके पूर्वज अनेक शताब्दियों से इडर के राजा थे। चूंकि बप्पा आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था अतः उसके पूर्वज इडेर के राजा का समय ह्वेनसांग की यात्रा के समय से मिलता है। इन कारणों से मेरा विचार है कि इडर को लेख के वडारी तथा साथ ही साथ चीनी तीर्थ यात्री के ओटाली अथवा वडारी के अनुरूप स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं।

प्रान्त की परिधि का अनुमान ६००० ली अथवा १००० मील लगाया गया है। इस विस्तृत आकार से पता चलता है कि उत्तर में वैराट, पश्चिम में गरजर, पूर्व में उज्जैन तथा दक्षिण में मालवा का सम्पूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र अटाली अथवा वडारी के अन्तर्गत रहा होगा। अतः इसकी सीमायें उत्तर में अजमेर तथा रणथम्भौर, पूर्व तथा पश्चिम में लोनी तथा चम्बल नदियाँ तथा दक्षिण में कच्छ की खाड़ी में बनास नदी से मन्दसोर के समीप चम्बल तक मालवा की सीमायें रही होंगी। इन सीमाओं की परिधि मानचित्र पर लगभग ६०० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार १००० मील है।

निचले सिन्ध के पूर्वी देशों के प्लिनी द्वारा दिये गये वर्णन में मुझे निम्न गद्यांश मिलता है जो इडर तथा आस-पास के क्षेत्र से सम्बन्धित प्रतीत होता है। "तत्पश्चात् नरेयाई जाति थी जो भारत के उच्चतम पर्वत कपितालिया से घिरे हुए थे जिसके पार स्वर्ण एवम् रजत निकाला जाता था। उनके बाद ओराटुराय अथवा (ओराटोई) थे जिनके राजा के पास केवल दस हाथी थे परन्तु पद सैनिकों की एक विशाल सेना थी। (तथा) वरेटाटोई (अथवा सुराटाटोई) थे जिनके राजा के पास कोई हाथी नहीं था परन्तु अश्व रोहियों एवम् पद सैनिकों की एक सुदृढ़ सेना थी। (तत्पश्चात्) ओडम्बोराई आदि थे।" इससे पूर्व हम अन्तिम जाति को कच्छ निवासियों के, तथा कपिटालिया के उन्नत पर्वत को पवित्र अरबुदा अथवा आबू पर्वत के अनुरूप स्वीकार कर चुके हैं जो समुद्र के स्तर से ५००० फुट ऊँचा था। अतः नरेयाई निश्चित ही सरुई अर्थात "नरकट के प्रदेश" की जनता का नाम रहा होगा क्योंकि नार तथा सार नरकट के पर्यायवाची शब्द है। सरई प्रदेश वर्तमान समय में भी नरकट के तीरों के लिये प्रसिद्ध है।

ओराट्टरोई को मैं वडपुर अथवा बर पुर के निवासियों के अनुरूप स्वीकार करूँगा जो बरनगर के निवासियों के समान हैं। यूनानी नाम में थोड़े परिवर्तन से मूल यूनानी नाम ओराट्टरा को ओरापुरा पढ़ा जा सकता है जो बरपुर अथवा वडपुर के समान है। प्लिनी की सूची में अन्तिम नाम वरेटाटाई है जिसे मैं विरारेटाई पढ़ूँगा। कुछ प्रतिलिपियों में सौराटराटोई को विभिन्न ढङ्ग से लिखा गया है और इन सभी स्वरूपों से उपर्युक्त शुद्धि की पुष्टि होती है। फिर भी यह प्रायः सम्भव है कि सौराटराटोई नाम सौराष्ट्र निवासियों के लिये लिखा गया हो। प्रसिद्ध वराह मिहिर ने दक्षिण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिमी भारत की जातियों में सौराष्ट्र एवम् बाडर निवासियों का एक साथ उल्लेख किया है। यह बाडर निवासी निश्चित ही बाडरी अथवा वाडरी के निवासी थे।

मैं समझता हूँ कि वडारी उस जिले का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें वडरी अथवा वेर-वृक्ष अधिक संख्या में मिलते थे। यह वृक्ष दक्षिणी राजपूताना में सामान्यतः पाये जाते है इन्हीं कारणों से मैं प्राचीन सौवीरा को इसके पड़ोस में ढूंढना चाहता हूँ जिसे मैं सोफीर अथवा ओफीर के प्रसिद्ध नाम का वास्तविक स्वरूप समझता हूँ क्योंकि सौवीर वडारी अथवा बेर वृक्ष एवम् इसके इस मीठे फल का दूसरा नाम है। अब, सोफीर वर्तमान समय में भारत का नाम है परन्तु यह नाम मूल रूप से भारतीय तट के उस भाग से सम्बन्धित रहा होगा जहाँ पश्चिमी देशों के व्यापारी आया करते थे। मेरा विचार है कि इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि यह स्थान खम्बे के खाड़ी में था जो अति प्राचीन काल से भारत एवम् पश्चिमी देशों के मध्य व्यापार का मुख्य केन्द्र था। यूनानी इतिहास के सम्पूर्ण काल में यह व्यापार नर्बदा नदी के मुहाने पर बरीगाजा अथवा भड़ौच के प्रसिद्ध नगर के एकाधिकार में था। चौथी शताब्दी में इसका कुछ भाग गुजरात पठार की नवीन राजधानी बलभी ने प्राप्त कर लिया था। मध्य युग में यह व्यापार खाड़ी के सिरे पर खाम्बे के स्थान पर होता था और आधुनिक समय में ताप्ती के मुहाने पर सूरत नगर इस व्यापार का केन्द्र है।

यदि मेरा यह अनुमान सही है कि वेर वृक्षों की अधिकता से सौवीर नाम प्राप्त किया गया था तो यह सम्भव है कि खाम्बे की खाड़ी के सिरे पर बडारी अथवा इडर का एक अन्य विशिष्ट नाम था। रुद्रधाम के प्राचीन लेख के अनुसार हमें इसे इसी स्थान पर देखना चाहिये क्योंकि यहाँ सिन्धु सौवीरा को सराष्ट्र तथा भारू कच्छ के बाद तथा कुकुर, अपरान्ता तथा निशाद से पहले दिखाया गया है। इस व्यवस्था के अनुसार सौवीरा सौराष्ट्र तथा भड़ौच के उत्तर में तथा निशाद के ठीक दक्षिण में पर्वत के पड़ोस में अर्थात उसी स्थान पर होना चाहिये जिसकी ओर मैंने संकेत किया है। विष्णु पुराण में भी सौवीरा को इसी स्थान पर दिखाया गया है। "सदूर पश्चिम में पारी पात्र पर्वतों के साथ-साथ निवास करने वाले सौराष्ट्र वासी, सूर, अभीर, अरबुद, करुश तथा मालव थे तथा साकल, मद्रास आदि स्थानों के निवासी सौवीर सैन्धव हूर्ण एवम् मालव थे।" इस व्याख्या में हमें वडारी अथवा इडर के पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवम् दक्षिण सम्पूर्ण क्षेत्र के लगभग सभी प्रख्यात स्थानों का उल्लेख मिलता है। परन्तु वडारी का अथवा खेड़ा, खाम्बे अथवा अनलवाड़ आदि किसी नाम का उल्लेख नहीं किया गया है जिससे मेरा अनुमान है कि यह सभी स्थान सौवर के अधीन रहे होंगे। अतः वडारी अथवा सौवीरा दक्षिणी राजपूताना के समान था।

बाईबिल के यूनानी भाषा के अनुवाद में यहूदी ओफीर को सदैव सोफीर लिखा गया है। सम्भवतः इसे सोफीर के मिस्री नाम के प्रति आदर भाव से ग्रहण किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। इस नाम का सर्व प्रथम उल्लेख जोब की पुस्तक में किया गया था जहाँ "ओफीर के स्वर्ण" को सर्व श्रेष्ठ श्रेणी का स्वर्ण कहा गया है। कुछ समय पश्चात टायर के राजा हुरम के जहाज "सोलोमन के सेवकों सहित आंफीर गये और वहाँ से ४५० प्रामाणिक स्वर्ण लेकर सोलोमन राजा के पास गये।" तत्पश्चात इजिहा ने ओफीर के स्वर्ण का उल्लेख किया है जिसका कथन है कि "मैं मानव को स्वर्ण से और यहाँ तक कि ओफीर के स्वर्णिम धातु से भी मूल्यवान बनाऊँगा।" यहाँ धातु का अर्थ जीभ अथवा ईंट लगाया गया है और मेरा अनुमान है कि अचान द्वारा छिपाई गई ५० शेकल वजन की स्वर्णिम धातु सम्भवत: ओफीर की एक ईंट थी।

अब इस बात को सिद्ध करना शेष है कि बडारी अथवा इडर का जिला जिसे मैं ओफीर का सर्वाधिक सम्भावित प्रतिनिधि प्रस्तावित कर चुका हूँ प्राचीन समय से वर्तमान समय तक संस्कार के स्वर्ण उत्पादक देशों में सम्मिलित रहा है। यद्यपि इस विषय पर प्रमाण कम है परन्तु यह स्पष्ट है। प्राचीन सांक्षियों में मैं केवल प्लिनी की साक्षी का उल्लेख कर सकता हूँ जिसने आबू पर्वत के पार रहने वालों को "स्वर्ण एव रजत की विस्तृत खानों" का स्वामी कहा है। वर्तमान समय में अरावली की श्रेणी हो भारत का एक मात्र स्थान है जहाँ कुछ मात्रा में रजत प्राप्त किया जाता है जबकि इसकी नदियों में आज भी स्वर्ण प्राप्त किया जा सकता है जिसके श्रेष्ठतम नमूने भारतीय अजायब घर में देखे जा सकते हैं।

परन्तु यदि खाम्बे की खाड़ी भारत एवम् पश्चिमी देशों के मध्य व्यापार का महान केन्द्र था तो यह आवश्यक नहीं है कि स्वर्ण जिसके कारण यह केन्द्र प्रसिद्ध था, इसी जिले की उपज हो। वर्तमान समय में इसी पश्चिमी तट पर बम्बई से दो भीतरी जिलों की उपज अर्थात मालवा की अफीम तथा बरार की कपास विदेशों में भेजी जाती है। जहाँ कहीं भी व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं स्वभाविक है कि पश्चिमी व्यापारियों के समान के बदले भारतीय स्वर्ण वहाँ एकत्रित हो गया हो।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्वी भारत

सातवीं शताब्दी में भारत के पूर्वी खण्ड में आसाम, गङ्गा के डेल्टा सहित बङ्गाल, सम्भलपुर, उड़ीसा तथा गंजाम सम्मिलित थे। ह्वेनसांग ने इसे प्रान्त अथवा खण्ड को ६ राज्यों में विभाजित किया है जिन्हें उसने काम रूप, समतत, ताम्रलिप्ति, किरण, सुवर्ण ओड्र तथा गंजाम कहा है और मैं इन्हीं नामों के अन्तगर्त इन राज्यों का उल्लेख करूँगा।

काम रूप

मध्य भारत में पौण्ड्र वर्धन अथवा पबना से चीनी तीर्थ यात्री ९०० ली अथवा १५० मील पूर्व की ओर गया तथा एक महान नदी को पार कर किया-मो-ल्यू-पो अथवा कामरूप में प्रवेश किया जो आसाम का संस्कृत नाम है। इसकी सीमाओं को परिधि को १०००० ली अथवा १६६७ मील आंका गया है। इस विस्तृत आकार से पता चलता है कि ब्रह्मपुत्र नदी की सम्पूर्ण घाटी अथवा कूंचविहार अथवा भूटान सहित आधुनिक आसाम इसमें सम्मिलित रहा होगा। प्राचीन काल में ब्राह्मपुत्र की घाटी तीन क्षेत्रों में विभाजित थी जिन्हें सदिया, आसाम एवं काम रूप कहा जा सकता है। चूंकि अन्तिम राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली एवम् शेष भारत के समीप थी अतः सम्पूर्ण घाटी को सामान्यतः इसी नाम से पुकारा जाता था। कूंचविहार कामरूप का सदूर पश्चिमी खण्ड था और चूंकि यह देशा का सर्वाधिक समृद्ध शाली क्षेत्र था अतः यह राजाओं का निवास स्थान बन गया जिनकी राजधानी कामनीपुर के नाम से सम्पूर्ण प्रान्त को पुकारा जाने लगा। परन्तु कहा जाता है कि काम रूप की प्राचीन राजधानी गौहाटी थी जो ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर अवस्थित थी। अब, कूंचविहार की राजधानी कामतीपुर पबना से ठीक १५० मील अथवा ९०० ली की दूरी पर थी यद्यपि इसकी दिशा पूर्व की ओर थी जबकि गौहाटी पबना से उत्तर-पूर्वी दिशा में इससे ठीक दुगनी दूरी अर्थात १९०० ली अथवा ३१७ मील की दूरी पर थी। चूंकि प्रथम स्थान की स्थिति तीर्थ यात्री द्वारा कथित दूरी से ठीक-ठीक मिलती है अतः यह प्रायः निश्चित है कि सातवीं शताब्दी में यह कामरूप की राजधानीं थी। इस तथ्य से इस बात की पुष्टि प्रतीत होती है कि यहाँ के निवासियों की भाषा एवम् मध्य भारत के निवासियों की भाषा में बहुत कम भिन्नता थी। अतः यह असामी भाषा नहीं थी और परिणाम स्वरूप मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग जिस राजधानी में गया था वह ब्रह्मपुत्र की घाटी में गौहाटी न होकर भारत के कूंचविहार जिले में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कामतीपुर थी। इसी प्रकार तीर्थ यात्री ने जिस बड़ी नदी को पार किया था वह ब्रह्मपुत्र न होकर तिस्ता नदी थी।

पूर्व में कामरूप की सीमायें चीन के सू प्रान्त के दक्षिण-पश्चिमी बर्बरों की सीमाओं से मिलती थीं। दक्षिण पूर्व के वनों में जङ्गली हाथी प्रचुर संख्या में थे और वर्तमान समय में भी यहाँ यही दशा है। यहाँ का राजा भास्कर वर्मा नामक एक ब्राह्मण था जो भगवान नारायण अथवा विष्णु का वंशज होने का दावा करता था एवम् जिसके परिवार ने पिछली १००० पीढ़ियों से यहाँ राज्य किया था। वह एक कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी तथा ६४३ ईसवी में पाटलीपुत्र से कन्नौज की धार्मिक यात्रा में उसने हर्षवर्धन का साथ दिया था।

समतत

समतत अथवा सान-मो-ता-चा की राजधानी को कामरूप के दक्षिण में १२०० से १३०० ली अथवा २०० से २१७ मील तथा ताम्रलिप्ति अथवा तमलूक के पूर्व में ९०० ली अथवा १५० मील की दूरी पर बताया है। प्रथम स्थिति जसर अथवा जेस्सोर से प्राय: ठीक-ठीक मिलती है और सम्भवत: इस स्थान की ओर ही संकेत किया गया है जबकि तमलूक से दिकांश एवम् दूरी हमें सुन्दरी वन अथवा सुन्दर बन के निर्जन प्रदेश की ओर ले जायेगी जो हुरनघाट नदी एवम् बाकर गञ्ज के मध्य है। परन्तु ऐसे प्रदेश में जहाँ निचले बङ्गाल की भाँति मार्ग में बारम्बार नदियाँ पार करनी पडती है, एक स्थान से दूसरे स्थान का मार्ग दूरी मानचित्र पर सीधे माप की दूरी से ¼ भाग अधिक होगी। इस प्रकार जैसोर जो थल मार्ग द्वारा ढाका से १०३ मील तथा कलकत्ता से ७९ मील दूर है सीधे माप के अनुसार इन स्थानों से क्रमशः ८२ एवम् ६२ मील दूर है। अत: ह्वेनसांग द्वारा १५० मील की स्थल मार्ग की दूरी सीधे माप के अनुसार १२० मील से अधिक नहीं होगी जो तमलूक तथा जैसोर के मध्य वास्तविक दूरी से केवल २० मील अधिक है। परन्तु चूँकि पूर्व की ओर से स्थल मार्ग द्वारा तमलूक तक नहीं पहुँचा जा सकता अत: तीर्थ यात्री ने कम से कम आधा मार्ग जल मार्ग से पूरा किया होगा और स्थल एवम् जल मार्गों के संयुक्त मार्ग की अनुमानित दूरी अर्थात १५० मील को उचित रूप से स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि इसका वास्तविक माप करना कठिन था। जसर अथवा "पुल" नाम—जिसने प्राचीन मुरली का स्थान ले लिया है से प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान होता है। जहाँ स्थान-स्थान पर गहरे नदी मार्गों को पार करना पड़ता है और वर्तमान सड़कों एवम् पुलों के निर्माण से पूर्व आवागमन का मुख्य साधन नाव था। मुरली अथवा जसर सम्भवत: टालमी का गङ्गा रेगिया है।

इलाहाबाद के स्थान पर समुद्र गुप्त के लेख में समतत देश का उल्लेख किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है जहाँ इसे कामरूप तथा नेपाल के साथ दिखाया गया है। वराह मिहर-जो छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था की भौगोलिक सूची में भी इसका उल्लेख किया गया है। प्रोफेसर लासेन के अनुसार इस नाम से ह्वेनसांग द्वारा दिया गया वर्णन अर्थात समुद्र तट पर निचली एवम् नम भूमि से मिलता है। यहाँ के निवासी कद में छोटे एवम् सावले रङ्ग के होते थे जैसे कि वर्तमान निचले बङ्गाल के निवासी हुआ करते हैं। इन सभी समान तथ्यों से यह निश्चित है कि समतत गङ्गा का डेल्टा रहा होगा और चूंकि देश की परिधि को ३००० लो अथवा ५०० मील बताया गया है अतः इसमें वर्तमान समय का सम्पूर्ण डेल्टा अथवा भागीरथी तथा गङ्गा को मुख्य नदियों का मध्यवर्ती त्रिभुजाकार क्षेत्र सम्मिलित रहा होगा।

ह्वेनसांग ने समतत के अनेक पूर्वी देशों का उल्लेख किया है परन्तु चूंकि उसने केवल एक सामान्य दिशा का उल्लेख किया है विभिन्न स्थानों की मध्यवर्ती दूरी का नहीं अतः इन नामों की पहचान करना सरल कार्य नहीं है। प्रथम स्थान शी-ली-चा-ता-लो है जो समतत के उत्तर पूर्व में महान सागर के समीप एक घाटी में अवस्थित था। यह नाम सम्भवतः श्री क्षत्र अथवा श्री क्षेत्र के लिये प्रयोग में लाया गया है जिसे एम० विवीन डी सेन्ट मर्टिन ने गङ्गा के डेल्टा के उत्तर-पूर्व में साई हट अथवा सिल्हट के अनुरूप स्वीकार किया है। यह नगर मेंगा नदी को घाटी में अवस्थित है और यद्यपि यह समुद्र से अधिक दूरी पर है फिर भी इस बात की सम्भावना अधिक है कि तीर्थ यात्री ने इसी स्थान की ओर संकेत किया था। द्वितीय प्रदेश किया-मो-लाँग किया था जो प्रथम स्थान से पूर्व की ओर एक बड़ी खाड़ी के समीप था। मेरे विचार में इस स्थान को मेंगा नदी के पूर्व तथा बङ्गाल की खाड़ी के सिरे पर हिपरा के कोमिल्ला जिले के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। तृतीय देश तो लो-पो-ती था जो अंतिम प्रदेश के पूर्व की ओर था। एम जुलोन ने इस नाम को द्वारवती कहा है परन्तु उन्होंने इसे पहचाने का प्रयत्न नहीं किया। फिर भी मैं प्रस्ताव करूंगा कि यह तैलंगवती अर्थात तैलंग अथवा पेगु नामक जाति का प्रदेश हो सकता है। वर्मी जिलों में नाम के अन्त में वती आता है जैसे हंसवती, दवयवत, दीनयवती, आदि। इससे पूर्व ई० शांग-ना-पू-लो था और इस स्थान से भी आगे पूर्व की ओर मो-हो-चेन-पो था। तदोपरान्त दक्षिण पश्चिम की ओर येन-मो-न-चू राज्य था। इनमें प्रथम नाम को मैं शान जाति का देश अर्थात लाओस समझता हूँ। द्वितीय नाम सम्भवतः कोचीन चीन अथवा अनाम है और तृतीय नाम जिसे एम० जुलीन ने यमन द्वीप कहा है—निश्चित ही यव द्वीप अथवा जावा है।

ताम्रलिप्ति

तान-मो-ली-ती अथवा ताम्रलिपि जिले की परिधि को १४०० अथवा १५००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ली अथवा २५० मील बताया गया है। यह समुद्र तट पर अवस्थित था तथा देश की भूमि निचली एवम् नम थी। इसकी राजधानी एक खाड़ी में थी तथा स्थल एवम् जल मार्ग द्वारा यहाँ पहुँचा जा सकता था। ताम्रलिप्ति तमलुक का संस्कृत नाम है जो हुगली एवम् रूप नारायण नदियों के संगम स्थान से १२ मील ऊपर रूपनारायण की खाड़ी में अवस्थित था। इस जिले में सम्भवतः हुगली नदी का पश्चिमी उपजाऊ परन्तु छोटा क्षेत्र सम्मिलित था जो उत्तर में वर्द्धवान तथा कलना से लेकर दक्षिण में कोसई नदी के तट तक फैला हुआ था। यूनानी तमालिटीज ताम्रलिप्ति के पाली स्वरूप तामलिट्टी से लिया गया था।

किरण सुवर्ण

ह्वेनसांग ने कि-लो-ना-सू-फा-ला-ना अथवा किरण सुवर्ण को ताम्रलिप्ति के उत्तर पश्चिम में ७०० ली अथवा ११७ मील तथा ओड्र अथवा उड़ीसा के उत्तर पूर्व में समान दूरी पर बताया है। चूंकि सातवीं शताब्दी में उड़ीसा की राजधानी वैतरनी नदी पर जाजीपुर थी अतः किरण सुवर्ण के मुख्य नगर को सुवर्ण रेखा नदी के जल मार्ग के साथ-साथ सिंह भूम तथा बड़ भूम के जिलों में किसी स्थान पर देखना चाहिये परन्तु भारत के इस जंगली क्षेत्र के सम्बन्ध में हमारी जानकारी इतनी कम है कि मैं देश की प्राचीन राजधानी के सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में किसी भी विशेष स्थान का प्रस्ताव करने में असमर्थ हूँ। बड़ा बाजार बड़ भूम का मुख्य नगर है और चूंकि इसकी स्थिति ह्वेनसांग द्वारा इङ्गित स्थिति से मिलती है अतः इसे सातवीं शताब्दी में राजधानी का सम्भावित स्थान स्वीकार किया जा सकता है। इसकी सीमाओं की परिधि ४४०० से ४५०० ली अथवा ७३३ से ७५० मील बताई जा सकती है। अतः इसमें पूर्व से पश्चिम मेदनीपुर तथा सिरगुजा तथा उत्तर से दक्षिण दमदा तथा वैतरनी नदियों के मुहाने के मध्यवर्ती पर्वतीय राज्य सम्मिलित रहे होंगे।

अब, देश के इस जंगली भाग में अनेक जंगली जातियाँ बसी हुई हैं जिन्हें कोल्हान अथवा कोल के सामूहिक नाम से पुकारा जाता है। परन्तु चूंकि इस जाति के लोगों में दो विभिन्न भाषाओं की विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोग दो विभिन्न जातियों के लोग थे जिनमें मुण्डा एवं उरौन जातियों को विशिष्ट प्रतिनिधि समझा जा सकता है। कर्नल डाल्टन के अनुसार "देश में सर्व प्रथम मुण्डा जाति निवास करती थी और उनके आगमन से काफी समयोपरान्त उरौन जाति का प्रादुर्भाव हुआ" तथा "यद्यपि अब इन दोनों जातियों को देश के गाँवों में एक ही खेतों में काम करते, समान व्यौहारों को मनाते एवम् हुए भी पूर्णतयः भिन्न-भिन्न जाति कहा जा सकता है और इनमें अपनी जाति से विच्छेद किये बिना अन्तर्जातीय विवाह नहीं हो सकते।" भाषा की भिन्नता से जाति भिन्नता के तथ्य की पुष्टि होती है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनसे पता चलता है कि उरौन दक्षिण की तामिल जाति से सम्बन्धित थे जबकि उत्तर की पर्वतीय जातियों से सम्बन्धित थी जो हिमालय पर्वत से विन्ध्याचल पर्वत तक एवम् सिन्ध नदी से बङ्गाल की खाड़ी तक फैली हुई थी।

कर्नल डाल्टन ने मुण्डरों से सम्बन्धित विभिन्न जातियों का उल्लेख किया है जैसे एलिचपुर की कुआर, सिरगुजा की कोरेवा, छोटा नागपुर की खेरिया, सिंह भूमि की होर, मानभूमि तथा ढाल भूमि की भूमिज मानभूमि, सिंहभूमि, कटक, हजारीबाग तथा भागलपुर की पहाड़ियों की सन्थाल जाति। इनके साथ उसने कटक के सहायक जिलों में केउन्जर आदि की जौंगा अथवा पुट्टन जाति को जोड़ दिया है जो "मुण्डा परिवार की अन्य सभी जातियों से कटी हुई है और उन्हें स्वयं भी अपने सम्बन्धों का ज्ञान नहीं है परन्तु उनकी भाषा से पता चलता है कि वह एक हो जाति के लोग हैं तथा उनकी निकटन शाखा सैरिया शाखा है।" इस जाति की पश्चिमी शाखायें मालवा तथा खान्देश की भील जाति तथा गुजरात की कोली जाति हैं। इन जातियों के दक्षिण में इसी जाति को एक अन्य शाखा है सूर अथवा सुआर कहा जा सकता है। वह पूर्वी घाटों के दूरस्थ उत्तरी द्वार पर अवस्थित है।

कर्नल डाल्टन के अनुसार सिंहभूमि की हो अथवा होर जाति "मुण्डा जाति की मूल शाखा" है। उन्होने इसे सम्पूर्ण जाति में सर्वाधिक ठोस, शुद्ध, शक्तिशाली एवम् रुचिपूर्ण शाखा एवम् इनकी आकृति को निश्चित रूप से श्रेष्ठ कहा है। अपनी आकृति से हो जाति के लोग उन लोगों की भाँति दिखाई देते हैं जिन्होने अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखा है और इस कारण उन्हें गर्व भी है। उनमें अनेक व्यक्तियों की अपनी आकृति के कारण आर्यों से तुलना की जा सकती है जिनकी ऊंची नासिका, विशाल, सुगठित मुख, सुन्दर दाँत एवम् मुखड़े को हिन्दू जातियों के समान बताया जा सकता है। जब मुण्ड जाति के लोगों की आकृति आर्यों से भिन्न दिखाई देती है तो यह नीग्रो जाति के स्थान पर मङ्गोल जाति से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। इस जाति के लोग सामान्य कद के एवम् रङ्ग में भूरे एवम् भूरे पीले होते हैं।"

मुण्डा भाषा की विभिन्न प्रचलित भाषाओं में हो, होर, होरो, अथवा होको शब्द "नर" के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। सिंहभूमि के निवासियों द्वारा इस नाम के प्रयोग से कर्नल डाल्टन के विश्वास की पुष्टि होती है कि यह जाति मुण्डा जाति की सर्वाधिक शक्तिशाली शाखा थी। परन्तु वह अपने आपको लड़ाका अथवा "योद्धा" भी कहा करते हैं जिनसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह मुण्डा जाति की मुख्य शाखा थे।

कर्नल डाल्टन ने मुण्डा नाम के किसी अर्थ का उल्लेख नहीं किया है परन्तु मैंने देखा देखा है कि सिंह भूमि एवं मुण्डा जाति की अन्य शाखाओं में गाँव के मुखिया को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुण्डा अथवा मोटो कहा जाता है अतः मेरा निष्कर्ष है कि मुण्डा अथवा मोटो शाखा किसी समय इस जाति की शासक जाति रही होगी। विष्णु पुराण में मुण्डा को उन ग्यारह राजकुमारों के परिवार का विशिष्ट नाम बताया गया है जिन्होंने तुशार अथवा तोखरी जाति के पश्चात राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु वायु पुराण में इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता है और हमें मरुण्ड का नाम मिलता है जो सम्भवतः द्वितीय एवम् तृतीय शताब्दियों के दो शिला लेखों में प्राप्त अन्य नाम मुरुण्ड का परिवर्तित स्वरूप है। टालमी ने गङ्गा के उत्तर के निवासियों को मरुण्डाई नाम दिया है परन्तु दक्षिण के निवासियों को उसने मण्डली कहा है जो छोटा नागपुर के मुण्डा हो सकते हैं क्योंकि उनकी भाषा एवम् देश को मुण्डला कहा गया है। यह केवल एक प्रस्ताव है, परन्तु मण्डाली की स्थिति से पता चलता है कि वह प्लिनी के मीनेडीज लोग थे जिन्होंने सुआरी जाति के साथ-साथ पालीबोथरा के दक्षिणी प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। चूंकि यह मुण्डा एवम् सुआर जाति के देश की वास्तविक स्थिति यही है अतः मेरे विचार में यह प्रायः निश्चित है कि वह प्लिनी की मोनेडीज एवम् सुआरी जातियाँ थी।

एक अन्य स्थान पर प्लिनी ने मण्डेई तथा मल्लो जाति को कालिगाय तथा गङ्गा के मध्यवर्ती क्षेत्र का निवासी कहा कहा है। मल्ली जाति के प्रदेश में मल्लुस नामक एक पर्वत था जो मोनेडीज तथा सुआरी का प्रसिद्ध मालेयस पर्वत प्रतीत होता है। मेरे विचार में इस बात की अधिक सम्भावना है कि दोनों नाम भागलपुर के दक्षिण में प्रसिद्ध मण्डर पर्वत के लिये प्रयुक्त किये गये थे जो सागर मन्थन के समय देवताओं एवम् राक्षसों द्वारा प्रयोग में लाये जाने के कारण प्रसिद्ध है। मण्डेई को मैं महानदी नदी के निवासियों के अनुरूप स्वीकार करूँगा जिसे प्लिनी ने मनदा कहा है। अतः मल्ली अथवा मलेई टालमी की मण्डालाय जाति होगी जो पालीबोथरा के दक्षिण में गङ्गा के दाहिने तट पर बसी हुई थी, अथवा वह राज महल पहाड़ियों के निवासी हो सकते हैं जिन्हें मलेर कहा गया है जिसे कन्नड़ माले तथा तामिल भाषा के मलेई अर्थात 'पर्वत' से प्राप्त किया गया है। अतः यह हिन्दू पहाड़ी अथवा पर्वतिया अर्थात "पर्वतीय मनुष्य" के समान होगा।

प्लिनी की सुआरी जाति टालमी की सोबराय जाति है और नोदों को ही लकड़हारों की जङ्गली जाति सवरा अथवा सुआर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो जङ्गलों में घूमा करते थे। कहा जाता है कि सवरों की सीमायें खोण्ड जाति के सीमान्त से प्रारम्भ होती थी और दक्षिण में पेन्नार नदी तक विस्तृत थीं। परन्तु पूर्वी घाट की सवार थथवा सुआर जाति दूर-दूर तक बसी हुई जाति की केवल एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाखा थी जबकि मुख्य जाति ग्वालियर तथा नरवाड़ के दक्षिण पश्चिम में तथा दक्षिणी राजपूताना में अधिक संख्या में मिलती है। ग्वालियर सीमा की सवारी अथवा सहारी जाति नरवाड़ तथा गुणा के पश्चिम की ओर कोटा सीमा के बनों में बसी हुई है। इस जाति के लोग चम्बल नदी एवम् इसकी शाखाओं के जल मार्ग के साथ-साथ बसे हुए हैं जहाँ यह टाड द्वारा वर्णित राजपूताना की सुरिया जाति से मिलते हैं। यह नाम टालमी के सोराय जाति के नाम में सुरक्षित है जिन्हें कोण्डाली तथा फिलीटोय अथवा गोण्ड तथा भीलों के दक्षिण में बताया गया है। अतः वह मध्य भारत के सुआर अथवा सवरा रहे होंगे जो वैन गङ्गा के उदगम स्थान के आस-पास जङ्गली एवम् पर्वतीय प्रदेश में बसे हुए थे तथा जिन्हें तिस्ता नदी की घाटी के साथ-साथ भी देखा जा सकता है। चूंकि किरन का अर्थ है "मिली-जुली जाति का मनुष्य" अथवा बर्बर मनुष्य, अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि किरण सुवर्ण सुवार अथवा सुआर जाति का मूल नाम रहा हो।

सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस देश का राजा शी-शांग-किया अथवा ससांगक था जो बौद्ध धर्म के परम विरोधी के रूप में प्रसिद्ध है। अङ्गरेजी अजायब घर के "पेयनी नाईट कलेक्शन" में मैंने एक स्वर्ण मुद्रा देखी थी जिस पर इस राजा का पूरा नाम खुदा हुआ था। अन्य स्थानों पर भी इस मुद्रा के नमूने मिलते हैं।

औड़्रा अथवा, उड़ीसा

ओ-चा अथवा ओडा राज्य आधुनिक ओड़्रा अथवा उड़ीसा प्रान्त से ठीक-ठीक मिलता है। ह्वेनसांग की जीवनी' से ऐसा प्रतीत होता है कि ओड़्रा तमलूक ताम्रलिप्ति के दक्षिण पश्चिम में ७०० ली की दूरी पर था और चूंकि यह दिकांश एवम् दूरी जाजीपुर की स्थिति से मिलती है अतः मेरा विचार है कि ओड़्रा जाने से पूर्व तीर्थ यात्री किरण सुवर्ण से तमलुक वापस आया होगा। तीर्थ यात्री की यात्राओं के विवरण में दिकांश एवम् दूरी को किरण सुवर्ण से लिया गया है जो सम्भवतः एक त्रुटि है क्योंकि इन्हें सामान्य रूप से राजधानी से सम्बन्धित किया गया था जो चाहे इसे जाजीपुर स्वीकार किया जाये अथवा कटक, किरण सुवर्ण के ठीक दक्षिण में थी।

प्रान्त की परिधि ७००० ली अथवा ११६७ मील थी और यह दक्षिण पूर्व में समुद्र से घिरा हुआ था जहां ची-ली-ता-लो-चिंग अथवा चरित्तापुर नामक एक प्रसिद्ध बन्दरगाह थी। यह सम्भवतः पुरी का वर्तमान नगर था जिसके समीप जगन्नाथ का प्रसिद्ध मन्दिर बना हुआ है। नगर के बाहर एक दूसरे के समीप ही पांच स्तूप थे जिनके बुर्ज अधिक ऊँचे थे मेरा अनुमान है कि इनमें एक को जगन्नाथ को समर्पित किया गया है। इस देवता उसके भाई बलदेव तथा बहन सुभद्रा की तीन आकार रहित मूर्तियां बौद्ध धर्म की बुद्ध, धर्म एवम् संघा की लाक्षणिक प्रतिमा की साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नकल है जिनमें द्वितीय मूर्ति को सदैव स्त्री रूप का प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है। मथुरा एवम् बनारस के वार्षिक पञ्चाङ्ग में इन्हें बुद्ध का ब्राह्मण अवतार स्वीकार किया जाता है जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जगन्नाथ की मूर्ति बौद्ध मूर्तियों पर आधरित है।

उड़ीसा की राजनीतिक सीमाओं को इसके सर्व शक्तिशाली शासक के समय में उत्तर में हुगली तथा दमूद नादियों तक तथा दक्षिण में गोदावरी तक विस्तृत कहा जा सकता है। परन्तु ओड्रदेश अथवा ओड़-देश का प्राचीन राज्य महानदी की घाटी तथा सुवर्ण रेखा नदी के निचले मार्ग तक सीमित था। इसमें कटक तथा सम्भलपुर के सम्पूर्ण जिले तथा मेदिनीपुर का कुछ भाग सम्मिलित था। यह राज्य पश्चिम में गोण्डनावा तथा उत्तर में जसपुर एवम् सिंह भूमि के पर्वतीय राज्यों से, पूर्व में समुद्र से तथा दक्षिण में गंजाम से घिरा हुआ था। ह्वेनसांग के समय में भी इस राज्य सीमायें यही रही होंगी क्योंकि इस भू-भाग की परिधि तीर्थ-यात्री के अनुमानित आंकड़ों से मिलती है।

प्लिनी ने ओरेटीज को भारत के निवासी कहा है जिनके प्रदेश में मालेयस पर्वत था परन्तु एक अन्य स्थान पर उसने इस पर्वत को मोनेडीज तथा सुआरी जाति की सीमाओं में बताया है जबकि तीसरे स्थान पर उसने मल्लस पर्वत को मल्ली जाति की सीमाओं में बताया है। चूंकि अन्तिम जाति कलिंगोई के उत्तर में थी तथा मोनेडीज एवम् सुआरी जाति पालीबोथरा के दक्षिण में थी अतः ओरेटीज को हमें महानदी एवम् इसकी सहायक नदियों के साथ-साथ किसी स्थान पर देखना चाहिये। अतः जैसा कि हम बता चुके हैं मोनेडीज एवम् सुआरी मुण्डा एवम् सुआर जातियाँ रही होंगी तथा ओरेटीज उड़ीसा के निवासी रहे होंगे। माली; द्रविड़ भाषा में पर्वत का एक नाम है और चूंकि उरौन अथवा पश्चिमी उड़ीसा के लोग आज भी द्रविड़ भाषा का प्रयोग करते हैं अतः यह सम्भव है मल्लस, पर्वत का वास्तविक नाम नहीं था। हो सकता है कि यह तेलिंगाना का प्रसिद्ध श्री-पर्वत हो जिससे यहाँ के निवासियों को श्री-पर्वतीय कहा जाता था।

देश की प्राचीन राजधानी महानदी नदी पर कटक थी, परन्तु छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा जजाति केशरी ने वैतरनी नदी पर जजातीपुर के स्थान पर नवीन राजधानी की स्थापना कराई थी जो जाजीपुर के संक्षिप्त नाम के अन्तंगत आज भी जीवित है। इसी राजा ने भुवनेश्वर के कुछ विशाल मन्दिरों का निर्माण आरम्भ करवाया था परन्तु इस नाम नगर की स्थापना ललितेन्द्र केशरी ने करवाई थी। कहा जाता है कि यहाँ के निवासियों की भापा एवम् बोली मध्य भारत के निवासियों की भाषा एवम् बोली से भिन्न थी और वर्तमान समय में भी इस भाषा एवम् बोली में अन्तर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर के दक्षिण पश्चिम में दो पहाड़ियाँ थी जिनमें एक पहाड़ी जिसे पुष्पगिरी कहा जाता था उस पर इसी नाम का एक मठ एवम् पत्थरों का बना एक स्तूप था जबकि दूसरी पहाड़ी पर केवल एक स्तूप था। यह पहाड़ी उत्तर पश्चिम की ओर थी। इन पहाड़ियों को मैं उदयगिरी एवम् खण्डगिरी की प्रसिद्ध पहाड़ियाँ समझता हूँ जिनमें अनेक बौद्ध कन्दरायें एवम् लेख पाये गये हैं। यह पहाड़ियाँ कटक के २० मील दक्षिण में तथा भुवनेश्वर के मन्दिरों के विशाल समूह से ५ मील पश्चिम में हैं। कहा जाता है कि स्तूपों का निर्माण राक्षसों ने करवाया था जिनसे मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग के समय में इन पहाड़ियों की विशाल कन्दराओं एवम् बौद्ध कालीन कार्यों की तिथि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं थी।

गञ्जाम

ओड्रा की राजधानी से तीर्थयात्री दक्षिण पश्चिम दिशा में १२०० ली अथवा २०० मील दूर कोंग यू तो गया। इस नाम की पहचान नहीं हो सकी है परन्तु मेरा विचार है कि एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने चिल्का झील के पड़ोस में इसकी वास्तविक स्थिति की ओर संकेत किया है। यह राजधानी एक खाड़ी अर्थात दो समुद्रों के सङ्गम स्थान के समीप अवस्थित थी जिसे केवल विशाल चिल्का झील तथा समुद्र समझा जा सकता है क्योंकि लहरों से बने इस तट के साथ अन्य सागर अथवा झील नहीं है। अतः केवल गञ्जाम ही प्राचीन राजधानी हो सकती थी। परन्तु चूंकि गञ्जाम जाजीपुर से मानचित्र पर सीधे माप के अनुसार केवल १३० मील तथा मार्ग दूरी के अनुसार प्रायः १५० मील दूर है अतः मेरा निष्कर्ष है कि गञ्जाम की ओर जाते हुए तीर्थयात्री ने उदयगिरि तथा खण्डगिरि की पहाड़ियों एवम् चरित्र पुर अथवा पुरी नगर की यात्रा की थी। इस मार्ग से यह दूरी बढ़कर सीधे माप से १६५ मील तथा सड़क मार्ग से प्रायः १९० मील हो जायेगी जो चीनी तीर्थयात्री के अनुमान से सहमत है।

एम० जुलीन ने चीनी अक्षर कोंग-यू-तो को कोन्योधा कहा है परन्तु मैं इस नाम के किसी भी स्थान से अनभिज्ञ हूँ। मैं देखता हूँ कि एम पाथियर ने इस नाम को कयूआन-यू-मो लिखा (१) है जो गञ्जाम का अनुवाद प्रतीत होता है परन्तु यह नाम कहाँ से लिया गया है इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है। हेमिल्टन ने गञ्जाम को "भन्डार" कहा है परन्तु यह नाम अकेला नहीं रहता वरन् इस सदा संस्थापक के नाम अथवा उस स्थान पर क्रय-विक्रय की मुख्य वस्तु के नाम के साथ जोड़ दिया जाता है जैसे रामगंज, ठठियार गंज आदि। इस जिले की परिधि केवल १००० ली अथवा

---

(१) पूर्वी भारत के ऊ-चा अथवा ओडा को क्यूने यू को भी कहा गया है जिस समय अर्थात ६५० से ६८४ ई० में यह ओड्र अथवा उड़ीसा का अश्रित राज्य रहा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६७ मील थी जिससे पता चलता है कि इसकी सीमायें रशिकुल्या नदी की छोटी घाटी तक सीमित थीं परन्तु यद्यपि यह एक छोटा राज्य था परन्तु प्रतीत होता है कि उस समय यह एक महत्वपूर्ण राज्य था क्योंकि ह्वेनसांग यहाँ के सैनिकों को वीर एवम् साहसी कहा है तथा उनके राजा को इतना शक्तिशाला बताया है कि पड़ोसी राज्य उसके अधीन थे एवम् उनमें राजा का सामना करने की शक्ति नहीं थी। इस विवरण से मेरा अनुमान है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय गञ्जाम का राजा उड़ीसा के इतिहास का ललितेन्द्र केसरी रहा होगा। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने ६१७ ई० से ६७६ ई० तक लगभग ६० वर्षों तक राज्य किया था। तीर्थ यात्री ६३९ ई० में गञ्जाम गया था जिस समय यह राजा अपनी चरमोवस्था में था। परन्तु केवल ४ वर्षोपरान्त जब तीर्थयात्री पुनः मगध में पहुँचा तो उसने देखा कि कन्नौज का महान सम्राट हर्ष वर्धन उसी समय ही गञ्जाम के विरूद्ध सफल अभियान से वापस आया था। युद्ध के कारणों की व्याख्या नहीं की गई है परन्तु चूंकि हर्षवर्धन एक कट्टर बौद्ध अनुयायी था जबकि ललितेन्द्र एक ब्राह्मण वादी था अतः धर्म विभेद के कारण युद्ध का कोई न कोई कारण निकल आया होगा यह सम्भव प्रतीत होता है कि उस समय गञ्जाम को कन्नौज राज्य में मिला कर उड़ीसा प्रान्त का भाग घोषित कर दिया होगा।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि गञ्जाम की लिपि मध्य भारत की लिपि से मिलती है परन्तु दोनों स्थानों की भाषा एवम् उच्चारण भिन्न-भिन्न था। इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि सातवीं शताब्दी के मध्य तक भारत के अधिकांश भागों में समान लिपि प्रचलित थी। इनसे इस बात का पता भी चलता है कि सम्पूर्ण भारत में बौद्ध मठों के मध्य स्थापित पत्र व्यवहार की भाषा पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हो सकी थी यद्यपि ब्राह्मणवाद के गठित उत्थान से उसमें बाधा पड़ी होगी।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिणी भारत

ह्वेनसांग के अनुसार दक्षिणी भारत में, पश्चिम में नासिक से लेकर पूर्व में गञ्जाम तक ताप्ती एवम् महानदी नदियों का सम्पूर्ण दक्षिणी पठार सम्मिलित था। श्री लङ्का को छोड़ यह नौ राज्यों में विभाजित था। श्री लङ्का को भारत का अङ्ग नहीं समझा जाता था। तीर्थ यात्री ने ६३९ तथा ६४० ईसवी में इन सभी राज्यों की यात्रा की थी। उसने उत्तर पूर्व दिशा से कलिंग में प्रवेश किया था और उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ते हुए वह कोशल एवम् आन्ध्र के भीतरी राज्यों में गया था। तदोपरान्त दक्षिणी दिशा में अपनी यात्रा को जारी रखते हुए वह धनकाकटा, जोरया, द्रविड़ से होते हुए सालकुट तक गया था। द्रविड़ राज्य की राजधानी कांची में उसे श्री लङ्का के राजा की हत्या की सूचना मिली जिसके पश्चात उसने उस द्वीप की स्थिति के कारण वहां जाने का विचार त्याग दिया। तत्पश्चात उत्तर की ओर मुड़ते हुए वह कोंकण एवम् दक्षिण भारत के ७ राज्यों में अन्तिम राज्य महाराष्ट्र गया।

कलिंग

सातवीं शताब्दी में की लिंग किया अथवा कलिंग की राजधानी गञ्जाम के दक्षिण पश्चिम में १४०० से १५०० ली अथवा २३३ से २५० मील की दूरी पर अवस्थित थी। दिकांश एवम् दूरी दोनों ही गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री अथवा समुद्र तट पर कोरिंग की ओर संकेत करती हैं। इनमें प्रथम स्थान गञ्जाम से २५१ मील दक्षिण पश्चिम में तथा द्वितीय स्थान इसी दिशा मे २४६ मील की दूरी पर है। परन्तु चूंकि प्रथम स्थान को अधिक समय से राज्य की राजधानी बताया जाता है अतः मेरा अनुमान है कि तीर्थयात्री इसी स्थान पर गया होगा। कहा जाता है कि कलिंग की मूल राजधानी कलिंग पट्टन से २० मील दक्षिण पश्चिम में श्रीकक्कोल अथवा चीकाकोल में थीं। इस राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी। इसकी सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु चूंकि इसकी सीमायें पश्चिम में आन्ध्र तथा दक्षिण में घनकटक मिलती थी अतः इसकी सीमायें दक्षिण पश्चिम में गोदावरी नदी तथा उत्तर पश्चिम में इन्द्रावती नदी की गोलिया शाखा से परे नहीं होगी। इन सीमाओं के भीतर कलिंग की परिधि प्रायः ८०० मील होगी। देश के इस भाग का मुख्य स्थान पर्वतों की महेन्द्र श्रेणी है जिसने महाभारत लिखे जाने के समय से वर्तमान समय तक अपना नाम सुरक्षित एवम् अपरिवर्तित रखा है। विष्णु पुराण में इस पर्वत श्रेणी का ऋषि-कुल्य नदी के उद्गम स्थान के रूप में उल्लेख किया गया है और चूंकि यह गञ्जाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदी सर्व प्रसिद्ध नाम है अतः महेन्द्र पर्वत को महेन्द्र मालो श्रेणी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो गञ्जाम को महानदी की घाटी से अलग करती है।

राजमहेन्द्री वेनगी के चालुक्य राजाओं की पूर्वी अथवा छोटी शाखा की राजधानी थी जिनका अधिकार क्षेत्र उड़ीसा की सीमाओं तक विस्तृत था। वेनगी राज्य की स्थापना ५४० ई० में बेनगीपुर की प्राचीन राजधानी पर अधिकार किये जाने के पश्चात हुई थी। प्राचीन राजधानी के अवशेष एल्लूर से ५ मील उत्तर तथा राजमहेन्द्री से ५० मील पश्चिम दक्षिण पश्चिम में वेगी के स्थान पर देखे जा सकते हैं। ७५० ई० के लगभग वेन्गी के राजा ने कलिंग पर अधिकार कर लिया था और कुछ ही समय पश्चात उसने राजमहेन्द्री को राजधानी बना लिया।

प्लिनी ने कलिंगोय जाति को मण्डेई तथा मल्ली जातियों एवम् मालेयस के प्रसिद्ध पर्वत से नीचे, भारत के पूर्वी तट का निवासी बताया है। इस पर्वत को सम्भवतः गञ्जाम में ऋषिकुल्य नदी के सिरे पर एक उन्नत पर्वत श्रेणी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसे आज भी महेन्द्र माले अथवा महेन्द्र पर्वत कहा जाता है। दक्षिण में कलिंगोय की सीमायें कलिंगोन की भू-नासिका तथा डण्डगुला नगर तक विस्तृत थी जो गङ्गा के मुहाने से ६२५ रोमन मील अथवा ५७४ ब्रिटिश मील था। दूरी एवम् नाम दोनों ही कोरिंगोन की भू-नासिका के रूप में कोरिंग बन्दरगाह की ओर संकेत करते हैं जो गोदावरी नदी के मुहाने पर सूनासिका पर अवस्थित है। दण्डगुडा अथवा दण्डगला नगर को मैं बौद्ध ग्रन्थों का दान्तपुर समझता हूँ जिसे कलिंग की राजधानी के रूप में सम्भवतः राजमहेन्द्री के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जो कोरिंगा से केवल ३० मील उत्तर-पूर्व में है। यूनानी भाषा के अत्यधिक समानता के कारण मेरे विचार में यह असम्भावित बात नहीं है कि इस स्थान का यूनानी नाम दण्डपुला था जो प्रायः दान्तपुर के समान है। परन्तु इस दिशा में प्लिनी के समय में ही कलिंग में बुद्ध के दान्त का मठ बनवाया गया होगा। बौद्ध ग्रन्थों के इस कथन से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है कि बुद्ध की मृत्यु के तुरन्त बाद बुद्ध का सुवा दन्त कलिंग में ले जाया गया था तथा वहाँ के शासक ब्रह्मदत्त ने इसकी प्रतिष्ठा हेतु एक मठ का निर्माण कराया। यह भी कहा जाता है कि दान्तपुर एक महान नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित था और यह नदी केवल गोदावरी हो सकती है क्योंकि कृष्णा नदी कलिंग में नहीं थी। केवल यही तथ्य दान्तपुर की स्थिति को राज महेन्द्री की प्राचीन राजधानी के स्थान पर निर्धारित करने के लिये पर्याप्त है। महेन्द्री नाम सम्भवतः टालमी के पितुण्ड्रा मेट्रोपोलिस में सुरक्षित है जिसे उ.ने मैसोलोस अथवा गोदावारी अर्थात मछलीपटम की नदी के समीप दिखाया है।

कलिङ्ग की राजधानी का अधिक प्राचीन नाम सिन्हापुर था जिसे श्री लङ्का के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम लिखित शासक विजय के पिता, सिन्हा बहू अथवा सिंह बाहु के नाम पर पुकारा जाता था। इसके स्थिति का संकेत नहीं किया गया है परन्तु गञ्जाम के ११५ मील पश्चिम में लालगला नदी पर इसी नाम का एक विशाल नगर बसा हुआ है जो सम्भवतः समान स्थान है।

चेदी के कलचूरी अथवा हैहय राजपरिवार के लेखों में कहा गया है कि यह राजा 'कालज्जरपुर' तथा त्रिकलिंग के स्वामी की उपाधि धारण किया करते थे। कलिज्जर बुन्देल खण्ड का एक सर्व प्रसिद्ध दुर्ग है और त्रि कलिंग कृष्णा नदी पर धनक अथवा अमरावती, आन्ध्र अथवा वारङ्गल तथा कलिंग अथवा राजा महेन्द्री के तीन राज्यों का नाम रहा होगा। त्रिकलिंग का नाम सम्भवतः पुराना है क्योंकि प्लिनी ने मक्को कलिगोय तथा गङ्गारोडीज कलिंगोय को कलिंगगोय से भिन्न जाति कहा है जब कि महाभारत में विभिन्न स्थान पर कलिंग का उल्लेख तीन बार किया गया है और तीनों बार इसे विभिन्न निवासियों से सम्बन्धित किया गया है। इस प्रकार चूंकि त्रि कलिंग तेलिंगाना के विशाल प्रान्त से मिलता है अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि तेलिंगाना त्रि कलिंगान का केवल संक्षिप्त नाम रहा हो। मैं जानता हूँ कि इस नाम को सामान्य रूप से महादेव के त्रि लिंग से लिया गया है परन्तु प्लिनी द्वारा मक्को कलिगोय तथा गगारीटीज के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि त्रि कलिंगान मैगस्थनीज के समय में भी ज्ञात थे क्योंकि प्लिनी ने भारतीय भूगोल मुख्य रूप से मैगस्थनीज के विवरण से लिया है। अतः यह नाम दक्षिण भारत में महादेव के लिंग की पूजा के समय से पुराना रहा होगा। ऐसा राजा के खण्डागिरी लेख में कलिंग का तीन बार उल्लेख किया गया है और यह राजा ईसवी पूर्व की द्वितोय शताब्दी में हुआ था। इससे भी प्राचीन समय में अथवा साक्य मुनी के जीवन काल में यह स्थान श्रेष्ठ मल-मल के उत्पादन के लिये प्रसिद्ध था और उसकी मृत्यु पर राजा ने बुद्ध का दान्त प्राप्त किया था जिस पर उसने एक देदीप्यमान स्तूप का निर्माण करवाया था।

कोशल

कलिंग से चीनी तीर्थ यात्री उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग १८०० से १९०० ली अथवा ३०० से ३१७ मील की यात्रोपरान्त क्याओ-सा-ला अथवा कोशल राज्य में गया। दिकांश एवम् दूरी हमें विदर्भ अथवा बरार के प्राचीन प्रान्त की ओर ले जाती है जिसकी वर्तमान राजधानी नागपुर है। यह विवरण रत्नावली एवम् वायु पुराण में वर्णित कोशल की स्थिति से ठीक-ठीक मिलता है। प्रथम पुस्तक में कोशल राज्य विन्ध्याचल पर्वतों द्वारा घिरा हुआ है जबकि द्वितीय ग्रन्थ में कहा गया है कि राम के पुत्र कुश ने विन्ध्याचल पर्वत की खड़ी दीवारों पर बनी कुशस्थली अथवा कुशावती नामक राजधानी से कोशल पर राज्य किया था। इन सभी समान तथ्यों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमें प्राचीन कोशल को बरार अथवा गोण्डवाना के आधुनिक जिले के अनुरूप स्वीकार करने में सहायता मिलती है। राजधानी की स्थिति को निर्धारित करना अधिक कठिन है क्योंकि ह्वेनसांग ने इसके नाम का उल्लेख नहीं किया है परन्तु चूंकि इस नगर की परिधि ४० ली अथवा ७ मील थी अतः सम्भव है कि वर्तमान समय का कोई विशाल नगर इसका प्रतिनिधित्व करे। यह नगर इस प्रकार है—चान्दा, नागपुर, अमरावती तथा एलिचपुर।

चान्दा दीवारों से घिरा एक नगर है जिसकी परिधि ६ मील है। यहाँ एक दुर्ग भी है। यह वेन गङ्गा तथा वरछा नादियों के सङ्गम स्थान से नीचे अर्थात गोदावरी नदी पर राजमहेन्द्री से २९० मील उत्तर पश्चिम में तथा कृष्णा नदी पर धरनी कोट से २८० मील की दूरी पर अवस्थित है। अतः इसकी स्थिति ह्वेनगांग द्वारा कथित दिकांश एवम् दूरी से ठीक ठीक मिलती है।

अमरावती राजमहेन्द्री से समान दूरी पर है तथा एलिचपुर यहाँ से भी ३० मील उत्तर में है। अतः चान्दा ही एक मात्र ऐसा स्थान है जो सातवीं शताब्दी में कोशल की राजधानी के अनुरूप होने का ठोस दावा कर सकता है। धनाकटा तक १९०० ली अथवा ९०० जमा १००० ली की पश्चातवर्ती दूरी से राज महेन्द्री से १८०० अथवा १९०० ली की कथित दूरी की पुष्टि होती है। यह स्थान निश्चित ही कृष्णा नदी पर अवस्थित धरनी कोट अथवा अमरावती के समान था। अब धरनीकोट से चान्दा की मार्ग दूरी सीधे मार्ग से २८० मील अथवा १६८० ली है परन्तु ह्वेनसांग सर्व प्रथम ९०० ली तक दक्षिण पश्चिम की ओर गया था और तत्पश्चात वह १००० ली तक दक्षिण की ओर गया था अतः दोनों स्थानों के मध्य सीधा मार्ग १७०० ली से अधिक नहीं रहा होगा।

राज्य के ३०० ली अथवा ५० मील दक्षिण पश्चिम में पो-लो-मो-लो-की-ली नामक एक उन्नत पर्वत था जिसका अर्थ "काला शिखर" बताया जाता है। एम० जुलीन ने इसे वर्तमान समय का बरमूल गिरो कहा है परन्तु मैं प्राप्त पुस्तकों अथवा मानचित्रों में इस नाम के किसी भी स्थान को प्राप्त करने में असमर्थ रहा हूँ। इस पर्वत को स्पर अथवा घाटी रहित एक अत्यधिक उन्नत पर्वत कहा गया है जिससे यह पता चलता है कि यह पत्थरों का समूह था। राजा सो-तो-पो हो अथया सातवाहन में पर्वत को काट-काट कर पाँच मंजला भवन बनवाया था जहाँ अनेक दर्जन अर्थात अनेक मील लम्बी एक खोखली सड़क द्वारा पहुँचा जा सकता था। ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रा नहीं की थी। परन्तु चूंकि यह कहा गया है कि चट्टान को काट-काट कर नागार्जुन नामक पवित्र बौद्ध मुनी का निवासस्थास बनवाया गया था और यदि राजधानी से इसकी दूरी केवल ५० मील थी तो तीर्थ यात्री निश्चित ही इस स्थान पर जाता। इसी प्रकार यदि हम दक्षिण 'पश्चिमी दिशा को सही स्वीकार करें तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आन्ध्र की ओर अपने पश्चातवर्ती यात्रा के समय तीर्थ यात्री इस स्थान के समीप से गुजरा होगा क्योंकि आन्ध्र की ओर यात्रा उसी दिशा अर्थात दक्षिण दिशा में की गई थी। अतः मेरा निष्कर्ष है कि जिसके माध्यम से तीर्थ यात्री ने इस चट्टान की स्थिति की ओर संकेत किया है सम्भवतः राज्य की सीमाओं से सम्बन्धित था और परिणाम स्वरूप इस स्थान को राज्य की पश्चिमी सीमाओं से ३०० ली अथवा ५० मील की दूरी पर देखा जाना चाहिये। यह स्थिति एलोरा के समीप देवगिरी के महान चट्टानी दुर्ग की स्थिति से भली भाँति मिलती है और पोलोमोलोकीशी अथवा वर्मूल गिरी नाम को वरूला अथवा एलोरा का मूल स्वरूप समझा जा सकता है। इस विवरण के अनेक अंश उदाहरणार्थ चट्टान को काट कर बनाये गये लम्बे गलियारे एवम् चट्टान के शिखर से गिरते हुए पानी का झरना—देवगिरी के स्थान पर एलोरा की विशाल बौद्ध संस्थाओं के विवरण से मिलते हैं। परन्तु चूंकि ह्वेनसांग इस स्थान पर नहीं गया था अतः उसने अपने विवरण विभिन्न यात्रियों के विभिन्न विवरणों से लिया होगा जिनमें एलोरा तथा देवगिरी के साथ मिले हुए स्थानों को एक ही स्थान समझ लिया गया होगा।

फाहियान ने भी पाँचवीं शताब्दी में चट्टान को काट-काट कर बताये गये उन्हीं निवास स्थानों का उल्लेख किया है। उसने इस स्थान को फो-लो-यू अथवा "कपोत" कहा है और इसे तथसिन अर्थात दक्षिण अथवा दक्षिणी भारत अथवा आधुनिक दक्कन कहा है। उसने यह सूचना बनारस के स्थान पर प्राप्त की थी और चूंकि दूरी में वृद्धि से आश्चर्य जनक बातें अपना महत्व स्थाई रखती हैं अतः उसका विवरण भी ह्वेनसांग के विवरण की भांति विचित्र है। ठोस चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को पाँच मंजला कहा गया है जिसकी प्रत्येक मंजल विभिन्न पशुओं के आकार की बनाई गई है और पाँचवीं अथवा अन्तिम मंजल कपोत्त के आकार की बनाई गई है जिसके कारण मठ को कपोत्त मठ कहा गया है। अतः चीनी अक्षर फो-लो-यू संस्कृत के पारावत अर्थात कपोत के लिये लिखे गये होंगे। ऊपरी मंजल से निकला झरना मठ के सभी कमरों अथवा मंजिलों से होते हुए मुख्य द्वार से बाहर गिरता है। इस विवरण में भी हमें पाँच मजिंले शिखर से गिरता झरता, स्थान के नाम की समानता आदि सभी बातें मिलती हैं जो ह्वेनसांग के विवरण से समीपता रखती हैं। दोनों में विभिन्नता का मुख्य बिन्दु नाम को दिये गये अर्थ में निहित है। ह्वेनसांग के अनुसार पो लो मो लो ली का अर्थ "आला शिखर" है जबकि फाहियान के अनुसार फो-लू-यू का अर्थ 'कपोत" है। परन्तु इन दोनों तीर्थ यात्रियों के मध्यवर्ती समय में इसका तीसरा उल्लेख भी मिलता है जिसमें इस नाम के भिन्न अर्थ बताये गये हैं। ५०३ ई० में दक्षिण भारत के राजा ने अपना दूत चीन भेजा था जिससे इस बात का पता लगाया गया था कि उसके देश में "ऊँचाई पर अवस्थित 'पा लाई नामक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक सुदृढ़ नगर है। यहाँ से ३०० ली अथवा ५० मील पूर्व की ओर एक अन्य सुदृढ़ नगर था जिसे चीनी अनुवाद में फयू-च्यू चिंग कहा गया है। यह नगर एक प्रसिद्ध सन्त का जन्म स्थान था जिसका नाम चू-सान-हुँ अथवा "अन्न के दानों की माला" बताया गया है। अब, पलामाला "अन्न के दानों की माला" का नाम है और चूँकि यह नाम ह्वेनसांग के पो लो मो तो के प्रत्येक अक्षर का प्रतिनिधित्व करता है अतः मेरा अनुमान है कि यह दोनों एक ही स्थान अथवा व्यक्ति के नाम होंगे। मैं ह्वेनसांग द्वारा नाम को दिये गये अर्थ की उत्तर भारत की भाषाओं में व्याख्या करने में असमर्थ हूँ और मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि तीर्थ यात्री ने सम्भवतः किसी दक्षिणी अथवा द्रविड़ भाषा का अनुवाद किया होगा। कन्नड़ भाषा में 'माले' पर्वत का नाम है और चूँकि पारा एवम् पारस दोनों का रङ्ग काला है अतः यह सम्भव है कि वह चीनी नाम से सम्बन्धित हो। अतः पारा का अर्थ काला और पारा माले का अर्थ काली पहाड़ी लगाया गया होगा। दक्षिण भारत के सर्वाधिक विषैले सर्पों में एक सर्प जिसका रङ्ग गहरा नीला अथवा काला होता है – पार गुड्ड कहलाता है। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग का अनुवाद दक्षिण की किसी भाषा से लिया गया होगा। चीनी अनुवाद में निहित भ्रम चीनी अक्षरों की दुबर्लता के कारण है जिसके कारण संस्कृत शब्दों को चीनी भाषा में अनुवाद करना कठिन है। इस प्रकार पो लो-फा-तो को फाहियान के अनुसार पारावत अर्थात "कपोत्त" पढ़ा जा सकता है अथवा सि-यू-की के अनुसार परावत अर्थात 'अधीन' पढ़ा जा सकता है जबकि यह सम्भव है कि इसका वास्तविक स्वरूप पर्वत रहा हो क्योंकि इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि मठ का निर्माण चट्टानों को काट काट कर किया गया था।

राजधानी को पा-लाई कहा गया है। अब चान्दर के दुर्ग को बाल किला अथवा उन्नत दुर्ग भी कहा जाता है जो यद्यपि मुसलमानों द्वारा दिया गया फारसी नाम है तथापि इसे सम्भवतः इसके मूल नाम पा लाई के आधार पर रखा गया था।

समस्त चीनी पुस्तकों में चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को एक पवित्र सन्यासी से सम्बन्धित किया गया है परन्तु प्रत्येक विवरण में इस सन्यासी का नाम भिन्न-भिन्न दिया गया है। फाहियान के अनुसार यह कास्यप नामक पूर्ववर्ती बुद्ध का मठ था। सी-यू-की में इसे परामाला मुनी का जन्म स्थान कहा गया है जबकि ह्वेनसांग का कथन है कि राजा सातवाहन ने नागार्जुन मुनी के लिये इस मठ को बनवाया था। फाहियान तथा ह्वेनसांग के विचित्र विवरणों से मैं यह सोचने लगा हूँ कि उनका विवरण सम्भवतः देव गिरी तथा एलोरा की महान कन्दराओं से सम्बन्धित रहा होगा परन्तु यदि ह्वेनसांग तथा सी-यू-की द्वारा बताई गई दूरी सही है तो चट्टान को काट-काट कर बनाये गये मठ को चान्दा से प्रायः ५० मील पश्चिम अथवा दक्षिण पश्चिम में देखा जाना चाहिये। अब, मानचित्र में इसी स्थिति पर अथवा चान्दा से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४५ मील पश्चिम में पाण्डु कुरी अथवा 'पाण्डु गृह' नामक एक स्थान दिखाया गया है जिससे इस स्थान की असंदिग्ध प्राचीनता का पता चलता है। सम्भव है कि यह चट्टानों में बनाई गई किन्हीं कन्दराओं से सम्बन्धित हो क्योंकि धमनार खोलवी के स्थान पर बनी चट्टानी कन्दरायें पाण्डवों के नाम पर भीम कन्दरा, अर्जुन कन्दरा आदि नामों से जानी जाती है। पूर्ण सूचना के अभाव में मैं केवल इस स्थान के विचित्र एवम् अर्थयुक्त नाम की ओर ध्यान आर्कषित कराना चाहता हूँ। एलिचपुर तथा अमरावती से ५० मील दक्षिण पश्चिम एवम् अजन्ता से ८० मील पूर्व में पतूर नामक स्थान पर अनेक बौद्ध कन्दरायें हैं। चूंकि इन कन्दराओं का कभी उल्लेख नहीं किया गया है अतः यह सम्भव है कि भविष्य में इसे फाहियान तथा ह्वेनसांग द्वारा कथित चट्टानों को काट-काट कर बनाये गये मठ के अनुरूप स्वीकार कर लिया जाये।

नागार्जुन के सम्बन्ध में राजा सात वाहन अथवा सादवाहन का उल्लेख विशेष रूप से रुचिपूर्ण है क्योंकि इससे पता चलता है कि परामाल की बौद्ध कन्दरायें ईसवी काल की प्रथम शताब्दी में बनवाई गई होंगी। सादवाहन एक पारिवारिक नाम था और नासिक की एक कन्दरा के शिलालेख में इसी रूप इसका उल्लेख किया गया है। परन्तु सातवाहन भी प्रसिद्ध शाली वाहन का सर्व ज्ञात नाम है जिसने ७९ ई० में शक सम्वत की स्थापना की थी। (१) इस प्रकार हमें इस बात के दो प्रमाण प्राप्त हैं कि परामाल की बौद्ध कन्दरायें प्रथम शताब्दी में बनवाई गई थीं। आगे चलकर हम सात वाहन एवम् सातकरनी की अनुरूपता पर विचार करेंगे। पश्चिमी कन्दराओं के शिला लेखों से पता चलता है कि कोशल निश्चित ही गोतमीपुत्र सातकरनी के विशाल दक्षिणी राज्य का भाग था और यदि यह राजा प्रथम शताब्दी में हुआ था—जैसा कि यह प्रतीत होता है (२)—तो सातवाहन अथवा शाली वाहन से उसकी अनुरूपता असंदिग्ध होगी। यहाँ दक्षिण भारत के इतिहास के इस रुचिपूर्ण बिन्दु की सम्भावना पर विचार करना पर्याप्त होगा।

---

(१) साता अथवा साली, यक्ष का नाम था और जब उसने शेर का रूप धारण किया तो बालक रामकुमार ने उस शेर की सवारी की थी और इस प्रकार वह सातावाहन अथा शाली वाहन कहलाया था।

(२) कन्हारी नासिक तथा कार्ली के अधिकांश शिला लेख एक ही समय से सम्बन्धित हैं और चूंकि इनमें अधिकांश शिला लेखों में गोतमीपुत्र सतकरनी, पुथ्योमयों तथा यदन्या श्री के उपहारों का उल्लेख मिलता है अतः सभी को आन्ध्र की सार्व भौमिकता के समय से सम्बन्धित किया जा सकता है। परन्तु एक शिला लेख की तिथि शक्यदित्य अथवा शक समय का ३० वां वर्ष अर्थात १०८ ई० थी। अतः आन्ध्र वासी उस समय राज्य कर रहे होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्वेनसांग ने कोशल के राज्य की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील बताया है। इसकी सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु तीर्थ यात्री की यात्राओं के विवरण से हम जानते है कि यह राज्य उत्तर में उज्जैन, पश्चिमो में महाराष्ट्र, पूर्व में उड़ीसा तथा दक्षिण में आन्ध्र एवम् कलिंग से घिरा हुआ था। राज्य की सीमाओं को अनुमानतः ताप्ती नदी पर बुरहानपुर तथा गोदावरी नदी पर नान्देड़ से लेकर चस्तिगढ़ में रत्नपुर तक तथा महानदी के उदगम स्थान के समीप नवगढ़ तक विस्तृत बताया जा सकता है। इन सीमाओं के भीतर कोशल राज्य की सीमाओं की परिधि १००० मील से अधिक है।

आन्ध्र

कोशल से ह्वेनसांग ९०० ली अथवा १५० मील दक्षिण में अन तो-लो अथवा आन्ध्र अथवा आधुनिक तेलिंगाना तक गया। इसकी राजधानी को पिंग-की-लो कहा जाता था जिसे एम० जुलीन ने विंगखीला कहा है परन्तु आज तक इसकी पहचान नहीं की जा सकी है। हम जानते हैं कि वारंगल अथवा वरनकोल कई शताब्दियों बाद तक तेलिंगाना की राजधानी थी परन्तु इसकी स्थिति तीर्थ यात्री द्वारा वर्णित स्थिति से नहीं मिलती क्योंकि यह गङ्गा नदी पर चान्दा से अधिक दूर है जबकि कृष्णा नदी पर धरनी कोट के अधिक समीप है। और चीनी अक्षर वारङ्गल नाम का प्रतिनिधित्व नहीं करते यद्यपि उन्हें वन्कोल का प्रतिनिधि समझा जा सकता है। इन्हें भीमगल पढ़ा जा सकता है जो तेलिंगाना के एक प्राचीन नगर का नाम है। इसका उल्लेख अबुल फजल ने किया था। परन्तु भीम गल चान्दपुर से १५० मील दक्षिण अथवा दक्षिण पश्चिम में होने के स्थान पर केवल १२० मील दक्षिण पश्चिम में है और धरनी कोट से १६७ मील की अपेक्षा यह स्थान २०० मील उत्तर में है। और यदि दोनों की स्थिति में अधिक समानता होती तो मैं चीनी अक्षरों को वारङ्गल के अशुद्ध अनुवाद के रूप में स्वीकार कर सकता था परन्तु वारङ्गल तथा चान्दा की मध्यवर्ती वास्तविक दूरी १६० मील तथा वारङ्गल से धरनी कोट की दूरी केवल १२० मील है। अतः ह्वेनसांग के विवरणानुसार यह अन्तिम स्थान के अधिक समीप तथा प्रथम स्थान से अत्यधिक दूर है। यदि हम बरार में अपरावती को कोशल की राजधानी स्वीकार कर सकें तो भीमगल असंदिग्ध रूप से आन्ध्र की राजधानी का प्रतिधित्व करेगा क्योंकि यह स्थान चान्दा अथवा धरनी कोट के मध्य में अवस्थित है। परन्तु दोनों दूरियाँ ह्वेनसांग के ९०० ली तथा १००० ली अथवा १५० मील तथा १६७ मील के आकड़ों की तुलना में इतनी अधिक हैं कि दोनों में सामञ्जस्य नहीं हो सकता है। भीम गल तथा वारङ्गल के मध्य एल गन्देल की स्थिति तीर्थ यात्री के विवरण भली प्रकार से मिलती है क्योंकि यह चान्दा से प्रायः १३० मील तथा धरनी कोट से १७०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मील की दूरी पर है। अतः मैं एलगन्देल को ईसा काल की सातवीं शताब्दी में आन्ध्र की राजधानी के सम्भावित प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करने का इच्छुक हूँ।

आन्ध्र की राजधानी की परिधि ३००० ली अथवा ५०० मील बताई गई है। किसी भी दिशा में इसकी सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि गोदावरी नदी जो पूर्व तथा उत्तर में आन्ध्र की वर्तमान सीमा है प्राचीन समय में भी इसकी उत्तरी एवम् पूर्वी सीमा रही होगी। इसी प्रकार उत्तर की ओर यह तेलगु भाषा की सीमा भी है। पश्चिम में जहाँ यह महाराष्ट्र के विशाल राज्य से मिलता है इसकी सीमायें गोदावरी नदी की मंझीरा शाखा से आगे नहीं गई होंगी। अतः इन सीमाओं को दक्षिण पूर्व में मंझीरा तथा गोदावरी से भद्राचलम तक २५० मील तथा दक्षिण में हैदराबाद तक १०० मील बताया जा सकता है जबकि हैदराबाद तथा भद्रा-चलम की मध्यवर्ती दूरी १७५ मील है। इन सीमाओं में राज्य की परिधि ५२५ मील अथवा ह्वेनसांग द्वारा कथित परिधि के समान बताया जा सकता है।

प्लिनी ने अन्डारोय नाम की एक शक्ति शाली जाति के रूप में आन्ध्र निवासियों का उल्लेख किया है जिनके अधीन ४० सुदृढ़ नगर तथा एक सौ हजार पद सैनिकों, दो हजार अस्वरोहियों एवम् एक हजार हाथियों की एक विशाल सेना थी। पेटिन जेरियन सूचियों में अन्ड्राई इन्डी नाम के अन्तर्गत इनका उल्लेख किया गया है। विलसन के अनुसार इन पेटिनजेरियन सूचियों में आन्ध्र को "गङ्गा नदी के तट पर" दिखाया गया है परन्तु इन सूचियों के विस्तृत मानचित्रों में अनेक जातियों एवम् राष्ट्रों को उनके वास्तविक स्थान से अधिक दूर दिखाया गया है। आस-पास के नामों की तुलना करने से एक सरल एवम् सुरक्षित निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार अन्ड्राये इन्डी को द मरीस के समीप दिखाया गया है जिसे मैं साधारण परिवर्तन के बाद प्लिनी के लिमीरिके के अनुरूप स्वीकार कर सकता हूँ क्योंकि इन सूचियों को बनाने वाले यूनानी अधिकारी रहे होंगे। परन्तु लिमीरिके के निवासी दक्षिणी पठार के दक्षिण पश्चिमी तट पर बसे हुए थे अतः उनके पड़ोसी अन्ड्राय इन्डी गङ्गा नदी के पौराणिक आन्ध्रवासियों की अपेक्षा तेलिंगाना के आन्ध्रवासी रहे होंगे। प्लिनी ने अन्ड्राय के सम्बन्ध में अपनी सूचना को या तो अपने समय के सिकन्द्री व्यापारियों से प्राप्त किया होगा अथवा पालीबोथ्रा के दरबार में सिल्यूकस निकेटोर तथा टालमी फिलाडेल्फस के राजदूत मैगस्थनीज तथा दिवोनीसियस से प्राप्त किया होगा। परन्तु चाहे अन्ड्राय प्लिनी के समकालीन थे अथवा नहीं इतना निश्चित है कि प्लिनी द्वारा कथित काल में आन्ध्रवासी अथवा अन्ड्राय मगध राज्य पर राज्य नहीं करते थे क्योंकि आगे चल कर उसने स्वयं लिखा है कि पालीबोथरा के प्रासी जाति भारत की सर्वाधिक शक्तिशाली जाति थी जिनके पास ६००,००० पद सैनिकों ३०,००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्वारोहियों तथा ६००० हाथियों की, अथवा अ ड्राय इन्डी की शक्ति से ६ गुण अधिक सेना थी।

चीनो तीर्थ यात्री ने उल्लेख किया है कि यद्यपि आन्ध्रवासियों की भाषा मध्य भारत के निवासियों की भाषा से भिन्न थी तथापि अधिकांश भाग में दोनों की लिपि प्रायः समान थी। इस कथन को ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये क्योंकि इससे पता चलता है कि उत्तर भारत से आई प्राचीन देवनागरी लिपि उस समय भी प्रचलित थी और दसवीं शताब्दी के लेखों में प्राप्त होने वाले तेलगु भाषा के टेढ़े-मेढ़े अक्षर उस समय तक दक्षिण में प्रचलित नहीं हुये थे।

दोनककोट्टा

आन्ध्र छोड़ने के पश्चात् ह्वेनसांग १००० ली अथवा १६७ मील तक वनों एवं मरुस्थल को पार करता हुआ तो-ना-की-त्सी-किया तक गया जिसे एम० जुलीन ने धनकचेक पढ़ा है। परन्तु पञ्जाब में ताकी अथवा त्सी-किया के अपने विवरण में मैं बता चुका हूँ कि चीनो अक्षर त्सी भारतीय दन्त स्वर त अथवा ट का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे उपर्युक्त नाम धनकटक बन जायेगा। मैं कन्हारी तथा कार्ली की कन्दराओं के शिला लेखों में धनककट के नाम का उल्लेख कर चुका हूँ जिसे मैंने चीनी नाम के अन्तिम दो अक्षरों को अदला-बदली से धनककट पढ़ने का प्रस्ताव किया है। (१) धनककट का नाम कम से कम चार कन्दराओं के शिला लेखों में पाया गया है और प्रत्येक लेख में डा० स्टीवेन्सन ने इसे एक व्यक्ति के नाम के रूप में पढ़ा है जिसे उन्होंने क्षेनोक्रेटीज़ नामक यूनानो कहा है। परन्तु मेरा विश्वास है कि इन शिला लेखों में दिया गया नाम एक नगर अथवा देश का नाम है जो शिला लेख लिखने वालों का नगर अथवा देश था। चूंकि यह शिल्प लेख संक्षिप्त है अतः मैं डा० स्टीवेन्सन के प्रति न्याय भाव से उन्हें यहाँ उधृत करूँगा।

डा० स्टीवेन्सन ने जिस लेख के आधार पर लेखकों की यूनानी राष्ट्रीयता का अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है—

धनुकाकधा यवनासा सिंहाध्यानम यथा दानम। अर्थात "यूनानी क्षेनोक्रेटीज द्वारा सिंहों सहित स्तम्भ का दान।"

मेरा अनुवाद किसी सीमा तक भिन्न है—

---

(१) सन् १८६४ ई० में भारत सरकार को दी गई पुरातत्वसम्बन्वी अपनी रिपोर्ट में मैंने अपनी प्रस्तावित शुद्धी को प्रकाशित किया था जो वस्तुतः कई वर्ष पूर्व प्रस्तावित की गई थी। डा० भाऊदाजी ने भी चीनी नाम को लेखों के धनककट के अनुरूप स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने चोनी अक्षर त्सी के शुद्ध पाठ का उल्लेख नहीं किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"धनुकक़ट के यवन द्वारा सिंहो वाले स्तम्भ का दान" कहा है परन्तु निम्न-लिखित लेख से स्पष्ट रूप से इस बात का पता चलता है कि धनुकक़ट स्थान का नाम था और परिणाम स्वरूप यवन किसी मनुष्य का नाम रहा होगा।

धेनुकक़ट ऊषभदत्ता पुतसा
मित देवा नकसा थभा दानम

डा० स्टीवेन्सन ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

"धेनुककट (उपनाम) ऋषभदत्त के पुत्र राजा मित्र देव द्वारा स्तम्भ दान"

इस अनुवाद को समझाते हुए उन्होंने धनुकक़ट को यूनानी स्वीकार करने का प्रस्ताव किया है जिसके यूनानी नाम के साथ-साथ एक हिन्दू नाम भी था जिसे उसने बौद्ध धर्म अथवा हिन्दू धर्म की किसी शाखा को ग्रहण करते समय अपने लिया था क्योंकि धर्म परिवर्तन के समय नाम भी परिवर्तत कर किये जाते थे।" परन्तु धनुकक़ट को एक स्थान का नाम स्वीकार करने से इस लेख को किसी अनुमान की ह० धर्मी किये बिना सरलता पूर्वक पढ़ा जा सकता है। मेरा अनुवाद इस प्रकार है :—

"धनुकक़ट के ऋषभ दत्त के पुत्र राजा मित्र देव द्वारा स्तम्भ दान।"

जहाँ तक दानकर्ता के नाम का सम्बन्ध है कार्ले का तीसरे शिला लेख में दुर्भाग्यवश त्रुटि है और अन्तिम शब्द दुर्बोध है। परन्तु प्रारम्भिक लेख को डा० स्टीवेन्सन ने इस प्रकार पढ़ा है :—

धनुककटा (सु) भविकासा, इत्यादि।

जिसके अनुवाद उसने इस प्रकार किया है, "धनुकक़ट द्वारा एक सौम्य निवास स्थान का दान," इत्यादि। यहाँ जिस शब्द का अनुवाद "सौम्य निवास स्थान" दिया गया है मेरा विचार है कि उसे भविवेक पढ़ा जा सकता है क्योंकि ह्वेनसांग ने पो-पी-फी किया नामक धनुकक़ट के एक प्रसिद्ध सान्यासी का उल्लेख किया है। यह नाम वस्तुत: पाली का भो विवेक तथा संस्कृत का भावविवेक है।

कन्हारी में प्राप्त चौथे लेख की केवल ६ पंक्तिया हैं और इसे पश्चिमी कन्दराओं में प्राप्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख समझा जाता है क्योंकि इसकी तिथि सर्व-प्रसिद्ध शालिवाहन काल की तिथि है। डा० स्टीवेन्सन ने इसके प्रारम्भिक भाग को इस प्रकार पढ़ा है :—

उपासका धेनुककाटीनासा कल्प (नक) मनास्का, इत्यादि। और उन्होंने 'धेनुककट को शिल्पी' कहा है। परन्तु श्री वेस्ट द्वारा प्रकाशित प्रथम पंक्ति का वास्तविक पाठ इस प्रकार है :—

उपासकासा धनुककटेयासा कुलापियासा

जिसका अक्षरश: अनुवाद इस प्रकार है, धनुककट के एक उपासिक, कुलापिया का (दान)"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तिम पंक्ति में दी गई, शिला लेख की तिथि का डा० स्टीवेन्सन ने त्रुटिपूर्ण अनुवाद किया है जो इस प्रकार है :—

दत्तवा सलासाका दत्यालेन।

और पूर्ववर्ती चिवारिक शब्द को लेकर उन्होंने इसका अनुवाद इस प्रकार है—

"यहाँ बौद्ध भिक्षुओं के लिये एक बड़ा कमरा बनवाया गया है। यहाँ बुद्ध के दांत की कन्दरा (है)।"

मैं देखता हूँ कि अपने अनुवाद में डा० स्टीवेन्सन ने दत्य एवम् लेन के मध्य 'क' अक्षर छोड़ दिया है। लें ब्रेट्ट तथा श्री वेस्ट द्वारा बनाई गई दोनों प्रतिलिपियों में डा० स्टीवेन्सन ने क शब्द को छोड़ दिया है। इस सम्बन्ध में मैं लेख के अन्तिम शब्दों को इस प्रकार पढ़ूंगा।

दत्त वासे ३० शकादित्य काल

जिसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है :—

"शकादित्य के काल के ३० वें वर्ष में दिया गया।"

अर्थात ७८+३०=१०८ ई० में। सकादित्य सालिवाहन की एक सामान्य उपाधि है और शक सम्वत—जिसकी स्थापना उसने करवाई थी—को प्राचीन लेखों में सक भूप काल अथवा सक नृप काल कहा जाता है। यह दोनों नाम सकादित्य काल के पर्यायवाची शब्द हैं। अतः धनुकक्‍कट में ईसवी काल की द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भिक काल में बौद्ध संस्थान रहे होंगे और यदि कार्ले लेख में मेरे प्रस्तावित भावविवेक के नाम को स्वीकार कर लिया जाये तो बौद्ध धर्म ईसवी काल की प्रथम शताब्दी में भी उतना ही प्रचलित था क्योंकि भावविवेक नागार्जुन का एक शिश्य था।

धनकक्‍कट की स्थिति को कृष्णा नदी पर धरनीकोट अथवा अमरावती के स्थान पर निश्चित करते समय मैंने न केवल आन्ध्र तथा कोशल से इसके दिकांश एवम् दूरी का ध्यान रखा है परन्तु अन्य अनेक समान कारणों पर विचार भी किया जिन्हें मैं अब विस्तार पूर्वक लिखूंगा।

श्री लङ्का एवम् श्याम की बौद्ध प्रथाओं में हमें गङ्गा नदी के मुहाने तथा श्री लङ्का के द्वीप के मध्यवर्ती प्रदेश का विवरण मिलता है जहाँ नागा लोग बसे हुए थे। इन नागाओं के पास बुद्ध के अवशेषों के एक अथवा दो द्रोण भाग थे जिन्हें "रत्न रजिंत बालू" के समीप एक सुन्दर तथा बहुमूल्यवान स्तूप में प्रतिष्ठित किया गया था। मूलरूप से अवशेषों का यह भाग कपिलावस्तु के समीप रामाग्राम से सम्बन्धित था परन्तु बुद्ध के अवशेषो के मूल आठ भागो में एक भाग पात्र सहित गङ्गा नदी के मार्ग से समुद्र तक चला गया जहाँ नागाओं ने इसे प्राप्त कर लिया और वह इसे मजेरिका नामक अपने देश में ले गये। अब, यह देश दन्तपुर के दक्षिण में था क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध के दाँत सहित दन्तपुर से श्री लङ्का जाते समय राजकुमार तथा राजकुमारी हेम माला का विमान "रत्न रजिंत बालू" के समीप तट पर गिर गया था। रत्न रंजित बालू को स्थिति को किस्तना नदी पर धरनीकोट में अथवा इसके समीप निर्धारित करने में इस नाम से सहायता मिलती है क्योंकि देश के इस भाग की हीरों की खाने धरनीकोट के उत्तर में पतियाल के छोटे जिले तक सीमित है। दन्तपुर से बभर यात्रा ३१० ई० में हुई थी और स्याम देश के विवरणानुसार अवशेषों के दोनों द्रोण नागा देश में उस समय तक सुरक्षित थे परन्तु तीन वर्षोंपरान्त श्री लङ्का के राजा ने इन अवशेषों को प्राप्त करने के उद्देश्य से एक पुजारी को मजेरिका भेजा और नागाओं के प्रतिरोध के होते हुए भी इन अवशेषों को आश्चर्य जनक ढङ्ग से प्राप्त कर लिया गया। तत्पश्चात नागा राजा ने श्री लङ्का से अवशेषों का कुछ भाग वापस करने की प्रार्थना की "जिसे स्वीकार कर लिया गया।"

श्री लङ्का के विवरण में अनेक बातें भिन्न प्रकार से दी गई हैं परन्तु मुख्य भिन्नता तिथि के सम्बन्ध में है। महावंशों के अनुसार रामाग्राम में केवल एक द्रोण अवशेष थे जिन्हें नागाओं ने मजेरिका के स्थान पर प्रतिष्ठित किया था। तदोपरान्त १५७ ई० पूर्व में दत्तथागामिनी के राज्य काल के पाँचवें वर्ष में श्री लङ्का ले जाया गया। इस राजा ने इन्हें रूआनवेली के स्थान पर महा स्तूपों में रखा था।

महावंशों के लेखक ने श्री लङ्का के इस महान स्तूप की महिमा का प्रज्वलित विवरण दिया है परन्तु उसने स्वीकार किया है कि मजेरिका का चैत्य "इतना सुन्दर बनाया गया था तथा उसे अनेक प्रकार से इतना सुसज्जित किया गया था......कि श्री लङ्का की समस्त समृद्धि अन्तिम स्तूप के मूल्य से कम होगी।" दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित प्राप्त सूचना के अनुसार यह विवरण केवल धरनीकोट के देदीप्यमान स्तूप से सम्बन्धित हो सकता है जो कम उभड़ी हुई कला पूर्ण खुदाई से अक्षरशः ढँका हुआ था।

श्री लङ्का एवम् स्याम के ऐतिहासिक ग्रन्थों में तिथियों की विभिन्नता का उत्तर प्राप्त करना कठिन है परन्तु मेरे विचार में यह अत्यधिक असम्भावित है कि इन अवशेषों को ३१३ ई० में श्री लङ्का ले जाया गया था और रूआन वेली के विशाल स्तूप में इन्हें प्रतिष्ठित किया गया हो तथा तदोपरान्त त्रुटि पूर्वक उन्हें स्तूप के मूल संस्थापक दुथागमिनी से सम्बन्धित किया गया हो। प्रसिद्ध दाँत जिसे ३१० ई० में कलिंग से श्री लङ्का ले लाया गया था—२४० ई० पूर्व में अशोक के समकालीन देवाननपियातिस्सो द्वारा निर्मित धर्मचक्र नामक भवन में रखा गया था तथा तदोपरान्त इसे अभयगिरि विहार में स्थानान्तरित किया गया था जिसकी स्थापना ८६ ई० पू० में कराई गई थी।

परन्तु चाहे हम इस उत्तर को स्वीकार करें अथवा नहीं, बौद्ध ग्रन्थों तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थ यात्रियों के विवरण एवम् महावंशों के सामान्य सहमति से हमें पता चलता है कि रामाग्राम के वौद्ध अवशेष ई० पूर्व की तीसरी शताब्दी के मध्य में भी अपने मूल स्थान में प्रतिष्ठित थे। उस समय अशोक बुद्ध की मृत्योपरान्त विभाजित सभी अवशेषों पर स्तूप बनवा रहा था। अवशेषों को यदि १५७ ई० पूर्व में श्री लङ्का ले जाया गया था जैसा कि महावंशों में लिखा गया है—तो हमें रामाग्राम के स्थान पर मूल स्तूप के विनाश, एवम् मजेरिका के स्थान पर भारत के सर्वाधिक देदीप्यमान स्तूप में अवशेषों के प्रतिष्ठापन तथा श्री लङ्का ले जाये जाने के पश्चातवर्ती कार्य को ८० वर्षों से कुछ अधिक काल तक सीमित करना होगा। परन्तु श्री फर्ग्युसन के अत्यधिक उचित विचारानुसार "बनावट को देखते हुए धरनीकोट के निर्माण में पूरे ५० वर्ष व्यतीत हुए होंगे।" अतः अशोक के समय के पश्चात अवशेषों के रामाग्राम में स्थित रहने एवम् मजेरिका के नागाओं के पास सुरक्षित रहने का समय केवल ३० वर्ष रहा होगा। इन्हीं कारणों से मैं स्याम देश के ग्रन्थों का अनुकरण करना चाहता हूँ और तदनुसार मैं धरनीकोट से श्री लङ्का में अवशेषों के द्रोण भाग को ले जाये जाने की तिथि को ३१३ ई० निर्धारित करूँगा।

फिर भी इस बात का ध्यान रहे कि उत्तरी भारत की जनता इस बात से अनभिज्ञ थी कि रामाग्राम में प्रतिष्ठित अवशेष नागाओं द्वारा मजेरिका ले आये गये थे क्योंकि फाहियान तथा ह्वेनसांग—जिन्होंने क्रमशः पाँचवीं एवम् सातवीं शताब्दी में इस स्थान की वस्तुतः यात्रा की थी—में स्तूपों के स्थिर रहने का उल्लेख किया है। फिर भी तीर्थ यात्रियों के इस विवरण से आश्चर्य होता है कि उनके समय में भी यह विश्वास किया जाता था कि स्तूप के समीप सरोवर के नागा अवशेषों की रक्षा करते थे। मूल बौद्ध कथा के अनुसार इन्हीं नागाओं ने सम्राट अशोक द्वारा रामाग्राम से अवशेषों को हटाये जाने के प्रयत्न को निष्फल बताया था। समय के साथ जब रामाग्राम निर्जन हो गया—जैसा कि तीर्थ यात्रियों ने इसे देखा था—इस कथा ने भी आंशिक परिवर्तत स्वरूप धारण कर लिया कि सम्राट अशोक से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से नागा स्वयं इन अवशेषों को उठा कर ले गये थे। दक्षिण भारत के नागाओं ने कथा के उपर्युक्त स्वरूप को स्वीकार कर लिया होगा और इस प्रकार अवशेषों को उनके देश मजेरिका में ले जाये जाने की कथा को सरल जनता ने स्वीकार कर लिया होगा।

रामाग्राम से हटाये जाने वाले अवशेषों को श्री लङ्का के ग्रन्थों में एक द्रोण कहा गया है जबकि स्याम देश की पुस्तकों में इन्हें दो द्रोण कहा गया है। अतः मेरा अनुमान है कि उन्हें सामान्य रूप से द्रोण धातु अथवा अवशेषों का द्रोण भाग कहा जाता था। पाली में इसे दोना कहा जायेगा जो सम्भवतः ह्वेनसांग के तो ना की का मूल स्वरूप रहा होगा। इसका पूरा नाम दोनक धातु अथवा साधारण दोनक रहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगा जिसमें कोट शब्द जोड़ दिये जाने से दोनककोट बन जायेगा जो चीनी तो-ना-की-किया-त्सी और साथ ही साथ शिला लेखों के धनककट के अनुरूप है । अब, मैं कन्हारी के शिला लेख से यह सिद्ध कर चुका हूँ कि धनकुकट का नाम १०८ ई० पुराना है परन्तु चूंकि सभी शिला लेखों में इसे द के स्थान पर ध अक्षर से लिखा गया है अतः मेरा अनुमान है कि अवशेषों के द्रोण भाग की कथा उस तिथि की अपेक्षा नवीन है । हम जानते हैं कि बौद्ध धर्मावलम्बियों में स्थानीय नामों को परिवर्तन करने की सामान्य प्रथा थी जिससे उनके अर्थ बुद्ध से सम्बन्धित कथाओं के अनुरूप हो सकें । इस प्रकार तक्षशिला को तक्ष सिर बना दिया तथा अदी छत्र को बुद्ध के सिर का अहि छत्र बना दिया गया । अतः रामाग्राम के स्थान पर अवशेषों के द्रोण भाग पर नागाओं की सतर्कता को देखते हुए मैं इसे अत्यधिक सम्भावित समझता हूँ कि बौद्ध धर्माव-लम्बियों ने रामाग्राम में अवशेषों के द्रोण भाग की कथा से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से धनक को परिवर्तन कर दोनक बना दिया होगा ।

इस स्थान का वर्तमान नाम धरनीकोट है जिसे मैं ह्वेनसांग द्वारा सुरक्षित भावाविवेक से सम्बन्धित पश्चातवर्ती कथा से लिया गया समझता हूँ । इस पवित्र सन्यासी ने भावी बुद्ध अर्थात मैत्रेय की इच्छा करते हुए तीन वर्षों तक उपवास किया और धारनी नामक धार्मिक कविता का निरन्तर पाठ करता रहा । तपस्या के अन्त में अवलोकितेश्वर ने उसे दर्शन दिया तथा धनककट के निज देश में वापस जाने एवम् नगर के दक्षिण में एक कन्दरा के सन्मुख वज्रपानी की पूजा में विश्वस्त भाव से धारनी का उच्चारण करने का आदेश दिया । तदोपरान्त उसकी इच्छा पूर्ण होगी । तीन वर्षोपरान्त वज्रपानी प्रगट हुए और उन्होंने उसे असुरों के राजमहल की ओर जाने वाली कन्दरा को खोलने की शक्ति प्रदान की जहाँ भावी बुद्ध निवास करते थे । तीन वर्षों तक इन गुप्त धारनियों का उच्चारण करने पर कन्दरा का मार्ग खुल गया एवम् जन समूह जो उनका अनुसरण करने में डरता था—से विदाई लेते हुए भावाविवेक ने कन्दरा में प्रवेश किया । तुरन्त ही कन्दरा का मार्ग बन्द हो गया और तदोपरान्त उन्हें कोई नहीं देख सका । चूंकि सातवीं शताब्दी में धारनियों की यह विचित्र कथा धनककट का प्रचलित विश्वास था अतः स्वाभाविक है कि जन साधारण में यह स्थान धारनीकोट के नाम से प्रचलित रहा होगा ।

ईसवी काल की प्रथम एवम् द्वितीय शताब्दियों के शिला लेखों में धनककट के उल्लेख से हमें यह आशा करनी चाहिये कि टालमी के भूगोल में इस नाम के किसी चिह्न को ढूंढा जा सकता है । परन्तु इसके स्थान पर हमें अरूअरनी अथवा अवरनी नामक जनता का उल्लेख मिलता है जो मैसोलस अथवा गोदावरी के निचले प्रदेश में बसे हुए थे । इनके राजा बस्सरोनाग के निवास स्थान एवम् राजधानी को मलंग कहा जाता था । चूंकि मलंग मैसोलस तथा टयना नदियों के मध्य अवस्थित है अतः इसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एल्लूर के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसके समीप वेंगी नामक प्राचीन राजधानी के अवशेष प्राप्त किये जा सकते हैं। इन खण्डहरों को पेड्डा तथा चिन्ना वेंगी अर्थात बड़ा एवम् छोटा वेंगी कहा जाता है। वर्तमान समय में मछलीपटम के पूर्व-उत्तर-पूर्व में ५४ मील दूर एक छोटे तटीय नगर अथवा बन्दरगाह अर्थात बन्दर मलंग के नाम से इस बात की पुष्टि होती है कि मलंग इसी क्षेत्र में अवस्थित था। अतः मेरा निष्कर्ष है कि धनककट केवल एक विशाल धार्मिक संस्थान का स्थान था जबकि वेंगी देश की राजनीतिक राजधानी थी।

जहाँ तक राजा के नाम का सम्बन्ध है मेरा विचार है कि यूनानी बस्सारो नागा को महावंशा के पाला मजेरि-का-नागा के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। म एवम् ब के मध्य निरन्तर अदला-बदली को एवम् ख के स्वेच्छिक परिशिष्ट को देखते हुए यूनानी बस्सरो को पाली मजेरी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है और इस प्रकार टालमी का मलंगा मजेरिका के नागाओं की राजधानी बन जायेगा।

धरनीकोट को ह्वेनसांग के धनककट तथा नागाओं के मजेरिका स्तूप के अनुरूप स्वीकार किये जाने के पक्ष में समस्त साक्षियों के गुण दोष के सामान्य निरूपण से पता चलता है कि सभी में अवशेषों के स्तूप की अत्यधिक सुन्दरता का विशेष उल्लेख किया गया है। मैं मजेरिका के नाग स्तूप क ज्वलन्त प्रताप से सम्बन्धित महावंशों के विवरण को उदधृत कर चुका हूँ। इसकी अन्तिम सीढ़ी समृद्धि में श्री लङ्का की समस्त समृद्धि से श्रेष्ठ थी। इसी प्रकार चीनी तीर्थ यात्री धनककट क धार्मिक भवनों के असमान्य सौन्दर्य को देख कर चकित रह गया था। ह्वेनसांग के अनुसार इन भवनों में बैक्ट्रिया के राजमहलों का समस्त सौन्दर्य निहित था। इसके अतिरिक्त इसकी कला कृतियों की अत्यधिक सुन्दरता एवम् अपरिमित आभूषणों के सम्बन्ध में हमें अपनी आँखों पर भी विश्वास होना चाहिये क्योंकि इनमें अनेक कला कृतियाँ लन्दन के भारतीय आजयबघर में देखी जा सकती हैं। अन्त में, हमें जन साधारण की प्रथाओं का समर्थन प्राप्त हैं जिनके अनुसार किसी समय धरनीकोट भारत के इस भाग की राजधानी थी।

स्तूप की आयु को केवल अनुमानतः निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि लन्दन में प्राप्त कला कृतियों पर खुदे २० शिला लेखों में तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है न ही इनमें किसी ऐसे राजा अथवा व्यक्ति का उल्लेख है जिसका समय ज्ञात हो। परन्तु इन अक्षरों के वर्णमाला सम्बन्धी क्रम को देखने से पता चलता है कि यह शिला लेख उसी काल में खोदे गये थे जिस समय में कन्हारी, नासिक तथा कार्ले की प्रसिद्ध कन्दराओं के लेख खोदे गये थे जिनमें आन्ध्र परिवार के गोतमी पुत्र सतकर्णी, पुदुमयी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा यध्यना की भेंट का उल्लेख किया गया है। यह लेख भिल्सा स्तूप (१) के द्वार पर खोदे गये सतकर्णी लेखों एवम् गिरनार की चट्टान पर रूद्र दाम के लेखों से मिलते हैं। मैं इस बात का उन्लेख कर चुका हूँ कि कन्हारी लेखों में एक लेख शकादित्य काल के ३० वें वर्ष में अर्थात १०८ ई० में लिखा गया था और अब मैं यह जोड देना चाहता हूँ कि रूद्र दाम का लेख ७२ वें वर्ष में लिखा गया था जो विक्रम सम्वत के अनुसार १५ ई० तथा शक सम्वत के अनुसार १५० ई० के समान है। यह दोनों तिथियाँ ईसवीं काल की प्रथम दो शताब्दियों से सम्बन्धित हैं जबकि मैंने अमरावती के शिला लेखों को इसी काल में लिखा गया स्वीकार किया है। कर्नल मेकेन्जी ने घरनीकोट के उण्डहरों की खुदाई कराते समय गोतमी पुत्र एवम् आन्ध्र के सतकर्णी परिवार के अन्य राजाओं की मुद्रायें प्राप्त की थीं और यह एक मात्र खोज ही उसके शासन काल में इस स्थान पर महत्वपूर्ण भवनों की उपस्थिति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। मैं इस बात का प्रस्ताव कर चुका हूँ कि गोतमी पुत्र सतकर्णी एवम् शक सम्वत का संस्थापक महान सालिवाहन अथवा सादवाहन सम्भवतः एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न नाम थे और मेरा विश्वास है कि इसी राजा ने ९० ई० में अमरावती का शिला लेख खुदवाया था तथा इस स्तूप के निर्माण कार्य को उसके उत्तराधिकारी याद्रया श्री सातकरणी ने पूरा कराया था जो १४२ ई० में सिहांसनारूढ़ हुआ था। तिथि स्तूप के निर्माण काल के सम्बन्ध में प्राप्त एक मात्र तथ्य से मिलती है कि इसका निर्माण ईसवी काल से पूर्व अथवा ३१३ ई० के पश्चात नहीं हुआ था। ३१३ ई० में इन अवशेषों को यहाँ से श्री लङ्का स्थानान्तरित कर दिया गया था।

काफी समय पश्चात अर्थात ग्याहरवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अबु-रिहान ने दनक का उल्लेख किया है, जिसने इसे "कोंकण के मैदान" कहा है। अब, कोंकण कृष्णा नदी की घाटी है और दनक देश के उपर्युक्त वर्णन से ह्वेनसांग के घनककट को कृष्णा नदी पर अवस्थित घरनीकोट के ध्वस्त नगर के अनुरूप स्वीकार करने के मेरे प्रस्ताव के पक्ष में एक अन्य प्रमाण मिलता है। अबु-रिहान के अनुसार धनक कर्कदन अथवा मैण्डों का देश था। अब, व्यापारी सुलेमान ने दक्षिण भारत के रुहमी नामक एक देश के सम्बन्ध में यही विवरण दिया है। यह देश महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध था जिसे एक अगूठी से निकाला जा सकता था। मसूदी तथा इदरिसी ने इसी देश को क्रमशः रहमा तथा दूमी कहा है। मसूदी ने इस बात का उल्लेख भी किया है कि यह समुद्र तट के साथ-साथ विस्तृत था। अब, मार्को पोलो ने मतफिलो नगर को मछली-

---

(१) भिल्सा स्तूप पृ० २६४ श्री फर्ग्युसन ने इस स्तूप को अशोक की लाट पर लिखे गये लेखों के समान स्वीकार किया है परन्तु यह उनकी भूल है क्योंकि भिल्सा टोप के द्वार पर लिखे लेख पूर्णतयः भिन्न हैं जैसा कि मेरी खोज से पता चलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पटम के प्रान्त में तथा मालाबार के उत्तर में रत्नों एवम् मकड़े के जाल के समान महीन एवम् कोमल मलमल के लिये प्रसिद्ध स्थान बताया है। मुतफिली को सामान्यतः मछलीपटम के अनुरूप स्वीकार किया गया है परन्तु घरनीकोट से ६५ मील दक्षिण में तथा मछलीपटम से ७० मील दक्षिण पश्चिम में मुतपिली नाम का एक बड़ा कस्बा वर्तमान समय में भी बसा हुआ है। किसी भी अवस्था में मार्कोपोलो के उल्लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि गोदावरी के मुहाने का तटीय प्रदेश रत्नों एवम् महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध था। अतः इसमें घरनीकोट के उत्तर में पर्त्याल का रत्न युक्त जिला एवम् महीन मलमल के लिये प्रसिद्ध मछलीपटम जिला सम्मिलित रहा होगा। और तदनुसार इसे अरब भूगोल शास्त्रियों के रहमी अथवा दूमी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है। अरबी भाषा के अक्षरों में थोड़े परिवर्तन से रहमी को धनक पढ़ा जा सकता है जो अबु-रिहान के दनक से मिलता है।

उड़ीसा के ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार अमरावती के वर्तमान नगर की स्थापना बाहरवीं शताब्दी में उड़ीसा के राजा सूर्य देव ने द्वितीय राजधानी के रूप में करवाई थी। यह नाम अमरनाथ अथवा अमरेश्वर के रूप में शिव की पूजा से सम्बन्धित है और इस देवता के १२ प्रसिद्ध लिङ्गों में एक लिंग-जिसे उज्जैन से सम्बन्धित बताया जाता है—वस्तुतः कृष्णा नदी पर अवस्थित पवित्र नगर से सम्बन्धित था क्योंकि हम जानते हैं कि उज्जैन में महाकाल का प्रसिद्ध मन्दिर था जब कि शिव के अन्य सभी लिग विभिन्न स्थानों से सम्बन्धित थे।

मैं एम० विवीन सेन्ट मार्टिन के सन्देह की चर्चा किये बिना इस विवरण को समाप्त नहीं कर सकता। उन्होंने सन्देह व्यक्त किया है कि दण्डक नाम धनककट से सम्बन्धित है। दण्डकारण्य अथवा 'दण्डक के वन' भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वाराह मिहिर ने दक्षिण भारत के अन्य स्थानों के साथ दण्डक इस प्रकार उल्लेख किया है—केरल, करनाटा, कांचीपुर, कोकरण चित्रा पट्टन (मद्रास) इत्यादि। इस सूची में दण्डक कोंकण अथवा अप्पर किस्तना से भिन्न है अतः इसे कृष्णा नदी की निचली घाटी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है जिसकी राजधानी धनककट थी। परन्तु चूंकि अन्तिम नाम पश्चिमी कन्दराओं के प्रारम्भिक लेखों में मिलता है अतः यह सम्भव है कि उच्चारण में दोनों नामों की समानता प्रायः आकस्मिक हो।

ह्वेनसांग ने धनककट प्रान्त की परिधि को ६००० ली अथवा १००० मील बताया है। चीनी सम्पादक द्वारा लिखे गये ता आन तो लो अर्थात महाआन्ध्र के अन्य नाम से इन बड़े आंकड़ों की पुष्टि होती है क्योंकि तेलंगाना के अन्य जिले अर्थात कलिंग तथा आन्ध्र धनककट की उपेक्षा छोटे थे। किसी भी दिशा में सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु इस बात की अधिक सम्भावना है कि प्रान्त की सीमायें जहाँ तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्भव है तेलगु भाषा की सीमाओं से मिलती थीं जो पश्चिम में कुलबर्ग तथा पेन्ना-कोण्डा, दक्षिण में त्रिपती तथा पुलीकट झील तक विस्तृत थीं। उत्तर में यह आन्ध्र तथा कलिंग से तथा पूर्व में समुद्र से घिरा हुआ था। इन सीमाओं की परिधि जहाँ तक सम्भव है १००० मील है अतः मैं इस बात पर विश्वास करने का इच्छुक हूँ कि इस प्रकार उल्लिखित विशाल क्षेत्र ह्वेनसांग का प्रसिद्ध धनककट है।

चोलिया अथवा जोरिया

धनककट से ह्वेनसांग दक्षिण पश्चिम की ओर १००० ली अथवा १६७ मील की यात्रोपरान्त चू लि-यी अथवा झो-ली यी गया जिसे उसने २४०० ली अथवा ४०० मील की परिधि का एक छोटा जिला कहा है। इस अज्ञात स्थान की स्थिति को निर्धारित करने के लिये द्रविड़ की सर्व प्रसिद्ध राजधानी कांचीपुर अथवा कांजीवरम तक १५०० अथवा १६०० ली अथवा लगभग २६० मील तक दक्षिण दिशा में तीर्थ यात्री के पश्चातवर्ती मार्ग का उल्लेख करना आवश्यक है। अब, कृष्णा नदी से कांचीपुर की दूरी २४० से २६० मील है अतः चालिया को धारनी कोट के १६७ मील दक्षिण पश्चिम में नदी के दक्षिणी तट पर देखा जाना चाहिये। यह स्थिति करनूल को स्थिति से ठीक-ठीक मिलती है जो सीधी रेखा पर कांचीपुर से उत्तर उत्तर पश्चिम में २३० मील तथा धरनीकोट से पश्चिम-दक्षिण पश्चिम में १६० मील दूर है। एम० जुलीन ने चोलिया को चोल के अनुरूप बताया है जिससे चलमण्डल अथवा कोरोमण्डल का नाम पड़ा है। परन्तु चोल द्रविड़ के दक्षिण में था जबकि ह्वेनसांग का चोलिया उत्तर की ओर था। यदि हम तीर्थ यात्री द्वारा बताई गई दूरी एवम् दिकांश को प्रायः शुद्ध स्वीकार कर लें तो चोलिया को निश्चित ही कर्नूल के पड़ोस में देखा जाना चाहिये।

प्रोफेसर लासेन ने प्रस्ताव रखा है कि चोलिया तथा द्रविड़ नामों को तीर्थ यात्री की यात्राओं के चीनी सम्पादक ने परिवर्तन कर दिया होगा। कुछ वर्ष पूर्व यात्राओं के वर्णन को पढ़ते समय मुझे इसी बात का प्रस्ताव रखने की इच्छा हुई थी और यदि यह बात निश्चित होती कि चीनी शब्द चू-ली-यी चोल का प्रतिनिधित्व करता है तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का अधिक प्रलोभन हो सकता था। परन्तु मैं एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन के इस विचार से सहमत हूँ कि उपर्युक्त परिवर्तन की सम्भावना को स्वीकार करना कठिन है यद्यपि ह्वेनसांग की पुस्तक का अनुसरण करने से स्पष्ट हो जाता है कि उसने प्रसिद्ध चोल राज्य का उल्लेख न करने की भूल की है। एम० डी सेन्ट मार्टिन ने कोरोमण्डल नाम के वर्तमान प्रयोग का उल्लेख किया है। यह नाम उत्तर में गोदावरी नदी के मुहाने तक मद्रास के सम्पूर्ण तटीय प्रदेश को दिया गया है। उनके विचार है कि इस नाम से कृष्णा नदी के दक्षिण में चोल राज्य के सम्भावित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तार का पता चलता है । परन्तु मेरा विश्वास है कि कोरोमडण्ल नाम का यह विस्तार वस्तुतः योरोपीय व्यापारियों की देन है जिन्होंने इसे अपनी सुविधा हेतु अपना लिया था । इसके अतिरिक्त यह नाम केवल तटीय प्रदेश से सम्बन्धित है जबकि चोलिया को ह्वेनसांग ने धारनीकोट के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित एक छोटा जिला कहा है । अतः, यदि हम ह्वेनसांग के विवरण को इसी प्रकार स्वीकार कर लें तो इस बात की कम सम्भावना है कि चोलिया पूर्व दिशा में समुद्र तट तक विस्तृत था ।

यह स्वीकार किया गया है कि चोलिया की पहचान करना कठिन है परन्तु मेरा विचार है कि हमें या तो तीर्थ यात्री के विचार को स्वीकार कर लेना चाहिये अथवा प्रोफेसर लासेन द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को स्वीकार कर लेना चाहिये । प्रथम दिशा में हमें चोलिया को कर्नूल के आस-पास देखना चाहिये जबकि अन्तिम विचारानुसार इसे तुरन्त ही चोल के प्रसिद्ध प्रान्त एवम् तज्जौर की सर्व ज्ञात राजधानी के अनुरूप स्वीकार किया जा सकता है ।

भारत के चीन-जापानी मानचित्र में—जिसे तीर्थ यात्री की यात्राओं को समझाने के उद्देश्य से बनाया गया है चोलिया जिले को चू-इयू-नो कहा गया है और इसे द्रविड़ के उत्तर में तथा धनक के दक्षिण पश्चिम में दिखाया गया है—जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है । यह चीनी अक्षर सम्भवतः कन्दानूर का प्रतिधित्व कर सकते हैं जो बुचनान के अनुसार कर्नूल के नाम का शुद्ध स्वरूप है ।

कर्नूल की दीवारों के ठीक नीचे जोरा अथवा जोरा अर्थात मानचित्रों के जोरामपुर का प्राचीन नगर अवस्थित है जो तीर्थ यात्री के चोलिया अथवा जोरिया से ठीक-ठीक मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक चीनी अक्षर बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है परन्तु कजूगिरा, जुटिंगा तथा ज्योतिष्क में समान अक्षर का प्रयोग किया गया है और मैं एम० जुलीन द्वारा इस अक्षर को जू अथवा जो पढ़ने के प्रस्ताव से सहमत हूँ । मैं जोरा को टालमी के सोरा रेगिया अरकाटी के अनुरूप समझने का भी इच्छुक हूँ । परन्तु चाहें घोड़ा गाड़ी को घोड़े के सम्मुख रखा जाये अथवा पीछे, घोडा गाड़ी, घोड़ा गाड़ी ही रहेगी अतः मैं सोरा को राजा अरकटोस की राजधानी समझता हूँ चाहे इसे राजा के नाम से पूर्व लिखा जाये अथवा बाद में । अरकटो को सामान्यतः मद्रास के समीप अरकाट के अनुरूप स्वीकार किया जाता है परन्तु इस नगर का नाम प्रायः आधुनिक समझा जाता है और सोरा अरकाट के उत्तर में रहा होगा । अतः टालमी की सोराय नोमडेज सौरों की एक शाखा रहे होंगे जो वर्तमान समय में भी कृष्णा नदी के तट पर बसे हुए हैं । कर्नूल से एक सौ मील पश्चिम-उत्तर-पश्चिम में सोरापुर नाम का एक विशाल नगर है जिसका राजा अपने को तीस शताब्दियाँ पुरानी वंश-परम्परा का वाहर बताता है, और अब भी अपने पिता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के समान 'राजदेव' समझा जाता है। उसके रचाभियक्त 'बेदार' अब भी उसके राज दरवारी हैं।

चूंकि चोलिया की परिधि को केवल २४०० ली अथवा ४०० मील बताया गया है अतः इसके छोटे आकार से इसकी पहचान करने में सहायता नहीं मिलती। यदि इसे कर्नूल जिले में दिखाया जाय तो यह धनककट के उत्तर-पश्चिमी कोण को काट देना और यद्यपि इसका क्षेत्र कम हो जायेगा फिर भी इसकी परिधि में अन्तर नहीं आयेगा और यदि चोलिया को चोल के अनुरूप स्वीकार करना है तो मैं इसमें उत्तर-पश्चिम में सलेम के समीप सन्केरी द्रुग से लेकर उत्तर पूर्व में कावेरी अथवा कोलरून नदी के मुहाने तक तथा दक्षिण-पश्चिम में डिन्दीगल से लेकर दक्षिण-पूर्व तक कालीमेर बिन्दु तक विस्तृत तन्जोर के आधुनिक जिले को सम्मिलित करूंगा। यह क्षेत्र लगभग १२० मील लम्बा तथा ८० मील चौड़ा है अथवा इसकी परिधि प्रायः ४०० मील है।

द्राविड़

सातवीं शताब्दी में ता-लो-पी-चा द्राविड़ प्रान्त की परिधि ६०० ली अथवा १००० मील थी और कन ची-पू-लो अथवा कांचीपुर नामक इसकी राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी। कांचीपुर पलार नदी पर अवस्थित एक विशाल छितरे एवम् प्राचीन नगर कंजीवरम का शुद्ध संस्कृत नाम है। चूंकि द्राविड़ उत्तर में कोंकण तथा धनककट से एवम् दक्षिण में मालकूट से घिरा हुआ था जबकि पश्चिम की ओर किसी भी जिले का उल्लेख नहीं किया गया है अतः यह निश्चित प्रतीत होता है कि यह समुद्र से समुद्र तक सम्पूर्ण पठार में विस्तृत रहा होगा। अतः इसकी उत्तरी सीमा को अनुमानतः पश्चिमी घाट से कुण्डा पर से लेकर कडूर तथा त्रिपती होते हुए पुलीकट झील तक, तथा दक्षिणी सीमा को कालीकट से कावेरी के मुहाने तक विस्तृत बताया जा सकता है। चूंक इन सीमाओं की परिधि १००० मील के अधिक समीप है अतः प्रस्तावित सीमाओं को प्रायः शुद्ध स्वीकार किया जा सकता है।

कांचीपुर में तीर्थ यात्री के निवास के समय श्री लङ्का से प्रायः ३०० बौद्ध भिक्षु राजा की मृत्यु के पश्चात देश में राजनैतिक हलचल के कारण भाग कर वहाँ आ गये थे। मेरी गणना के अनुसार तीर्थ यात्री ३० जुलाई ६३६ ई० में कांचीपुर पहुँचा होगा और टर्नौर द्वारा बनाई गई श्री लङ्का के राजाओं की सूची में ६३६ ई० में राज बुना मुगलान की हत्या कर दी गई थी। इन भिक्षुओं द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर तीर्थ यात्री ने सेन्ग किया-लो अथवा श्री लङ्का के सम्बन्ध में अपना विवरण तैयार किया था क्योंकि देश की राजनीतिक दुर्व्यवस्था के कारण वह वहाँ नहीं जा सका था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालकूट अथवा मदुरा

कांचीपुर से ह्वेनसांग ३००० ली अथवा ५०० मील दक्षिण की ओर मो-लो क्यू चा तक गया जिसे एम० जुलीन ने मालकूट कहा है। देश के दक्षिणी भाग में समुद्र तट की ओर मो लो यी अथवा मलय नाम का एक पर्वत था जहाँ चन्दन की लकड़ी मिलती थी। इस प्रकार वर्णित देश पठार का दक्षिणी छोर है जिसके एक भाग को आज भी मलयालम अथवा मलयवाड़ अथवा मालाबार कहा जाता है। तदनुसार मैं चीनी अक्षरों को मलयकूट का संक्षिप्त स्वरूप समझूंगा। राज्य की परिधि ५००० ली अथवा ८३३ मील थी जबकि यह दक्षिण में समुद्र से तथा उत्तर में द्राविड़ राज्य की सीमाओं से घिरा हुआ था। चूंकि यह अनुमान कावेरी के दक्षिण में पठार के छोर के वास्तविक आंकड़ों से ठीक-ठीक मिलते हैं अतः मलयकूट प्रान्त में पूर्व में तज्जोर तथा मदुरा के आधुनिक जिले तथा पश्चिम में कोयम्बत्तूर, कोचीन तथा ट्रावन्कोर के जिले सम्मिलित रहे होंगे।

राजधानी की स्थिति को निश्चित करना कठिन है क्योंकि कांजीवरम से ५०० मील दक्षिण की दूरी हमें कन्या कुमारी से दूर समुद्र में ले जायेगी। यदि हम ३००० ली के स्थान पर इसे १३०० ली अथवा २१७ मील पढ़ें तो दिकांश एवम् दूरी दोनों ही मदुरा के प्राचीन नगर की स्थिति से मिल जायेगीं जो टालमी के समय में पठार के दक्षिणी छोर की राजधानी थी। सम्भव है कि ह्वेनसांग की यात्रा के समय राजधानी कौलम (क्विलन) रही हो परन्तु न तो दूरी ही और न दिकांश ही ह्वेनसांग के कथन से मिलता है क्योंकि यह स्थान काँजीवरम के दक्षिण-पश्चिम में ४०० मील से अधिक दूर नहीं है। राजधानी के उत्तर-पूर्व में चरित्रपुर नामक एक नगर था जो श्री लङ्का जाने के लिये एक बन्दरगाह थी। यदि राजधानी मदुरा थी तो बन्दरगाह नागापटम थी परन्तु राजधानी यदि कौलम थी तो बन्दरगाह रामनद (रामनाथपुर) रही होगी। इस बन्दरगाह से श्री लङ्का ३००० ली अथवा ५०० मील दक्षिण पूर्व में थी।

"ह्वेनसांग की जीवनी" के लेखक के अनुसार तीर्थ यात्री ने मलयकूट की यात्रा नहीं की थी वरन् सुनी हुई बातों के आधार पर अपना विवरण तैयार किया था और ३००० ली की दूरी वस्तुतः द्राविड़ की सीमाओं से ली गई थी। परन्तु इससे हमारी कठिनाई और बढ़ जायेगी क्योंकि इस दूरी को स्वीकार करने से मलयकूट की राजधानी अधिक दक्षिण की ओर चली जायेगी। इस पर टिप्पणी करते हुए एम० जुलीन ने सि-यू-की ३००० ली के स्थान पर ३०० ली निश्चित करते हुये उधृत किया है। यदि यह संख्या प्रकाशन की त्रुटि नहीं है तो विभिन्न पाठों से पता चलता है कि जहाँ तक दूरी एवं प्रस्थान बिन्दु का प्रश्न है सभी पाठों में किसी प्रकार की अनिश्चितता है। अतः मैं इस बात को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि तीर्थ यात्री की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवनी एवं इतिहास में मूल दूरी ३०० ली अथवा ५० मील थी जिसे इतिहास के अनुसार द्राविड़ की सीमाओं से किया गया था तथा जीवनी में द्राविड़ की राजधानी से १३०० ली अथवा २१७ मील की दूरी बताई गई थी। किसी भी हालत में मलयकूट की राजधानी मदुरा में निश्चित होगी जो सदैव दक्षिणी भारत का एक प्रमुख नगर रहा है।

अबुरिहान एवं उसके प्रतिलिपक रशीद उद्दीन के अनुसार मलय तथा कूटल (अथवा कुनक) दो विभिन्न प्रान्त थे। अन्तिम प्रान्त प्रथम प्रान्त के दक्षिण में था अर्थात भारत का दूरस्थ दक्षिणी जिला था। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि मलयकूट एक संयुक्त नाम था जो पड़ोसी जिलों के नामों को मिला कर रखा गया था। इस प्रकार मलय पाण्डेया जिले का प्रतिनिधित्व करेगा जिसकी राजधानी मदुरा थी तथा कूट अथवा कूटल ट्रावन्कोर का प्रतिनिधित्व करेगा जिसकी राजधानी कोचीन अथवा टालमी की कोटियार थी।

चोल राज्य के सम्बन्ध में ह्वेन सांग की भूल को इस तथ्य से समझाया जा सकता है कि उसकी यात्रा के समय चोल देश चेरा के विशाल राज्य का भाग था। ओरथुरा रेगिया सारे नदी सोरिंगाय अर्थात् सारे चोर अथवा चोल जाति के राजा सोरनाथ की राजधानी उरियूर थी। उरियूर त्रिचनापल्ली से दक्षिण-दक्षिण पूर्व में कुछ ही मीलों की दूरी पर है। सोरिंगाय सम्भवतः प्लिनी की सेयरेनी जाति है जिनके पास ३०० नगर थे क्योंकि वह पाण्डाय तथा देरंगाय अथवा द्राविड़ के मध्यवर्ती तट पर बसे हुए थे।

एम जुकीन के अनुसार मलयकूट को चीमो लो अथवा भी मूरा भी कहा जाता था क्योंकि प्रथम चीनी अक्षर ची चो तो अथवा जभोट्री के द्वितीय अक्षर से मिलता है। झिमूरा सम्भवतः स्ट्रेबो टालमी तथा एरियान के लिमूरि तथा पेन्टिनजोरियन सूचियों के डमोरिके का परिवर्तत स्वरूप है। यह प्लिनी की चारमाय जाति का नाम भी प्रतीत होता है जो पाण्डाय से अगर पश्चिमी तट पर बसे हुए थे।

भारत के चीन-जापानी मानचित्र में मालकूट का अन्य नाम है य-आन-मेन है जिसने टालमी के एइयोई से इसके सम्बन्धों का पता चलता है।

कोंकण

मलयकूट से तीर्थ यात्री द्राविड़ (कंजीवरम) वापस आया और तत्पश्चात वह उत्तर-पश्चिम की ओर २००० ली अथवा ३३३ मील दूर कोंम-कीन नो ५ लो अथवा कोंकणपुर गया। दिकांश एव दूरी दोनों ही तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर अन्नागुन्डों की ओर संकेत करती हैं जो मुस्लिम आक्रमण से पूर्व देश की प्राचीन राजधानी थी। एम० विवीन डी० सेन्ट मीर्टन ने बनवासी के प्राचीन नाम का प्रस्ताव किया है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो टालमी का बनौसेई है। परन्तु इसकी दूरी बहुत अधिक है तथा महाराष्ट्र की राजधानी तक इसका पश्चातवर्ती दिकांश उत्तर हो जायेगा जबकि ह्वेनसांग ने उत्तर पश्चिमी कहा है। अन्ना गुन्डी एक महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान है और नदो के दक्षिणी तट पर विजय नगर के आधुनिक नगर की स्थापना से पूर्व यादव परिवार के राजाओं की राजधानी थी।

हेमिल्टन के अनुसार कोंकण प्रदेश में "पश्चिमी घाटों का अधिकांश पूर्वी भाग" सम्मिलित था। यह विस्तार अब्रुरिहान द्वारा "कोंकण के मैदान" के रूप में दनक के विवरण से मिलता है क्योंकि यह विवरण घाट के ऊपर उन्नत भूमि के लिये हो सकता है। ह्वेनसांग के समय में भी यही दशा रही होगी क्योंकि उसने राज्य की परिधि को ५००० ली अथवा ८३३ मील कहा है जिसे यदि घाटों एवं समुद्र के मध्यवर्ती संकीर्ण क्षेत्र तक सीमित किया जाये तो बम्बई से मंगलूर तक सम्पूर्ण तटीय क्षेत्र इसमें सम्मिलित होगा। परन्तु सातवीं शताब्दी में इस क्षेत्र का उत्तरी अर्द्ध भाग महाराष्ट्र के शक्तिशाली चालुक्य राज्य का भाग था तथा तदनुसार यदि इसके आकार के सम्बन्ध में तीर्थ यात्री का अनुमान शुद्ध है तो कोंकण राज्य पश्चिमी घाटों से भीतर की ओर दूर दूर तक विस्तृत रहा होगा। इसकी वास्तविक सीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु चूंकि यह राज्य दक्षिण के द्राविड़ से, पूर्व में धनकक्ट से, उत्तर में महाराष्ट्र से तथा पश्चिम में समुद्र से घिरा हुआ था अतः इसे तट के साथ-साथ विर्गोला से वेडनूर के समीप कुण्डापुर तक तथा भीतर की ओर कुलबर्ग के समीप से लेकर मदगिरि के प्राचीन दुर्ग तक विस्तृत बताया जा सकता है जिससे इसकी परिधि ८०० मील होगी। यह कदम्बों का प्राचीन राज्य था जो कुछ समय तक महाराष्ट्र स्थानीय जनता देश को कोंकण कहा करती है जिससे प्लिनी की कोकोण्डाय नामक जाति से इनकी अनुरुपता का पता चलता है जो दक्षिण भारत से सिन्धु नदी के मुहाने की ओर जाने वाले मार्ग के मध्य बसे हुए थे।

महाराष्ट्र

कोंकण से तीर्थ यात्री उत्तर पश्चिम की ओर २४०० से २५०० ली अथवा ४०० मील से कुछ अधिक दूर मो हो ला चा अथवा महाराष्ट्र गया। इसकी राजधानी की परिधि ३० ली अथवा ५ मील थी और पश्चिम की ओर यह एक विशाल नदी को छूतो थी। केवल इसी विवरण से मैं गोदावरी नदी पर पैथान अथवा प्रतिष्ठान को सातवीं शताब्दी में महाराष्ट्र की राजधानी के रूप में स्वीकार करने का इच्छुक हूँ। टालमी ने इसे बैथाना तथा पेरिप्लस के लेखक ने इसे प्लिथान कहा है जिसे निश्चित ही पैथान पढ़ा जाना चाहिये। परन्तु पश्चिम अथवा उत्तर पश्चिम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में भड़ौच तक १००० ली अथवा १६७ मील की पश्चातवर्ती दूरी बहुत कम है (१) क्योंकि भड़ौच तथा पैथान के मध्य वास्तविक दूरी २५० मील से कम नहीं है। एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन का विचार है कि देवगिरि इंगित स्थान की स्थिति से अधिक मिलती है परन्तु देवगिरि किसी भी नदी पर अवस्थित नहीं है तथा भड़ौच से इसकी दूरी प्रायः २०० मील है। मेरे विचार में इस बात की अधिक सम्भावना है कि इंगित स्थान कल्यानी है क्योंकि हम जानते हैं कि यह चालुक्य परिवार की प्राचीन राजधानी थी। इसकी स्थिति भी ह्वेनसांग की दोनों दूरियों से भली प्रकार मिलती है क्योंकि यह अन्नागुन्डी से लगभग ४०० मील उत्तर पश्चिम में तथा भड़ौच से १८० अथवा १६० मील दक्षिण में हैं। नगर के पश्चिम में कैलाश नदी प्रवाहित है जो इस स्थान पर एक बड़ी नदी का रूप धारण कर लेती है। छठी शताब्दी में कोसमस इंडिकोप्लूअसटीज ने कलियाना नाम के अन्तर्गत एवं क्रिश्चियन बिस्फोरस की राजधानी के रूप में कल्यान अथवा कल्यानी का उल्लेख किया था तथा पेरीप्लस के लेखक ने द्वितीय शताब्दी में इसे कलियेनी कहा है जो सरगनोस के समय एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। कलियान का नाम कन्हारी की कन्दराओं के शिला लेखों में भी मिलता है जो ईसा काल की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी में लिखे गये थे।

कहा जाता है कि प्रान्त की परिधि ६०० ली अथवा १००० मील थी जो उत्तर में मालवा, पूर्व में कोशल तथा आन्ध्र, दक्षिण में कोंकण तथा पश्चिम में समुद्र के मध्यवर्ती असम्बन्धित क्षेत्र की परिधि से मिलती है। इस क्षेत्र के सीमान्त बिन्दु, समुद्र तट पर दामन तथा विंगला तथा भीतर की ओर ईदलाबाद तथा हैदराबाद हैं जिनसे इसकी परिधि १००० मील से अधिक बनती है।

राज्य को पूर्वी सीमाओं पर एक विशाल पर्वत था जिसकी श्रेणियां एक दूसरे से अपर खड़ी हुई थीं। एवं इसकी चोटियां प्रायः खण्डित थी। प्राचीनकाल में अरहट अचार ने एक मठ का निर्माण कराया था जिसके कमरे चट्टानों को काट-काट कर बनाये गये थे तथा इसका वाह्य भाग एक "अंधेरी" घाटी की ओर मुंह किये दो मंजला ऊँचा था। इससे सम्बन्धित विहार १०० फुट ऊँचा था तथा मठ के मध्य में बुद्ध की ७० फुट ऊँची पत्थर की प्रतिमा थी जिसके ऊपर पत्थर की सात टोटियां वायु में लटक रही थीं। विहार की दीवारों को चारों ओर विभाजित किया गया था जिन में बुद्ध के जीवन की सभी महान घटनाओं को कलापूर्ण ढङ्ग से दिखाया गया था। मठ के उत्तरी तथा दक्षिणी द्वारों के बाहर दाहिनी एवं बाई दोनों ओर

---

(१) एम० जुलीन लिखित "ह्वेनसांग।" तीर्थ यात्री की जीवनी में दिशा को उत्तर पूर्व कहा गया है परन्तु चूंकि इस दिशा को स्वीकार करने से महाराष्ट्र की हिन्द महासागर राधानी में चली जायेगी अतः इसे उत्तर-पश्चिम पढ़ना आवश्यक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थर के बने हाथी थे। जनसाधारण का विश्वास था कि यह हाथी समय-समय पर इतने जोर से चिंघाड़ते थे कि पृथ्वी कांप जाती थी। पहाड़ी का वर्णन इतना स्पष्ट है कि इससे इसकी पहचान में सहायता नहीं मिलती परन्तु यदि पूर्वी दिशा सही है तो अजयन्ती की पहाड़ी ही सम्भवतः इंगित स्थान है क्योंकि इसकी खड़ी श्रेणियां एलोरा को ठलवां श्रेणियों की अपेक्षा ह्वेनसांग के विवरण से अधिक मिलती प्रतीत होती हैं। परन्तु पत्थर के हाथियों को छोड़ यह विवरण इतना स्पष्ट है कि इन दोनों स्थानों को निश्चित रूप से समान नहीं कहा जा सकता। एलारो के स्थान पर कैलाश कन्दराओं के बाहर पत्थर के दो हाथी हैं परन्तु यह ब्राह्मणों का मन्दिर है न कि बौद्ध विहार। इसी प्रकार इन्द्र सभा के समीप एक हाथो है परन्तु यह पशु आंगन के भीतर बना हुआ है जब कि तीर्थ यात्री के विवरण में हाथियों को द्वार के बाहर दिखाया गया है। बौद्ध कला कृतियां में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्य सामान्य रूप से दिखाये गये हैं अतः इनसे मठ की पहचान करने में किसी प्रकार की विशेष सहायता नहीं मिलेगी। परन्तु यद्यपि तीर्थ यात्री का विवरण अस्पष्ट है फिर भी हाथियों की स्थिति एवं कला कृतियों के सम्बन्ध में इसे इतना विस्तार पूर्वक लिखा गया है कि मैं इस बात को स्वीकार करने का इच्छुक हूँ कि तीर्थ यात्री ने स्वयं स्थान का देखा होगा। इस दशा में मैं राज्य की "पश्चिमी" सीमायें पढ़ूंगा और इस मठ को सलसेट्टी द्वीप की कन्हारी कन्दराओं के अनुरूप स्वीकार करूंगा। यदि मैं कल्यानी को सातवीं शताब्दी में महाराष्ट्र की राजधानी स्वीकार करने में सही हूँ तो यह प्रायः निश्चित है कि तीर्थ यात्री कन्हारी के स्थान पर बने बौद्ध संस्थानों को देखने गया होगा जो कल्यानी से २५ मील से अधिक दूर नहीं थे। कन्हारी के स्थान पर प्राप्त अनेक शिला लेखों से पता चलता है कि यहाँ कि कुछ एक कन्दराये ईसा काल की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दियों में बनाई गई थीं। इनमें एक शिला लेख पर शकादित्य काल का ३० वां वर्ष खुदा हुआ है। जो १०८ ई के समतुल्य है। कन्हारो में पत्थर के हाथियों के अवशेष प्राप्त नहीं हुए है परन्तु चूंकि बिहार के बाहर निर्मित भाग गिर चुके हैं अतः पहाड़ी के अधोभाग के खण्डहरों से भविष्य में हाथी के खण्डहर प्राप्त हो सकते हैं। श्री इ वेस्ट ने इन खण्डहरों से पत्थर का एक स्तूप प्राप्त किया है और इस बात में सन्देह नहीं कि भविष्य में खोज से अनेक रूचि पूर्ण खण्डहर प्राप्त होंगे।

लङ्का

श्री लंका का प्रसिद्ध द्वीप भारतीय राज्यों में नहीं गिना जाता है और राजनीतिक अव्यवस्ता के कारण तीर्थ यात्री ने लंका की यात्रा नहीं की थी। परन्तु चूंकि उसने कांचीपुर में मिले भिक्षुओं से प्राप्त विवरण के आधार पर इसका वर्णन किया है और चूंकि धार्मिक एवं राजनैतिक रूप से यह द्वीप भारत के अधिक समीप है अतः इस रोचक द्वीप का वर्णन किये बिना मेरा कार्य पूरा नहीं होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे समय की सातवीं शताब्दी में श्री लंका को सेन्ग-किया लो अथवा सिन्हाला कहा जाता था। कहा जाता है कि यह नाम शेर के वंशज सिन्हाला से लिया गया था जिसका पुत्र विजय ५४३ ई पू० में बुद्ध की मृत्यु के दिन श्री लंका पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रसिद्ध था। इसका मूल नाम पाओ-चू अथवा संस्कृत रत्न द्वीप था। योरप वासियों को इसका सर्व प्रथम ज्ञान सिकन्दर महान के अभियान में तपरोबाने नाम के अन्तर्गत प्राप्त हुआ था। इसका प्रचलित पाली नाम ताम्बा था। यह नाम विजय के रोगी सहयोगियों को लाल हथेलियों के कारण रखा गया था। जिन्होंने नौकाओं से उतरने पर द्वीप को लाल मिट्टी को स्पर्श किया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत ताम्र पर्णो पर आधारित इसका वास्तविक नाम ताम्बा पन्नी था। लासेन ने इसे ताम्र अर्थात "लाल कमल के फूलों से ढका विशाल सरोवर का सम्भावित प्रतिनिधि कहा है। पश्चातवर्ती समय में यह द्वीप पश्चिमी संसार के सिमुन्दु अथवा पलेय सिमुन्दु के नाम से प्रख्यात था। लासेन का विचार है कि यह नाम पाली सिमन्त अथवा "पवित्र कानून का मुखिया" से लिया गया था। चूंकि प्लिनी ने राजकीय निवास के नगर को अन्तिम नाम से सम्बोधित किया हैं अतः इसे टालमी के अनुरग्राम्मन अथवा अनरज पुर का द्वितीय नाम समझा गया है। अन्द्रासिमुन्दु नाम का विश्लेषण नहीं किया है। यह नाम टालमी ने अनरजपुर के विपरीत श्रीं लंका के पश्चिमी तट की भू-नासिका को दिया गया है। इसकी स्थिति से प्रतीत होता है कि यह पलाय सिमुन्दु का दूसरा नाम हो सकता है।

टालमी ने द्विप को सालिके कहा है जो, लाखेन के प्रस्तावानुसार सिन्हाक सिहालक अथवा संक्षिप्त सिलक का भ्रष्ट स्वरुप प्रतीत होता। अम्मियानस ने इसे सेदेन्डि- कहा है जो कोसमस का सीलिडवा के समान है। यह दोनों नाम सिहल द्वीप से लिये गये हैं जो सिन्हला द्वीप का पाली स्वरूप है। अबुरिहान ने इसे सिन्गल दीब अथवा सिरिन्दीब कहा है जो योंरपीय नाविकों का सेरेन्दीब है। इसी प्रकार अरबी जिलान तथा सीलोन नाम प्राप्त हुए। हिन्दुओं में सर्वाधिक प्रचलित नाम लंका द्वीप है जिसे महावसों में लंका दीप के पाली स्वरूप में दिया गया है।

ह्वेनसांग के अनुसार द्वीप की परिधि ७००० ली अथवा ११६७ मील थी जो वास्तविक परिधि से दुगनी है। सर एमरसन टेनेन्ट के अनुसार इसका वास्तविक आकार उत्तर से दक्षिण लम्बाई में २७१३ मील तथा पूर्व से पश्चिम चौड़ाई में १३७ मील है अथवा इसकी परिधि प्रायः ६५० मील है। यूनानी लेखकों ने इसके आंकड़ों को इतना बढ़ा चढ़ा कर लिखा है कि मुझे स्थानीय माप की वास्तविक दर के सम्बन्ध में सन्देह होने लगा है। कोसमस ने इस द्वीप की वास्तविक यात्रा करने वाले सोपटर के आधार पर इसे ३०० गौडिया लम्बा एवं इतना ही चौड़ा बताया है। सर एमरसन टेनेन्ट ने इस नाम को स्थानीय माप गौ के अनुरूप स्वीकार किया है जिसे उन्होंने २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मील के समतुल्य एवं चौड़ाई माना है। इस प्रकार द्वीप की लम्बाई ६०० मील बताई है। परन्तु गौडिया भारत के गौ कोस के समतुल्य हो सकता है। गौ कोस वह दूरी थी जहाँ तक गौ के रम्भाने की ध्वनि को सुना जा सकता था। यह दूरी १००० धनु है जो ६००० फुट अथवा १.१३६ मील के समान है। इस प्रकार ३००० गौडिया ३४० मील के समान होगा जो द्वीप की वास्तविक दूरी से केवल ७० मील अधिक है। प्लिनी ने इसकी लम्बाई को १०००० स्टेडिया अथवा ११४६ मील बताया है। टालमी ने १५० अक्षांश अथवा १००० मील लम्बा कहा है जिसे मरसियानस ने घटा कर ९५०० स्टेडिया अथवा १०९१½ मील कहा है। अब, प्रारम्भिक चीनी तीर्थ यात्री फाहियान ने जिसने ४१२ ई० अथवा सोपेटर से एक शताब्दी पूर्व श्री लंका की यात्रा की थी, कहा है कि द्वीप की लम्बाई ५० योजन तथा चौड़ाई ३० योजन अथवा ३५०+२१० मील थी। यदि हम यह अनुमान लगाये कि दोनों यात्रियों ने अपने आंकड़े देश की जनता से प्राप्त किये थे तो सोपेटर के ३०० गौडिया को ५० योजन के अनुरूप स्वीकार किया जायेगा और इस प्रकार ६ गौडिया बराबर एक योजन की दर से स्थानीय माप (गौ) अंग्रेजी मील से कुछ अधिक अथवा भारत के गौ कोस के समान होगा। (१)

श्री लंका पर अपनी रोचक एवं महत्वपूर्ण पुस्तक में सर एमर्सन टेनेन्ट ने प्रस्ताव किया है कि "गाले की बन्दरगाह बाईबल का तारशिष नगर होगी जो अरब की खाड़ी तथा रोफीर के मध्य अवस्थित था। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि ओफीर मलक्का अथवा औरिया चेर सोनिसस था क्योंकि मलय भाषा में ओफीर सोने की खान का साधारण नाम है।" परन्तु मेरे विचार में इन मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि सोलोमन के नाविकों द्वारा लाये गये सभी पदार्थों के नाम शुद्ध संस्कृत नाम हैं। सर एमर्सन का कथन है कि यह नाम श्री लंका में प्रचलित तामिल नामों के अनुरूप हैं। यह नाम हैं सेन हबीम अथवा हाथी के दाँत, होफीम अथवा लंगूर तथा तुकूम अथवा तोता। परन्तु यह शब्द हैं संस्कृत के शुद्ध इभा, कपि एवं सुक शब्द हैं जिनमें हेब्रू भाषा के अक्षर अन्त में जोड़ दिये गये हैं। यह सत्य है कि संस्कृत के इन नामों को दक्षिण भारत की भाषाओं में स्वाभाविक रूप से अपना लिया गया है परन्तु इन्होंने तामिल के मूल नामों का स्थान ग्रहण किया है। यह नाम वर्तमान समय में भी प्रयोग में लाये जाते हैं। उदाहरणार्थ हाथी के लिये याने बन्दर के लिये कुरंगा, मोर के लिये मयिल तथा तोते के लिये किलिपपिलै। अब, यदि सोलोमन के नाविकों ने इन संस्कृत नामों को लंका में प्राप्त किया था तो हमें यह स्वीकार करना

(१) सर एमर्सन ने यूनानी माप को गौ के समरूप स्वीकार किया है। गौ वह दूरी है जिसे कोई व्यक्ति एक घण्टे में पूरा कर सकता है। परन्तु 'घण्टा' शब्द में योरपीय सभ्यता की झलक मिलती है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि गौ वह दूरी थी जिसे कोई व्यक्ति भारत में समय विभाजन की सर्व प्रसिद्ध इकाई घड़ी अथवा २४ मिनट में तय कर सकता था। यदि ऐसा है तो प्रति घण्टा तीन मील की दर से गौ १२ मील के समान होगा जो ऊपर लिखे गौ कोस के समान है। विल्सन ने गौ को चार कोस के समान माना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगा कि आर्य जाति की विजय पताका सोलोमन के समय से कुछ शताब्दियों पूर्व अर्थात १२०० से १५०० ई० पू० में ही सदूर दक्षिण में पहुँच गई थी। परन्तु आर्यों के इतिहास से हमें पता चलता है कि इस समय तक उन्होंने नर्वदा नदी को पार नहीं किया था और न ही गंगा के मुहाने के प्रदेश में प्रवेश कर सके थे। अतः यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि सोलोमन के समय में श्री लंका अथवा दक्षिण भारत में आर्यो के नाम प्राप्त किये गये हों। उनके निजी विवरण के अनुसार भी लंका निवासी ५४३ ई० पू० में विजय के आगमन के पूर्व बर्बर अवस्था में थे और २४२ ई० पू० में अशोक के पुत्र महेन्द्र के समय आर्य जाति एवं लंका वासियों में किसी प्रकार के सम्बन्धों अथवा विचारों के आदान-प्रदान का सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त नहीं है।

स्मिथ लिखित "बाईबल के शब्द कोष" में ओफीर सम्बन्धी लेख के लेखक ने अरब के पक्ष में मत दिया है। उसने अनुमान लगाया है कि हाथी दाँत, बन्दर तथा मयूर आदि शब्द ओफीर से नहीं लिये गये थे वरन् इन्हें तरशिष से प्राप्त किया गया था तथा सोना एवम् अलगूम के वृक्ष ओफीर से लाये गये थे। इस अनुमान के आधार पर उसने हाथी, बन्दर एवम् तोते के भारतीय नामों से छुटकारा प्राप्त कर लिया है परन्तु अलगूम की लकड़ी शेष रह जाती है जिसे प्रोफेसर लासेन ने संस्कृत वल्गू अथवा चन्दन की लकड़ी बताया है। उसने स्वीकार किया है कि अरेबिया में वर्तमान समय में स्वर्ण नहीं पाया जाता है परन्तु उनका विचार है कि किसी समय यहाँ सोना पाया जाता था और यदि ऐसा नहीं भी था तो यहाँ बाहर से लाया गया सोना अधिक था क्योंकि सेबह की रानी ने सोलोमन को अधिक सोना भेंट किया था।

पश्चिमी भारत के अन्तर्गत वडारी अथवा इडेर के अपने विवरण में मैं इस विषय पर विचार कर चुका हूँ परन्तु मैं यहाँ अपना विचार पुनः व्यक्त करना चाहता हूँ कि बाईबल का ओफीर जिसे जोसेफस तथा सेप्टुआजिन्ट ने भिन्न-भिन्न यूनानी नाम दिये हैं सम्भवतः हिन्दू भूगोल अथवा दक्षिण पश्चिमी राजपूताना का सौवीर था जिसे पश्चिमी देशों के निवासियों ने होबीर पुकारा होगा ठीक उसी प्रकार जैसे सिन्धु को इण्डस तथा सप्त को हाफ्ट पुकारा जाता है। प्लिनी के अनुसार खाम्बेय की खाड़ी के उत्तरी प्रदेश में पूर्ववर्ती समय में सोना एवं चाँदी दोनों पाये जाते थे। वर्तमान समय में भी यहाँ यह दोनों धातुएं मिल जाती हैं। अरावली पर्वतों से प्राप्त सोने के नमूने भारतीय अजायबघर में देखे जा सकते हैं और यही श्रेणी भारत का एक मात्र स्थान है जहाँ किसी मात्रा में चाँदी पाई जाती है। आर्य जाति ईसवी काल से २००० वर्ष पूर्व पश्चिमी भाग में बस गई थी और सोलोमन के समय से काफी पूर्व ही आर्य भाषा देश की सामान्य भाषा बन गई थी। अतः मैं इञ्जील के ओफीर अथवा सोफीर को हिन्दुओं के सौवीर के अनुरूप स्वीकार करूँगा जहाँ सोलोमन के नाविकों ने शुद्ध सोना प्राप्त किया होगा तथा जहाँ उन्होंने हाथी दाँत, बन्दर एवं मयूर तथा तोता प्राप्त किये होंगे जिन्हें उन्हीं नामों से पुकारा जाता था जिन्हें उन्होंने हमारे लिये बाईबल में सुरक्षित रखा है।

※ समाप्त ※

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 'क'

दूरी के माप

योजन, ली, कोस

चीनी तीर्थ यात्रियों ने दूरियों के माप में भारतीय योजन तथा चीनी ली का उल्लेख किया है। वरिष्ठ यात्री फाहियान ने सामान्यतः प्रथम माप का प्रयोग किया है जबकि पश्चातवर्ती यात्री सुङ्गयुन तथा ह्वेनसांग ने द्वितीय माप का प्रयोग किया है। कोस जो वर्तमान समय में सामान्य भारतीय माप है किसी भी यात्री द्वारा प्रयोग में नहीं लाया गया। ह्वेनसांग ने लिखा है कि प्रथानुसार प्रचलित माप केवल ३० चीनी ली के समान था। विभिन्न यात्रियों द्वारा सर्व ज्ञात स्थानों के मध्य की उल्लिखित दूरियों की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग ने योजन को प्रथानुसार माप के आधार पर ४० ली के समान स्वीकार किया है। मैं उदाहरण स्वरूप चार दूरियों का उल्लेख करता हूँ :—

	फाहियान		ह्वेनसांग
१. श्रावस्ती से कपिला तक	१३ योजन	अथवा	५०० ली
२. कपिला से कुशी नगर	१२ "	"	४८५ "
३. नालन्दा से गिरियेक	१ "	"	५८ "
४. वैशाली से गंगा	४ "	"	१३५ "
कुल	३० योजन	=	११७८ ली
अथवा	१ "	=	३९$\frac{१}{४}$ "

ह्वेनसांग ने एक योजन को ५०० धनु के आठ कोस के समान बताया है। इस प्रकार एक योजन २४००० फुट अथवा ४$\frac{१}{२}$ मील से कुछ अधिक होगा परन्तु हिन्दुओं के सभी ग्रन्थों में योजन को ४ कोस के समान बताया गया है जबकि प्रति कोस १००० अथवा २००० धनु के समान था। प्रथम दर ह्वेनसांग द्वारा वर्णित की लम्बाई से मिलती है जबकि द्वितीय दर के अनुसार एक योजन दुगना अथवा ९ मील के समान हो जायेगा। इस दर से हमें वर्तमान समय में भारत के अनेक भागों में प्रचलित कोस बराबर २$\frac{१}{४}$ मील की सामान्य—दर प्राप्ति होती है।

६००० फुट का छोटा कोस निश्चित ही प्राचीन भारतीय माप है जैसा कि मैगस्थनीज के आधार पर स्ट्रैबो ने लिखा है कि पालीबोथरा जाने वाले राजकीय मार्ग पर दूरी दर्शाने के उद्देश्य से प्रत्येक १० स्टेडिया अथवा ६०६७$\frac{१}{२}$ फुट की दूरी पर स्तम्भ लगवाये गये थे। कोस की इस दूर को स्वीकार करने से एक योजन में २४००० फुट से कुछ अधिक अथवा ४$\frac{१}{२}$ मील के समान होगा जबकि वास्तविक चीनी ली ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बराबर एक योजन की दर से केवल ८०० फुट तथा प्रथागत ली ४० बराबर एक योजन की दर से ६०० फुट से अधिक नहीं होगा। परिणाम स्वरूप ब्रिटिश मील में ६½ अथवा ८½ लो होंगे परन्तु सुनिश्चित स्थानों के मध्य वास्तविक मार्ग दूरियों एवं चीनी तीर्थ यात्रियों द्वारा वर्णित दूरियों की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय योजन को ३० ली के समान बताने में ह्वेनसांग ने अवश्य ही कोई गलती की है।

फाहियान द्वारा वर्णित निम्न दूरियों से पता चलता है कि मार्ग दूरियों में एक योजन प्रायः ६¾ मील के समान था और चूंकि एक गांव से दूसरे गांव के बैल गाड़ियों के प्राचीन मार्ग टेढ़े-मेढ़े हुआ करते थे अतः योजन की वास्तविक दूरी ७½ अथवा ८ मील के समान स्वीकार की जा सकती है।

	फाहियान			ब्रिटिश	मार्ग
१. भेड़ा से मथुरा	८०	योजन	अथवा	५३६	मील
२. मथुरा से संकिसा	१८	"	"	११५¾	"
३. संकिसा से कन्नौज	७	"	"	५०	"
४. बनारस से पटना	२२	"	"	१५२	"
५. पटना से चम्पा	१८	"	"	१३६½	"
६. चम्पा से तामलुक	५०	"	"	३१६	"
७. नालन्दा से गिरियेक	१	"	"	९	"
	१९६	योजन	अथवा	१३१५¼	मील

उपरोक्त दूरियों से फाहियान का एक योजन ब्रिटिश मार्ग दूरियों के ६.७१ मील के समान होता है।

इसी प्रकार ह्वेनसांग के माप की तुलना से उसका ली का मूल्य मार्ग दूरियों के अनुसार एक मील के छठवें भाग के बराबर है। परन्तु यह सम्भव है कि वास्तविक दूरी में इसका मूल्य एक मील के पांचवें भा ग के समान था क्योंकि बैल गाड़ियों के टेढ़े-मेढ़े रास्ते ब्रिटिश मार्गों से काफी लम्बे थे।

	ह्वेनसांग			ब्रिटिश	मार्ग
१. भदावर से गोविस्न	४००	ली	अथवा	६६	मील
२. कोशाम्बी से कुसपुरा	७००	"	"	११४	"
३. श्रावस्ती से कपिला	५००	"	"	८५	"
४. कुशि नगर से बनारस	७००	"	"	१२०	"
५. बनारस से गाजीपुर	३००	"	"	४८	"
६. गाजीपुर से वैशाली	५८०	"	"	१०३	"
	३१८०	ली	अथवा	५७६	मील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन दूरियों के औसत के अनुसार तक मील में ५.९२५ अथवा ६ ली होते हैं। मैंने इस पुस्तक में ह्वेनसांग की संख्याओं को घटाकर ब्रिटिश मील के समान करने के उद्देश्य से इसी मूल्य का अनुसरण किया है।

योजन तथा ली की उपरोक्त दरें एक दूसरे से मिलती हैं जैस कि ह्वेनसांग ने लिखा है कि एक योजन को पृथा के अनुसार ४० के बराबर माना जाता था। जब कि उसकी वर्णित दूरियों में योजन की दर ४० ली को ५.९२५ से भाग देने पर ६.७५ मील होता है जो वस्तुत: ६.७१ मील के समान है जिसे सर्व ज्ञात स्थानों के बीच फाहियान द्वारा वर्णित दूरियों के आधार पर हम प्राप्त कर चुके हैं।

एम० विवीन डी सेन्ट मार्टिन ने ला-पी-रे गाबिल का उद्धित करते हुए बताया है कि ह्वेनसांग के समय से कुछ समय उपरान्त चीनी ली ३२९ मीटर अथवा १०७९.१२ ब्रिटिश फुट के बराबर था। चूंकि यह दर ह्वेनसांग द्वारा वर्णित दूरियों के आधार पर प्राप्त दर अर्थात् ली बराबर १०५६ फुट अथवा एक मील के पाँचवें भाग के दर से प्राय: मिलती है अत: मेरा विचार है कि भारत में अपनी यात्राओं की दूरी का वास्तविक अनुमान वस्तुत: इसी ली के आधार पर किया था। सातवीं शताब्दी में चीनी ली के वास्तविक मूल्य को इस प्रकार स्वीकार करने से एक योजन की लम्बाई ४३१६४.८ फुट अथवा ३/१६ मील थी जो ८ से ९ मील के प्रचलित दर से प्राय: मिलती-जुलती है।

इस प्रकार सातवीं शताब्दी में चीनी ली का वास्तविक मूल्य १०७९-१२ फुट अथवा ब्रिटिश मील के पाँचवें भाग से कुछ अधिक था परन्तु ऊपर बताये गये कारणों एवं प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ब्रिटिश मार्ग दूरी में एक ली का मूल्य ब्रिटिश मील छठवें भाग से अधिक नहीं था।

भारतीय कोस की लम्बाई में भिन्नता ने चीनी तीर्थ यात्रियों को दुविधा में डाल दिया होगा। सम्भवत: यही कारण था कि फाहियान ने योजन के लम्बे माप का प्रयोग किया था जब कि ह्वेनसांग ने सभी दूरियाँ चीनी ली में बतायी हैं। वर्तमान समय में कोस की लम्बाई प्राय: प्रत्येक जिले में भिन्न-भिन्न है परन्तु व्यवहारिक रूप से कोस के तीन विशिष्ट मूल्य है जो उत्तरी भारत में इस समय प्रचलित है।

(१) छोटा कोस जिसे सामान्यत: बादशाही अथवा पंजाबी कोस कहा जाता है। यह उत्तरी पश्चिमी भारत तथा पंजाब में प्रचलित है और प्राय: १ १/४ मील लम्बा है।

(२) गंगा नदी के प्रान्तों का कोस जो नदी का दोनों तट्टों के जिलों में प्रचलित है २ १/८ मील लम्बा था परन्तु सुविधा के कारण अब इसे सामान्यत: २ ब्रिटिश मील के समान स्वीकार किया जाता है।

(३) बुन्देल कोस जो बुन्देल खण्ड तथा यमुना नदी के दक्षिण में अन्य हिन्दू

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रांतों में प्रचलित है प्रायः ४ मील लम्बा है। यही कौस दक्षिण भारत में मैसूर राज्य में भी प्रचलित है।

मैं पृथम कोस को मूल रूप में द्वितीय कौस का आधा समझता हूँ क्यों कि यह दोनों कौस एक ही प्रणाली के अंग थे। इस प्रकार विल्सन ने एक कोस अथवा कौस को ४००० अथवा ८००० हाथ के समान बताया है। छोटा कौस मैगस्थनीस के समय में मगध में प्रचलित रहा होगा क्योंकि उसने लिखा है कि राज्यकीय मार्ग पर दूरी बताने के उद्देश्य से प्रत्येक दस स्टेडिया की दूरी पर स्तम्भ लगवाये गये थे। अब, दस स्टेडिया ६६६६.७२ फुट अथवा प्रायः ४००० हस्त के समान हैं जो "ललित विस्तार" के अनुसार मगध के कोस का वास्तविक मूल्य था। ८००० हस्त के लम्बे कोस का उल्लेख भास्कर की "लीलावती" में तथा अन्य स्थानीय विद्वानों द्वारा किया गया है।

इन माप दण्डों के वास्तविक मूल्य को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि हमें उन सभी इकाईयों का ज्ञान हो जिन्हें मिलाकर इन्हें बनाया गया है। यह इकाई अंगुल है जो भारत में एक इञ्च के तीन चौथाई भाग से छोटी है। सिकंदर लोदी की बयालीस ताम्र मुद्राओं को मापने पर एक अंगुल एक इञ्च के ७२६७६ के बराबर है। हम जानते हैं कि इन मुद्राओं को अंगुल की चौड़ाई के आधार पर बनवाया गया था। श्री थामस ने उपरोक्त माप को कुछ कम अथवा ७२२२६ बताया है। हमारे माप का औसत ७२६३२ इन्च है जिसे भारतीय अंगुल के वास्तविक मूल्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि मैंने अनेक स्थानीय व्यक्तियों की उंगलियाँ वस्तुत एक इंच के तीन चौथाई भाग से कम थी। इस दर के अनुसार २४ अंगुल का एक हाथ १७.४३१६८ इंच के बराबर होगा और ९६ अंगुल का एक धनु ५.८१ फुट के बराबर होगा। चूंकि १०० धनु से एक नलवा और १०० नलवा से एक क्रोस अथवा कोस बनता है। अतः यह सम्भव प्रतीत होता है कि दशमलव क्रम को सुरक्षित रखने के लिए एक धनु १०० अंगुल का रहा होगा। इस विचारानुसार एक हस्त में २४ के स्थान पर २५ अंगुल रहा होगा और इसका वास्तविक मूल्य १८.१५८ इंच होगा परन्तु यह दर भी भारतीय बाजार में प्रचलित हस्त के दर से काफी कम है। हस्त के इस मूल्य को बड़े माप इस प्रकार रहे होंगे।

चार हाथ अथवा १०० अंगुल = ६.०५२ फुट = एक धनु ८०० हस्त अथवा १०० अंगुल = ६०५.२ फुट = एक नलवा ८०० हस्त अथवा १०० नलवा = ६०५२ फुट = एक क्रोस।

चूंकि क्रोस अथवा का उपर्युक्त मूल्य मैगस्थनीज द्वारा विवरण से प्राप्त मूल्य से केवल १५ फुट कम है अब मेरा विचार है कि इसे मगध के प्राचीन क्रोस के वास्तविक मूल्य का सामीप्य मूल्य स्वीकार किया जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चातवर्ती समय में मुसलमान शासकों ने कोस की अन्य दरें निश्चित की थीं जिन्हें विभिन्न प्रकार के गजों के आधार पर निश्चित किया गया था और इन शासकों ने अपने नाम पर कोस का नामांकन किया था। इस विषय पर हमारी सूचना मुख्य रूप से अकबर के मंत्री अफुल फजल से ली गई थी। उसके अनुसार शेर खाँ ने ६० जरीबों के क्रोस अथवा कोस को निर्धारित किया था जबकि प्रत्येक जरीब में ६० सिकन्दरी गज अथवा ४१½ सिकन्दरी थे। यह कोस अफुलफजल के समय देहली में प्रचलित थे। यह कोस ९०४२·६६ फुट अथवा प्राय: १ ⅗ मील के बराबर था। अकबर ने ५००० इलाही गज वाले एक अन्य कोस को प्रचलित किया था जबकि इस गज का मूल्य ४१ सिकन्दरी के समान बताया जाता है। निश्चिय ही यह एक त्रुटि है क्योंकि वर्तमान इलाही गज का माप ३२ से ३३ इंच है और इस प्रकार यह ४४ अथवा ४५ सिकन्दरियों के बराबर है। सर हेनरी इलियट ने "आगरा से लाहौर तक अकबर महान" द्वारा निर्मित राजकीय मार्ग तक ही बने हुए वर्तमान कोस मिनारों के बीच की दूरी के माप से उपर्युक्त कोस का मूल्य निर्धारित करने का प्रयत्न किया है परन्तु लोगों का सामान्य विश्वास है कि वह मीनार शाहजहाँ द्वारा बनाये गये थे जिसने एक अन्य गज का प्रचलन करवाया था अत: अकबरी कोस के उपरोक्त मूल्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सर हेनरी इलियट ने इस कोस को अनुचित महत्व प्रदान किया है। लगता है कि इस कोस ने अन्य सभी कोसों का स्थान ले लिया था। परन्तु निश्चित ही यह स्थित नहीं थी क्योंकि अकबर के निजी मंत्री अबुलफजल ने अपने स्वामी के साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों का उल्लेख करते हुए छोटे कोस का प्रयोग किया है। अकबर के पुत्र जहांगीर ने भी अपनी आत्मकथा में अकबरी कोस को त्याग दिया है। उसके अपनो आत्मकथा में लिखा है कि उसने लाहौर तथा आगरा के मध्य प्रत्येक ८ कोस पर एक सराय का निर्माण करने की आज्ञा दी थी। (१)

परिशिष्ट 'ख'

टालमी के पूर्वी देशान्तर में सुधार

टालमी द्वारा उद्धृत दूरियाँ वास्तविक दूरियों से स्पष्टतय: इतनी अधिक है कि विभिन्न भूगोल शास्त्रियों ने उनके सुधार हेतु अनेक उपायों का प्रस्ताव किया है। एम० गोस्लिन ने टालमी की दूरियों को उनके ⅚ भाग के रूप से स्वीकार करने का

---

(१) जहाँगीर की आत्मकथा पृष्ठ ९० इन सरायों के बीच की दूरी ९ से १३ मील है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्ताव किया है परन्तु उनकी प्रणाली इस अनुमान पर आधारित थी कि टालमी ने एराटस्थनीज द्वारा वर्णित विषुवीय एवं Rhodian Diaphragms का गलत मूल्यांकन किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि टालमी ने टारियन भूगोल शास्त्री मैरीनस तथा मैसीडोनिया के व्यापारी टिटिथानस पर निर्भर रहा है। सम्भवतः एम० गोसिलिन का तरीका अनेक प्रसिद्ध स्थानों के देशान्तर सम्बन्धी अधिकता पर आधारित टालमी की त्रुटियों के औसत पर निश्चित किया गया था। वस्तुतः यह टालमी की त्रुटियों का एक प्रयोगात्मिक सुधार है जबकि इस त्रुटियों के कारण पर उनका सिद्धान्त केवल एक अनुमान मात्र है। टालमी की देशान्तर सम्बन्धी त्रुटियों के वास्तविक कारणों को सर हेनरी रालिन्सन ने इतना स्पष्ट लिखा है कि मैं इन त्रुटियों का विचार करते समय केवल उनकी पंक्तियों को ही उद्धृत करूँगा।

(१) यूफ्रेटीज पर स्थित हीरापोलीस से लोहे के स्तम्भ तक की सड़क की दूरी को उसने एक सीधी रेखा में बदला, और इसके लिए उसने नक्शे पर १ में ८ के बजाय १ में ११½ का एकरूप माप स्वीकार किया। शायद इससे भी सही कहना यह होगा कि उसने १ में ७ का माप स्वीकार किया।

(२) उसने भूमध्यरेखीय स्टैडियम की गणना नये सिरे से कर उसे ६०० के बजाय ५०० अंश पर निश्चित किया। इस प्रकार, सम्पूर्ण यात्रा-मार्ग (इटीनेरेरी) की रेखा को रोड्स् से समानान्तर मानते हुए, उसके एक अंश को केवल ४०० स्टेडियम के बराबर माना। वैसे, सच पूछिये तो सही माप ४८० था।

(३) सम्पूर्ण यात्रा-मार्ग (इटीनेरेरी) की 'इकोइनीं' को जोलिम्यिक-स्टेडियम में रूपान्तरित करते समय उसने उसे पौने चार मील के फारसी-फरसांग के बिल्कुल बराबर उतार दिया। दूसरी ओर, सर हेनरी का विश्वास है कि 'स्कोहनस' के मानी है कारखानों के स्वाभाविक माप का एक घंटा। यह माप प्राचीन और आधुनिक, दोनों कालों में कारवां वाले-मंजिल तय करते समय-हर दिन काम में लाते थे आप इसे औसतन तीन ब्रिटिश-मील के बराबर समझ सकते हैं।

इन तीन भूलों के कारण टालमी के पूर्वी देशांतरों में जहां-तहां अलग-अलग संशोधन आवश्यक है; और, सर हेनरी रालिन्सन के हिसाब से यह संशोधन ३/१० वें हिस्से तक होंगे। यह मात्रा एम० गौस्सैलीन द्वारा प्रयुक्त, प्रयोग-सिद्ध संशोधन के १/१७ वें भाग के अन्दर आ जाती है।

यहां जिन संशोधनों की बात उठाई गई है, उनकी परिशुद्धता की प्रामाणिकता के लिए मैं केवल तक्षशिला और पालीबोथरा की देशान्तर-रेखा के अन्तर की ओर संकेत करना चाहूँगा। यह अन्तर पुस्तक के आठवें पृष्ठ पर दिया हुआ है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library
Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh